राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन

(राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखक

कन्हैयालाल सहल, एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष

हिन्दी तथा संस्कृत-विभाग,

बिडला आर्ट्स कालेज, पिलानी

१९५८

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा—दिल्ली

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

आसफअली रोड	नई दिल्ली
फव्वारा	दिल्ली
माईहीरां गेट	जालन्धर
लाल बाग	लखनऊ

उपक्रम

प्रस्तुत अध्ययन एक नूतन और मौलिक प्रयास है। इससे पूर्व राजस्थानी भाषा के विभिन्न क्षेत्रो के कुछ सग्रह प्रकाशित हो चुके थे और उनकी भूमिकाओ में इस विषय पर विचार भी व्यक्त किए गये थे तथापि ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही था जिसमे राजस्थानी भाषा की कहावतो को लेकर उनका सर्वांगीण अध्ययन उपस्थित किया गया हो। और राजस्थानी भाषा मे ही क्यो, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी भाषा-विशेष की कहावतो का इस प्रकार का अध्ययन अन्य किसी भारतीय भाषा के साहित्य मे भी नही मिलता। सबसे प्रथम विषय की नवीनता ने ही मुझे इस ओर आकृष्ट किया था।

जहाँ तक प्रबन्ध की मौलिकता का प्रश्न है, निम्नलिखित तथ्यो की ओर इगित कर देना अनुपयुक्त न होगा—

(१) ऐसी कहावते ग्रन्थ के भीतर स्थान-स्थान पर उद्धृत की गई है जिनका मूल आधार रामायण, महाभारत, जातक तथा कथासरित्सागर आदि ग्रन्थो मे मिल जाता है। इस प्रकार की कहावतें जहाँ एक ओर नेत्रोन्मीलन का काम करती हैं, वहाँ दूसरी ओर उनके द्वारा राजस्थान में कहावती साहित्य की परम्परा पर भी पर्याप्त प्रकाश पडता है।

(२) बगाली, मराठी, गुजराती और तमिल जैसी कतिपय भाषाओ को छोड कर भारतीय भाषाओ मे कहावत-सम्बन्धी सैद्धान्तिक विवेचन से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थ अत्यन्त विरल हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय द्वारा इस अभाव को दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है। इसी प्रसग मे कहावत, मुहावरा, प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र, मर्मोक्ति आदि शब्दो का तारतम्य भी बडी स्पष्टता के साथ प्रतिपादित हुआ है।

(३) राजस्थानी कहावतो का रूपात्मक अध्ययन इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण अंश है। इस प्रकार के अध्ययन के लिए मुझे राजस्थानी भाषा की सहस्रो लोकोक्तियो के रूपो का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करना पडा है। ऐसा करते हुए ही इस तथ्य की प्रतीति मुझे हुई कि राजस्थानी भाषा मे अनेक तथाकथित कहावतें ऐसी हैं जो आकार-प्रकार की दृष्टि से कहावतो मे परिगणित न की जाकर "लौकिक न्यायो" के अतर्गत रखी जानी चाहिएं। इन प्रकार के दृष्टान्तो की सहायता मे मैंने राजस्थानी भाषा में "लौकिक न्यायो" की उद्भावना की है जिनमे से कुछ परिशिष्ट मे भी सकलित कर दिये गये हैं। कहावत और "लौकिक न्याय" के साम्य और वैषम्य का सैद्धांतिक विवेचन भी इसी ग्रन्थ मे प्रथम बार हुआ है।

रूपात्मक अध्ययन के सिलसिले में ही राजस्थानी भाषा मे प्रचलित "अधूरे-

पूरो" ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया। सग्रह करते-करते सैकडो अधूरे-पूरे सग्रहीत हो गए जिनमें से चुने हुए १७४ पद्य परिशिष्ट मे दे दिये गये हैं। "अधूरे-पूरो" का कोई स्वतन्त्र सग्रह इससे पहले मुद्रित नही हुआ था। अधिकाश 'अधूरे-पूरे' मुझे श्री अगरचन्द जी नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हुए।

विषयानुसार वर्गीकरण को भी यथाशक्ति वैज्ञानिक और मौलिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है।

राजस्थानी कहावतो के इस अध्ययन को पूरा करने में मुझे करीब ११ वर्ष लग गये। सन् १९४३ मे मैंने सर्वप्रथम इस काम मे हाथ डाला था। सन् १८५३ में लक्ष्मण आर्य द्वारा प्रकाशित "मारवाड रा ओखाणा" तथा उसी वर्ष डायमण्ड बुक-डिपो, जोधपुर, के लिए तैयार की हुई "मारवाडी कहावत" जैसी इनी-गिनी पुस्तिकाओं को छोडकर उस समय राजस्थानी कहावतो का कोई भी महत्त्वपूर्ण सग्रह नही निकला था। "मारवाड रा ओखाणा" में १३१३ ओखाणों का सग्रह हुआ है जिसमे कहावतो के साथ-साथ यत्र-तत्र मुहावरे भी आ गये हैं। इसमें कही कोई अर्थ अथवा टिप्पणी नही है। "मारवाडी कहावत" के प्रथम सस्करण में २०० कहावतो और मुहावरो का समानान्तर अंग्रेजी रूपो के साथ सग्रह हुआ था। इसका द्वितीय सस्करण सन् १९१० में निकला जिसमें कहावतो और मुहावरो की सख्या बढाकर ४०८ करदी गई। इससे पहले सन् १८९२ के रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल मे श्री लालचन्द्र विद्याभास्कर "Marwari Weather Proverbs" प्रकाशित करवा चुके थे। इसी प्रकार Adams Archibald ने "The Western Rajputana States" में कुछ मारवाडी कहावतो को अग्रेजी अनुवाद सहित पाठको के समक्ष रखा था।

किन्तु इस प्रकार की अल्प सामग्री के आधार पर कोई अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। इसलिए दत्तचित्त होकर मैंने राजस्थानी कहावतो के सग्रह का कार्य आरम्भ किया। सर्वप्रथम अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर मैंने कुछ कहावतें लिख डालीं और उन्हें लेकर मैं गांव-गांव घूमता रहा और लोगो को सुना-सुनाकर कहावतें इकट्ठी करता रहा। किसी से कहावतें लिखवाने के लिए कहा जावे तो वह यो ही तुरत-फुरत कहावतें नही लिखा पाता, कहावतें तो प्रसग उपस्थित होने पर ही याद आया करती हैं किन्तु जब मैं अपनी सगृहीत कहावतें सुनाता तो श्रोताओ को भी भाव-साहचर्य के कारण तत्सदृश दूसरी कहावतो का स्मरण हो आता और इस प्रकार मेरे सग्रह मे वृद्धि होती रहती। राजस्थान के विभिन्न गांवों में फैले हुए अपने अनेक छात्रो और मित्रो द्वारा भी मैंने कहावतें इकट्ठी करवाईं। जिन दिनो मैं इस प्रकार कहावतें इकट्ठी कर रहा था, उन्ही दिनो प्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्रद्धेय पडित झाबरमल्ल जी शर्मा ने राजस्थानी कहावतो का अपना सग्रह मेरे उपयोग के लिए सुलभ कर दिया। पडित जी का वरद हस्त सदा ही मुझ पर रहा है। उनके स्नेह और आशीर्वाद का सबल पाकर ही मैं इस प्रयास मे सफल हो सका हूँ। फिर श्री लक्ष्मीनिवास जी बिड़ला की प्रेरणा से मैंने करीब तीन हजार कहावतें अर्थ और टिप्पणी सहित सम्पादित कर

बंगाल-हिन्दी-मण्डल, कलकत्ता, के समक्ष प्रस्तुत की। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति पर सन् १९४५ मे मण्डल ने मुझे पुरस्कृत भी किया।

सन् १९४५ के बाद मेरा ध्यान राजस्थानी कहावतो पर प्रबन्ध लिखने की ओर गया। तब से श्री अगरचन्द जी नाहटा का सतत परामर्श और प्रोत्साहन मुझे मिलता रहा। इतना ही नहीं, उन्होंने मेरे अध्ययन के लिए, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी तथा अन्य व्यक्तियो द्वारा किये हुए सब सग्रहो को भी, जो उनके पास उपलब्ध थे, सुलभ कर दिया। अनूप सस्कृत लाइब्रेरी में उनकी कृपा से "ओखाणा री वात" देखने को मिली। पर उस प्रति की जीर्ण-शीर्ण हालत के कारण उससे विशेष लाभ नही उठाया जा सका। हाँ, उससे इतना अवश्य ज्ञात हुआ कि इन बातो में से प्रत्येक का शीर्षक एक कहावत है जिसकी कथा राजस्थानी गद्य मे दी हुई है। इसके अलावा भी श्री नाहटा जी ने, जो स्वय सब प्रकार की सामग्री के भण्डार है, अपनी अमूल्य हस्तलिखित प्रतियो तथा अपने पुस्तकालय की पुस्तको का बिना किसी रोक-टोक के मुझे उपयोग करने दिया। उनकी उदारता और सहृदयता के लिए में उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

बिडला सैन्ट्रल लाइब्रेरी, पिलानी, नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता, अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, तथा बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय से मुझे इस कार्य मे अत्यन्त सहायता मिली है।

मैंने अपने इस अध्ययन में मेवाड, जोधपुर, बीकानेर, शेखावाटी, आबू, सिरोही आदि सभी स्थानो की कहावतो का प्रयोग किया है। अपने द्वारा एकत्रित तथा अन्य साधनों से उपलब्ध इस विशाल राज्य की प्रतिनिधि कहावतो के आधार पर मैंने अपना यह अध्ययन प्रस्तुत किया है। मुद्रित ग्रन्थ, हस्तलिखित प्रतियाँ, लोक-साहित्य और शिष्ट साहित्य सभी की छानबीन मैंने की है और अध्ययन को यथाशक्ति पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।

जो राजस्थानी कहावतो के सग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनका स्थान-स्थान पर इस प्रबन्ध के भीतर उल्लेख हुआ है किन्तु ऐसी भी बहुत सी कहावतें इस गन्थ में उद्धृत की गई हैं जहाँ किसी सकलन-ग्रन्थ का नाम नहीं दिया गया है। इस प्रकार की कहावतें या तो मेरे निजी सग्रह की कहावतें हैं अथवा मेरे स्मृति-कोप की सचित निधि हैं।

मेवाडी, जोधपुरी, बीकानेरी जो कहावत जिस रूप मे मुझे मिली, उसी रूप मे मैंने उसे रख दिया है।

इस अध्ययन मे मुझे जिन ग्रन्थो से सहायता मिली है, उनका प्रबन्ध मे यथास्थान उल्लेख हुआ है। उपयोगी पुस्तको की एक सूची भी प्रबन्ध के अन्त में दे दी गई है।

विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रहने के कारण कहावतो के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन का ग्रन्थ में समावेश नही किया गया है। यह अध्ययन अलग पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा रहा है प्रबन्ध के परिशिष्ट में कुछ तुलनात्मक कहावतें भी दे दी गई हैं।

अन्त में राजस्थान विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध के प्रकाशनार्थ पन्द्रह सौ रुपयों की सहायता प्रदान की है, आभार प्रदर्शित करना मैं अपना परम आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूँ, इसी प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग (University Grants Commission) का भी मैं हृदय से अनुगृहीत और कृतज्ञ हूँ जिसने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए पन्द्रह सौ रुपयों का अनुदान स्वीकृत किया है।

पिलानी

३० जनवरी, १९५८ कन्हैयालाल सहल

विषयानुक्रमणिका

तृतीय अध्याय : राजस्थानी कहावतों का वर्गीकरण (५७-२६१)

चतुर्थ अध्याय : उपसंहार (२६२—२६५)

परिशिष्ट १ (२६६—२७६)

प्रथम अध्याय

कहावत का पर्यालोचन

१. कहावतो का महत्त्व

ससार के सभी देशो और जातियो मे कहावतो का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। दुनिया की शायद ही कोई भाषा ऐसी हो जिसमे कहावतो का प्रयोग न हुआ हो। सासारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य-बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतो में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कहावतें मानव-स्वभाव और व्यवहार-कौशल के सिक्के के रूप मे प्रचलित होती हैं और वर्तमान पीढी को पूर्वजो से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती हैं। पथ-प्रदर्शन की दृष्टि से भी उनकी उपादेयता सहज ही समझ में आ सकती है। क्या घर और क्या बाहर, प्राय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उद्बोधन और चेतावनी के रूप में चिरकाल से कहावतें उपयोगी सिद्ध होती रही है। समाज में मनुष्य किस तरह व्यवहार करे जिससे लोक-जीवन के साथ-साथ उसका व्यक्तिगत जीवन भी सुखमय हो सके, इसका निर्देश प्रचलित कहावतो मे साधारणत मिल जाता है। सामान्यत मनुष्य कुछ खोकर सीखता है किन्तु वही शिक्षा उसे अगर कहावतो के रूप में सुलभ हो जाय तो वह बहुत से कटकाकीर्ण पथो से अपनी रक्षा कर सकता है। यदि प्रत्येक अनुभव के लिए मनुष्य को मूल्य चुकाना पडे तो उसके लिए जीवन बडा दूभर हो जाय। एक व्यक्ति के मुख से निकली हुई कहावत का तथ्य जब हमारे दैनिक जीवन मे प्रत्यक्ष होने लगता है तो कहावत की प्रामाणिकता पर मानो एक छाप-सी लग जाती है।

बहुधा ऐसा भी देखने में आया है कि अनेक प्रकार की युक्तियो से, अनेक प्रकार के तर्क-वितर्कों से जिस सन्देह का समाधान नही होने पाता, वह सन्देह बात की बात मे एक समयोचित लोकोक्ति द्वारा दूर हो जाता है, हमारी समस्त शकाओ का समाधान हो जाता है, कहावत की स्वीकृति में हम अपना सिर हिलाने लगते हैं, सब वाद-विवाद समाप्त हो जाता है और तुरन्त ही उस सारगर्भित उक्ति के तथ्य पर हम पूर्ण रूप से विश्वास करने लगते हैं। जीवन में अनेक ऐसे अवसर आये है जब कहावतो की इस आश्चर्यजनक शक्ति को देखकर मैं मन ही मन ताकता रह गया हूँ। बहुत वर्ष हुए, डा० फैलन ने एक ऐसे व्यक्ति का दृष्टान्त दिया था जो किसी काम के करने की बडी डींग हाँक रहा था, यद्यपि वह काम उसके बूते से बाहर था। उसको बढ़-चढ़ कर बातें बनाते हुए देख, श्रोतागणो मे से एक ने कहा "हाथी घोडा मर गये, गधा पूछे कितना पानी ?" इस कहावत के सुनते ही वह व्यक्ति खिसियाकर पीछे हट गया, उसकी बोलती ही बन्द हो गई।[1] लगता है, जैसे कहावत स्वत. एक बडी भारी दलील हो, ऐसी दलील जिसके सामने सबको हार माननी पडती है। न्याय में आप्त वाक्य को प्रमाण माना गया है किन्तु कहावत का महत्त्व किसी भी आप्त वाक्य

---

1 Vide Pioneer, Dec. 9th, 1884.

से कम नही। कहावती न्यायालय में निर्णय हो जाने के बाद, उसकी कही कोई अपील नही होती। कहावत ने जो निर्णय दे दिया, वही अन्तिम है। किसी तथ्य की प्रामाणिकता का कहावत से बडा कोई प्रमाण नही समझा जाता।

यह कहावती जगत् भी एक विलक्षण लोक है। बडे-बडे ऋषि-मुनियो की उक्तियो को भी यदि जनता स्वीकार न करे तो वे भी लोकोक्तियो के गौरवपूर्ण पद पर आसीन नही हो सकती। कहावतों की बडी महिमा है, कोई उनकी अवमानना न करे।[1]

"लोकोक्ति जनता-जनार्दन की उक्ति है" इस आशय की कहावतें लेटिन आदि अनेक भाषाओ मे प्रचलित हो गई हैं।[2] तमिल भाषा में भी एक इसी प्रकार की कहावत सुनी जाती है।

ईसा मसीह ने कहावतो द्वारा शिक्षा दी, गौतम बुद्ध ने उपदेश देने मे लौकिकी गाथाओ का प्रयोग किया। स्वय अरस्तू जैसे सुविख्यात दार्शनिक ने सर्वप्रथम कहावतो का सग्रह किया। इस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल से कहावतो को अमित सम्मान मिलता रहा है। ज्ञान-वृद्धो और वयोवृद्धो की बात हम बडे ध्यान से सुनते हैं। फिर लोकोक्तियो मे तो पर्वतो की-सी प्राचीनता है, न जाने किस पुरा काल से वे लोगो को आनन्दित करती रही हैं और कितने व्यक्तियो के अनमोल अनुभवो का भण्डार उनमे सचित है। काल-समुद्र की लहरियो पर तैरती हुई उक्तियो में से बहुत सी अपने सत्य के बल पर सुरक्षित रह सकी हैं। ऐसी लोकोक्तियाँ, जिनका सत्य पुराना नही पडा है, जीवन रूपी व्याकरण के लिए पाणिनि के सूत्रो की भाँति ही उपयोगी हैं।

योरप आदि देशों में तो शिक्षण-पद्धति में भी कहावतो का बडा उपयोग किया जाता है। रचना-शास्त्र का अध्यापक विचार-विश्लेषण की आदत डालने के लिए अपने छात्रो के सामने एक कहावत रख देता है जिसको लेकर वे या तो किसी कथानक की उद्भावना करते हैं अथवा लोकोक्ति के तथ्य को चरितार्थ करने वाली किसी घटना का आविष्कार करते हैं। कभी-कभी किसी कहावत को वाद-विवाद का रूप भी दे दिया जाता है जिसमे पक्ष और विपक्ष में अपने विचारो को प्रकट करने का अवसर छात्रो को मिल जाता है।

शिक्षा मे ही क्यो, जापान जैसे देशो मे तो खेलो तक में कहावतो का प्रयोग किया गया है। जापान के प्रोफेसर कोची दोई ने लिखा है कि मेरे बचपन में बच्चे जिन ताशो से खेलते थे, उनकी संख्या ५० होती थी। हर एक पत्ते पर कहावत प्रदर्शित की जाती थी। कोई बच्चा कहावत पढता था और वह कहावत-विशेष जिस पत्ते पर मुद्रित रहती थी, उसका पता लगाने की प्रतिस्पर्द्धा हम मे चला करती थी। उन कार्डों पर मुद्रित एक कहावत थी—"Three men together are as wise as Munjusri."[3]

---

1 Acquaint thyself with proverbs, for of them thou shalt learn instruction . Ecclesiasticas 8, 8

2 Vox populi, Vox dei (Latin)
खल्क की जबान खुदा का नक्कारा (उर्दू)

3 Introduction to the Proverbs of Japan by prof Kochi Doi.

साहित्य की दृष्टि से भी कहावतो का महत्त्व कम नही। कहावतें भाषा का शृंगार हैं, उनके प्रयोग से भाषा में सजीवता और स्फूर्ति का संचार हो जाता है। विशेषतः उपन्यास और कहानियो में तो लोकोक्तियो का होना एक प्रकार से अनिवार्य हो उठता है। स्व० प्रेमचन्दजी की रचनाओ मे जो कहावतो की बहार दिखलाई पडती है, उससे उनके द्वारा लगाया हुआ साहित्योपवन अत्यन्त हरा-भरा और सजीव दिखाई पडता है। लोकोक्तियो के यथास्थान प्रयोग से उन्होंने भाषा में जादू भर दिया है। एक अरबी कहावत के अनुसार वाणी में कहावत का वही स्थान है जो भोजन में नमक का है।

भाषा-विज्ञान के अध्येता के लिए भी कहावतें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। बोल-चाल अथवा साहित्य में प्रयुक्त होने वाले बहुत से शब्द समय पाकर अप्रचलित हो जाते हैं किन्तु कहावतो में इस प्रकार के शब्द सुरक्षित रह जाते हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल प्रत्येक कहावत का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन आवश्यक समझते हैं। उन्होंने दिखलाया है कि बैल के लिए "पोठ्यो" शब्द सं० प्रोष्ठ का सूचक है जो राजस्थानी भाषा मे बच गया है। हिन्दी की अन्य बोलियो में वह अप्रयुक्त है। यह भी वैदिक युग का शब्द है—प्रोष्ठपद अर्थात् प्रोष्ठ के पैर के आकार वाला। यह एक नक्षत्र का मशहूर नाम था।[1]

कहावतो के अध्ययन का महत्त्व अब प्रतिदिन बढता जा रहा है। लोगो को अब इस तथ्य की प्रतीति होने लगी है कि जिस प्रकार पुराने सिक्को और शिलालेखो का अन्वेषण किया जाता है, उसी प्रकार कहावतो के क्षेत्र में भी अनुसधान और अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है। सिक्को और शिलालेखों का तो राजाओ और अभिजात-वर्ग से सम्बन्ध है किन्तु कहावतो के द्वारा सामाजिक जीवन, पुराने रीति-रिवाज, नृवंश-विद्या आदि सभी पर प्रकाश पडता है। कहावतें वे आलोक-दीप है जिनकी सहायता से अन्धकारपूर्ण अतीत भी चमक उठता है। भारतवर्ष के अनेक स्थानो मे पर्दा-प्रथा के कारण स्त्रियो के अन्तःपुर मे प्रवेश निषिद्ध है, किन्तु कहावती दुनिया में कहीं कोई पर्दा नहीं। स्त्रियाँ परदेशियो के सामने भी अपना हृदय खोलकर रख देती हैं। अनेक कहावतें तो स्त्रियो द्वारा ही निर्मित होती हैं।[2]

"जाति-विज्ञान और संस्कृति के विद्वानो का कथन है कि जनता की विचार-धारा जनकथाओ, कहावतो और मुहावरो आदि में व्यक्त होती है। यह बात सोलहों आने सही है। कहावतें और मुहावरे श्रमिक-जनता की सम्पूर्ण सामाजिक और ऐतिहासिक अनुभूतियो के संक्षिप्त रूप हैं। लेखक के लिए इस सामग्री का अध्ययन करना आवश्यक है।·· मैंने कहावतो और मुहावरो आदि से बहुत कुछ सीखा है।"

—गोर्की

---

१. भूमिका (निमाड़ की कहावतें), पृष्ठ १२, १३।

2 Preface to Eastern Proverbs and Emblems by Rev. J Long. page 6

२. 'कहावत' की व्युत्पत्ति

'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे अभी ऐकमत्य नही है। इस शब्द की कुछ सम्भाव्य अथवा अनुमानित व्युत्पत्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं —

(१) पडित रामदहिन मिश्र के विचार से 'कहावत' का मूल रूप 'कथावत्' है। कथाओ की तरह कहावतें भी लोक में प्रसिद्ध हैं। इनका आधार भी कथाओ का ही कुछ खडित-मडित रूप है, इसी से कहावत को लोकोक्ति भी कहते हैं। प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार 'थ्' का 'ह्' हो जाता है। प्लाट ने भी 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति 'कथावत्' से मानी है अर्थात् कहावत उसे कहते हैं जिसके मूल में कोई कथा हो।[1]

(२) प्राकृत 'कहाप्' धातु से भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए 'त्त' प्रत्यय जोडकर 'कहापत्त-कहावत' बन सकता है।[2]

(३) मूल धातु 'कथ्' है, इसमें तो सन्देह नही। उससे उत्पन्न, 'कथोद्धात', 'कथावृत्त' या 'कथावस्तु' से इस शब्द की उत्पत्ति होना सम्भव है।

(४) अपभ्रंश मे 'आभाणक, अहान' आदि का प्रयोग मिलता है किन्तु कहावत के किसी पूर्व रूप का नही। हो सकता है, यह शब्द सस्कृत के किसी मूल रूप से व्युत्पन्न न हो, इसमे उर्दू-फारसी शब्द-रचना का कुछ हाथ हो। स्वर्गीय आचार्य केशवप्रसाद जी मिश्र का मत था कि 'कह' धातु के आगे अरबी 'आवत' प्रत्यय लग कर 'कहावत' शब्द बना है।

(५) 'बनना' से 'आव' प्रत्यय जोडने पर जैसे 'बनाव' बनता है, उसी प्रकार कहना (कह्) से 'आव' प्रत्यय जोडने पर 'कहाव' बन सकता है। अरबी में जिस प्रकार 'त' प्रत्यय जोडने पर 'मुसाफिरत' और 'मुमाहवत' शब्द बनते हैं, उसी प्रकार 'कहाव' के आगे 'त' प्रत्यय लगने से 'कहावत' बन सकता है जिसका अर्थ है कहने की दशा, कही हुई स्थिति अर्थात् उक्ति। यद्यपि 'कह' अरबी धातु नही है और उसके पीछे अरबी प्रत्यय सामान्यत. नही लगना चाहिए किन्तु सादृश्य के बल पर, सम्भव है, अरबी प्रत्यय लगकर 'कहावत' शब्द बन गया हो।

(६) सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉक्टर सिद्धेश्वर वर्मा के मतानुसार हिन्दी शब्द 'कहावत' का अभिधेयार्थ है उक्ति। इसकी व्युत्पत्ति हिन्दी 'कहना' से हुई है जिसके आगे दो प्रत्यय जुडे हैं—(१) 'आव' जैसा कि सुझाव मे देखा जाता है और (२) 'अत' प्रत्यय कहावत की सक्षिप्तता और सारगर्भितता का सूचक है।[3]

(७) किसी विद्वान् ने 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति 'कथापत्य' अथवा 'कथापुत्र' मे मानी है। 'कथापत्य' शब्द का अर्थ है कथा का अपत्य अथवा

---

१. किशोर, नवम्बर १९५१; पृष्ठ २९७।

२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

3 "The Hindi word (*Kahāvat*) Literally means a "saying" It is derived from Hindi (*Kahnā*) to say, by the addition of two suffixes (1) (*āv*), as in (*Sujhāv*), which is a purely nominal suffix and (2) (at), being a diminutive suffix which suggests the shortness and pithiness of a proverb" —Dr. Siddheshwar Varma

आत्मज। कथापत्य से कहावन शब्द का वन सकना सम्भव है अथवा कथापुत्र से कहावत की निरुक्ति की जा सकती है। राजस्थान में दुर्गादास अथवा उनके वशजों के लिए दुर्गावत शब्द का प्रयोग होता है। इसी प्रकार शक्तावत, नाथावत आदि के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए। दुर्गावत का 'वत' सस्कृत के पुत्र शब्द से निकला हुआ माना जाता है जिसका प्राकृत मे 'उत्त' वन जाता है। जिस प्रकार दुर्गापुत्र से दुर्गा उत्त— दुर्गाउत वन जाता है, उसी प्रकार, सम्भव है, कथा-पुत्र से कहा उत्त-कहा उत—कहावत वन गया हो'।[1]

किन्तु इस प्रकार की व्युत्पत्ति को केवल अटकलवाजी समझना चाहिए। प्रथम तो अपत्य और पुत्र शब्द सामान्यत चेतन वस्तुओ[2] के ही आगे जोडे जाते हैं, फिर दूसरी वात यह है कि कहावत शब्द मूलत राजस्थानी भाषा का नही है, इसलिए राजस्थान की सास्कृतिक परम्परा के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति का अन्वेषण उचित नही जान पडता।

(८) 'कहावत' का सीधा अर्थ किया जाय तो उसके दो टुकडे होते हैं 'कह+आवत' यानी जिसे लोग परम्परा से कहते सुनते चले आते हो। आज कोई चाहे कि मैं अच्छे से अच्छा टुकडा कह दूँ और वह कहावत के दायरे मे दाखिल हो जाय तो यह नामुमकिन है। टुकडा चाहे जितना सक्षिप्त हो, चाहे जितना वडा कहने वाला हो और चाहे जितनी सुन्दरता से टुकडा कहा गया हो, वह कहावत नही वन सकता, जैसे एक ही दिन मे पत्थर शिव नही वन सकता। उसे नदी में बहुत रगड खानी होगी, दूर-दूर वहना होगा या सगतराश की छीनी की चोट खानी होगी, तव कही जाकर वह कहावत के मन्दिर में प्रवेश पायेगा।[3]

यह व्युत्पत्ति विद्वानो द्वारा चाहे मान्य हो या न हो किन्तु इसमे सन्देह नही कि इस प्रकार की निरुक्ति स्वत कहावत का एक सुन्दर लक्षण भी है क्योकि कहावत वही है जिसे परम्परा से लोग कहते-सुनते चले आते हैं।

'कहावत' शब्द के उक्त निर्वचन को पढकर हमारा ध्यान एक दूसरे शब्द 'कहनावत' की ओर जाता है जो 'कहावत' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ—

सांची भई कहनावति या कवि ठाकुर कान सुनी हती जोऊ।
माया मिली नहिं राम मिले दुविधा में गये सजनी सुनु दोऊ॥ —ठाकुर

---

१ कहा (प्राकृत) = कथा। कथा+अपत्य=कथापत्य। कथापत्य—कथापत्—कथावत कथावत—कहावत। अथवा कहा+उत=कहाउत। 'कहाउत' से कहावत, जैसे दुर्गा उत से दुर्गावत, शक्ता उत से शक्तावत आदि।

देखिये 'लोकवाणी' दीपावलि विशेषाक में प्रकाशित 'सिरोही की कहावतें' —सकलनकर्त्ता श्री गो०

२ कहावत के पर्याय के रूप में "कहनूत" शब्द का प्रयोग कभी-कभी हिन्दी में देखा जाता है जिसकी व्युत्पत्ति कहना+ऊत प्रत्यय से मानी गई है, यद्यपि इस ऊत प्रत्यय के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि यह अपत्यवाचक है।

'कहनावत' शब्द भी कहना+आवत से व्युत्पन्न माना जाता है जिसका अर्थ है, वह उक्ति जो कहने में आती है।[1]

'कहनावत' के स्थान में कभी-कभी 'कहनावतिया' शब्द का प्रयोग भी देखा जाता है। जैसे—

सांची भई कहनावतिया अरी ऊंची दुकान की फीकी मिठाई।[2]

(९) 'कहावत' शब्द का एक अर्थ हो सकता है 'कही हुई बात'। उस हालत मे 'कहावत' का 'वत' (बात-वार्त्ता) का रूपान्तर माना जायगा। 'काल गया पर कहावत रह गई' तथा 'जुग जासी परण बात न जाय' दो समानार्थक लोकोक्तियां है। पहली लोकोक्ति मे तो 'कहावत' शब्द का प्रयोग हुआ है, दूसरी लोकोक्ति का बात भी 'कहावत' का ही द्योतक अथवा उसका लघु रूप जान पड़ता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी बातचीत अथवा वार्तालाप के अर्थ में 'बतकही' शब्द का प्रयोग किया है—

(क) करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरन्द छवि करत मधुप इव पान॥

(ख) मनहु हर उर जुगल मारध्वज के मकर लागि स्रवननि करत मेरु की बतकही।

ऐसा लगता है मानो 'कही वत' (कही हुई बात) को उलट कर रख देने से 'बतकही' बन गया हो। नही कहा जा सकता कि 'कहावत' और 'बतकही' को उलट कर रखे हुए 'कहीवत' मे परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना कहां तक युक्ति-सगत है किन्तु राजस्थान में कहावत के अर्थ में प्रचलित 'कहवत' शब्द इस प्रसग में हमारा ध्यान आकृष्ट किये विना नही रहता।

(१०) भारत के वर्तमान शिक्षा-मत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद 'कहावत' शब्द के इस प्रकार द्विधा-विभाजन के पक्ष में नही हैं। उनकी मान्यता है कि 'कहावत' शब्द 'कहना' से निकला है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि कहावत कह+बात, इन दो पदो में विभक्त है। कहावत के 'वत' या 'वत' का अर्थ 'बात' नही है। बात के अर्थ मे 'वत' की कल्पना निरी कष्ट-कल्पना होगी। साहित्य के इतिहास मे व्याकरण बाद में आता है, इसलिए बाद में बने हुए नियमो के आधार पर हम प्रत्येक शब्द का निर्णय नही कर सकते। हम केवल यह कह सकते है कि जिस प्रकार 'कहानी' शब्द सर्वसाधारण द्वारा प्रयुक्त होने पर 'कथा' के अर्थ में रूढ हो गया है, उसी प्रकार 'कहावत' शब्द भी 'उक्ति या प्रवाद' के अर्थ में प्रचलित हो गया है। इस शब्द का विकास अवश्य 'कहना' से हुआ है किन्तु वर्तमान समय में यह शब्द जिस अर्थ मे प्रयुक्त होता है, वह अर्थ इस शब्द को प्रयोग या रूढि के कारण प्राप्त हुआ है, ऐसा नही हुआ है कि किसी ने जान-बूझकर इसे व्याकरण के किसी निर्दिष्ट

1. हिन्दी शब्द-सागर (दूसरा भाग), पृष्ठ ५१५।
2. बोलचाल (श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय) भूमिका, पृष्ठ ११८।

नियम से सबद्ध करने का प्रयास किया हो और तब यह कोई विशिष्ट अर्थ देने लगा हो ।[१]

शब्दो के निर्माण का इतिहास बडा मनोरजक होता है । योरोपीय भाषा के विश्लेषणात्मक रूप धारण करने से पहले उसमे पूर्णत बने-बनाये शब्द ही थे । ये शब्द अलग-अलग अशो के सम्मिलित रूप हैं, इस धारणा की कोई गध भी न थी । बोलने वाले भी बने-बनाये शब्दों के आधार पर ही बोलते थे, उनके पास प्रकृति और प्रत्ययो का कोई अलग-अलग जत्था नही था कि प्रकृति और प्रत्यय को मिला कर गढ-गढ कर वे शब्दो का प्रयोग करते । किन्तु इसका आशय यह भी नही है कि बोलने वाले जिन-जिन शब्दो का प्रयोग करते थे, वे सब के सब या तो उनके सुने हुए होते थे अथवा ऐसे शब्द होते थे जिन्होने उनकी स्मृति मे चिरस्थायित्व प्राप्त कर लिया था । शब्दो के गढ़ने की शक्ति भी उनमे थी किन्तु जो शब्द गढ़े जाते थे, वे पहले के सीखे हुए बने-बनाये शब्दो के सादृश्य पर ही गढे जाते थे ।[२]

सम्भव है, जैसा मौलाना आजाद कहते हैं, कहावत भी एक ऐसा शब्द हो जिसे व्याकरण के निश्चित नियमानुसार प्रकृति-प्रत्ययो द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता न हो किन्तु इतना तो वे भी स्वीकार करते हैं कि यह शब्द 'कहना' मे ही निकला है और प्रयोग के कारण लोकोक्ति के अर्थ में रूढ हो गया है । प्रश्न यह है कि यदि यह एकात्मक शब्द है तो उस शब्द का पता लगना चाहिए जिसके सादृश्य पर यह गढ़ा गया है ।

(११) कहावत शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे भाषा-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत है—

"The origin of the word Kahāwat would appear to be old Indo Aryan Kathay √ Kathā + Early M I A causative or denominative affix (Śatr)—ant *Kathāpayanta 7 *Kadhāvayanta 7 *Kahāvaanta Kahāvanta 7 Kahāwat"

डा० चाटुर्ज्या का मत पाण्डित्यपूर्ण तो अवश्य है तथापि निश्चयात्मकता का स्वर इसमे भी नही है ।

(१२) टर्नर के नेपाली शब्दकोश में 'कहावत' शब्द का अनुमानित मूलरूप

---

1 Kahawat originally comes from kahna but it cannot be said that it is equal to Kah+Bat 'Wat', or 'Bat' as meaning a thing seems to be too far-fetched Grammar comes later in the history of literature, and therefore we cannot judge every word according to rules of later origin We may simply say that Kahawat has come to mean 'a saying or proverb,' just as kahani has, by common usage, come to mean a story It is, of course, a word which has grown from 'kahna' without any conscious attmept to co-ordinate it with any fixed rule of Grammar and has, by long usage, come to mean as it does at present (Maulana Azad in a letter addressed to the writer)

२. सादृश्य नु स्वरूप (डा० हरिवल्लभ भायाणी), भारतीय विद्या, वर्ष ३, अक १ ।

'कथावार्त्ता' बतलाया गया है।[1] सुप्रसिद्ध विद्वान् मुनि जिनविजयजी तथा महापंडित राहुल सांकृत्यायन भी 'कथा-वार्ता' को ही कहावत का मूल रूप मानने के पक्ष में हैं। डा० बाबूराम सक्सेना के मत से भी 'कहावत' का सम्बन्ध स० कथावार्त्ता से है मगर हिन्दी शब्द का अर्थ कथावार्त्ता के अर्थ से बिलकुल भिन्न है और यहाँ अर्थादेश स्पष्ट है।[2]

ऊपर की पंक्तियों में कहावत शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मतमतान्तर उपस्थित किये गये हैं तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि इस शब्द की सभी संभावनाओं पर विचार कर लिया गया है। बहुत से ऐसे शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में 'इदमित्थं' नहीं कहा जा सकता। कहावत भी एक ऐसा ही शब्द है। कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो इस शब्द के निर्वचन में अरबी-फारसी प्रत्ययों का आश्रय लेते हैं जब कि दूसरे विद्वान् इसे हिन्दी-संस्कृत के प्रत्ययों से व्युत्पन्न मानते हैं। व्युत्पत्ति-शास्त्री अथवा वैयाकरण किसी शब्द के मूल रूप का अन्वेषण करते हैं और फिर उसे व्याकरण के सूत्रों द्वारा सिद्ध कर देते हैं। किन्तु वे इस बात पर ध्यान नहीं देते कि जिस मूल रूप से वे किसी तद्भव शब्द को उद्भूत मानते हैं, वह मूल रूप कभी उस भाषा-विशेष में प्रचलित रहा भी था या नहीं। कथावत्, कथावस्तु, कथापत्य, कथावृत्त आदि से यद्यपि 'कहावत' शब्द व्याकरण द्वारा सिद्ध किया जा सकता है तथापि संस्कृत-साहित्य में लोकोक्ति के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग नहीं देखा जाता। इसलिए जब तक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में लोकोक्ति के अर्थ में प्रयुक्त 'कहावत' शब्द के मूल रूप का पता नहीं चलता, तब तक इस प्रकार की व्युत्पत्तियों द्वारा हमारा समाधान नहीं हो सकता। प्रयोग के आधार पर नियमों का निर्धारण होना चाहिए, न कि नियमों के आधार पर प्रयोग का निर्धारण।

जैसा ऊपर कहा गया है, 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कह सकना संभव नहीं है, तथापि निष्कर्ष के रूप में यहाँ दो विकल्प रखे जा सकते हैं।

(१) यदि 'कहावत' शब्द संस्कृत के किसी शब्द से हिन्दी में आया है तो 'कथावार्त्ता' एक ऐसा शब्द है जिससे उसका घनिष्ठ सम्बन्ध जान पड़ता है। 'कथावार्त्ता' का प्राकृत रूप 'कहावत्ता' तो ध्वनि और अर्थ दोनों की दृष्टि से 'कहावत' शब्द से अत्यधिक मिल जाता है।

ऊपर जिस अर्थादेश की चर्चा डा० सक्सेना ने की है, उसकी संभावना यहाँ हो सकती है क्योंकि एक भाषा जब दूसरी भाषा से शब्द ग्रहण करती है तो अनेक बार अर्थादेश हो जाया करता है। दूसरी बात यह है कि 'कथावार्त्ता' शब्द 'कथावत्' आदि की तरह कोई कल्पित शब्द नहीं है, यह प्रयोग में भी आता है।

(२) यदि 'कहावत' शब्द सादृश्य के आधार पर प्रचलित हुआ है तो

---

१. कहावत कहावत् (Nepali) पहेली कहनि, सिन्धी 'कहाणी' — *कथावार्ता ? कथा (V. S. V. Kahanu) वार्ता (V.S.V. tcat.)।

२ अर्थ-विज्ञान (डाक्टर बाबूराम सक्सेना), पृष्ठ १२५।

'लिखावट', 'सजावट' आदि के सादृश्य पर कहावट (कहावत) शब्द का बन सकना असंभव नही है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राजस्थानी भाषा में कथन के अर्थ में 'कुहावट', 'कुवावट' आदि शब्द बोलचाल मे अब भी प्रयुक्त होते हैं।

३. कहावत के पर्याय-शब्द

(१) **विदेशी भाषाओं में प्रयुक्त**—विश्व की विभिन्न भाषाओ मे 'कहावत' के पर्याय-रूप मे प्रयुक्त शब्द यहाँ दिये जा रहे हैं ताकि इस शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश पड सके। ग्रीक भाषा में कहावत के लिए शब्द है 'Paroemia' जिसका सम्बन्ध उस सर्वसामान्य उक्ति से है जो बहुत समय से लोगो की जबान पर रही है और जिसे गली-कूचे के सभी व्यक्ति जानते हैं। इटली की भाषा और लेटिन का 'Proverbio' शब्द कहावत के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। टस्कन भाषा का शब्द है 'Dettato' जिसका आशय उस उक्ति से है जिसकी बार-बार आवृत्ति होती रहती है क्योकि लोकोक्ति को पीढी दर पीढ़ी लोग सुनते रहते हैं जिससे वह स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेती है। स्पेन की भाषा मे कहावत का पर्याय-शब्द है 'Refran' जिसका अर्थ है वह कथन जो बार-बार दोहराया जाता है। इस भाषा में 'Proverbio' सूक्ति के अर्थ मे व्यवहृत होता है, कहावत के अर्थ में नही। तुर्की भाषा में लोकोक्ति के लिए 'Atalar Sozu' का प्रयोग होता है जिसका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है पूर्वजो, बाप-दादो अथवा बडो की उक्तियाँ। चीन की साहित्यिक भाषा में कहावत के अर्थ में 'Yen' या 'Yen Yu' प्रचलित है जिसका अर्थ है 'सुसस्कृत अथवा सिद्ध शब्द', बोलचाल की भाषा मे Su-hua अथवा 'Su-Yu' का प्रयोग होता है जिसका अर्थ है सर्वसामान्य वार्त्ता अथवा सर्वसामान्य उक्ति। अरबी भाषा मे 'Mathal' या 'Tamthal' कहावत अथवा उपमा के अर्थ मे व्यवहृत शब्द है जो व्युत्पत्ति की दृष्टि से सादृश्य अथवा समता का वाचक है। वस्तुत शब्द-चित्रो की सहायता से यह लोक-व्यवहार का कथात्मक निदर्शन है। रूस और बलगेरिया की भाषा में 'Poslovitsa' लोकोक्ति के अर्थ मे प्रयुक्त शब्द है। जैकोस्लोवाकिया की भाषा में इसी अर्थ का द्योतक 'Prislovi' शब्द है। इस्टोनिया का 'Vanasona' पुराने शब्द के अर्थ में व्यवहृत है। फिनलैंड की भाषा में कहावत का पर्याय शब्द है "Sanalasku" जिसका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है किसी शब्द का गिर जाना। जार्जिया मे लोकोक्ति के लिए प्रयुक्त शब्द है 'अदाज' जिसने वर्तमान साहित्य मे अपनी जड जमा ली है। यह फारसी शब्द उदाहरण या आकार के अर्थ में व्यवहृत है। प्राचीन जमाने में जार्जियन शब्द 'Igavi' कहावत और नीति-कथा दोनो के अर्थ मे प्रयुक्त होता था।

हेब्रू का 'Mashal' शब्द कहावत, उपमा अथवा सादृश्य के अर्थ में व्यवहृत होता है। जापानी के 'Kota-waza' का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है वे शब्द जो सक्रिय हैं। फारसी भाषा मे कहावतो के लिए 'Amsal' शब्द का प्रयोग होता है जो अरबी शब्द 'Masal' का बहुवचन रूप है। धात्वर्थ की दृष्टि से 'Masal' वह उक्ति है जो किसी तत्सम अन्य वस्तु को स्मृति-पथ में ले आती है। पोलैंड की भाषा का 'Przyslowio' शब्द ठीक ग्रीक भाषा के 'Paroemia' के अर्थ का द्योतक है। स्याम में कहावत

के लिए 'Sup'hasit' का प्रयोग होता है। यह शब्द पालि 'सुभासितो' से निकला है जिसका अर्थ होता है श्रेष्ठ उक्ति। जर्मन भाषा में लोकोक्ति के अर्थ में 'Sprich-Worter' का व्यवहार होता है। इस पद के 'Sprach' का अर्थ है वाणी और "wort" का अर्थ है शब्द। कहावत के लिए जैवो शब्द है 'Da' le' kpa', नीति-कथा के अर्थ मे भी यही शब्द प्रयुक्त होता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इस शब्द का अर्थ होता है 'पुरानी वातो को लेना और उन्हें वर्तमान स्थिति पर घटित करना"। 'Proverbo' शब्द तो निरी शुष्क वार्ता के अर्थ मे व्यवहृत होता है किन्तु कहावत के अर्थ में प्रयुक्त लेटिन का 'Proverbium' शब्द आलकारिक उक्ति का अर्थ देता है। लेटिन भाषा मे लोकोक्ति का पर्याय शब्द 'Sakamvards' है जिसका अर्थ है कथनीय अथवा आवृत्ति-योग्य शब्द। मलय भाषा मे कहावत के लिए 'Umpama-an' या 'Per-umpama-an' शब्द प्रचलित है। यह शब्द 'Umpama' से निकला है जिसका अर्थ है "सादृश्य, समानता, सारूप्य, तत्सदृश दृष्टान्त अथवा उदाहरण।" इसलिए 'Umpama-an' का अर्थ हुआ कहावत, नीति-कथा, रूपक-प्रयोग अथवा किसी को सिद्ध करने के लिए निदर्शन। लिखने में कहावतो की अवतारणा करते समय इस भाषा मे 'Saperti Kata arif' अर्थात् 'विज्ञजन ऐसा कहते हैं' का प्रयोग किया जाता है।[1]

विस्तार-भय से विदेशी भाषाओं से अधिक उदाहरण नही दिये जा रहे हैं।

(२) **भारत की भाषाओं में प्रयुक्त**—सस्कृत मे कहावत के लिए आभाणक, प्रवाद, लोकोक्ति, लोकप्रवाद, लौकिकी गाथा, प्रायोवाद आदि शब्दो का प्रयोग होता है। श्री क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय के सपादकत्व मे प्रकाशित होने वाले 'मञ्जूषा' नामक सस्कृत पत्र मे आभाणकादि के अन्तर्गत ही कहावतो का सग्रह किया गया है। वेदान्तग्रन्थो के भाष्यों में भी अनेक स्थानो पर 'आभाणक' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

वाल्मीकि रामायण में कहावत के अर्थ में प्रवाद, लोकप्रवाद तथा लौकिकी गाथा का प्रयोग हुआ है। क्रमश उदाहरण लीजिये—

प्रवाद सत्य एवाय त्वां प्रति प्रायशो नृप
पतिव्रताना नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले। ६।११४।६७.
लोकप्रवाद सत्योऽय पडितै समुदाहृत.
अकाले दुर्लभो मृत्यु स्त्रिया वा पुरुषस्य वा॥ ५।२५।१२.
कल्याणी वत गाथेय लौकिकी प्रतिभाति मे॥
एति जीवन्तमानन्दो नर वर्षशतादपि॥ ६।१२६।२.

अर्थात् रावण-वध के अनन्तर मन्दोदरी रावण को लक्ष्य में रख कर कह रही है—'हे राजन्! इस भूतल पर पतिव्रताओं के आंसू अकस्मात् ही नही गिरते, यह प्रवाद आपके पक्ष में चरितार्थ हो गया।' (६।११४।६७)

अशोक वाटिका में दुखिया सीता की उक्ति है—'पडितो द्वारा समुदाहृत यह लोक-प्रवाद सत्य ही है कि चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, किसी की भी अकाल-मृत्यु दुर्लभ होती है।' (५।२५।१२)

---

1. Racial Proverbs (Seluovn Gurney Champion) pp 15-16-17

भरत हनुमान् से कहते हैं—यह लौकिकी गाथा मुझे कल्याण-प्रद जान पड़ती है कि यदि मनुष्य जीवित रहा तो चाहे सौ वर्ष बीत जायँ, उसे कभी-न-कभी आनन्द प्राप्त होता ही है। (६।१२६।२)

कादम्बरी में बाण भट्ट ने भी कहावत के पर्याय के रूप में 'लोकप्रवाद' पद का ही प्रयोग किया है।

'सत्योऽयं लोकप्रवादो यत्विपद्विपद सपत्संपदमनुवध्नाति ।'[1]

अर्थात् यह लोक-प्रवाद सत्य है कि विपत्ति, विपत्ति के पीछे और सम्पत्ति, सम्पत्ति के पीछे बँधी चलती है।

टीकाकार ने 'लोकप्रवाद' की व्याख्या करते हुए इसे 'लोगों का चिरन्तन वचन -व्यापार' कहा है।[2]

इसी प्रकार कथासरित्सागर में 'प्रवाद' का प्रयोग देखिये—

"सत्य. प्रवादो यच्छिद्रे ष्वनर्था यान्ति भूरिताम् ।"

अर्थात् यह प्रवाद सत्य है कि विपत्ति पर विपत्तियाँ आया करती हैं।

पालि में कहावत के लिये 'भासितो' शब्द का व्यवहार होता है।

'पाइअसद्दमहण्णवो' मे लोकोक्ति के पर्याय के रूप में 'आहाण' और 'आहाणय' शब्दो का प्रयोग हुआ है। श्रीमद्धनेश्वरमुनीश्वर विरचित 'सुर सुन्दरी चरिअ' मे 'आहाण' और 'किंवदन्ती' पाठान्तर के साथ-साथ कहावत के लिए 'आहीण'[3] शब्द भी व्यवहृत हुआ है।

यथा,

अह भणइ पुहइ-नाहो ईसिं हसेऊण, देवि ! ल सच्चं ।
आहीण संजाय ज सम्मइ एत्थ लोगम्मि ॥ ६६ ॥ (बीओ परिच्छेओ)

अर्थात् पृथ्वीनाथ कुछ हँस कर कहते हैं कि इस लोक मे प्रचलित यह आख्यान सत्य है।

रत्नशेखर सूरि (स० १४१६ वि०) की 'सिरवाल कहा' में कहावत के लिए 'अक्खाणय' शब्द प्रयक्त हुआ है—

अहवा नरवर तुमए एय अक्खाणयं कय सच्चम् ।
पाऊण पाणियं फिर पच्छा पुच्छिज्जए गेह ॥ ७२६ ॥

अथवा हे नरवर ! यह कहावत तुमने सच्ची कर दिखाई, पानी पीकर फिर पीछे घर को पूछना है।

अपभ्रंश में 'अहाणउ' (आभाणक) शब्द कहावत के अर्थ मे व्यवहृत होता

---

१ कादम्बरी (बाण भट्ट और भूषण भट्ट) काशीनाथ पाडुरग द्वारा सपादित, सस्करण सातवाँ, पृ० १४६।

२ लोकप्रवादो जनाना चिरतनो वचनव्यापार' (वही, पृष्ठ १४६)।

३ कविवर समयसुन्दर कृत 'सीताराम चौपाई में' भी कहावत के लिए एक स्थान पर 'आहीण' शब्द का प्रयोग हुआ है।

उवतणइ विछाणउ लाधउ, आहींणइ दूहाणउ ते ।
मुंगनइ चाउल माँहि घी घणउ प्रीसाणउजे ॥

[ऊँघते को विछौना मिल गया, मूँगों में, चावलों में घी खूब परोसा गया।
मिलाइये—'घी ढुल्यो तो मूँगा माँही।']

है किन्तु इस भाषा में भी ऐसा कोई शब्द नही मिलता जिसे 'कहावत'-शब्द का पूर्व-रूप कहा जा सके।

कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओ से 'कहावत' शब्द के पर्यायो का आकलन यहाँ किया जा रहा है —

भाषा	पर्याय
तमिल	Pazamoli (Old saying.)
तेलुगु	Sameta (Proverb)
मलयालम	Pazam chol
मराठी.	म्हण, म्हणणी, आणा, आहणा, न्याय, लोकोक्ति।
बगला	प्रवाद, वचन, प्रवचन, लोकोक्ति, प्रचलित वाक्य।
गुजराती	कहेवत, कहेणी, कहेती, कथन, उखाणु।
हिन्दी	कहावत, कहनावत, कहाउत, कहनूत, उपखान, पखाना, लोकोक्ति।
उर्दू	जर्बुल मिस्ल।
लहदी	अखाण।
गढवाली	पखाणा।
मिकिर भाषा. आसामी.	लवीर, लवरिम।
✓राजस्थानी	ओखाणो, कहवत, कँवत, कुवावत, कुवावट।
मालवी	केवात।

४. कहावत की परिभाषा

(१) तटस्थ लक्षण—कहावत की असख्य परिभाषाएँ उपलब्ध हैं। एक विचारक ने सक्षिप्तता, सारगर्भितता और सप्राणता (चटपटापन) को कहावत के तीन अनिवार्य तत्त्वो के रूप में ग्रहण किया है।[1] किन्तु कहावत के सम्बन्ध में तीन 'सकारो' का यह सिद्धान्त सर्वांश में उचित नहीं जान पडता। पहले तत्त्व को लेकर ही विचार कीजिये। बहुत सी कहावतें सक्षिप्त होती हैं, उनमे 'गागर में सागर' भरा होता है। शेक्सपियर ने सक्षिप्तता को वाग्वैदग्ध्य का प्राण माना है[2] और सच कहा जाय तो कवि का यह सिद्धान्त कहावतो के सम्बन्ध में तो सर्वाधिक चरितार्थ होता है। उदाहरण के लिए कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये

(१) पच परमेसर अर्थात् पच परमेश्वर होते हैं।

---

1 Lessons in Proverbs (R C Trench) p 7.

2 Brevity is the soul of wit (Hamlet)

(२) काती सब साथी अर्थात् फसलें चाहे जब बोई गई हो, कार्तिक में सब साथ ही पकती हैं।

(३) भतीजो तीजो अर्थात् भतीजा सम्बन्ध मे तीसरा होता है, उससे विशेष आशा नही की जा सकती।

(४) नौकरी ना करी अर्थात् नौकरी तो न करना ही अच्छा।

(५) खेती धणियाँ सेती अर्थात् खेती मालिक की निगरानी से ही फलदायिनी होती है।

इस प्रकार की और भी बहुत सी कहावतें सहज ही उद्धृत की जा सकती हैं जिससे लोकोक्ति की सक्षिप्तता पर प्रकाश पडता है किन्तु सक्षिप्तता तो एक सापेक्ष शब्द है। किसे सक्षिप्त कहा जाय और किसे असक्षिप्त? एक अरबी कहावत का उदाहरण लीजिये :

"शुतुरमुर्ग से किसी ने कहा—ले चल। उसने उत्तर दिया—मैं पक्षी हूँ, भार-वहन नही कर सकता।" तब किसी ने कहा—उड चल। तुरन्त ही शुतुरमुर्ग कह उठा—मैं उड नही सकता क्योकि मैं ऊँट हूँ।[1]

यह कहावत ऐसी है जिसे और सक्षिप्त नही किया जा सकना किन्तु है यह लोकोक्ति ही, चाहे कितनी ही लम्बी क्यो न हो। एक राजस्थानी कहावत लीजिये—

"ठाकराँ, घोड़ी ठेका तीन देसी। ठाकर यार तो पहले ही ठेकै नीचै आसी, दोय तो एकली देसी।" अर्थात् किसी ने कहा—ठाकुर साहब, जिस घोडी पर आप सवार हो रहे हैं, वह तीन बार उछाल मारेगी। उत्तर मिला कि ठाकुर तो पहली उछाल में ही जमीन पर गिर पडेगा, दो उछाल तो घोडी अकेली देगी।

सामान्यत कहावतें लम्बी नही होती किन्तु कभी-कभी प्रश्नोत्तर के रूप में कुछ उक्तियाँ इस प्रकार प्रचलित हो जाती हैं कि हम उन्हें कहावतो के अतिरिक्त दूसरा नाम दे ही नही सकते। राजस्थानी भाषा में प्रश्नोत्तर के रूप में प्रचलित अनेक कहावतें उपलब्ध हैं।

लोकोक्ति सक्षिप्त हो, इसका अर्थ यह नही है कि जो उक्ति अपेक्षाकृत लम्बी हो, उसको लोकोक्ति का नाम दिया ही न जाय, क्योकि विश्व के लोकोक्ति-साहित्य मे लम्बी कहावतो का भी अभाव नही है। लोकोक्ति की सक्षिप्तता से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि उसमें न्यूनतम शब्दो का प्रयोग हो, अनावश्यक एक भी शब्द उसमें न आने पाये। इस प्रकार स्पष्ट है कि सक्षिप्तता लोकोक्ति की अनिवार्य विशेपता नही है।

सारगर्भितता कहावत का दूसरा अनिवार्य गुण बतलाया गया है। कहावतें सामान्यत सारगर्भित होती हैं और यही कारण है कि वे इतने समय तक प्रचलित रहती हैं। "पेली लिखने पछे दे, भूल पड्याँ कागज सूँ ले"[2] एक राजस्थानी कहावत

---

1 They said to the camel-bird (*i e* the ostrich), "Carry" It answered, "I cannot, for I am a bird" They said, "Fly" It answered "I cannot, for I am a camel"

(Quoted by R C Trench in 'Lessons in Proverbs')

२ मेवाड़ की कहावतें, भाग १ (प० लक्ष्मीलाल जोशी), पृष्ठ ६१।

है जिसका तात्पर्य यह है कि लेन-देन करते समय लिख लेना चाहिए, फिर यदि कोई भूल पड जाती है तो वहीखाते की जाँच से निकल जाती है। हम प्राय देखते हैं कि जो अपनी स्मरण-शक्ति पर भरोसा कर लेन-देन करते हैं, उन्हे हमेशा पश्चात्ताप करना पडता है। इसी प्रकार एक दूसरी कहावत मे कहा गया है, "मूँघो रोवे एक वार, सूँघो रोवे वार-वार"[1] अर्थात् मँहगी चीज लेने से एक वार तो दाम ज्यादा लगते है पर चीज अच्छी मिल जाती है। सस्ती लेने से पहले तो दाम कम लगते हैं किन्तु वह सदा कष्ट देने वाली होती है। इस कहावत मे जो तथ्य प्रकट हुआ है, वह प्रतिदिन के अनुभव से स्वयसिद्ध है। जो लोग दूसरो को रुपया उधार देते हैं, वे अपने लिए आफत मोल ले लेते हैं। उधार लेने वाला बराबर चुका नही सकता, अतः उससे लडाई हो ही जाती है। 'उधार दीजै दुसमण कीजै' तथा 'उधार देवणो लडाई मोल लेवणो है' जैसी कहावतो में यही वात कही गई है।

किन्तु सभी कहावतें एक समान सारगर्भित होती हैं, ऐसा नही कहा जा सकता। "कपडा फाट गरीबी आई। जूती टूटी चाल गमाई" अर्थात् कपडे फट गये और गरीबी आ गई। ज्यो ही जूते टूटे, चाल का मजा जाता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि फटे वस्त्र और टूटे जूते गरीबी के द्योतक होते हैं। सारगर्भितता की दृष्टि से इस कहावत का कोई विशेष महत्त्व नही जान पडता किन्तु यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि अधिकाश कहावतें सारगर्भित होती हैं।

सप्राणता अथवा चटपटापन भी, जो कहावत का तीसरा गुण बतलाया गया है, प्रत्येक कहावत के सम्बन्ध मे लागू नही होता। चटपटी होने मे उक्ति का महत्त्व बढ जाता है जैसा कि नीचे के उदाहरणो से स्पष्ट है

१ 'दादो घी खायो, म्हारी हथेली सूँघल्यो' अर्थात् दादा ने घी खाया, हमारी हथेली सूँघलो। वात-वात में पूर्वजो की शेखी बघारने वाले पर व्यग्योक्ति के रूप मे इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

२ 'लुगाई कै पेट मे टाबर खटा ज्याय, वात कोनी खटावै' अर्थात् स्त्री के पेट मे बच्चा समाया रहता है, वात नही समाती।

किन्तु ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमें अभिव्यक्ति का कोई वैचित्र्य नही मिलता। 'धन सेनी, धिक चाकरी', 'वडाँ की वडी ई वात', 'वाँट कर खाणा अर सुरग में जाणा' जैसी कहावतो मे कोई चटपटापन नहीं है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि सक्षिप्तता, सारगर्भितता और सप्राणता किसी उत्कृष्ट कहावत के तो अपरिहार्य गुण अवश्य हैं, किन्तु कहावत-मात्र के अनिवार्य गुण ये नही हैं।

(२) स्वरूप लक्षण—ब्रह्म का विवेचन करते हुए वेदान्त ग्रन्थों मे तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण की चर्चा की गई है। किसी वस्तु का स्वरूप लक्षण पदार्थ के सत्य तात्त्विक रूप का परिचय कराता है। परन्तु तटस्थ लक्षण किंचित्कालानस्थायी

---

१. राजस्थानी कहावतां, भाग दूजो, सम्पादक स्वामी नरोत्तम दास और श्री मुरलीधर व्यास, पृष्ठ ८७।

आगन्तुक गुणो का ही निर्देश कराता है। कहावत का स्वरूप लक्षण क्या है ? उसका सत्य तात्त्विक रूप क्या है ? उसकी आत्मा क्या है ? कहावत अथवा लोकोक्ति के सम्बन्ध में संक्षिप्तता, सारगर्भितता तथा सप्राणता का जो उल्लेख किया गया है, वहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि ये तीनो गुण हर एक लोकोक्ति में अनिवार्यत. नही पाये जाते। इससे स्पष्ट है कि इन तीनो के आधार पर लोकोक्ति के स्वरूप का निर्धारण नही हो सकता, इन तीनों का समावेश लोकोक्ति के तटस्थ लक्षण मे अवश्य किया जा सकता है। लोकोक्ति, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, जब तक लोक की उक्ति न हो, ऐसी उक्ति न हो जिसको लोक स्वीकार करले, तब तक उसे लोकोक्ति के नाम से अभिहित नही किया जा सकता, उसे और कोई नाम भले ही दिया जाए।[1] गेटे की एक उक्ति लीजिये

"किसी भवन में रहने के लिए भवन-शिल्पी होना आवश्यक नही।" इसमें लोकोक्ति के अन्य सब गुण हैं किन्तु लोगो की जबान पर न आ सकने के कारण इसे लोकोक्ति का गौरव प्राप्त न हो सका। शिलर की उक्ति है 'Heaven and earth fight in vain against a dunce' यह भी लोकोक्ति न बन सकी क्योकि उसी की उक्ति रही। राजस्थानी में 'मूरख नै टक्को दे देणो पण अक्कल न देणी' ने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया। 'मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरचि सम' तुलसीदास की यह सूक्ति भी लोकोक्ति की तरह ही उद्धृत की जाती है, अथवा परस्पर वार्तालाप में प्रयुक्त होती है। इस आशय की कहावत संसार की अनेक भाषाओ मे मिलती हैं। चीन की निम्नलिखित कहावत भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है :

"One has never so much need of his wit as when he has to deal with a fool"

१७वी शती के पूर्वार्द्ध में जेम्स हॉवल नाम का एक अंग्रेज-लेखक हो चुका है जिसने अनेक ग्रन्थो की रचना की है। कहावतो पर उसने बहुत-कुछ काम किया था। उसने केवल दूसरो की कहावतें ही इकट्ठी नही कीं, अपितु उसने पाँच सौ कहावतें इस उद्देश्य से स्वय भी बना डाली कि वे आगामी पीढियो के काम आएँ, और इन पाँच सौ कहावतो को भी उसने अपने संग्रह मे सम्मिलित कर लिया। उसके द्वारा निर्मित कुछ कहावतो के उदाहरण लीजिए :

(१) गर्व एक ऐसा पुष्प है जो दानव के बगीचे में उगता है।

(२) श्रद्धा एक कुलीन स्त्री है और अच्छे कार्य उसके अनुचर हैं।

उक्त दोनो उक्तियो में कहावत के अन्य गुण तो मिलते हैं किन्तु लोकप्रियता का गुण, जो कहावत का प्राण है, इनमें नही है। इसलिए हॉवल द्वारा गढी हुई उक्तियो ने संग्रह की ही शोभा बढायी, लोकोक्ति के पद पर वे आसीन न हो सकी। हॉवल द्वारा निर्मित उक्तियाँ प्राज्ञोक्तियाँ हैं, लोकोक्तियाँ नही। कहावत वस्तुत लोक

---

1 To attain the rank of a proverb, a saying must either spring from the masses or be accepted by the people as true. In a profound sense it must be vox populi

(*Encyclopaedia of Religion and Ethics—Hastings vol. x, p. 412*)

की उक्ति है। इस बात को स्वय हॉवल ने भी स्वीकार किया है।[1]

उक्त ऊहापोह के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि सक्षिप्तता, सारगर्भिनता और चटपटापन सामान्यत किसी भी कहावत के, किन्तु विशेषत किसी उत्कृष्ट कहावत के, अपरिहार्य गुण हैं पर लोकप्रियता कहावत-मात्र का अनिवार्य लक्षण है।[2]

(३) लोकोक्तियों का सत्य और विरोधाभास—ऊपर जो लोकोक्ति की सत्यता के सम्बन्ध मे हॉवल का उद्धरण दिया गया है उसमे यह न समझा जाय कि लोकोक्ति का सत्य सार्वजनीन व सार्वदेशिक होता है। कुछ कहावतें ऐसी भी मिल जाती हैं जिसमें आपातत विरोध दिखाई पडता है। भाई बरोबर बैरी नही, और भाई बरोबर प्यारो नही," इस लोकोक्ति में एक ही साँस में दो विरोधी बातें कह दी गई हैं। जहाँ एक कहावत में कहा गया है 'कपूत आयो भलो न जायो', वही एक दूसरी कहावत मे कहा गया है 'खोटो पीसो, खोटो बेटो, ओडीवर को माल' अर्थात् खोटा पैसा और कुपुत्र कभी न कभी विपत्ति-काल मे काम दे ही देते हैं। कहावतो में इस प्रकार के विरोधाभास को देखकर चौंकने की आवश्यकता नही क्योकि हमारा जीवन ही अनेक प्रकार के विरोधाभासो से परिपूर्ण है। कहावत वस्तुतः सम्पूर्ण सत्य नही है, वे सत्य के लिए सकेतमात्र उपस्थित करती हैं। जिस प्रकार दर्पण-विशेष की भिन्नता के कारण प्रतिबिम्बो में भी भिन्नता आ जाती है, उसी प्रकार देश, काल और परिस्थितियो की भिन्नता के कारण जीवन-दर्पण में हमें भिन्न-भिन्न रग दिखाई पडते हैं। सत्य वास्तव में एक बहुमुखी देव है जिसके मुखो की इयत्ता का अनुमान तक नही किया जा सकता। चरम सत्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते-देते तो बडे-बडे दार्शनिको की बुद्धि भी हैरान हो गई है। स्टीवेन्सन ने तो यहाँ तक कह दिया था कि निरपेक्ष सत्य-जैसी कोई वस्तु नही, हमारे सब सत्य अर्द्ध-सत्य मात्र हैं।[3] इसलिए कहावतो का सत्य यदि सार्वदेशिक और सार्वकालिक न हो तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही। मार्ग-दर्शन के लिए कहावतें श्रेष्ठ साधन का काम देती हैं, किन्तु कोई उन्हें चरम सत्य का पर्याय समझने की भूल न करे। शास्त्रीय शब्दावलि का प्रयोग करें तो हम कह सकते हैं कि वे निरपवाद और निरपेक्ष सत्य नही, वे सत्य के लिए एक दृष्टिकोण मात्र हैं।[4]

भिन्न स्थान से लिए हुए चित्र में जैसे भिन्नता आ जाती है, वैसे ही इस ससार

---

1 "The people's voice, the voice of God we call,
And what are proverbs but the people's voice
Coined first and current made by common choice?
Then sure they must have weight and truth withal."

2 Four qualities are necessary to constitute a proverb, brevity (or, as some prefer to put it, conciseness) sense, piquancy or salt (Trench) and popularity

(*Encyclopaedia of Religion and Ethics Hastings, vol x, p 412*)

3 There is nothing like absolute truth, all our truths are half-truths

4 Proverbs are moral universals, not logical universals, they admit exceptions

को देखने में भी दृष्टिकोण की भिन्नता सर्वत्र मिलेगी और यह एक दृष्टि से वाछनीय भी है। जीवन का यथार्थ मूल्याकन गणित के नियमो की तरह नही किया जा सकता। परिस्थितियो आदि की भिन्नता से हमारे जीवन के अनुभवो के मूल्य भी बदलते रहते हैं।

कहावतो में विरोधाभास का मुख्य कारण यह है कि उनके निष्कर्ष में वैज्ञानिक निष्कर्ष का-सा सत्य नही रहता। कुछ उदाहरण सामने आये और उनके आधार पर एक लोकोक्ति चल निकली। बहुत से कुपुत्रो को जब देखा गया कि वे किसी काम के नही तो एक कहावत बन गई 'कपूत आयो भलो न जायो'। पर जब एक बार ऐसा भी देखा गया कि किसी कुपुत्र द्वारा भी कोई भलाई का काम सम्पन्न हो गया तो इस प्रकार की कहावत बन गई होगी 'खोटो पीसो, खोटो बेटो, ओडीवर को माल' अर्थात् खोटा पैसा और कुपुत्र कभी विपत्ति-काल में काम दे ही देते हैं। पहली कहावत क्योकि प्रचलित हो गई, वह भी बनी रही और दूसरी भी सत्य का आश्रय पाकर प्रचलित हो गई। तर्कशास्त्र के शब्दो में यदि हम कहें तो कह सकते हैं कि कहावतो का सत्य "अवैज्ञानिक होता है, सीमित घटनाओ को लक्ष्य मे रखकर वह प्रवृत्त होता है।"[१]

विश्व की बहुत सी भाषाओ में कहावतो के सम्बन्ध मे कुछ कहावतें प्रचलित हैं जिनमे कहा गया है कि कहावतें झूठ नही बोलतीं।[२] और इसका प्रमुख कारण यह है कि वे दैनिक अनुभव की दुहिताएँ हैं[३] वे अनुभव की सन्तान हैं।[४] इटली की एक कहावत मे कहा गया है कि कहावतो को कहावतें कहते ही इसलिए हैं कि वे सिद्ध हो चुकी हैं। डिजरेली[५] के शब्दो में "शताब्दियाँ बीत जाने पर भी लोकोक्तियो रूपी मानसिक फर्नीचर के दीमक नही लग पाई है, इतना ठोस है यह फर्नीचर।"[६]

जो कुछ लोग कहते हैं, वह सत्य हो सकता है, असत्य भी हो सकता है लेकिन

---

1 A proverb is not scientific induction It is unscientific induction based on limited uncontradicted experience Proverbs are based on induction per simple innumeration

2 A Proverb does not tell a lie (Estonian)
A Proverb never lies (German)
Proverbs do not lie (Russian)
There are no proverbial sayings which are not true (Don Quixote)
If there is falsity in a proverb, then milk can be sour (Malayalam)
Old sayings contain no lies (Basque)

3 Proverbs are the daughters of daily experience (Dutch)

4 Proverbs are the children of experience (English)

5 Proverbs are so called because they are proved (Italian)

6 Centuries have not worm-eaten the solidity of this ancient furniture of mind

जिसे सभी लोग कहते हैं, वह असत्य कैसे हो सकता है ?[1] कहावतें अपने सत्य के कारण ही चिरकाल तक जीती हैं, और सत्य ही एक ऐसी वस्तु है जो पुरानी नही पड़ती। इसीलिए कहा गया है कि 'काल गया पर कहावत रह गई'।

इमर्सन ने कहावतो के बारे में जो कहा है "Proverbs are the literature of reason, or the statement of absolute truth, without qualification. like the sacred books of each nation, they are the sanctuary of its institutions" उसका अर्थ केवल यही समझा जाना चाहिए कि जो जाति जिन कहावतो का प्रयोग करती है, उस जाति के लोग अपनी कहावतो को निरपेक्ष सत्य के रूप मे ग्रहण करते हैं, नही तो, जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है, सभी कहावतो का सत्य निरपेक्ष तथा निरपवाद नही होता। टी. टी. मुंगर के शब्दो में 'लोकोक्तियाँ अर्द्ध सत्य मात्र होती हैं।'[2]

(४) कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ—एक प्राचीन वैयाकरण ने कहावत की यह परिभाषा दी थी 'A proverbs is a saying without an author' अर्थात् कहावत वह उक्ति है जिसका कोई निर्माता न हो। यह हो सकता है कि कहावत के रचयिता का हमे ज्ञान न हो किन्तु यह निश्चित है कि कहावतें अपने आप उत्पन्न नही हो गयी, सब से पहले किसी न किसी के मुख से तो कहावत निकली ही होगी। लोक-मानस जिस बात को मानता है, सोचता है अथवा ग्रहण करता है, उसी को एक चतुर व्यक्ति ने एक मनोरम उक्ति के रूप में जड दिया होगा, और क्योकि उस उक्ति में लोक-मानस का विश्वास सन्निहित था, वह उक्ति केवल एक व्यक्ति की उक्ति नही रह गयी, उस उक्ति ने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया। लार्ड रसल ने इसी अर्थ मे लोकोक्ति को एक व्यक्ति की विदग्धता और अनेक का ज्ञान कहा होगा।[3] किन्तु यहाँ पर भी ध्यान देने की बात यह है कि एक की उक्ति होने से ही कोई उक्ति लोकोक्ति का रूप धारण नही कर लेती, लोकोक्ति होने के लिए यह अनिवार्यंत. आवश्यक है कि जन-मानस की छाप उस पर अङ्कित हो, लोक-हृदय उस उक्ति के साथ अपना तादात्म्य स्थापत करे। कोई उक्ति एक मुख से निकली, वह सब की जबान पर आ गई और सब की हो गई। किसी लोकोक्ति के प्रचलन मे अधिकाश लोक-समुदाय सावधान होता है, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि लोकोक्ति के लोकोक्ति बनने मे एक ही व्यक्ति का हाथ नहीं रहता, समस्त लोक-समुदाय उसे लोकोक्ति का रूप देने मे योग देता है। इस अर्थ मे वह किसी व्यक्ति-विशेष की रचना नही कही जा सकती, क्योकि, जब से उसका प्रचलन हुआ, तभी से उस उक्ति को लोगों ने अपनी करके माना। कौन जानता है लोको-

---

1 It may be true what some men say, it must be true what all men say (English)

2 Proverbs are usually but half-truths and seldom contain the principle of the action they teach (T T Munger)

3. A Proverb is the wit of one and the wisdom of many (Lord Russel)

क्तियो के उन निर्माताओ को जिनकी उक्तियाँ हज़ारो वर्ष बीत जाने पर आज भी लोगो की ज़बान पर हैं ?

लोक-मानस में लोकोक्ति के निर्माता का मानस विनिमज्जित हो गया; उसका नाम भुला दिया गया और लोकोक्ति जनता-जनार्दन की उक्ति बन गई। लोकोक्ति के निर्माता को अवश्य इस बात से मूक संतोष होता रहा होगा कि उसकी उक्ति लोक की उक्ति बन रही है, और फिर दूसरी बात यह भी है कि लोकोक्ति की उद्भावना में निर्माता के नाम का डिंडिम-घोष करके जब एक व्यक्ति को महत्त्व दिया जाने लगता है, तब जन-मानस इस भावना के प्रति विद्रोह कर उठता है, किन्तु जब जनता इस बात को स्वीकार कर लेती है कि उक्ति व्यक्ति-विशेष की नही, समस्त लोक समुदाय की है, तब वह उक्ति जोरो से चल पडती है, उसके व्यापक प्रवाह को कोई रोक नही सकता।

कहावत की वैज्ञानिक परिभाषा देना बडा कठिन कार्य है। अरस्तू[1] के शब्दो मे 'संक्षिप्त और प्रयोग के लिए उपयुक्त होने के कारण विध्वस और विनाश मे से बचे हुए अवशेष को कहावत की संज्ञा दी गई है।" टेनीसन[2] के शब्दो मे "कहावतें वे रत्न हैं जो पाँच शब्द लम्बे होते हैं और जो अनंत काल की अँगुली पर सदा जगमगाते रहते हैं।" जूबर्ट[3] ने कहावतो को "ज्ञान के संक्षेपीकरण" के नाम से अभिहित किया है। सर्वेंटीस[4] के मत से "कहावतें वे छोटे-छोटे वाक्य हैं जो जीवन के दीर्घकालीन अनुभवो को अन्तर्हित किए हुए हैं।" ऐग्रीकोला[5] की दृष्टि मे 'कहावतें वे संक्षिप्त वाक्य हैं जिनमें सूत्रो की तरह आदिम पुरुषो ने अपनी अनुभूतियो को भर दिया है।" इरेस्मस[6] का मत है कि कहावतें वे प्रसिद्ध और सुप्रयुक्त उक्तियाँ है जिनकी एक विलक्षण ढग से रचना हुई हो।" बाइबिल[7] मे कहा गया है कि "कहावत ज्ञानी जनो की उक्तियों का निरूपण है।" डिज़रेली[8] के मतानुसार "कहावतें

---

1 A proverb is the remnant of the ancient philosophy preserved amidst very many destructions on account of its brevity and fitness for use (Aristotle)

2 Jewels five words long that on the stretched forefinger of all time sparkle for ever. (Tennyson)

3 Proverbs may be said to be the abridgments of wisdom (Joubert)

4 Short sentences drawn from long experience (Cervantes)

5 Short sentences into which, as in rules, the ancientas have compressed life (John Agricola)

6 Well-known and well-used dicta framed in a sort of out-of the way form and fashion (Erasmus)

7 A proverb is the interpretation of the words of the wise. (Bible)

8. These fragments of wisdom, the proverbs in the earliest ages serve as the unwritten laws of morality (Disraeli)

पाडित्य के अश हैं जो मानव-सृष्टि के आदिम-काल में अलिखित नैतिक कानून का काम देती थी।"

एक आधुनिक लेखक[1] ने कहावतो को "भौतिकवाद की बीजगणित" का नाम दिया है। डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दो मे "लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। वे मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हे बुद्धि और अनुभव की किरणो से सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती रहती है।"

उक्त सभी परिभाषाओ में कहावत के मूल तत्त्व लोकप्रियता की उपेक्षा की गई है। किसी उक्ति में कितने ही गुण चाहे क्यो न हो, जब तक वह लोक की उक्ति नही होगी, लोकोक्ति या कहावत नही कहला सकेगी। ऊपर दी हुई कई परिभाषाएँ लोकोक्तियो की परिभाषाएँ न होकर प्राज्ञोक्तियो की परिभाषाएँ हो गई हैं। जिसने कहावतो को 'जन-समूह के ज्ञान और चातुर्य के नवनीत' की सज्ञा दी थी, उसने लोकोक्ति के सम्बन्ध में अधिक सूझ-बूझ का परिचय दिया था।

(५) निष्कर्ष—इस प्रकार कहावत की असख्य परिभाषाएँ दी जा सकती हैं किन्तु किसी निर्दोष परिभाषा की ओर इगित कर देना सरल काम नही है। हाँ, परिभाषाओ मे त्रुटियाँ निकालना अवश्य सरल कार्य है। कहावत के स्वरूप को लक्ष्य में रखते हुए हम कह सकते हैं कि अपने कथन की पुष्टि मे, किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से, किसी बात को किसी की आड में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी को उपालम्भ देने व किसी पर व्यग्य कसने आदि के लिए अपने में स्वतन्त्र अर्थ रखने वाली जिस लोक-प्रचलित तथा सामान्यत सारगर्भित, सक्षिप्त एव चटपटी उक्ति का लोग प्रयोग करते है, उसे लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जा सकता है।

कहावत का यह लक्षण बहुत व्यापक होते हुए भी सर्वथा निर्दोष होने का दावा नहीं करता।

५. कहावत और मुहावरा

कहावतो के ऐसे बहुत से सग्रह निकले हैं जहाँ कहावतो के साथ-साथ अनेक मुहावरों का भी समावेश कर लिया गया है। कुछ सग्रहकर्त्ता तो जान-बूझकर कहावतो के साथ मुहावरो को भी अपने सग्रहों में स्थान देते हैं किन्तु ऐसे सग्रहो का भी अभाव नही है जहाँ कहावत और मुहावरे की विभाजन-रेखा स्पष्ट न होने के कारण कहावतो और मुहावरो का एकत्र सम्मेलन हो जाता है जो अवाछनीय है। ऐसी स्थिति में कहावत और मुहावरे के तारतम्य पर विचार कर लेना आवश्यक है।

१ रोजमर्रा और मुहावरा—'मुहावरा' अरबी शब्द है जो 'हौर' शब्द से बना है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ परस्पर बातचीत और एक दूसरे के साथ सवाल-जवाब करना है। हिन्दी शब्दसागर के विद्वान् सम्पादकों के मतानुसार 'मुहावरा' लक्षणा या व्यजना द्वारा सिद्ध वाक्य या वह प्रयोग है जो किसी एक ही बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष अभिधेय अर्थ से

---

1. Algebra of materialism　　(*People of India by Risley, p 125*)

विलक्षण हो। किसी एक भाषा में दिखाई पड़ने वाली असाधारण शब्द-योजना अथवा प्रयोग मुहावरे के नाम से अभिहित की जा सकती है। जैसे 'लाठी खाना' मुहावरा है क्योकि इसमे 'खाना' शब्द अपने साधारण अर्थ मे नही आया, लाक्षणिक अर्थ मे आया है। लाठी खाने की चीज नही है, पर बोलचाल में 'लाठी खाना' का अर्थ 'लाठी का प्रहार सहना' लिया जाता है। इसी प्रकार 'गुल खिलना', 'घर करना', 'चमड़ा खीचना', 'चिकनी-चुपड़ी बातें' आदि मुहावरे के अन्तर्गत हैं। कुछ लोग इसे रोजमर्रा या बोलचाल भी कहते हैं।[1]

किन्तु कुछ विद्वान् 'रोजमर्रा' और 'मुहावरे' को एक नही मानते। हिन्दी के प्रसिद्ध वैयाकरण और लेखक प० केशवराम भट्ट 'रोजमर्रा' और 'मुहावरे' के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

"हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, वह अपनी नित्य की बोलचाल मे वाक्य-रचना जिस रीति मे करते हैं, उसे रोजमर्रा कहते हैं। जैसे 'कलकत्ते से पेशावर तक सात-आठ कोस पर एक पक्की सराय और एक कोस पर चबूतरा बना हुआ था।' यह वाक्य रोजमर्रा के अनुसार नही है। इसकी जगह यो होना चाहिए—'कलकत्ते से पेशावर तक सात-सात आठ-आठ कोस पर एक पक्की सराय और कोस-कोस भर पर एक चबूतरा बना हुआ था।'

बोलने और लिखने में यथासम्भव रोजमर्रे का विचार रखना बहुत ही आवश्यक है। बिना इसके लिखना या बोलना कौड़ी काम का नही।

बोलचाल या रोजमर्रा नया गढा नही जा सकता। जैसे पाँच-सात या सात-आठ वा आठ-सात पर अनुमान करके छ-आठ या आठ-छ या सात-नौ बोला जाय तो उसे रोजमर्रा नही कहेगे क्योकि भाषा मे कभी ऐसा नही बोलते। इसी तरह 'हर रोज' की जगह 'हर दिन' 'रोज-रोज' की जगह 'दिन-दिन' या 'आये दिन' की जगह 'आये रोज' बोलना रोजमर्रा नही कहा जायगा।

कोई वाक्य या वाक्याश अपना सामान्य अर्थ न जताकर कुछ और ही विलक्षण अर्थ जताये तो उसे मुहावरा (वाग्धारा) कहते हैं। जैसे 'रणजीतसिंह ने पठानो के दाँत खट्टे कर दिये', 'इतना कहते ही वह पानी-पानी हो गया' आदि।"

मौलवी अल्ताफ हुसैन हाली के मतानुसार "मुहावरे के दो रूप हैं—एक वह जिसको हम रोजमर्रा या बोलचाल कह सकते हैं और दूसरा वह जो किसी वाक्य के साकेतिक अथवा लाक्षणिक अर्थ द्वारा विदित होता है।"[2] 'पाँच-सात' यह रोजमर्रे का उदाहरण है क्योकि अहले-ज़बान उसको उसी तरह इस्तेमाल करते हैं जबकि गम खाना, कसम खाना, धोखा खाना, पछाड़ें खाना, 'ठोकर खाना' ये मुहावरे के दूसरे रूप के उदाहरण हैं। इसमे 'खाना' वास्तविक अर्थो (हक़ीक़ी) मानो में प्रयुक्त न होकर साकेतिक अर्थो (मजाज़ी मानो) में प्रयुक्त हुआ है।

'रोजमर्रे की पाबन्दी जहाँ तक सम्भव हो, लिखने और बोलने मे ज़रूरी समझी

---

१ हिन्दी शब्दसागर, तीसरा भाग, पृष्ठ २७६३।

२. बोलचाल श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, भूमिका, पृष्ठ १२४।

गई है, यहां तक कि वाक्य मे जितनी ही रोजमर्रे की पाबन्दी कम होगी, उतना ही उसमे लालित्य कम होगा। परन्तु मुहावरे के लिए यह बात नही है। मुहावरा जो उत्कृष्ट रीति मे बांधा जाय तो निःसन्देह निकृष्ट आशय को उत्कृष्ट और उत्कृष्ट को उत्कृष्टतर कर देता है। पर हर जगह मुहावरे को बांधना ऐसा कुछ आवश्यक नहीं। बिना मुहावरे के भी वाक्य ओजस्वी हो सकता है। मुहावरा मानो मनुष्य के शरीर मे कोई सुन्दर अंग है और रोजमर्रे को ऐसा जानना चाहिए जैसे अंगो का तारतम्य मनुष्य के शरीर मे। लोग साधारणतः उसी लेख को बहुत पसन्द करते हैं जो रोजमर्रे पर ध्यान देकर लिखा गया हो, और जो रोजमर्रे के साथ मुहावरे की चाशनी भी हो तो वह उनको और भी अधिक स्वाद देता है।'

कभी-कभी एक ही उदाहरण मे मौलाना हाली द्वारा निर्दिष्ट मुहावरे के दोनो स्वरूप मिल जाते हैं। जैसे 'तीन-पांच करना' (झगडा टटा-करना) उसको दोनो के मानो के लिहाज से मुहावरा कह सकते हैं क्योकि यह तरकीब (व्यापार) अहले-ज़बान की बोल-चाल के भी मुवाफिक है, और उसमे तीन-पांच का लफ्ज अपने हकीकी मानो (वास्तविक अर्थो) मे नही, बल्कि मजाज़ी मानो (सांकेतिक अर्थो) में बोला गया है।[1]

२. मुहावरे का लक्षण—पं० गयाप्रसाद शुक्ल मुहावरे को वाक्य नही मानते। उनकी दृष्टि मे "मुहावरा वास्तव मे लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वह वाक्यांश है, जो किसी एक ही बोली अथवा लिखी जाने वाली भाषा मे प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो।"[2] शुक्ल जी द्वारा दी हुई उक्त परिभाषा मूलतः हिन्दी शब्द-सागर की परिभाषा से मिलती जुलती है।

श्री ब्रह्मस्वरूप दिनकर के मतानुसार "सब मुहावरे वाक्यांश होते हैं, परन्तु सब वाक्यांश मुहावरे नही होते।" 'नदी-तट पर' वाक्यांश है, पर मुहावरा नहीं। 'टेढी खीर' मुहावरेदार वाक्यांश है, पर मुहावरा नही। मुहावरे के अन्त मे क्रिया का सर्वार्थक रूप रहता है। मुहावरे का शब्दार्थ नही लिया जाता किन्तु उसमे तथा लाक्षणिक अर्थ मे कोई-न-कोई सम्बन्ध अवश्य रहता है। मुहावरो के शब्द नपे-तुले होते हैं, उनमे हेर-फेर संभव नही। 'पानी पानी होना' मुहावरा है, 'जल जल होना' नही।[3]

३ मुहावरे के पर्याय—गुजराती भाषा मे मुहावरे के लिए 'रूढि-प्रयोग' शब्द का प्रयोग होता है। रूढि-प्रयोग व्याकरण और शब्द-कोश से अलग वस्तु है। भाषा का ज्ञान व्याकरण और शब्द-कोश से हो सकता है लेकिन जो ज्ञान इन दोनो से नही हो सकता, वह रूढि-प्रयोग द्वारा सम्भव है। रूढि-प्रयोग भाषा का ऐसा गुप्त भंडार है कि उसे जो खोलने का प्रयत्न करता है, वही इसे खोल सकता है। मात्र अभ्यास द्वारा ही यह प्राप्त किया जा सकता है। देश के रीति-रिवाजो और लोक की व्यावहारिक पद्धति पर लिखे हुए अनेक ग्रन्थो की अपेक्षा रूढि-प्रयोगो द्वारा ही लोगों के

---

१. बोलचाल : श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, भूमिका, पृष्ठ १२५।
२. हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप, 'दो शब्द' में से।
३. हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप दिनकर शर्मा, 'विषय प्रवेश' से उद्धृत।

रहन-सहन और रीति-नीति का भली भाँति दर्शन कराया जा सकता है। वास्तव में भाषा का रहस्य इन्ही के द्वारा उद्घाटित किया जा सकता है।[1]

पण्डित रामदहिन मिश्र के शब्दो में "सस्कृत तथा हिन्दी में मुहावरा शब्द के यथार्थ अर्थ का बोधक कोई शब्द नही है। प्रयुक्तता, वाग्रीति, वाग्धारा और भाषा-सम्प्रदाय आदि शब्दो को इसके स्थान पर रख सकते हैं। हिन्दी मे मुहावरे के बदले मे विशेषत' 'वाग्धारा' शब्द का व्यवहार देखा जाता है किन्तु मुहावरा शब्द के बदले 'भाषा सम्प्रदाय' शब्द का लिखना कही अच्छा है, क्योकि वाग्रीति, वाग्धारा और प्रयुक्तता, इन तीनो शब्दो का अर्थ इससे ठीक-ठीक झलक जाता है, और भाषागत अन्यान्य विषयो का आभास भी मिल जाता है।[2]

यद्यपि विद्वानो ने मुहावरे के पर्यायवाची शब्द ढूँढने का प्रयत्न किया है किन्तु हिन्दी में अभी तक कोई भी शब्द मुहावरे जितना प्रचलित नही हो पाया है। किसी विद्वान् ने मुहावरे के ध्वनि-साम्य पर 'मुख-व्यवहार' शब्द का मुहावरे के अर्थ में प्रयोग किया था किन्तु यह शब्द भी उस विद्वान् तक ही सीमित रहा।

सस्कृत में मुहावरे के लिए कोई उपयुक्त पर्याय शब्द चाहे न मिलता हो किन्तु मुहावरो का इस भाषा में कभी अभाव नही रहा। 'अगुलिदाने भुज गिलसि' (आर्या सप्तशती) तथा 'ईहश राजुकुल दूरे वन्द्यताम्' (कपूरंमजरी) जैसे प्रयोग सस्कृत-ग्रन्थो में उपलब्ध होते है। इतना सब कुछ होते हुए भी सस्कृत भाषा मे मुहावरों का जो सैद्धान्तिक विश्लेषण नही मिलता, इसका सभवत. कारण यह है कि सस्कृत के आचार्य मुहावरो को लक्षणा के अन्तर्गत मानकर चले हैं।

४ **कहावत और मुहावरे का अन्तर**—कहावत और मुहावरे के स्वरूप-निर्धारण के बाद दोनो के पारस्परिक अन्तर को निम्नलिखित ढग से समझाया जा सकता है—

(१) कहावत का वाक्य प्राय. सर्वत्र ज्यो का त्यो रहता है, क्या हुआ, यदि कभी कोई शब्द पहले-पीछे रख दिया गया।[3] किन्तु मुहावरे के वाक्यगत विविध प्रयोग हो सकते हैं। उदाहरणार्थ 'नामी चोर मार्‌यो जाय, नामी साहूकार कमा खाय' राजस्थानी की एक प्रसिद्ध कहावत है।[4] इसका प्रयोग बँधा-बँधाया है। सभी इस कहावत की इसी रूप मे आवृत्ति करते हुए देखे जाते हैं। परन्तु मुहावरे के सम्बन्ध में यह बात नही कही जा सकती। मुहावरे का वाक्य काल, पुरुष, वचन और व्याकरण के अन्य अपेक्षित नियमो के अनुसार यथासम्भव बदलता रहता है। एक हिन्दी मुहावरा है 'मुँह बनाना'। धातु के समान व्याकरण के नियमानुसार इसके अनेक रूप बन सकते हैं यथा, 'मुँह बनाया, मुँह बनाते हैं, मुँह बनायेंगे, मैं मुँह बनाऊँगा, उन्होने मुँह बनाना छोड दिया, उसका मुँह बनता ही रहा' आदि। इसी प्रकार 'आकाश-पाताल

---

१ रूढि प्रयोग कोश—भोगीलाल भीखाभाई गाधी, सन् १८६८, प्रस्तावना, पृष्ठ ३।

२ मुहावरे—पडित रामदहिन मिश्र, पृष्ठ ७।

३ पद्यों में छन्द के अनुरोध से कहावतों में भी यत्किंचित् परिवर्तन हो जाया करता है। जैसे—हाथ के कगन को कहा आरसी ? (हाथ कगन को आरसी क्या ?)
ऊँची दुकान की फीकी पिठाई। (ऊँची दुकान, फीका पकवान)।

४ मेवाड़ की कहावतें भाग १—प० लक्ष्मीलाल जोशी, पृष्ठ ५४।

एक करना' एक मुहावरा है। इसके वाक्यगत दो प्रयोग लीजिए—

(क) डिप्टीगिरी के लिए वह आकाश-पाताल एक कर देगा।

(ख) बंग-भंग होने पर बंगालियों ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आकाश-पाताल एक कर दिया था।

उक्त दोनों उदाहरणों में कर्त्ता और काल के अनुसार मुहावरे सम्बन्धी वाक्यों में आवश्यक परिवर्तन हो गया है किन्तु कहावत में यह बात नहीं पाई जाती। एक कहावत है, 'अंधी पीसे, कुत्ते खायें'। जब रहेगा तब इसका यही रूप रहेगा, अन्तर होने पर अर्थ-बोध में भी व्याघात होने लगेगा। 'अंधी पीसती है, कुत्ते खाते हैं अथवा अंधी पीसेगी, कुत्ते खायेंगे' इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा उक्त कहावत उतनी बोधगम्य नहीं रह जायगी। इससे स्पष्ट है कि कहावत का रूप निश्चित होता है, और उसके शब्द भी प्रायः निश्चित रूप में ही बोले जाते हैं।[1]

(२) अर्थ की दृष्टि से लोकोक्ति स्वतः सम्पूर्ण होती है किन्तु मुहावरा नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि लोकोक्ति का रूप एक वाक्य का रूप होता है, जब कि मुहावरे का वाक्यगत प्रयोग किया जाता है। 'घणा पूतां कुल हांण'[2] राजस्थानी की एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि अधिक पुत्रों से कुल की हानि होती है। उक्त कहावत एक पूरे वाक्य का रूप प्रस्तुत करती है।

इसके विपरीत 'जले पर नमक छिड़कना' एक मुहावरा है जो एक क्रिया मात्र है। जब तक इस क्रिया का किसी कर्त्ता से सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जायगा, तब तक उक्त मुहावरा कोई सम्बद्ध अर्थ नहीं देगा। मुहावरे का वाक्यगत प्रयोग ही उसे सम्बद्धता प्रदान करता है।

(३) जैसा ऊपर कहा गया है, मुहावरा वस्तुतः एक कार्य-व्यापार है, जब कि लोकोक्ति एक प्रकार का नैतिक अथवा व्यावहारिक कथन है। उदाहरण के लिए स्पेन तथा जर्मनी की दो कहावतें लीजिये—

Spanish. 'Give me where I may sit down, I will make where I may lie down'

German. 'Who lets one sit on his shoulders, shall have him presently sit on his head'

इन दोनों कहावतों के साथ-साथ राजस्थानी भाषा के इस वाक्य को लीजिए—

'आंगली पकड़तं-पकड़तं पूंचो पकड़ लियो' अर्थात् अंगुलि पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ लिया। प्रश्न यह है कि राजस्थानी भाषा के इस वाक्य को कहावत कहा जाय या मुहावरा? यद्यपि स्पेन और जर्मनी की दोनों लोकोक्तियों में जो बात कही गई है, करीब-करीब वही बात राजस्थानी के इस वाक्य में भी है किन्तु यह वाक्य जिस रूप में रखा गया है, वह लोकोक्ति का रूप नहीं है, यह एक मुहावरे का ही वाक्यगत प्रयोग है। हिन्दी शब्द-सागर के सम्पादकों ने भी 'उंगली पकड़ते पहुँचा

---

1. [illegible]—[illegible], पृष्ठ [illegible]।

2. [illegible], पृष्ठ [illegible]।

पकडना' को मुहावरे के अन्तर्गत ही रखा है।[1]

राजस्थानी के उक्त वाक्य को यदि एक सामान्य कथन के रूप में इस प्रकार रख दिया जाय तो सम्भवत यह कहावत का-सा रूप धारण करले।

"अँगुलि पकडते-पकडते पहुँचा पकड लिया जाता है।"

किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि 'अँगुलि पकडते पहुँचा पकडना' इसके वाक्यगत अनेक प्रयोग हो सकते हैं, कहावत की-सी अपरिवर्तनशीलता इसमें नही। इस मुहावरे का एक वाक्यगत प्रयोग लीजिये—

"मैने तुम्हे बरामदे मे जगह दी, अब तुम कोठरी में भी असबाब फैला रहे हो। भाई, उँगली पकडते पहुँचा पकडना ठीक नही।"

सस्कृत का 'अँगलिदाने भुज गिलसि'[2] भी आकार-प्रकार की दृष्टि से मुहावरे का ही रूप प्रस्तुत करता है किन्तु इसी आशय को व्यक्त करने वाली निम्नलिखित दो उक्तियाँ निश्चित रूप से लोकोक्तियो के ही अन्तर्गत आयेंगी।

"Give a clown your finger and he will take your hand"[3]

"Give him an inch and he will take an ell"[4]

इससे जान पडता है कि लोकोक्ति मुहावरे की भाँति निरा कार्य-व्यापार नही है, उसका रूप कुछ ऐसा होना चाहिए जो नीतिपरक हो अथवा लोक-व्यवहार की कुछ मर्यादा बाँधता हो। लोकोक्ति साहित्य, यदि एक दृष्टि से देखा जाय तो, नीति-साहित्य ही है। मुहावरो में नीतिपरकता का प्रश्न उपस्थित नही होता, वहाँ प्रयोग की लाक्षणिकता अथवा ध्वन्यात्मकता अनिवार्यत रहनी चाहिए।

इस दृष्टि से विचार किया जाय तो कहावतो का डील-डौल, रग-ढग और उनका उद्देश्य मुहावरो से भिन्न होता है।

(४) लोकोक्ति एक अप्रस्तुत प्रयोग है जब कि मुहावरा मुख्यतः लाक्षणिकता लिये रहता है यद्यपि यह सत्य है कि अनेक बार मुहावरा भी व्यजना द्वारा सिद्ध होता है। 'बाङ्ला प्रवाद' के लेखक ने लोकोक्ति अथवा प्रवाद के सम्बन्ध में यथार्थ ही लिखा है—

"सस्कृत के कोष-काव्य मे जिसे अन्यापदेश (एक वस्तु के उपलक्ष में दूसरी वस्तु की वर्णना) कहा गया है अथवा सस्कृत आलकारिको ने जिसे उपमा-ध्वनि, अप्रस्तुत प्रशसा अथवा व्याज-स्तुति के नाम से अभिहित किया है, प्रवाद या लोकोक्ति मे भी उसी प्रकार का सकेत सन्निहित रहता है।"[5]

अधिकाश कहावतो में दूसरे पर ढालकर कोई बात कही जाती है, इसलिए अप्रस्तुत कथन के रूप में ही कहावतो का प्रचलन हो पाता है। 'गरीब का कोई साथी नही, सभी समर्थ का साथ देते हैं' इस प्रस्तुत अर्थ को प्रकट करने के लिए 'उलतुँ

---

१ हिन्दी शब्द सागर, पहला भाग, पृष्ठ २६६।

२ आर्या सप्तशती।

3 Oxford Dictionary of Proverbs, p 116.

४. वही, पृष्ठ ११७.

५ 'बाङ्ला प्रवाद'—श्री सुशीलकुमार दे; भूमिका, पृष्ठ ५।

पालडै को कोई भी सीरी कोनी, भुकतै पालडै का सै सीरी' जैसी अप्रस्तुत उक्तियो का प्रयोग कहावतो के रूप मे किया जाता है।

किन्तु स्वास्थ्य, वर्षा आदि से सम्बन्ध रखने वाली कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जिन्हे हम अप्रस्तुत के रूप मे ग्रहण कही कर सकते। यथा,

(क) 'ठडो न्हावै, ऊनो खावै, जिए घर वैद कदे नहिं जावै' अर्थात् जो शीतल जल से स्नान करता है और ताजा भोजन करता है, उसके घर पर वैद्य कभी नही जाता।

(ख) 'अम्बर राच्यो, मे माच्यो' अर्थात् लाल आसमान वर्षा का सूचक होता है। किन्तु ऊपर के विवेचन का यह अर्थ न समझा जाय कि कहावती वाक्य के अन्तर्गत लाक्षणिक पदो का प्रयोग नही होता। सम्पूर्ण कहावत अप्रस्तुत-कथन के रूप में प्रयुक्त होती है किन्तु लाक्षणिक पद-गर्भित लोकोक्ति अभिव्यक्ति के वैचित्र्य के कारण विच्छित्ति-विधायक होती हैं। उदाहरणार्थ 'नये नवाब, आसमान पर दिमाग' एक कहावत है। 'आसमान पर दिमाग' एक लाक्षणिक पद-विन्यास है जो उक्त कहावत के उत्तरार्द्ध में रखा गया है किन्तु समूची कहावत को लेकर यदि निर्णय करना हो तो हम इसे अप्रस्तुत-कथन ही कहेंगे। इसका अर्थ यह भी नही है कि प्रत्येक कहावत में लाक्षणिक पदों का समावेश अनिवार्यत होना चाहिए। ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमे कही कोई लाक्षणिक पद नहीं है, वे केवल अन्योपदेश के रूप में ही प्रयुक्त हुई हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कहावतें लीजिये—

(क) 'तावलो सो बावलो' अर्थात् जो प्रत्येक काम में उतावली करता है, वह पागल है।

(ख) 'आज ही मोडियो मूँड मुँडायो, आज ही ओला पड्या' अर्थात् बाबा जी ने आज ही मूँड मुँडाया, आज ही ओले पडे।

(५) अधिकाश मुहावरे नान्त रूप वाले होते हैं जैसे 'आग से खेलना, मिट्टी खराब करना, सबक पढाना, सबको एक लाठी हाँकना' आदि। इस कारण व्याकरण के नियमानुसार उनके नाना रूप होते रहते हैं। किन्तु कुछ कहावतें भी ऐसी हैं जो नान्त रूप वाली हैं। उदाहरणार्थ—

'कम खा लेणा, पण कम क़ायदे नही रहणा' अर्थात् कम खा लेना अच्छा है किन्तु आत्मसम्मान गँवाकर रहना अच्छा नही।

किन्तु नान्त रूप के कारण ही किसी लोकोक्ति को मुहावरे की सज्ञा नही दी जा सकती। मुहावरे और लोकोक्ति में वस्तुत. मौलिक अन्तर है।

(६) लोकोक्ति में कम से कम दो शब्दो का होना आवश्यक है जब कि मुहावरे मे कभी-कभी एक ही क्रिया से काम चल जाता है। वह उस पर 'मरता है', इस वाक्य मे 'मरना' एक मुहावरा है जो आसक्त होने के अर्थ में प्रयुक्त है।

(७) सम्पूर्ण कहावतो का अन्तर्भाव लोकोक्ति-अलकार में हो जाता है। कहावतो का प्रयोग मिलते ही, कोई पद्य लोकोक्ति-अलकार का उदाहरण मान लिया जाता है। किन्तु मुहावरो के पक्ष मे यह नियम लागू नही होता। मुहावरे लक्षणा और

व्यजना पर आश्रित हैं, अतएव लगभग कुल अलकार मुहावरों मे आ जाते हैं। शब्दालकार भी मुहावरो में मिलते है किन्तु कहावतो में उनका आधिक्य पाया जाता है। स्वभावोक्ति, ललित तथा गूढोक्ति अलकारो के अतिरिक्त मुहावरो में उपमा, उत्प्रेक्षा, आक्षेप, अतिशयोक्ति आदि अलकारो का प्राचुर्य देखने को मिलता है।[1]

(८) कहावत और मुहावरे में एक अन्य प्रमुख अन्तर है। कहावतो को 'अनुभव की दुहिता' कहा गया है, और अनुभव की समानता दुनिया के प्रत्येक देश मे देखने को मिलती है। यही कारण है कि एक देश की अनेक कहावतें दूसरे देश की कहावतो से बहुत-कुछ मिल जाती हैं। कभी-कभी तो वहुत सी कहावतें परस्पर अनूदित-सी जान पडती हैं किन्तु मुहावरो के सम्बन्ध में यह नही कहा जा सकता। इस सम्बन्ध मे कुछ उदाहरण लीजिए—

पीलु श्रेटलु सोनु नही (गुजराती)
All is not gold that glitters (English)
रूप की रोवै, करम की खाय (राजस्थानी)
Beauty weeps while fortune enjoys (English.)
रीतो घडो, छलकै घणो (राजस्थानी)
Empty vessel makes much noise. (English)

अनुभव की समानता के कारण एक भाषा की कहावतो का दूसरी भाषा में अपेक्षया सरलता से अनुवाद हो सकता है किन्तु एक भाषा के मुहावरो का दूसरी भाषा मे अनुवाद करना टेढ़ी खीर है।

फ्रेंच भाषा का एक मुहावरा है "A bon chat, bon rat" इसका अंग्रेजी अनुवाद "for good cat, good rat" अंग्रेजी भाषा मे प्रयुक्त नही होता। अंग्रेजी भाषा में इसी आशय का द्योतक 'Tit for tat' एक दूसरा मुहावरा है। 'It rained cats and dogs' का अक्षरश हिन्दी मे अनुवाद करना हास्यास्पद होगा। हिन्दी का अपना ही मुहावरा प्रचलित है 'मूसलाधार वर्षा हुई'।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि 'कहावत तो मानव-जाति के सामान्य अनुभवो का अक्षरदेह है जवकि मुहावरा भिन्न-भिन्न देश, जाति अथवा समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों की सूचक सज्ञा है।"[2] एक अन्य विद्वान् ने मुहावरो और कहावतो के अन्तर को निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट किया है—

"मुहावरे किसी वाक्य के वे सूक्ष्म-शरीर हैं, स्थूल-शरीर के विना जिनकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, लोकोक्ति-वाक्य भाषा रूपी समाज के वे प्रामाणिक व्यक्ति हैं जिनका व्यक्तित्व ही उनकी प्रामाणिकता का प्रमाण हो जाता है, जहाँ कही और जिस किसी के पास वे जा बैठें, उनकी तूती बोलने लगे।[3]

मुहावरे वस्तुत किसी भाषा की वैयक्तिक चाल-ढाल हैं। जैसे मनुष्यो की

---

१. बोलचाल—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, भूमिका, पृष्ठ १७४।
२ चवराकियानु तत्वदर्शन—फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता, पृष्ठ १३५-१३६।
३. हिन्दी मुहावरे—डा० ओमप्रकाश।

आकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं वैसे ही भाषा-विशेष के मुहावरे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, उनके अपने-अपने चित्र-विचित्र प्रयोग होते हैं। किन्तु देश-विदेश की लोकोक्तियो मे मुहावरो की-सी भिन्नता नही मिलती। एक ही माता-पिता की जैसे अनेक पुत्रियाँ होती हैं, प्राय वैसे ही अनुभव रूपी माता-पिता की दुहिताएँ हैं ये लोकोक्तियाँ, और इसीलिए विभिन्न देशो की लोकोक्तियो मे मानव-जाति की सामान्य सम्पत्ति बनने की क्षमता पाई जाती है।

६. कहावत और लौकिक न्याय

१ **'लौकिक न्याय' और अग्रेजी पर्याय**—सन् १८७७ की डा० Buhler की काश्मीर-रिपोर्ट में न्याय शब्द का प्रयोग 'परिचित उदाहरणो से निकाले हुए अनुमान' के अर्थ मे किया गया था। कर्नल जैकब ने लौकिक न्याय के पर्याय रूप में Maxim शब्द को ग्रहण किया था, किन्तु इस पर्याय से वे स्वय सन्तुष्ट नही थे। उन्होने तो केवल बडे-बडे विद्वानो द्वारा न्याय के अर्थ मे गृहीत Maxim शब्द को देखकर ही इसे अपनाया था, अन्यथा उनकी मान्यता थी कि अग्रेजी भाषा में न्याय के अर्थ को पूर्णत व्यक्त करने वाला कोई उपयुक्त शब्द है ही नही। उन्होंने न्याय के अन्तर्गत दृष्टान्त, नियम और अधिकरण तीनो का सान्निवेश किया था। अग्रेजी का Maxim शब्द इतना व्यापक नही कि वह उक्त तीनो प्रकार के अर्थों का वाचक बन सके। इसलिए जैकब के मतानुसार तो न्याय शब्द का अग्रेजी अनुवाद न करके अग्रेजी भाषा मे भी इसे ज्यो-का-त्यो ग्रहण कर लेना चाहिए।[1]

२ **लौकिक न्याय का लक्षण**—हिन्दी शब्दसागर के सम्पादको की दृष्टि में 'न्याय वह दृष्टान्त-वाक्य है जिसका व्यवहार लोक मे कोई प्रसग आ पडने पर होता है। यह कोई विलक्षण घटना सूचित करने वाली उक्ति है जो उपस्थित बात पर घटती हो। न्याय के पर्याय-रूप मे सम्पादको ने कहावत शब्द का भी प्रयोग किया है। ऐसे न्याय या दृष्टान्त-वाक्य बहुत से प्रचलित चले आते हैं और उनका व्यवहार प्रायः होता है।'

'सस्कृत में लौकिक न्याय के अन्तर्गत बहुसख्यक सूत्र उस समय की या उससे पहले की लोक-विश्रुत कहावतें ही हैं। उसमे जो युक्ति-मूलक दृष्टान्त हैं, वे किसी एक समय के नही, भिन्न-भिन्न परिस्थितियो में पडकर बुद्धिमानों को जो सच्चे अनुभव हुए, उन्ही को उन्होंने सूत्रबद्ध करके जनता को सौंप दिया। जनता ने उनको उपयोगी समझकर अपना लिया। इस प्रकार भुक्तभोगियो के कितने ही सच्चे हृदयोद्गार लोकोक्तियो के रूप मे प्रचलित हो गये।[2]

'सस्कृत साहित्य में सहस्रो स्थलो पर न्याय का प्रयोग हुआ है। इसका व्यवहार

---

१ लौकिक न्यायाञ्जलि तृतीयो भाग, पृष्ठ २ (Preface)।

२ मालवी कहावतें, भाग १ का प्राक्कथन (प० रामनरेश त्रिपाठी) पृष्ठ २।

मिलाइये जिम श्वान अजाण्यो धाइने रोटी ले गयो।
वली काकताली नो न्याय उखाणो तिम थयो।
—स्व० मोहनलाल दलीचन्द देसाई द्वारा सगृहीत एक पाडुलिपि से

अधिकतर टीका-टिप्पणी, समालोचना, व्याख्या, शका-समाधान आदि मे देखा जाता है। ध्यानपूर्वक मनन करने से यह सर्वथा स्पष्ट हो जायगा कि न्याय मे किसी घटना, किसी कहानी अथवा किसी विशेष अर्थ के वृहत् भाव सूत्र रूप में गुम्फित रहते हैं। 'देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर' वाली उक्ति यहाँ अक्षरश चरितार्थ होती है। न्याय आकार-प्रकार में तो बहुत छोटा होता है पर भाव इसका बहुत गम्भीर रहता है। पूर्व समय मे मुद्रण-यन्त्र के अभाव के कारण सूत्र-पद्धति प्रचलित थी और इसी से लोकोक्तियाँ भी न्याय शब्द के नाम पर सूत्र रूप में ग्रथित कर दी गयी थीं। प्रयोग मे न्याय शब्द भी जुटा रहता है। यथा, घुणाक्षरन्याय, काकतालीयन्याय, पकप्रक्षालनन्याय, स्थालीपुलाकन्याय। न्याय शब्द का व्यवहार कभी उपमा, कभी नियम, कभी सिद्धान्त, कभी उक्ति, कभी कहानी तथा कभी विशेष कार्य के अर्थ में होते पाया गया है। प्रसगानुसार अर्थव्यजना होती है। प्रत्येक न्याय मे विशेष भाव की व्यजना रहती है और ध्वन्यात्मक रूप से इसका प्रयोग होता है।[1]

संस्कृत के बहुत से निबन्धो में लोक-प्रसिद्ध युक्ति को न्याय की सज्ञा दी गई है।[2]

लोकोक्ति और न्याय दोनो एक ही हैं अथवा इन दोनो मे अन्तर है, इस पर विचार करना आवश्यक है। न्याय के स्वरूप का विवेचन करने से निम्नलिखित तथ्यो पर प्रकाश पडता है—

३. **लौकिक न्याय और कहावत का तारतम्य**—(१) अनेक न्याय ऐसे हैं जो केवल एक पदात्मक है। मात्स्य न्याय, टिट्टिभ न्याय आदि उदाहरणस्वरूप रखे जा सकते हैं। विश्व में शायद ही कोई ऐसी लोकोक्ति हो जो केवल एक पद मे समाप्त हो जाती है। छोटी-से-छोटी लोकोक्ति के लिए भी कम-से-कम दो पद आवश्यक हैं। ट्रेंच के मतानुसार Voll, toll जर्मन-लोकोक्ति दुनिया की सबसे छोटी कहावत है।[3]

(२) बहुत मे न्याय अथवा अधिकाश न्याय ऐसे हैं जो द्विशब्दात्मक हैं और जिनका सम्पूर्ण-वाक्य की भाँति प्रयोग नहीं होना। उदाहरणार्थ कुछ न्याय लीजिये—अजाकृपाणी न्याय, अन्धगज न्याय, काकतालीय न्याय, कूपमण्डूक न्याय, जामातृशुद्धि न्याय आदि। उक्त सभी न्यायो के मूल मे कोई-न-कोई कथा मिलती है, जिसको जाने बिना इन न्यायो का स्पष्टीकरण नही हो सकता। बहुत सी कहावतें भी ऐसी होती हैं जिनके पीछे कोई-न-कोई कथा पायी जाती है, किन्तु कहावत सामान्यत. सम्पूर्ण वाक्य की भाँति प्रयुक्त होती है, दो-दो शब्दो में पदाश की तरह नही। कहावती रूप मे क्रिया का कभी-कभी अभाव होने पर भी क्रिया सदा गम्य रहती है।

(३) कुछ न्याय ऐसे हैं जिन्हें लोक-प्रसिद्ध उपमाओ का नाम दिया जा सकता है। ऊषरवृष्टिन्याय, करस्थामलकन्याय, चक्रभ्रमणन्याय, अरण्यरोदन न्याय, अजागलस्तन न्याय आदि उदाहरणस्वरूप रखे जा सकते हैं। कहावती उपमाओ के भी उदा-

---

१. संस्कृत लोकोक्ति सुधा—श्री जगदम्बाशरण पुस्तक; परिच्छेद ख और ग पृष्ठ।

२ लोकप्रसिद्धयुक्तिर्न्याय' भूमिका भुवनेश लौकिक न्याय साहस्री।

3. Lessons in Proverbs by R. C Trench, p. 8.

हरण मिलते हैं किन्तु लौकिक न्यायो में इस प्रकार की उपमाओं का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है।

(४) अनेक न्याय ऐसे भी उपलब्ध हैं जिन्हें यदि लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जाय तो किसी प्रकार का अनौचित्य नही दिखलाई पडता। नीचे जो उदाहरण दिये जा रहे हैं, उनमें लोकोक्ति के सभी लक्षण मिलते हैं।

(क) अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वत व्रजेत्। —यदि समीप ही मधु मिलता हो तो पर्वत पर जाने से क्या प्रयोजन ?

(ख) भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधि।—लहसन खाने पर भी रोग शान्त न हुआ। जैक्व ने इस न्याय के लिए Maxim शब्द का प्रयोग न कर proverb शब्द का प्रयोग किया है।

(ग) वर साशयिकान्निष्कादसाशयिकः कार्षापण।—अनिश्चित निष्क की अपेक्षा निश्चित कार्षापण श्रेष्ठ है।

(घ) वरमद्य कपोत श्वो मयूरात्।—कल के मयूर से आज का कपोत अच्छा। वात्स्यायन कामसूत्र के द्वितीय अध्याय में ग और घ सम्बन्धी उक्तियो का प्रयोग हुआ है जिन्हें जैकब भी proverbs कहना ही उपयुक्त समझते हैं।[१]

(ङ) अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे। —जो अन्धे के सहारे लगा है, उसे पद-पद पर गिरना पडता है। इस न्याय का प्रयोग भामती में हुआ है जहाँ इसका आभाणक शब्द द्वारा उल्लेख किया गया है।[२]

(च) सर्वं पद हस्तिपदे निमग्नम्।—हाथी के पैर मे सब पैर समा जाते हैं।[३]

(छ) शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्य। सर्प सिर पर और वैद्य देशान्तर मे।[४]

(ज) विक्रीते करिणि किमकुशे विवाद। हाथी बिक जाने पर अकुश पर विवाद कैसा ?

(झ) पुत्रलिप्सया देव भजन्त्या भर्ताऽपि नष्ट।—पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से देवता की उपासना करती हुई का पति भी नष्ट हो गया।

(ञ) वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चिन्तामणिं लब्धवान्।—कौडी को तलाश करते हुए चिंतामणि हाथ लग गई। कबीर की साखियो में इसका निम्नलिखित रूप उपलब्ध होता है

चौहटे चिन्तामणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि।

(५) कुछ न्याय ऐसे भी हैं जिनके कहावती रूप आज भी उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ :

(क) गोमहिषीन्यायः।

एक राजस्थानी लोकोक्ति में कहा गया है कि 'गाय की भैंस के लागै और भैंस की गाय के लागै ?' अर्थात् गाय का भैंस से क्या सम्बन्ध और भैंस का गाय से

---

१ लौकिकन्यायाजलिः प्रथमो भाग, पृ० ३१।

२ तथा चाभाणक 'अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपात' पदे पदे (भामती)।

३. भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्री, पृष्ठ १८५।

४ वही, पृष्ठ २३५।

क्या सम्बन्ध ?

(ख) तरक्षडाकिनीन्याय. । इसी न्याय का प्रतिरूप 'डाकरण श्रौर जरख चडी' राजस्थानी भाषा मे उपलब्ध है।

(६) जैकब द्वारा सगृहीत श्रौर सम्पादित लौकिक न्यायाजलि में कही-कही न्याय के स्थान मे निदर्शन श्रौर नियम शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा,

(क) तम· प्रकाशनिदर्शनम्। अर्थात् अधकार श्रौर प्रकाश की युगपत् स्थिति का दृष्टान्त ।

(ख) तैलकलुषितशालिवीजादकुरानुदयनियम । अर्थात् तैल से कलुषित शालि बीज के अकुरित न होने का नियम ।

(७) कही-कही प्रश्नोत्तर के रूप मे भी न्यायो के उदाहरण मिलते है। जैसे,

प्रश्न

जागर्ति लोको ज्वलति प्रदीपः सखीजन पश्यति कौतुक मे।
क्षणैकमात्र कुरु कान्त धैर्यं वुभुक्षितः कि द्विकरेण भुंक्ते ॥

उत्तर

जागर्तु लोको ज्वलतु प्रदीप·, सखीजन पश्यतु कौतुकन्ते।
क्षणैकमात्र न करोमि धैर्यं वुभुक्षित न प्रतिभाति किंचित् ॥

भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्री के सम्पादक ने "वुभुक्षित कि द्विकरेण भुक्ते" श्रौर "वुभुक्षित न प्रतिभानि किंचित्" की न्यायो मे गणना की है।

(८) न्यायो में एक आभाणक न्याय की भी गणना की गई है। 'वराटका-न्वेषणे प्रवृत्तश्चिंतामणिं लब्धवान्' इसे आभाणक न्याय के अन्तर्गत रखा गया है। आनन्दघनकृत कुंथुनाथ स्तवन भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है जहाँ कहा गया है

रजनी वासर वसती ऊजड़, गयरण पयालो जाय।
सांप खाय नै मुखडूं थोथो, ए ऊखाणो न्याय ॥

साँप दूसरे को काटता है किन्तु इससे सांप का पेट नही भरता। इसे 'ऊखाणो-न्याय या आभाणक-न्याय' कहा गया है।

(९) कुछ कवियो की उक्तियाँ भी ऐसी हैं जिन्हें न्याय के अन्तर्गत कर लिया गया है। उदाहरणार्थ :

(क) छिद्रेष्वनर्था वहुली भवन्ति (विष्णु शर्मा) अर्थात् विघ्न पर विघ्न आया करते हैं।

(ख) सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता (श्री मद्भगवद्गीता) अर्थात् जैसे अग्नि धुएँ से आवृत्त रहती है, उसी प्रकार सब समारम्भ दोष से युक्त रहते हैं।

न्याय के उक्त स्वरूपो को देखने से स्पष्ट है कि सस्कृत-साहित्य में न्याय शब्द अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत लोक-प्रचलित पदाशो, प्रसिद्ध उपमाओ, विश्रुत दृष्टान्तो, सूक्तियों तथा आभाणको अथवा लोकोक्तियो, सभी को स्थान मिल गया है। बहुत से न्याय ऐसे हैं जिन्हें कहावत की सज्ञा दी जा सकती है, अनेक न्याय ऐसे हैं जिन्हें पारिभाषिक दृष्टि से लोकोक्ति तो नही कहा जा सकता किन्तु जो सूत्र-शैली मे ग्रथित ऐसे पद-समुच्चय हैं जो अपने में गम्भीर अर्थ छिपाये हुए हैं। दार्शनिक ग्रन्थो

के भाष्यो मे इस प्रकार के न्यायो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'योगाद्रूढिर्बलीयसी' जैसे अनेक शास्त्रीय न्याय भी हैं जो कहावतो की अपेक्षा सिद्धान्त, नियम आदि के अधिक सन्निकट हैं।

यही कारण है कि कहावत और लौकिक न्याय के आपेक्षिक विवेचन मे शास्त्रीय न्यायो को जान-बूझकर छोड दिया गया है।

प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति—प्रज्ञा सूत्र (Aphorism), व्यवहार-सूत्र (Maxim), मर्मोक्ति (Epigram) आदि प्राज्ञोक्ति के अन्तर्गत हैं। प्राज्ञोक्ति तथा लोकोक्ति के स्वरूप-निर्धारण में अनेक बार कठिनाइयो का सामना करना पडता है क्योकि सक्षिप्तता और सारगर्भितता आदि की दृष्टि से प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति में भी परस्पर समानता देखी जाती है किन्तु फिर भी प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति मूलत एक दूसरे से भिन्न हैं जैसा कि नीचे के विवेचन से स्पष्ट होगा।

(१) प्रज्ञासूत्र और कहावत—अंग्रेजी का Aphorism शब्द ग्रीक Aphorismos से निकला है जिसका अर्थ है 'परिभाषा देना'। Apo का अर्थ है 'से' और Horos का अर्थ है 'सीमा'। इस प्रकार 'Aphorism' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ 'किसी विचार-विन्दु को सीमाबद्ध करके उसका लक्षण निर्धारित करना अर्थात् उसे निश्चयात्मक रूप देना।' प्रज्ञासूत्र एक प्रकार की ऐसी सक्षिप्त और सारगर्भित उक्ति है जिसमें किसी सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति हुई हो।[1] कहावत और प्रज्ञा-सूत्र में मुख्य अन्तर यह है कि कहावत का सम्बन्ध सामान्य जनता से है, वह लोक की उक्ति अर्थात् लोकोक्ति है जब कि प्रज्ञासूत्र का सम्बन्ध विद्वानो अथवा प्राज्ञो से है, वह प्राज्ञो की उक्ति अथवा प्राज्ञोक्ति है।

पाश्चात्य देशो में प्रज्ञासूत्रो का जन्मदाता विश्वविख्यात ग्रीक वैद्य हीपोक्रैटस था जो ईसा से ४६० वर्ष पहले हुआ था किन्तु भारतवर्ष में सूत्रो की परम्परा बहुत प्राचीन है। हीपोक्रैटस से भी हजारो वर्ष पहले इस देश मे सूत्रों की रचना होती आई है। ब्रह्मज्ञान तथा उस समय की अन्यान्य विद्याओ की रचना सूत्रो के रूप मे हुई थी। अपने यहाँ 'सूत्र' शब्द की व्याख्या निम्नलिखित रूप मे की गई है :

'अल्पाक्षरमसंदिग्ध सारवत् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभ अनवद्य च सूत्र सूत्रविदो विदु'॥

अर्थात् सूत्र उसे कहते हैं जिसमें थोडे अक्षर हो, अस्पष्टता न हो, अर्थ-गौरव से युक्त हो, विश्वतोमुखी हो, जिसमे पुनरावर्तन न हो और जो निर्दोष हो।

भारतीय ग्रन्थो को देखते हुए सूत्रो के दो वर्ग निर्धारित किये जा सकते हैं—(१) प्रज्ञा-सूत्र और (२) विद्या-सूत्र।

प्रज्ञा-सूत्रो का सम्बन्ध है आध्यात्मिक ज्ञान, धार्मिक तथा नैतिक उपदेश आदि से, जबकि विद्या-सूत्रो का सम्बन्ध ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, नाट्य आदि विद्याओ से है। यहाँ प्रज्ञा-सूत्र तथा विद्या-सूत्रो के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

---

1 Aphorism is a short pithy statement containing truth of general import.

—*A Treasury of English Aphorisms by Logan Pearsall Smith p 44.*

प्रज्ञा-सूत्र

(१) एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति । (२) विद्ययाऽमृतमश्नुते । (३) अध्यात्मविद्या विद्यानाम् । (४) आचार प्रथमो धर्म । (५) यो वै भूमा तत्सुख, नाल्पे सुखमस्ति ।

विद्या-सूत्र

नाट्य-शास्त्रकार भरत मुनि का प्रसिद्ध रस सूत्र "विभावानुभावव्यभिचारि-सयोगात् रसनिष्पत्ति" विद्या-सूत्र के उदाहरणस्वरूप रखा जा सकता है । इसी प्रकार 'योगाद्रूढिर्बलीयसी' जैसे शास्त्रीय न्याय भी, जिनका व्याकरण से सम्बन्ध है, विद्या सूत्र के अन्तर्गत हैं ।

२. **प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र**—बहुत से लोग ऐसे हैं जो प्रज्ञा-सूत्रो और व्यवहार-सूत्रो को एक ही समझते हैं किन्तु वास्तव में इन दोनो शब्दो में बडा अन्तर है । Maxim (व्यवहार-सूत्र) लेटिन शब्द Maxima से निकला है जिसका अर्थ है सबसे बडा । अग्रेजी शब्द-कोष में 'सर्वाधिक गुरुतापूर्ण उक्ति को'[1] Maxim की सज्ञा दी गई है । प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र दोनो ही जीवन की किसी सचाई को प्रकट करते हैं किन्तु दोनो की पद्धति भिन्न-भिन्न है । प्रज्ञा-सूत्र विचार को लेकर प्रवृत्त होता है तथा व्यवहार-सूत्र का सम्बन्ध आचार-व्यवहार से है ।[2] प्रज्ञा-सूत्र तथा व्यवहार-सूत्र दोनो का एक-एक उदाहरण लीजिये—

"Eminent posts make great men greater and little men less" एक प्रज्ञा-सूत्र है, जबकि "When in doubt, keep silent." यह व्यावहारिक दृष्टि से शिक्षाप्रद होने के कारण एक व्यवहार-सूत्र है। किन्तु मॉर्ले ने प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र के अन्तर को कोई विशेष महत्त्व नही दिया है ।

३. **मर्मोक्ति और प्रज्ञा-सूत्र**—पाश्चात्य देशों मे प्रथम श्रेणी के मर्मोक्तिकार के रूप मे ला रॉशफोको (La Rochefoucauld) का नाम अत्यन्त विख्यात है । अपनी मर्मोक्तियो द्वारा इन्होंने फ्रासीसी साहित्य को बहुत समृद्ध बनाया है । मर्मोक्तियो के अति-रिक्त इन्होंने करीब सात सौ व्यवहार-सूत्रो की भी सृष्टि की है जिनका विश्व की अनेक भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है । ये मर्मोक्तियाँ तथा व्यवहार-सूत्र जितने सक्षिप्त हैं, उतनी ही विशुद्ध और ललित है उनकी अभिव्यक्ति । मानव-स्वभाव की गूढता को प्रदर्शित करने में ये बेजोड सिद्ध हुए हैं ।[3]

किसी ऐसी निशानदार उक्ति को जो अपने पीछे एक प्रकार की चटक छोड जाय, 'मर्मोक्ति' कहते हैं ।[4] निशान (Point) और चटक (Sting) मर्मोक्ति के ये दो प्राण-बिन्दु हैं । सक्षिप्तता और ललित भाषा यदि मर्मोक्ति का शरीर है तो निशान

---

1. Maxim is a statement of the greatest weight.

2 "Aphorism only states some broad truth of general bearing, a maxim besides stating the truth, enjoins a rule of conduct as its consequence"

—*Studies in Literature by J. V. Morley, p. 62.*

३ चयनिकायानु तत्त्वदर्शन फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता, पृष्ठ ८३ ।

4 Any saying of a pointed character and a sting in its tail is an epigram.

और चटक, इसका अर्थचातुर्य रूप आत्मा है। किसी ने कहा है कि मधुमक्खी मे जो गुण होते हैं, वे ही गुण मर्मोक्ति के लिए अनिवार्य हैं। छोटी-सी मधुर देह और पूँछ मे डक, ये ही मधुमक्खी की विशेषताएँ हैं जो मर्मोक्ति मे भी मिलती हैं।[1] मर्मोक्ति मे डक से तात्पर्य उसकी चटक से है।

अग्रेजी मे जिसे Epigram (मर्मोक्ति) कहते हैं, उसका सम्बन्ध विद्या सूत्रो से न होकर प्रज्ञा-सूत्रो से है किन्तु प्रज्ञा-सूत्र और मर्मोक्ति मे भी अन्तर है। प्रज्ञा-सूत्र के लिए यह आवश्यक नही कि वह निशानदार अथवा धारदार हो किन्तु मर्मोक्ति के लिए ऐसा होना अनिवार्य है।

विषय के स्पष्टीकरण के हेतु कुछ मर्मोक्तियो के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) कविता जिसके वश मे है, वह कवि नही है, जो कविता के वश में है, वही कवि है। (कवि नर्मद)

(ख) जहाँ आशा निराशा वन जाती है, वहाँ निराशा ही आशा का रूप धारण कर लेती है। (श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी)

(ग) सयम विना तलवार राक्षस को और तलवार बिना सयम साधु को शोभा देता है। (धूमकेतु)

(घ) यह स्पष्ट है कि कोई उपन्यास इतना बुरा नही हो सकता कि वह प्रकाशित करने योग्य न हो। हाँ, यह अवश्य सम्भव है कि कोई उपन्यास इतना अच्छा हो कि वह प्रकाशित करने योग्य न हो। (जार्ज वर्नर्ड शॉ)

(ङ) जो मनुष्य कहता है कि उसने जीवन को समाप्त कर दिया है, उसका तात्पर्य सामान्यत यह होता है कि जीवन ने ही उसे समाप्त कर दिया है।

(आस्कर वाइल्ड)

सस्कृत-साहित्य मे सूत्र, सूक्ति, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, नर्मोक्ति, मर्मोक्ति, छेकोक्ति, मुक्तक तथा सुभाषित आदि अनेक शब्दो का प्रयोग हुआ है। किन्तु सुभाषित एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसमे प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र तथा मर्मोक्ति आदि सभी का समावेश किया जा सकता है। सस्कृत के सुभाषितो मे से इन तीनो का एक-एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

प्रज्ञा-सूत्र

धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम् अर्थात् धर्म का तत्त्व गुफा में छिपा हुआ है।

व्यवहार-सूत्र

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदा पदम्" (भारवि) अर्थात् सहसा

---

1 The qualities rare in a bee that we meet
In an epigram never should fail,
The body should always be little and sweet,
And sting should be left in its tail
What is an epigram ? A dwarfish whole,
Its body brevity, and wit its soul

—*quoted in Stevenson's Book of Proverbs, Maxims and Familiar; Phrases p 704.*

कोई काम नही करना चाहिए क्योकि अविवेक आपत्तियो का परम पद है।

मर्मोक्ति

'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।
स्तपो न तप्त वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।'[1]

अर्थात् हमने भोग नही भोगे, हम ही भोग लिये गये, हमने तप नही तपे, हम ही तप्त हो गये, काल नही व्यतीत हुआ, हम ही व्यतीत हो गये, तृष्णा जीर्ण नही हुई, हम ही जीर्ण हो गये। उक्त श्लोक की प्रत्येक पक्ति एक-एक मर्मोक्ति हैं।

(४) लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति मे भेद—ऊपर की पक्तियो में प्रज्ञा-सूत्र व्यवहार-सूत्र और मर्मोक्ति, इन तीनो के पारस्परिक अन्तर को सोदाहरण दिखाने का प्रयास किया गया है किन्तु 'वाड्ला प्रवाद' के विद्वान् सम्पादक श्री सुशीलकुमार दे ने सभी प्रकार की उक्तियो को लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति, इन दो वर्गों मे विभक्त कर दोनो के सम्बन्ध मे जो अपने विचार प्रकट किये हैं, वे अत्यन्त मननीय हैं। उन्ही के शब्दो मे 'प्राज्ञोक्ति' जिसे लेटिन मे (Sententia) कहते हैं, हमेशा लोकोक्ति का रूप धारण नही कर लेती। प्राज्ञोक्ति में ज्ञानी के ज्ञान का जो निष्कर्ष हमे मिलता है, वह सुचिंतित होता है और प्राय उपदेशमूलक नीति-वाक्य के रूप मे देखा जाता है किन्तु प्रवाद या लोकोक्ति पाण्डित्य, चिन्तन तथा उपदेशात्मकता को लेकर अग्रसर नही होती। लोकोक्ति तो स्वत प्रसूत होती है और सरस तथा सक्षिप्त रूप मे अभिव्यक्त होती है किन्तु प्राज्ञोक्ति ज्ञान और चिन्तन के परिपक्व फल के रूप मे देखी जाती है। नीति-शिक्षा, तत्त्व ज्ञान और उच्च आदर्श लोकोक्तियो के प्रेरक हेतु नही हैं।[2]

लोकोक्ति और नीति-वाक्य (प्राज्ञोक्ति) में अनेक वार एक वडा अन्तर यह देखा जाता है कि प्राज्ञोक्ति 'नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नही होती[3] और लोकोक्ति 'व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का सत्य नही होती।'[4] विषय के स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित साखी पर विचार कीजिये—

जो तोको कांटा वुवै, ताहि वोहि तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरशूल ॥'

यह कवीर की एक सूक्ति है जो नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नही है अर्थात् यथार्थ जगत् मे इस सूक्ति के अनुसार आचरण वहुत कम देखने में आता है। इसी प्रकार कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

---

१. वैराग्यशतक भर्तृहरि।
२ 'वाड्ला प्रवाद'—(श्री सुशीलकुमार दे) द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ४.
३ 'नैतिक जगतेर सत्य हइले ओ व्यावहारिक जगतेर तथ्य नय'—वही; पृष्ठ ४।
४ वही, पृष्ठ ४।

(१) 'पराई पीर परदेस बरावर' अर्थात् परदेश के आदमी की यदि कोई चिन्ता करे तो पराये दु.ख की करे, दूसरे के कष्टो की सभी उपेक्षा करते हैं।

(२) 'दूसरै की थाली मे घी घणो दीखै' अर्थात् दूसरे की थाली में घी अधिक दिखाई पड़ता है।

(३) 'सै आप-आप की रोट्यां कै नीचै आंच लगावै' अर्थात् सब अपनी-अपनी रोटियो के नीचे आंच लगाते हैं।[1]

उक्त लोकोक्तियो मे व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का सत्य नही मिलता।

ऊपर के तुलनात्मक उदाहरणो से स्पष्ट है कि लोकोक्ति नैतिक ज्ञान नही है, वह है सासारिक ज्ञान, लोकोक्ति परोक्ष-चिन्तन नही है, वह है प्रत्यक्ष अनुभूति। लोकोक्ति न तो काव्य है, न तत्त्व-चिन्तन है, न नीति-प्रचार है, यह तो सासारिक ज्ञान की प्रत्यक्ष अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

लोकोक्तियाँ ग्राम्य होती हैं, यह कहना भी ठीक नही। शहरो की अपेक्षा ग्रामो में ही लोकोक्तियो का विशेष निर्माण तथा प्रचार देखा जाता है किन्तु इसी कारण लोकोक्तियो को ग्राम्य करार देना उचित नही। अवश्य ही लोकोक्तियो की भाषा जोरदार होती है क्योकि जीवन की घनिष्ठता से उनका सम्बन्ध रहता है, अनेक कहावतो में सत्य को खुल्लमखुल्ला प्रकट कर दिया जाता है। यहाँ इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि लोकोक्तियो की सफलता उनके वर्ण्य-विषय पर उतनी निर्भर नही करती, उनकी सफलता निर्भर करती है उनकी अभिव्यक्ति की भगिमा पर, सहज-बुद्धि के चमत्कार पर तथा सक्षिप्त एव साभिप्राय प्रयोगो की सार्थकता पर।

किन्तु कभी-कभी प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति मे अन्तर मालूम करना बडा मुश्किल हो जाता है। सस्कृत महाकाव्यो मे अर्थान्तरन्यास के रूप में प्रयुक्त अनेक प्राज्ञोक्तियाँ उपलब्ध हैं। हो सकता है कि उनमें से कुछ उक्तियाँ प्रचलित जनश्रुतियो के सस्कृत रूपान्तर हो और शेष कवियो द्वारा स्वय निर्मित हो। जो उक्तियाँ कवियो द्वारा निर्मित हैं, वे लोक की उक्तियाँ नही हैं। इसलिए हम उनको लोकोक्तियाँ नही कह सकते, उन्हें प्राज्ञोक्तियो के नाम से अभिहित करना ही समीचीन होगा। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे 'वस्तुत कहावत (प्रावर्ब) केवल लोकोक्ति नही है, वह कई बार प्राज्ञोक्ति भी है। तुलसीदासजी की अनेक पक्तियाँ कहावत बन गई हैं। उन्हे लोकोक्तियाँ नही कहा जा सकता वे प्राज्ञोक्तियाँ हैं जो लोक में साहित्य के माध्यम मे प्रचलित हुई हैं।' डाक्टर द्विवेदी ने 'कहावत' शब्द में लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति दोनो का अन्तर्भाव कर इस शब्द को और भी व्यापकता प्रदान करदी है।

स्टीवेन्सन ने लोकोक्ति और व्यवहार-सूत्र के अन्तर को स्पष्ट करते हुए बत-

---

1 मिलाइये—Russian "The burden is light on the shoulders of another"

French "One has always enough strength to bear the misfortune of one's friends"

Latin "Men cut thongs from other men's leather"

Italian "Every one draws the water to his own mill"

लाया है कि व्यवहार-सूत्र किसी सामान्य सत्य अथवा आचार-व्यवहार की अभिव्यक्ति है या मार्विन के शब्दो में यह कहावत तो है किन्तु है भिनगे की अवस्था में। पर उगने पर ही भिनगा उड सकता है, इसी प्रकार व्यवहार-सूत्र लोकोक्ति का रूप तभी धारण करता है जब इसको लोक-हृदय ने स्वीकार कर लिया हो और यह सर्वसाधारण में प्रचलित हो गया हो।[1]

व्यवहार सूत्र इकट्ठे किए हुए सिक्के हैं जब कि लोकोक्तियो को प्रचलित सिक्को के नाम से अभिहित किया जाता है। व्यवहार-सूत्र यदि प्रचलित न हो तो केवल पुस्तको की शोभा बढ़ाते हैं जब कि लोकोक्तियाँ जनता की जिह्वा पर नृत्य करती रहती हैं।

'कच्छी कहेवतो' के सग्राहक श्री दुलेराय एल० काराणी ने यथार्थ ही कहा है कि 'सुभाषित जहाँ एक दूकान पर चलने वाली हुडी है, वहाँ कहावत एक ऐसा राजमान्य लोक-सिक्का है जो रास्ते चलते बाजार मे बेधडक चाहे जहाँ चलाया जा सकता है।[2]

ऊपर जो बात व्यवहार-सूत्र और लोकोक्ति के अन्तर के सम्बन्ध में कही गई है, वही लोकोक्ति तथा प्रज्ञा-सूत्र अथवा मर्मोक्ति के अन्तर के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। किसी भी उक्ति को, चाहे वह प्राज्ञोक्ति हो, आचारोक्ति हो अथवा मर्मोक्ति हो, लोकोक्ति की सज्ञा तभी मिल सकेगी जब लोक-मानस उसे स्वीकार करले, अन्यथा नहीं।

---

1. "Maxim is the sententious expression of some general truth or rule of conduct, that it is a proverb in the caterpillar stage, as Marvin puts it and that it becomes a proverb when it gets its wings by winning popular acceptance, and flutters out into the highways and by-ways of the world"

—*Introductory Note to Stevenson's Book of Proverb, Maxims and familiar phrases*

२. "सुभाषित एक अमुक दुकान पर धीज बटावी शकाय एवी हुंडी के चेक छे ज्यारे कहेवत रस्ते चालतां बजार मां बेधडक बटावी शकाय एवु राज-मान्य चलणी नाणु छे, लोक-सिक्को छे।"

—'कच्छी कहेवतों', पृष्ठ ५

द्वितीय अध्याय

कहावत का उद्भव और विकास

१. कहावत का उद्भव

(क) कहावती शिशु का उद्भव

लोकोक्तियाँ जन-समुद्र के बिखरे हुए रत्न हैं। किसने ये रत्न बिखेरे, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता, किन्तु बहुत सम्भव है कि कहावतो का प्रथम उत्स मनुष्य के मन में तभी उत्सारित हुआ होगा, जब उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति अपने सरस वेग के साथ सहज भाषा मे निःसृत हुई होगी। एकान्त में बैठकर कहावतो का निर्माण नहीं किया गया किन्तु जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताओ ने कहावतो को जन्म दिया है। किताबो की आँखो से देखने वाले निरे बुद्धि-विलासी व्यक्ति कहावतो के निर्माता नही थे, कहावतो के रचयिता जीवन के द्रष्टा थे। क्या हुआ, यदि किसी कहावत के निर्माता ने कोई पुस्तक नही पढी, जीवन की पुस्तक से उसने जो पाठ पढा था, सूक्ष्म निरीक्षण, सामान्य बुद्धि और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ज्ञान का जो साक्षात्कार उसने किया था, वही एक मनोरम लोकोक्ति के रूप में प्रकट हो गया। श्री सुशीलकुमार दे के शब्दो में "प्रयत्नपूर्वक कहावतो का प्रचार भी नही किया गया, कहावतें अपने आप प्रचलित हो गई। प्रतिदिन के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर किसी के मुख से जा क्षिप्र सरस वाक्य निकल पड़ा, उसी ने क्रमशः अभ्यस्त वाक्य के रूप में परिणत होकर कहावत का रूप धारण कर लिया। जो पिता की रचना थी, वही काल-क्रम से पुत्र की सम्पत्ति बन गई।"[1] कहावत का जन्मदाता तो विस्मृति के गर्भ मे विलीन हो गया किन्तु उससे उद्भूत वह अमर वाक्य काल-समुद्र की लहरियो पर अमिट होकर तैरता रहा। किन्तु कोई कहावत कब जन्मी और किसने उसको जन्म दिया, इसका कुछ पता नही चल सकता क्योकि कहावत रूपी शिशु का जब जन्म होता है तो किसी को पास नही बैठने दिया जाता।"[2]

(ख) उद्भव की प्रक्रिया

कोई कहावत किस प्रकार जन्म लेती होगी, इसके सम्बन्ध में हम कुछ कल्पना अवश्य कर सकते हैं। विषय के स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण लीजिये :

'जो घडा पूरा भरा नहीं होता, वह कुछ छलकता है और छलकने से आवाज होती है। इसके विरुद्ध जो घडा पूरा भरा होता है, वह न छलकता है और न उसमें से कोई आवाज ही होती है। पानी का घडा लेकर आती हुई स्त्रियो के सम्बन्ध में यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है। किन्तु यह तो मात्र नेत्रानुभव है। न जाने

---

१. वाङ्ला प्रवाद श्री सुशीलकुमार दे, पृष्ठ १।

2. 'Rarely indeed is one permitted to sit in at the birth of a proverb or to name its author'

—*Introductory Note to Stevenson's Book of proverbs Maxims and familiar phrases.*

कितने लोग इस दृश्य को देखते हैं किन्तु किसी प्रकार की मानसिक प्रतिक्रिया उनमें नही होती। किन्तु किसी दिन एक विचारशील व्यक्ति के मन में यह दृश्य उस व्यक्ति का चित्र सामने खडा कर देता है जो बोलता बहुत है किन्तु जिसका ज्ञान अधकचरा है, जिसकी विद्या अधूरी है। ऐसी स्थिति में नेत्रानुभव मन के अनुभव के रूप मे परिणत हो जाता है और उसके मुख से सहसा निकल पडता है 'अघजल गगरी छलकत जाय'। यद्यपि यह वाक्य प्रसग-विशेष पर एक व्यक्ति के मुख से निकला था तथापि समान प्रसंग आने पर अन्य लोग भी इस वाक्य की आवृत्ति करने लगते हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति की उक्ति लोक की उक्ति बन जाती है, कहावत का रूप धारण कर लेती हैं।

इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण लीजिये। कल्पना करिये कि किसी शिकारी ने बन्दूक के निशाने से एक पक्षी को मार डाला और उसे हस्तगत कर लिया। यह हस्तगत पक्षी हवा में उडते हुए अथवा झाडियों में छिपे हुए अनेक पक्षियो की अपेक्षा श्रेष्ठ है किन्तु कभी-कभी शिकारी दूसरे अनेक पक्षियो के लोभ में इस हस्तगत लाभ को छोड देते हैं। यह प्राय सभी शिकारियो का नेत्रानुभव है किन्तु किसी शिकारी के मुख से कभी पहले-पहल जब यह वाक्य निकल पडा होगा 'हस्तगत एक पक्षी झाडी में छिपे दो पक्षियो के बराबर है'[1] तब यह समझना चाहिए कि उसके नेत्रानुभव ने मानसिक अनुभव का रूप धारण कर लिया था। नेत्रानुभव और मानसिक अनुभव की इस एकाकारिता में ही कहावत का प्रादुर्भाव होता है। यद्यपि इस कहावत की उद्भावना का श्रेय शिकारी जगत् को दिया जा सकता है किन्तु इसका प्रयोग शिकारियो तक ही सीमित नही है। कहावत की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह अभिधेयार्थ को लेकर प्रवृत्त नही होती, उसका प्रयोग अन्योक्ति अथवा अन्यापदेश के रूप में होता है। हम भी अपने जीवन में अनेक बार जब प्रस्तुत अथवा प्रकृत लाभ को छोडकर अनिश्चित अप्रस्तुत लाभ की ओर उन्मुख होते हैं तो चेतावनी के रूप में उक्त कहावत का प्रयोग किया जा सकता है।[2]

(ग) उद्भव के प्रमुख आधार

कहावतों की उत्पत्ति के तीन प्रमुख आधार हैं—(क) लोक-कथाएँ, (ख) ऐतिहासिक घटनाएँ और (ग) प्राज्ञ-वचन।

(क) लोक-कथाएँ—लोकानुभव प्राय घटनामूलक होता है। कोई घटना घटित होती है और हमारे जीवन सम्बन्धी अनुभव में वृद्धि कर जाती है। हम देख पायें चाहे न देख पायें, मानव-जाति के प्रत्येक अनुभव के पीछे एक छोटी-मोटी कहानी छिपी रहती है जिसका वह सकेत देती है। यही कारण है कि कहावत को गढवाली भाषा मे 'अखाणो' या 'पखाणो' कहते हैं। 'अखाणो' आख्यान से बना है और 'पखाणो' उपाख्यान से। राजस्थानी भाषा मे भी कहावतो के लिए 'ओखाणा' शब्द प्रचलित है।

परन्तु घटनामूलक होने पर भी कहावत 'कहावत' है। हर घड़ी की बातचीत

---

1. A bird in hand is worth two in the bush

२ चवराकियानु तत्वदर्शन : जमशेदजी मेहता, पृष्ठ १८६-८७-८८।

मे अथवा साहित्यिक रचनाओ मे पद-पद पर सारी कहानी बार-बार नहीं दुहराई जा सकती। हाँ, कहावत के द्वारा उसका सकेत दे दिया जा सकता है। इसी से गढ़वाली भाषा में 'कहावत' को 'आणो' तथा संस्कृत मे आभाणक कहते हैं। 'आणो' और 'आभाणक' एक ही है। 'आभाणक' ही 'आणो' हो गया है आभाणक आहाणम आआणम आणा+ओ, आणो। इसमें मूल धातु 'भण' है जिसका अर्थ है कहना।'[1] ऊपर की पक्तियो मे डाक्टर बडथ्वाल ने यथार्थ ही कहा है कि कहावत के द्वारा कहानी का सकेत दे दिया जाता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस प्रकार का सकेत अनेक बार कहानी के चरम वाक्य द्वारा दिया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ ऐसी कहावतें लीजिये जिनका अवसान चरम वाक्य में होता है।

(अ) चरम वाक्य—(१) 'तन्नै कँगो सो मन्नै भी कँगो' अर्थात् जो तुम्हे कह गया, वह मुझे भी कह गया। यह राजस्थानी भाषा की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसके पीछे निम्नलिखित कथा कही जाती है .

"एक बुढिया ने किसी घुडसवार से अपनी पोटली ले चलने के लिए कहा। घुडसवार ने यह कहकर इनकार कर दिया कि घोडे के सवार और बुढिया माई का क्या साथ ? सवार ने कुछ आगे चलकर सोचा कि अच्छा होता, यदि बुढिया की पोटली मैं ले लेता, उसमे जो कुछ है उसे तो स्वायत्त कर लेता। वह लौट पडा और बुढिया के पास पहुँचकर कहने लगा—'ला पोटली, तुझे कष्ट होगा, मैं घोडे की पीठ पर लेता चलूँगा।' बुढिया के दिल में भी यह सद्बुद्धि जागृत हो गई थी कि चलो, अच्छा हुआ जो मैंने अपनी पोटली घुडसवार को न दी, कही वह लेकर चम्पत हो जाता तो फिर क्या था ! किसी अनजान का विश्वास ही क्या ? बुढिया ने उत्तर दिया 'जो तुम्हें कह गया, वह मुझे भी कह गया'।"

राजस्थान में यह कहावत 'घोडै कै सवार को अर बूडली माई को साथ' इस रूप में भी प्रसिद्ध है।

(२) 'वा चिडकली और देख जो भरड दे उड ज्याय' अर्थात् वह चिडिया और देखो जो भरड शब्द करती हुई उड जायगी। इस राजस्थानी कहावत के सम्बन्ध में निम्नलिखित लोक-कथा प्रसिद्ध है .

"कहा जाता है कि साँपो को नष्ट करने के लिए एक बार राजा जनमेजय ने यज्ञ किया। वासुकि सर्प अपनी रक्षा के लिए किसी शहर मे चला गया और ब्राह्मण का रूप धारण करके रहने लगा। एक ब्राह्मणी से उसने विवाह भी कर लिया। ब्राह्मणी एक दिन पानी भर कर ला रही थी। जब वह अपने घर में प्रविष्ट हुई तो गरुड एक चिडिया का रूप धारण करके उसके घडे पर जा बैठा। घडे पर बोझ पडने से ब्राह्मणी ने अपने पति को पुकारा और बोली—एक चिडिया घडे पर बैठी है जिसके भार से मैं दबी जा रही हूँ। इसको किसी तरह उडाइये न। इस पर गरुड ने उत्तर दिया—वह चिडिया और देखो जो इस प्रकार 'भरड' शब्द करती हुई

---

१ गढ़वाली भाषा के पखाणा (कहावतें) · प्रस्तावना—डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, अक १, पृष्ठ १०३-१०४।

उड जायगी ।"

(३) एक अंग्रेजी कहावत है 'प्लाउडन साहब कहते हैं, तब तो मामला ही बदल गया ।'[1] इस कहावत के पीछे निम्नलिखित लघु-कथा प्रसिद्ध है :

"प्लाउडन नामक एक न्यायाधीश थे जिनको खबर मिली कि उनके किसी आसामी के पशु ने प्लाउडन साहब के पशु को चोट पहुँचाई है । न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि आसामी को हर्जाना देना होगा किन्तु थोडी देर बाद पता चला कि न्यायाधीश के पशु ने ही आसामी के पशु को चोट पहुँचाई थी । प्लाउडन साहब को जब सच्ची बात का पता चला तो लगे कहने 'तब तो मामला ही बदल गया' ।"

ऊपर तीन कहावती-कथाओ के उदाहरण दिये गये हैं । प्रत्येक कथा के अन्त में जो वाक्य है, वह चरम वाक्य है । आधुनिक आख्यायिकाओं मे जो स्थान चरम सीमा का है, वही इन कहावती कथाओं में चरम वाक्य का है । जहाँ चरम वाक्य का प्रयोग होता है, वहाँ कहानी अपनी तीव्रतम स्थिति को पहुँच जाती है । उसके ठीक बाद कथा समाप्त हो जाती है । इसका मुख्य कारण यह है कि चरम सीमा पर पहुँचकर भी यदि कहानी चलती रहे तो उसमे नीरसता आ जाती है ।

कथाओ का यह चरम वाक्य बडा जोरदार होता है । इसके कारण कहानी का आकर्षण सौ गुना बढ जाता है । इसमें मर्म को स्पर्श करने की बडी शक्ति पाई जाती है । कुछ वाक्यो मे ऐसा तीखा व्यग्य मिलता है जो देखते ही बनता है । ऐसे वाक्य लोगो में कहावतो की भाँति प्रचलित हो जाते हैं । इस प्रकार की कहावतें प्राय-विश्व की सभी भाषाओं में पाई जाती हैं ।

(आ) कथा से शिक्षा—प्रचलित लोक-कथाओ से जो शिक्षा मिलती है, उसे भी बहुत से लोगो ने सूक्ति अथवा लोकोक्ति के रूप मे रखने का प्रयत्न किया है[2] द्या द्विवेद ने, इसी प्रकार का प्रयत्न किया था । वैदिक कथाओ से जो शिक्षा मिलती है उसे ही लेखक ने 'नीतिमजरी' मे सूक्तियो अथवा लोकोक्तियो के रूप में जड दिया था । होमर की अनेक कथात्मक कविताओ के सम्बन्ध में भी यही किया गया था ।[3] इस प्रकार की शिक्षा के लिए हमेशा नई सूक्ति अथवा कहावत बनाने की आवश्यकता नही जान पडती । अनेक बार लेखक प्रचलित सूक्ति अथवा लोकोक्ति का प्रयोग करता है तो अनेक बार वह कोई नई सूक्ति गढ लेता है जो लोकोक्ति बन भी जाय और न भी बने । पचतन्त्र, हितोपदेश तथा जैन धर्म एव बौद्ध धर्म-सम्बन्धी गाथाओ से इस तरह के उदाहरण आसानी से सकलित किये जा सकते हैं । पचतन्त्र तथा जातको से

---

1. The case is altered, quoth Plowden

2 A proverb may be the condensation of a fable or parable into a single phrase A popular maxim even in modern times 'Every cock on his own dunghill' can be traced back to Seneca who thus summed up one of Aesop's fables

—*Article on 'proverb' in Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings*

3 The moral of many of the stories of the Homeric poems was summed up in a single line which gained currency as a proverb.

कतिपय उदाहरण लीजिये—

"बुद्धिर्यस्य वलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो वलम् ।
पश्य सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातित ॥" पचतन्त्र ।

सिंह और शशक की कहानी अत्यन्त लोक-प्रचलित है। शशक ने अपने बुद्धि-वल से सिंह को कुएँ में गिरा दिया। इससे प्रतीत होता है 'बुद्धि ही वल है'। यहाँ 'बुद्धि ही वल है' यह सूक्ति इस कहानी मे मिलने वाली शिक्षा के रूप मे प्रयुक्त है।

इसी प्रकार 'बक-जातक' की निम्नलिखित गाथा को लीजिये—

"नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेघति ।
आराधे निकतिप्पञ्ञो वको कक्कटकामिवा ति ॥"

अर्थात् अपने से अधिक धोखेवाज के साथ जो धोखेबाजी करता है, वह दुःख उठाता है। यह एक सूक्ति है जो इस गाथा के पूर्वार्द्ध मे प्रयुक्त हुई है, उत्तरार्द्ध में बक और कर्कटक की कहानी की ओर सकेत है।

'मिलहि न जगत सहोदर भ्राता' रामचरितमानस की एक सूक्ति है जो लोकोक्ति की भाँति व्यवहृत होती है। इसी से मिलती-जुलती उक्ति 'उच्छग जातक' की निम्नलिखित गाथा में मिलती है।

"उच्छगे देव मे पुत्तो, पथे धावन्तिया पति ।
तञ्च देस न पस्सामि यतो सोदरियमानये ॥"

अर्थात् हे देव! पुत्र तो मेरी गोद मे है, रास्ते चलती को पति भी मिल सकता है किन्तु वह देश मुझे दिखाई नही पडता जहाँ से सहोदर भाई मिल सके।

(इ) असम्भव अभिप्राय (Motif)—राजस्थानी लोकोक्तियो मे कुछ ऐसे कहावती वाक्य भी हैं जो असम्भव अर्थ को प्रकट करते हैं। एक ऐसा ही कहावती वाक्य लीजिये—

'अगाई गिया जाणे ऊँट का माथा सू सीगडा गिया' अर्थात् इस प्रकार चले गये जैसे ऊँट के माथे से सीग चले गये।

इस प्रकार के कहावती वाक्यो का आखिर अभिप्राय क्या है? लोक-कथाओ के आधारभूत अभिप्रायो का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले विद्वानो ने अन्य अभिप्रायों के साथ-साथ एक असम्भव अभिप्राय को भी स्वीकार किया है जिसके स्पष्टीकरण के लिए विहार प्रदेश की एक निम्नलिखित लोक-कथा का उल्लेख करना यहाँ असगत न होगा—

"एक वार एक घोडे के सम्वन्ध में झगडा उठ खडा हुआ जो प्रचलित जनश्रुति के अनुसार घाणी से पैदा हुआ था। एक शृगाल न्याय करने के लिए चुना गया। शृगाल का निर्णय सुनने के लिए वहुत से लोग एक निश्चित स्थान पर एकत्र हो गये किन्तु गीदड जरा देर से पहुँचा और कहने लगा—रास्ते में मैंने एक वडा तालाव देखा जिसमे वहुत सी मछलियाँ थीं। मैंने इस उद्देश्य से तालाव में आग लगादी कि मछलियाँ भून ली जायँ। फिर जव मछलियाँ तैयार हो गई तो मैं उन्हें खाने के लिये ठहर गया और इस प्रकार यहाँ पहुँचने मे मुझे विलम्व हो गया। लोगो ने कहा कि पानी में आग का लगना और इस प्रकार मछलियों का भूना जाना कैसे सम्भव हो सकता है?

शृगाल ने उत्तर दिया कि यह उसी तरह सम्भव है जिस प्रकार घाणी से घोडे की उत्पत्ति सम्भव है।"

इसी प्रकार ऊँट के माथे पर जब सीग होते ही नहीं, तब सीगो का चला जाना कैसे सम्भव है ? मैं समझता हूँ कि असम्भव अभिप्राय को द्योतित करने वाले इस प्रकार के कहावती वाक्यो के पीछे भी ऊपर उद्धृत विहारी लोक-कथा की भाँति ही कहानियाँ प्रचलित रही होगी।

इससे जान पडता है कि कथाओ ने कहावतो के उद्भव में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

(ई) कहावतों से कथाओ की उद्भावना—ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं वे ऐसी कहावतो के हैं जिनका प्रादुर्भाव लोककथाओ से हुआ है किन्तु कुछ कहावतें ऐसी भी होती हैं जिनसे लोक-कथाओ का प्रादुर्भाव हो जाया करता है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए दो दृष्टान्त लीजिये—

'जहाँ ९९, वहाँ पूरे सौ' यह एक लोक-कथा है और कहावत भी है। ऐसा जान पडता है कि शुरू-शुरू में तो यह कहावत लोगो के सामान्य अनुभव में से ही उद्भूत हुई होगी। लेन-देन मे हम कहा करते हैं 'मुझे तो पूरे सौ चाहिएँ, ९९ नही।' किन्तु आगे चलकर इसी कहावत के आधार पर किसी लोक-कथाकार ने निम्नलिखित कथा गढ़ ली होगी—

'एक डाकू था जो झाडी में छिपकर लूट-मार किया करता था। एक-एक करके उसने ९९ व्यक्तियो को अपनी तलवार के द्वारा मौत के घाट उतार दिया था किन्तु जब वह १००वी बार हत्या करने लगा तो एक ब्राह्मण ने समझा-बुझाकर उसे सन्मार्ग पर लगा दिया। तब से वह एक नदी के किनारे भगवद्भक्ति मे अपना समय व्यतीत करने लग गया। नदी की ओर जाने वाले मार्ग पर जकात लेने की सरकारी चौकी थी। वहाँ एक दिन एक वनजारा सायंकाल के समय अपने बैलो को पानी पिलाने के लिए आया। चार दिन तक रास्ते चलते बैलो को पानी की एक भी बूँद पीने को न मिली थी, इसलिए वनजारे के बहुत से बैल मर गये थे। बाकी बचे बैलों को वनजारा जितनी जल्दी हो सके, नदी तक पहुँचा देना चाहता था। जकात के अफसर ने बिना जकात का हिसाब साफ किये बैलो को आगे बढा ले जाने की इजाजत नही दी और परिणामस्वरूप बचे हुए बैल भी एक एक करके मरने लगे। उस भक्त से जो पहले डाकू था, यह दृश्य न देखा गया। उसने अफसर को बहुतेरा समझाया किन्तु वह टस से मस न हुआ। इस क्रूर दृश्य को देखकर भक्त ने सोचा कि अब तक मैंने ९९ निर्दोष व्यक्तियो की हत्या की है, अब इस अफसर का खून कर दूँ तो सैकडो प्राणियो की रक्षा हो जायगी। यह सोचकर उसने अपनी तलवार हाथ में ली और 'जहाँ ९९, वहाँ पूरे सौ' यह कहते हुए चौकीदार का सिर धड से अलग कर दिया। बैलो ने नदी-किनारे जाकर अपनी प्यास बुझाई।"

इसी प्रकार एक कहावत है 'रुपये के पास रुपया आता है'। यह भी एक सामान्य दैनिक अनुभव की बात है, सभी जानते हैं कि थोडी पूँजी हो तो व्यापार फलता-फूलता नहीं, रुपया खूब हो तो व्यापार में सफलता मिलती है। स्पष्ट है कि

नीचे की लोक-कथा उक्त कहावत के आधार पर कल्पित कर ली गई है—

"किसी मूर्ख ने उक्त कहावत सुनी और एक खजाने की खिडकी पर जाकर खडा हो गया। वह अपनी जेब से रुपया निकालकर उछाल-उछाल कर बजाने लगा और मन में सोचने लगा कि खजाने में से दूसरा रुपया उडकर अभी मेरे पास आता है। सयोगवश वह रुपया उसके हाथ में से गिरकर खिडकी के रास्ते खजाने के रुपयों में जा मिला। अब वह चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा कि लोग झूठ ही कहते हैं कि रुपये के पास रुपया आता है। खजाने के सिपाही ने कहा 'मेरी समझ में तो बात बिल्कुल ठीक है, तुम्हारा रुपया रुपयों के पास चलकर आ गया न। तुम्हारा सिर्फ एक रुपया था, वह बहुत रुपयो में आ मिला। बहुतो ने एक को खीच लिया।"

(ख) ऐतिहासिक घटनाएँ

ऐतिहासिक घटनाएँ किस प्रकार कहावतों को जन्म देती हैं, इसका विवेचन राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो के प्रकरण में विस्तार के साथ किया गया है। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि कभी-कभी किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के मुख से जब कोई महत्त्वपूर्ण वाक्य निकल जाता है तो वह भी कहावती ख्याति प्राप्त कर लेता है। मारवाड विजय पर शेरशाह ने कहा था, 'एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैने दिल्ली का राज्य खो दिया होता।'[1] तानाजी की मृत्यु पर शिवाजी के मुख से सिंहगढ-सम्बन्धी उद्गार निकल पडा था, 'गढ़ आला पण सिंह गेला' अर्थात् गढ़ तो आ गया किन्तु सिंह चला गया। सीजर की प्रसिद्ध उक्ति 'The die is cast' की तरह शिवाजी का यह वाक्य भी कहावत की तरह ही महाराष्ट्र में प्रचलित हो गया। लोकमान्य तिलक ने कहा था, 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।' इसी प्रकार सन् १९४२ की भारतीय क्रान्ति के अवसर पर 'करो या मरो' ने कहावती लोकप्रियता प्राप्त करली थी।

(ग) प्राज्ञ-वचन

विद्वानो ने कहावतो के दो भेद किये हैं—(१) साहित्यिक कहावत (Gnome) और (२) लौकिक कहावत अथवा लोकोक्ति। साहित्यिक कहावत का रूप जितना परिष्कृत होता है, उतना लौकिक कहावत का नहीं। दूसरी बात यह है कि साहित्यिक कहावत के निर्माता का हमें पता रहता है, लौकिक कहावत का निर्माता अज्ञात रहता है।

साहित्यिक कहावतें कवियो की उक्तियाँ हुआ करती हैं। जहाँ अनेक कवियों की रचनाओ मे लोक-प्रचलित उक्तियो का प्रयोग देखने मे आता है, वहाँ बहुत से कवियो की पक्तियाँ भी कहावतों का रूप धारण कर लेती हैं। कालिदास, तुलसी-

१. जोधपुर के राजा मालदेव का इतना प्रताप बढ़ा कि वे पश्चिम के बादशाह कहलाने लगे। अस्सी हजार सवार उनकी सेना में थे। दिल्ली के बादशाह हुमायूँ को भी एक बार उन्होंने शरण दी थी। जब शेरशाह सूर ने इन पर चढ़ाई की तो राव मालदेव के राठोड़ी योद्धाओं ने तलवार से तलवार बजा दी और वे इतनी वीरता से लडे कि शेरशाह के छक्के छूट गये। इस युद्ध में यद्यपि विजय तो शेरशाह की ही हुई तथापि वह हारते-हारते बचा। इसीलिए युद्ध के अन्त में उसके मुख से उक्त वाक्य निकल पड़ा था। मारवाड़ की पैदा ही क्या है? मुट्ठी भर बाजरा। उसके लिए जान को जोखिम में डालना कौनसी बुद्धिमानी का काम था? स्वल्प-से लाभ के लिए अत्यधिक हानि की ओर उन्मुख होने वाले शेरशाह ने अपनी विचार-मूढ़ता को स्वय स्वीकार किया था।

दास, शेक्सपियर तथा पोप आदि कवियो की अनेक पक्तियाँ कहावतो के उदाहरण-स्वरूप रखी जा सकती हैं। अनेक बार इस तथ्य का पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि कवि द्वारा प्रयुक्त होने पर किसी कहावत ने काव्यात्मक रूप धारण कर लिया है अथवा कोई काव्यमयी उक्ति ही कहावत बन गई है।[1] लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति के सम्बन्ध में पहले जरा विस्तार से विचार किया जा चुका है। इसलिए यहाँ पिष्ट-पेषण के भय से मैं केवल इस बात पर बल देना चाहूँगा कि अन्य आधारो के साथ-साथ प्राज्ञोक्तिया भी कहावतो के उद्‌भव का एक महत्त्वपूर्ण आधार उपस्थित करती हैं।

(घ) उद्‌भव की प्राचीनता

कहावतों का उद्‌भव कैसे हुआ, इसके साथ-साथ इस प्रश्न पर भी विचार करना आवश्यक है कि कहावतो का उद्‌भव कौनसे युग मे हुआ ? कोई समय ऐसा था जब सभ्यता और सस्कृति की दृष्टि से आदिम मानव बहुत ही नीचे स्तर पर रहा होगा। उस समय न पुस्तकें थी, न प्रेस थे, न कोई लिपि ही थी, न कोई साक्षर व्यक्ति ही था। उस प्राचीन काल मे जीवन के उपयोगी सकेतो के लिए कहावतो पर ही लोग आश्रित रहे होंगे, क्योकि ज्ञान-विज्ञान पुस्तको मे कही सचित न था। जब किसी व्यक्ति के मुख से कोई कहावत निकलती तो तत्कालीन जन-समुदाय उस कहावत के प्रति सशयालु नही था, बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ वह उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता था। और सच तो यह है कि सशयालुता की अवस्था भी तब उत्पन्न होती है, जब ज्ञान का कुछ विकसित रूप दिखाई पड़ने लगता है।

उस प्राचीन काल में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें न थी, किन्तु कहावतो में स्वास्थ्य-विज्ञान के निर्देश मिल जाते थे। उस समय अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो की कोई शास्त्रीय व्याख्या उपलब्ध न थी, किन्तु आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले व्यावहारिक सकेत कहावतो के रूप में अवश्य सुलभ थे। दर्शनशास्त्र और धर्म-ग्रन्थ उस समय न थे, किन्तु कहावतो के रूप में जो लोक-विश्वास प्रचलित हुए होंगे, वे ही उनके लिए दर्शनशास्त्र और धर्म-ग्रन्थो का काम देते होंगे। धर्मशास्त्र और दर्शन-ग्रन्थो के प्रति जिस प्रकार आदर-भावना देखी जाती है, उसी प्रकार कहावतो के प्रति भी सामान्य जनता में बड़ा आदर पाया जाता है। वैसे तो सभी देशो की सामान्य जनता कहावतो के प्रति श्रद्धालु देखी जाती है, किन्तु पौरस्त्य देशो की जनता मे यह श्रद्धालुता विशेष रूप से देखने को मिलती है।

भाषा की उत्पत्ति की भाँति ही कहावत की उत्पत्ति भी अत्यन्त प्राचीन है।

---

1. Proverbs and other common sayings are often caught up by the composer of a poem and woven into his verses while on the other hand, a well-turned poetical expression sometimes gives it a permanent Currency, as is the case with so many of the lines of Pope Whether the proverb has been made poetical by its setting, or the poetical expression has become proverbial by constant quotation, it may be sometimes difficult to determine.

—*Proverbs and Common Sayings from the Chinese by Arthur H. Smith shanghai, 1902*

किसी भी भूभाग मे जब कोई जन-समूह कुछ दिन के लिए स्थायी रूप से निवास करने लगता है तो उस भूभाग के उपयुक्त व्यवहारोपयोगी भाषा में थोडी-बहुत स्थिरता आती है और उस भाषा में साहित्य की सृष्टि होने लगती है । प्राथमिक अवस्था मे तो यह साहित्य श्रुति-परम्परा द्वारा प्रचलित होता है क्योकि सभ्यता के विकास में लेखन-कला बाद में आती है, पहले नही । यही कारण है कि प्राथमिक वाङ्मय अलिखित रूप मे मौखिक परम्परा द्वारा समाज के एक दल से दूसरे दल में अथवा एक पीढी से दूसरी पीढी के लोगो में प्रसार ग्रहण करता हैं । इस प्राथमिक अवस्था मे ही इस प्रकार के वाङ्मय के दो विभाग हो जाते है । एक भाग है गद्य वाङ्मय जिसका प्रारम्भिक रूप बडा अस्थिर होता है जिससे उसकी शब्द-योजना तथा उसका क्रम स्मृति मे स्थायित्व नही प्राप्त कर पाता । आज भाषा के रूप में इतनी स्थिरता आ जाने तथा उसके व्याकरण के नियमो द्वारा बद्ध होने पर भी गद्य के अनेक वाक्यों का ज्यो का त्यों याद रखना बडा कठिन व्यापार है किन्तु पद्य के सम्बन्ध मे यह नही कहा जा सकता । इस सम्बन्ध में सम्भवत दो मत न होगे कि गद्य की अपेक्षा पद्य ही अपेक्षाकृत सुविधा से स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेता है। यही कारण है कि किसी भी समाज में गद्य-साहित्य की अपेक्षा पद्य-साहित्य पहले तैयार होता है । ऋग्वेद के रूप में सबसे प्राचीन जो लिखित साहित्य आज उपलब्ध है, वह पद्य-साहित्य ही है ।

इस प्रकार के प्राथमिक वाङ्मय मे कही तो ईश्वरीय शक्ति के उत्कर्ष का चित्रण होता है, कही प्रकृति के चमत्कारो का वर्णन होता है अथवा कही सामान्य व्यवहारोपयोगी नीतिपरक तथ्यों का उल्लेख होता है । प्रारम्भ में यह स्फुट पद्यो के रूप में होता है और किसी विशेष प्रसग का वर्णन इसमें होने पर यह आख्यान का रूप धारण कर लेता है ।

इस प्रकार के पद्यो में कुछ पद्य ऐसे होते हैं जो विशेष मर्मस्पर्शी होते हैं, श्रोताओ पर जो अपनी विशेष छाप छोड जाते हैं । यह स्वाभाविक है कि सामाजिक गोष्ठियो में प्रसग आने पर इस प्रकार के पद्यो का विशेष प्रयोग हो जिसके परिणाम-स्वरूप कोई पद्य अथवा कोई पद्य-खड रूढ हो जाय, सारा समाज उसको अपनाले और वह लोकोक्ति के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन हो जाय ।

इस प्रकार जो लोकोक्तियाँ प्रचलित होती हैं, उनमे बहुत सी तो ऐसी होती हैं जो हमें मौखिक परम्परा द्वारा प्राप्त होती हैं, बहुत सी ऐसी हैं जो प्रसिद्ध लेखकों की कृतियो में से हमें मिल जाती हैं । भारतवर्ष में इस बीसवीं शताब्दी में भी आज ऐसी लोकोक्तियाँ मिल जाती हैं जो वैदिक काल से लेकर अब तक हमारे इस देश में प्रचलित रही हैं । इसी प्रकार पाश्चात्य राष्ट्रों की भाषाओ मे भी वर्तमान काल मे प्रचलित अनेक कहावतें ऐसी हैं जो युग-युगान्तर से चली आ रही हैं । जो कहावत हमे आधुनिक-सी मालूम पडती हैं, उसी के मूल रूप की यदि शोध की जाय तो कोई आश्चर्य नही, वह सैकडो वर्ष पुरानी निकल आये । हर एक कहावत अपनी कथा कहती है किन्तु उसकी कथा को सुनने-समझने वाले लोग कम ही होते हैं । किसी कहावत के मूल का पता लगाना वस्तुत. एक बहुत ही दुःसाध्य कार्य है ।

राजस्थानी भाषा की एक कहावत है 'गोदी का नै गेर कर पेट का की आस

करै' अर्थात् गोद के बच्चे को गिराकर गर्भस्थ शिशु की आशा करती है। इस कहावत में ध्रुव को छोडकर अध्रुव की ओर दौडने वाले व्यक्ति पर व्यग्य है। वहुत सम्भव यह है कि इस कहावत का मूल कथासरित्सागर की निम्नलिखित कथा है—

"इयं चाकर्ण्य मन्दा स्त्री पुत्रान्तरकांक्षिणी
एकपुत्रा स्त्रिय काचिदन्यपुत्राभिकाक्षया
पृच्छन्तीमब्रवीत्काचित्पाखण्डा क्षुद्रतापसी
योऽय पुत्रो स्ति ते वालस्त हत्वा देवताबलि
क्रियते चेत्ततो न्यस्ते निश्चित जायते सुत
एव तयोक्ता यावत्सा तत्तथा कर्तु मिच्छति
तावद् वुद्ध्वा हितान्या स्त्री वृद्धा ताम्वदद्रह
हसि पापे सुत जातमजात प्राप्तुमिच्छसि
यदि सोऽपि न जातस्ते ततस्त्व कि करिष्यसि
इत्यवार्यत सा पापादार्यया वृद्धया तया ॥"[1]

एक दिन एक स्त्री जिसके एक ही पुत्र था दूसरे पुत्र की इच्छा से किसी पाखण्डा क्षुद्र तापसी के पास गई। तापसी ने कहा—यह जो तुम्हारा पुत्र है, उसे तू यदि देवता की वलि चढा दे तो निश्चय ही दूसरा पुत्र उत्पन्न होगा। जव वह ऐसा करने को उद्यत हुई तो एक भली वृद्धा स्त्री ने उसे एकान्त में ले जाकर कहा—अरी पापिनी, उत्पन्न हुए पुत्र को तू मार रही है, जो उत्पन्न नही हुआ, उसकी इच्छा कर रही है। मान लो, यदि दूसरा पुत्र उत्पन्न न हुआ तो तू क्या करेगी ? इस प्रकार वृद्धा ने उसे उस पाप-कर्म के करने से रोक दिया।

यही कथा ४९वाँ अवदान भी है।

इसी प्रकार एक दूसरी कहावत है 'तिरिया चरित्त न जाने कोय, खसम मार के सत्ती होय।'

इस कहावत का मूल भी कथासरित्सागर की निम्नलिखित कहानी में मिल जाता है।

"वलवर्मन नामक एक व्यापारी था जिसकी स्त्री का नाम था चन्द्रश्री। चन्द्रश्री ने अपनी खिडकी से शीलहर नामक एक व्यापारी के सुन्दर युवक को देखा। दूती भेजकर उसने युवक को वुलाया। वह प्रतिदिन युवक से एकान्त में मिलने लगी। पति के अतिरिक्त उसके सभी मित्रो और सम्वन्धियो को पता चल गया कि चन्द्रश्री पर-पुरुष मे आसक्त है। प्रेमान्ध होने पर वहुत से मनुष्यो को अपनी स्त्रियो के असतीत्व का पता नही चल पाता।

"एक दिन वलवर्मन को वडे जोर का वुखार आया और उसकी हालत वडी खराव हो गई। पति की इस हालत में भी पत्नी प्रतिदिन अपने प्रेमी से मिलने जाया करती थी। एक दिन जव वह अपने प्रेमी के यहाँ थी, पति की मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु की खवर सुन वह दौडी-दौडी अपने घर आई और पति की चिता के साथ

---

१. कथासरित्सागर तरग ६१; पृष्ठ ३२३, निर्णय सागर प्रेस सस्करण।

स्त्री जल कर सती हो गई।"[1]

राजस्थान की प्रचलित लोक-कथा में स्त्री ने अपने हाथो पति को मार डाला तथा फिर वह उसके साथ सती हो गई।

इसी प्रकार न जाने कितनी कहावतों के मूल हमे अपने प्राचीन साहित्य में मिल जाते हैं।

बहुत से मनुष्य अपने दैनिक वार्तालाप मे कहावतो का प्रयोग करते हैं किन्तु उन्हें इस बात का पता नही रहता कि जिस लोकोक्ति का प्रयोग वे कर रहे हैं, वह कितनी पुरानी है और न कभी उनका इस ओर ध्यान ही जाता है। अनेक बार तो सस्कृत के पण्डित भी इस प्रकार के प्राचीन कहावती पद्यों का प्रयोग करते देखे गये हैं जिनके निर्माताओ के नाम का उन्हें पता नही, और ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि प्राज्ञोक्तियाँ भी जब लोकोक्तियाँ बनने लगती हैं तब व्यक्तिगत निर्माताओ का नाम भुला दिया जाता है, व्यक्ति की उक्ति होते हुए भी जो लोक की उक्ति बन जाती है, उसमें व्यक्ति का नाम प्राय विगलित हो जाता है।

लोकोक्ति, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पहले बोलचाल की भाषा में बनती है, रूढ होती है, फिर वही अनेक बार अपनी लोकप्रियता के कारण साहित्य की भाषा में भी अपना आसन जमा लेती है। किन्तु साहित्य में आते-आते लोकोक्ति को बहुत-सा समय लग जाता है। इसलिए किसी साहित्यिक कृति में लोकोक्ति के प्रयोग को देखकर यह नही समझ लेना चाहिए कि जितना प्राचीन वह साहित्य है, उतनी ही प्राचीन वह लोकोक्ति भी है क्योकि कौन जाने, उस साहित्यिक कृति में प्रवेश पाते-पाते उस लोकोक्ति ने कितने वर्ष लिये होंगे।

कहावत का उद्भव कैसे और कब हुआ, इसका अनुमान ही लगाना पडता है, निश्चित रूप से इस सम्बन्ध में कुछ कह सकना कठिन है। लोक-प्रचलित कहावतों के निर्माता कौन थे, इसका पता लगाना एक असम्भव व्यापार है। हाँ, घाघ और भड्डरी जैसे उन कहावतों के कुछ निर्माताओ की बात अलग है जिन्होंने कहावतो के साथ-साथ अपना नाम भी जोड दिया है। इसी प्रकार साहित्य में प्रयुक्त उन सूक्तियों के निर्माताओ का भी हमे ज्ञान है जिनकी सूक्तियो ने कालान्तर मे लोकोक्तियो का रूप धारण कर लिया।

कहावत के निर्माता का चाहे हम पता न लगा सकें और चाहे अनेक कहावतो के पीछे जो कथाएँ हैं, उनकी भी जानकारी हमें न हो सके किन्तु यह निश्चित है कि लोकोक्ति में घटना की प्रधानता रहती है, यह घटना ही कहावत को जन्म देती है। कहावती जगत् यथार्थ का लोक है, आदर्श का नन्दन-कानन नही। जैसा पहले कहा जा चुका है, आँखो से जो देखा, उसी को एक विदग्ध जन ने मन की तूलिका से अंकित कर दिया, लोक के मानसपट पर एक ऐसी रेखा खींच दी जिसे काल का अदम्य प्रवाह भी धो नही पाता।

२. कहावत का विकास

मौखिक आदान-प्रदान और श्रुति-परम्परा से कहावतो का सम्बन्ध होने के कारण

उनमें विकास का होना स्वाभाविक है। भाषा के विकास की भाँति कहावतें भी विकसित होती रहती हैं। उनका विकास सामान्यतः निम्नलिखित रूपों में दिखलाई पड़ता है।

(क) मूल भाषा की कहावतें और उनके रूपान्तर।
(ख) कहावतों में अर्थ और नामगत परिवर्तन।
(ग) कहावतों में पाठान्तर।
(घ) कहावतों के रूपों में परिष्कार।
(ङ) कहावतों का लोप और निर्माण।

1986

(क) मूल भाषा की कहावतें और उनके रूपान्तर

मूल भाषा की कहावत के विभिन्न भाषाओं में उसके रूपान्तर किस प्रकार प्रचलित हो जाते हैं, इसे स्पष्ट करने के लिए हम सबसे पहले नामसिद्ध जातक की निम्नलिखित गाथा यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

"जीवकं च मतं दिस्वा, धनपालिं च दुग्गतं।
पन्थकं च वने मूल्हं, पापको पुनरागतो।"

अर्थात् जीवक को मरा देख, धनपाली को दरिद्र देख, पथक को जंगल में भटकता देख, 'पापक' फिर लौट आया।

कहा जाता है कि एक तरुण का नाम ही था पापक। उसने आचार्य के पास जाकर कहा, आचार्य! मेरा नाम अमांगलिक है, मुझे दूसरा नाम दें। आचार्य ने कहा—तात! जा, देश में घूमकर जो तुझे अच्छा लगे, ऐसा एक मांगलिक नाम ढूँढ़ कर ला। आने पर तेरा नाम बदल दूँगा। वह चलते-चलते एक नगर मे पहुँचा जहाँ जीवक नाम का एक आदमी मर गया था। आगे चलने पर उसने देखा कि एक दासी को उसके मालिक काम करके मजदूरी न ला देने के कारण दरवाजे पर बिठाकर रस्सी से पीट रहे थे। उस दासी का नाम था 'धनपाली'। और आगे बढ़ने पर उसने देखा कि एक आदमी रास्ता भटक गया है। पूछने पर पता चला कि उसका नाम है 'पन्थक'। अब उसे समझ आई कि जब जीवक भी मरते हैं, धनपाली भी दरिद्र होती है और पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, तब फिर नाम मे क्या रखा है? नाम बुलाने भर को होता है। नाम से नहीं, कर्म से ही सिद्धि होती है। मुझे दूसरे नाम की जरूरत नही है। मेरा जो नाम है, वही रहे।[1]

राजस्थानी भाषा में उक्त गाथा के निम्नलिखित रूप सुनाई पड़ते हैं—

अमरो तो मैं मरतो देख्यो, भाजत देख्यो सूरो।
चोदर तो मैं चुगती देखी, लाछ बुहारै कूड़ो।
आगैं हूँ पाछो भलो, नाम भलो लंदूरो॥[2]

---

१ जातक (प्रथम खण्ड)—भदन्त आनन्द कौसल्यायन, पृष्ठ ५२६–२८।
२. मिलाइये·

अमरा तो म्हे मरता देख्या, भाजत देख्या सूरा।
गौरा तो गोबर चुगै, खसम भला लद्दूरा॥
अमर नाम तो मरता देख्या, भाजत देख्या सूरा।

एक जाट की स्त्री थी जिसके पति का लघुताव्यजक नाम था लैंटूरा। वह भोला-भाला और गरीब था। फटे वस्त्र पहने रहता था। जाटनी को उसकी सहेलियाँ कहा करती—दुनिया मे आकर तुमने क्या सुख देखा ? इस ससार मे अमरा (अमरसिंह), सूरा (शूरसिंह) तथा चौधरी और बहुत से लक्ष्मीधारी है, उनकी स्त्री बनती तो कितना सुख पाती ? एक दिन जाट की स्त्री अपना घर छोडकर निकल गई। एक गाँव में किसी शव को देखने पर उसे मालूम हुआ कि 'अमरा' मर गया। आगे चली तो एक आदमी दौडता हुआ दिखाई पडा। उसके पीछे दो लाठीधारी युवक लगे थे। मालूम हुआ कि दौडने वाले का नाम 'सूरो' (शूरवीर) है। और आगे चलने पर एक दुखी मनुष्य दिखलाई पडा। पता चला कि उसके भाइयो ने उससे 'चौधर' (चौधरी का अधिकार) छीन लिया है। कुछ दूर और आगे बढी तो देखा कि एक षोडशवर्षीया युवती कूडा बुहार रही थी जिसका नाम था लाछा (लक्ष्मी)। वह उसी समय घर लौट चली। सहेलियो द्वारा कारण पूछने पर उसने ऊपर के पद्य कहे थे जिनका भावार्थ यह है कि अमरा (अमरसिंह) को तो मैंने मरते देखा, सूरा (शूरसिंह) को भगते देखा, चौधरी के अधिकार को छिनते हुए देखा और लाछा (लक्ष्मी) को कूडा बुहारते हुए देखा। नाम मे क्या रखा है ? 'लैंटूरा' नाम ही सबसे अच्छा है।

आर. ए. मैंनवारिंग (R A. Manwaring) ने Marathi Proverbs मे इसी प्रसग का निम्नलिखित रूप उद्धृत किया है—

अमरसिंग तो मर गये, भीक माँगें धनपाल।
लक्ष्मी तो गोंबर्‍या वेंघी, भले विचारे ठणठणपाल ॥

कहा जाता है कि किसी मनुष्य ने अपने पुत्र का नाम रखा ठणठणपाल। जब पुत्र बडा हुआ तो उसे यह नाम बहुत अखरने लगा। एक दिन जब वह घूमने के लिए बाहर निकला तो पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि अमरसिंह नाम के किसी पुरुष की मृत्यु हो गई है। इसके कुछ समय बाद ही उसके दरवाज़े पर एक भिखारी आया। दूसरो के नाम जानने की उसके मन में बडी उत्सुकता रहा करती थी। इसलिए उसने भिखारी से उसका नाम पूछा। भिखारी ने अपना नाम बतलाया धनपाल। दूसरे दिन भ्रमणार्थ निकलने पर उसे पता चला कि लक्ष्मी नामक कोई महिला कण्डे एकत्रित कर रही है। उसको अब विश्वास हो गया कि केवल बडे-बडे नाम रखने से ही किसी की स्थिति में परिवर्तन नही हो सकता। ठणठणपाल नाम ही क्या बुरा है ?

उक्त कथा का निम्नलिखित बुदेलखण्डी रूप भी उपलब्ध है—

'एक जना लकरियन को बोज लए जा रओ तो। वा कौ नाम हतौ लाखन। दूसरउ चारौ खोद रओ तो। वा कौ नाम हतौ धनधन रा। एक जनो मर गओ तो और वाकी अरथी जाय रइती। वाकौ नाम हतौ अमर। लुगाई नें सब देख सुन कै मन में सोची कै नाम सें कुछ आउत जात नइया, और जा कई

कान्ह गुवाल्यो टाट चरावै, लिछमी भारै कूडा।
आगै सैं पाछा भला, नाम भला लैंटूरा ॥
हिन्दी-रूप
चिर अमर हैं मर गये, धनपति मागे भीख।
दयासिन्धु पशु-वध करें, तुम दुर्मति ही ठीक ॥

लकरी बेंचत लाखन देखे, घास खोवत धनधन रा।
अमर हृते ते मरतन देखे, तुमइ भले मेरे ठनठन रा ॥[1]

अन्य प्रदेशो में भी उक्त पालि-गाथा के विभिन्न रूप मिलते हैं। जहाँ भोजपुरी लोक-कथा के नायक का नाम ठट्टपाल है, वहाँ छत्तीसगढी लोक-कथा के नायक का नाम ठुनठुनिया है। गाथाएँ इस प्रकार हैं—

विनिया करत तव मिनिया देख ली, हर जोतत धनपाल।
खटिया बढल हम अम्मर देख ली, सबसे निमन ठट्टपाल ॥ (भोजपुरी)

अम्मर ल मयँ मरत देखें व लछमन जतिल काँवर वोहत देखेंव त ठुनठुनिया उतरगे पार ॥ (छत्तीसगढी)

अर्थात् अमरनाथ को मैंने मरते देखा। धनपति को मैंने अनाज से पयाल उडाते देखा और लक्ष्मण यति को मैंने वहगी ढोते देखा। तव ठुनठुनिया को नाम का रहस्य ज्ञात हो गया।[2]

ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि लगभग २५०० वर्षो से उक्त गाथा हमारे देश में प्रचलित रही है। यद्यपि 'धनपाली' को छोडकर अन्य सभी नाम भुला दिये गये और भिन्न-भिन्न प्रदेशो में अलग-अलग नामो की कल्पना कर ली गई तथापि गाथा की मूल भावना आज भी सुरक्षित है।

इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण लीजिये। 'वाणियँ वाली माखी' राजस्थानी भाषा का एक कहावती पदाश है जिसे सस्कृत मे प्रचलित लौकिक न्यायो के अनुकरण पर 'वणिक्—मक्षिका' न्याय के नाम से अभिहित किया जा सकता है। राजस्थान मे प्रचलित निम्नलिखित कथा द्वारा इसका स्पष्टीकरण हो सकेगा—

बीकानेर मे श्री लक्ष्मीनाथ जी के मन्दिर के पास भाण्डासर का जैन-मन्दिर है। मन्दिर वनते समय कारीगरो ने सेठ से कहा कि इसकी नीव मे यदि पर्याप्त घी डाला जाय तभी मन्दिर मजवूत वन सकेगा। सेठ ने कहा—जितना घी चाहिए, मँगवालो। सेठ के देखते-देखते घी के कुप्पे आने लगे। कुप्पो मे से कुछ को खोलकर सेठ ने घी की परीक्षा करनी चाही। सयोग से घी में एक मक्खी गिर पडी जो घी मे लिपटकर तुरन्त मर गई। सेठ ने चटपट मक्खी को घी से वाहर निकाला और उससे अपने जूतो को चुपड लिया। कारीगरो ने सोचा कि जव सेठ मक्खी के लगा हुआ घी ही नही छोडता, तव वह नींव में इतना घी क्योकर डालने लगा? सेठ मजदूरो का भाव ताड गया और कहने लगा कि इतना घी पर्याप्त होगा अथवा और मँगवाया जाय? रही मक्खी से जूता चुपडने की वात, मैंने सोचा कि जरा-सा भी घी व्यर्थ क्यो जाय? इसलिए उसका उसी समय उपयोग कर लिया गया। वैसे नीव में कितना भी घी लगे, मेरे यहाँ घी की कोई कमी नहीं है। कहते हैं तभी से 'वाणियँ वाली माखी' ने एक कहावती पदांश का रूप धारण कर लिया।

इसी से मिलती-जुलती एक कथा 'जीवक चरित' मे भी आती है जो यहाँ अविकल उद्घृत की जा रही है.

---

१ 'लोकवार्त्ता', अप्रेल १९४६, पृष्ठ १४०।
२ छत्तीसगढ़ की लोक-कथा (श्री चन्द्रकुमार अग्रवाल) भूमिका (ख)।

'साकेत मे नगरसेठ की भार्या को सात वर्ष से शिर-दर्द था। बहुत से बड़े-बड़े दिगत-विख्यात वैद्य भी उसको अरोग नहीं कर सके, और बहुत हिरण्य (अशर्फी) सुवर्ण लेकर चले गये। तब जीवक ने साकेत में प्रवेश कर आदमियो से पूछा—

'भणे ! कोई रोगी है, जिसकी मैं चिकित्सा करूँ ?'

'आचार्य ! इस श्रेष्ठि-भार्या को सात वर्ष का शिर दर्द है। आचार्य ! जाओ, श्रेष्ठि-भार्या की चिकित्सा करो।'

तब जीवक ने जहाँ श्रेष्ठि गृहपति का मकान था, वहाँ जाकर दौवारिक को हुक्म दिया :

'भणे ! दौवारिक ! श्रेष्ठि-भार्या को कह—आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।'

'अच्छा आर्य।' कह दौवारिक जाकर श्रेष्ठि-भार्या को बोला

'आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।'

'भणे दौवारिक ! कैसा वैद्य है ?'

'आर्ये ! तरुण (दहरक) है।'

'बस भणे दौवारिक। तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा ? बहुत से बड़े-बड़े दिगन्त-विख्यात वैद्य ·····।'

तब वह दौवारिक, जहाँ जीवक कौमार भृत्य था, वहाँ गया। जाकर बोला—

'आचार्य !' श्रेष्ठि-भार्या सेठानी ऐसे कहती है 'बस भणे दौवारिक···।'

'जा भणे दौवारिक ! (सेठानी) को कह—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है—अय्या ! पहले कुछ मत दो, जब अरोग हो जाना, तो जो चाहना सो देना।'

'अच्छा आचार्य।'

दौवारिक ने श्रेष्ठि-भार्या को कहा, 'आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है···।'

'तो भणे ! दौवारिक ! वैद्य आवे।'

'अच्छा अय्या !' जीवक को कहा, 'आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुलाती है।'

जीवक सेठानी के पास जाकर · रोग को पहिचान, सेठानी को बोला ·

'अय्ये ! मुझे पसर भर घी चाहिए।'

सेठानी ने जीवक को पसर भर घी दिलवाया। जीवक ने उस पसर भर घी को नाना दवाइयो से पकाकर, सेठानी को चारपाई पर उतान लेटवा कर नथनो मे दे दिया। नाक से दिया वह घी मुख से निकल पड़ा। सेठानी ने पीकदान मे थूककर, दासी को हुक्म दिया—

'हन्दजे ! इस घी को बर्तन में रख ले।'

तब जीवक कौमार भृत्य को हुआ आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है, जो कि इस फेंकने लायक घी को बर्तन मे रखवाती है। मेरे बहुत से महार्घ औषध इसमें पड़े हैं, इसके लिए वह क्या देगी ? तब सेठानी ने जीवक के भाव को ताड़कर जीवक को कहा—

'आचार्य ! तू किस लिए उदास है ?'

'मुझे ऐसा हुआ आश्चर्य ·।'

'आचार्य ! हम गृहस्थिनें आगारिका हैं, इस सयम को जानती हैं। यह घी

दासों, कमकरो के पैर में मलने और दीपक में डालने को अच्छा है। आचार्य ! तुम उदास मत होओ। तुम्हें जो देना है, उसमे कमी नही होगी।'

तब जीवक ने सेठानी के सात वर्ष के शिर-दर्द को एक ही नास से निकाल दिया। सेठानी ने अरोग कर दिया, सोच जीवक को चार हजार दिया। पुत्र ने मेरी माता को नीरोग कर दिया, सोच चार हजार दिया। वहू ने मेरी सास को नीरोग कर दिया, सोच चार हजार दिया। श्रेष्ठि-गृहपति ने मेरी भार्या को नीरोग कर दिया, सोच चार हजार, एक दास, एक दासी और एक घोडे का रथ दिया।[1]

बुद्धचर्या से उद्घृत उक्त कहानी तथा सेठ कारीगरो की राजस्थानी कथा मे अद्भुत साम्य है। घटना की रूपरेखा बदल जाने पर भी दोनो कथाओ की भावना एक ही है, केवल कलेवर भिन्न है, आत्मा दोनो की एक है। बुद्धचर्या की कहानी ने ही परिवर्तित होते-होते सेठ और कारीगरों की कथा का रूप धारण कर लिया है अथवा जैसे इतिहास की पुनरावृत्ति होती है, उसी प्रकार उक्त घटना-सम्बन्धी आवृत्ति राजस्थान में भी हुई है, नही कहा जा सकता।

बहुत सम्भव यही है कि हजारो वर्षों से यात्रा करता हुआ 'जीवक चरित' ही 'वाणिये वाली माखी' के रूप में बदल गया है। इस प्रकार का परिवर्तन प्राय. विश्व की सभी भाषाओ में देखा जाता है।

ख. कहावतों में अर्थ और नामगत परिवर्तन

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमे वाह्य रूपरेखा भले ही बदल गई हो किन्तु कहावतो की अन्तर्हित भावना में कोई परिवर्तन नही हुआ है किन्तु जिस प्रकार अर्थ मे परिवर्तन हो जाया करता है, उसी प्रकार विकास के क्रम में कहावतों के अर्थ मे भी कभी-कभी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष की अधिकाश भाषाओ मे प्रचलित 'कहाँ राजा भोज, कहाँ गगा तेली' इस सुप्रसिद्ध लोकोक्ति को लीजिये। यह लोकोक्ति वैषम्यमूलक अर्थ में प्रयुक्त होती है किन्तु काश्मीर मे आते-आते इसी कहावत ने 'Yetih Raja Bhoj, tatih Ganga Tili'[2] अर्थात् 'जहाँ राजा भोज, वहाँ गगा तेली' का रूप धारण कर लिया। विषमताभूलक अर्थ को छोडकर उक्त कहावत समता-द्योतक अर्थ में प्रवृत्त होने लगी। काश्मीरी कहावत-संग्रह मे बतलाया गया है कि गगा तेली वडा समृद्धिशाली था तथा उसने एक बार भोज के पूर्वज विक्रमादित्य का कुछ उपकार भी किया था।

यह तो कहावत-विषयक अर्थ-परिवर्तन की चर्चा हुई किन्तु कहावत के नामो में भी लोग किस प्रकार यतेच्छ परिवर्तन कर लेते हैं, यह भी इसी कहावत के विविध रूपान्तरो से प्रकट है। उक्त कहावत का गगा तेली बुन्देलखड में 'ठूँठा तेली' के वेश में विचरण करता दृष्टिगोचर होता है "कहाँ राजा भोज, कहाँ ठूँठा तेली" और फिर भोजपुर मे जाकर 'भोजवा तेली' का रूप धारण कर लेता है। इसी भोजपुर में यह भोजवा कही-कहीं 'लखुवा' भी वन जाता है। परन्तु वाँदा प्रान्त के निवासियो ने

१. बुद्धचर्या, श्री राहुल साकृत्यायन, पृष्ठ २९९-३००।
2. A Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings by the Rev. J. Hinton Knowles, p 250.

गगू को 'कनवा' बना डाला है—'कहाँ राजा भोज, कहाँ कनवा तेली।[1]

किन्तु नाम-परिवर्तन के सम्बन्ध में भी एक बात अवश्य कही जायगी। विभिन्न भाषाओं में गगू तेली के भले ही अनेक नामान्तर मिलते हो किन्तु भारतीय संस्कृति के अमर प्रतीक भोज सर्वत्र एक रहे हैं।

ग. कहावतों में पाठान्तर

कहावतो के प्रचलन का मुख्य आधार श्रुति-परम्परा है। एक व्यक्ति किसी कहावत को जिस रूप में सुनता है, ठीक उसी रूप में उसे वह हमेशा स्मरण नहीं रहती। इसलिए कहावतो में श्रुत्यन्तरो अथवा पाठान्तरो का हो जाना स्वाभाविक है। राजस्थानी भाषा से कुछ ऐसी कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं जिनके पाठान्तर उपलब्ध हैं—

(१) उलटी गत गोपाल की, गई सिटल्लू मांय।
फावल में मेवा कर्‌या, टींट बिरज के मांय॥

पाठान्तर

कहूँ-कहूँ गोपाल की, गई सिटल्ली चूक।
काबुल में मेवा पके, ब्रज में टेंटी चूक॥

(२) सावण छाछ न घालती, भर वैसाखाँ दूद।
गरज दिवानी गूजरी, घर में मांदो पूत॥

पाठान्तर

गरज दिवानी गूजरी, नूत जिमावै खीर।
गरज मिटी गुजरी नटी, छाछ नहीं रै बीर॥
आरत मीठी आपकी, घर में मांदो पूत।
सावण छाछ न घालती, जेठ में फाचो दूद॥
गरज दिवानी गूजरी, अब आई घर कूद।
सावण छाछ न घालती, भर वैसाखाँ दूद॥

(३) राड आडी बाड चोखी।

पाठान्तर

राड सूँ बाड भली।

(४) निकली होठाँ, चढी कोठाँ।

पाठान्तर

निकली होठाँ बंधगी पोटाँ।

(५) रावलै रो तेल पलै में ही चोखो।

पाठान्तर

रावलो तेल ने खोला में ई भेल।

घ. कहावतो के रूपो में परिष्कार

बहुत सी कहावतें ऐसी होती हैं जो अपने संतुलित और सुन्दर पद-विन्यास

---

१ लोकवार्त्ता, सितम्बर १९४४ में श्री कृष्णानन्द गुप्त का लेख 'कहावतें—एक तुलनात्मक अध्ययन', पृष्ठ २०२, २०३।

के कारण लोकप्रियता प्राप्त कर लेती हैं। ऐसी कहावतो के पीछे ऐतिहासिक विकास की एक परम्परा पाई जाती है। स्टर्न (Sterne) की एक प्रसिद्ध कहावत है 'God tempers the wind to the shorn lamb'। स्टर्न को यह उक्ति जार्ज हर्बर्ट (सन् १६४०) के लेखो मे निम्नलिखित रूप में प्राप्त हुई थी—

'To a close shorn sheep God gives wind by measure.'

कहते है कि हर्बर्ट ने यह उक्ति फ्रेंच भाषा से ली थी और फ्रेंच भाषा ने इसे लेटिन से ग्रहण किया था।[१]

ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि अनेक कहावतो के रूपो में परिष्कार होता रहता है। अपने वर्तमान रूप मे आते-आते उनको न जाने कितना समय लग जाता है।

कहावतो के विकास के अध्ययनार्थ आक्सफार्ड डिक्शनरी आव् इगलिश प्रावर्स (Oxford Dictionary of English Proverbs) का बडा महत्त्व है। इसमे प्रत्येक अँग्रेजी कहावत का कालक्रमागत इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

ङ कहावतों का लोप और निर्माण—

विशेष परिस्थितियो में जिन कहावतो का प्रादुर्भाव होता है, उन परिस्थितियो के समाप्त होने पर धीरे-धीरे वे कहावतें भी लुप्त होने लगती हैं। 'कमावें धोती हाला, खा ज्याय टोपी हाला' एक राजस्थानी कहावत है जिसका अभिप्राय यह है कि हिन्दुस्तानी कमाते हैं और अग्रेज खा जाते हैं। इस कहावत का निर्माण और प्रचलन अग्रेजो के शासन-काल में हुआ था किन्तु अब देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद इस प्रकार की कहावतें धीरे-धीरे लुप्त हो जायेंगी अथवा अग्रेजी शासन-काल के स्मारक के रूप में राजस्थानी कहावतो के सकलनो की शोभा बढ़ाती रहेंगी।

इसी प्रकार जिन कहावतो मे राजस्थान के जागीरदारो से त्रस्त प्रजा की मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है, वे भी अब काल के प्रवाह में बह जायेंगी क्योकि जब जागीरदारी प्रथा ही समाप्त हो गई है तो ऐसी कहावतों का व्यवहार भी अब नही के बराबर रह जायगा। जो सिक्के व्यवहार में नही आते, वे अजायबघरो की शोभा बढाया करते हैं।

कुछ अश्लील कहावतें भी होती हैं जो समाज के अशिक्षित-वर्ग मे प्रचलित रहती हैं किन्तु किसी प्रदेश मे ज्यों-ज्यो शिक्षा का प्रचार बढता है, उस प्रदेश के निवासियो का जीवन-स्तर भी ऊँचा उठने लगता है जिसके परिणामस्वरूप ऐसी कहावतों को लोग हेय समझने लगते हैं।

बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु विवाह, दहेज आदि से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें भी तभी तक टिक पाती हैं जब कोई समाज रूढियो से ग्रस्त रहता है।

राजस्थान की एक कहावत में कहा गया है कि 'बैन हाँती री धणियाणी है, पाती री कोय नी' किन्तु यदि कभी पिता की सम्पत्ति में भाई के साथ बहिन को भी हिस्सा मिलने लगा तो इस प्रकार की कहावतों का रूप ही बदल जायगा।

इसी प्रकार यदि कृत्रिम वर्षा के प्रयोग कभी सफल हो गये अथवा सिचाई

---

१ देखिये—Oxford Dictionary of English Proverbs compiled by W. G Smith p. 122.

की नूतन योजनाओ के परिणामस्वरूप देश मे जल का अभाव दूर हो गया तो 'खेती बादल मे है' जैसी कहावतो का भी इतना महत्त्व नही रह जायगा।

जिस प्रकार पुरानी कहावतें, अप्रचलित अथवा लुप्त होती हैं, उसी प्रकार परिस्थितियो की विशेषता के कारण नूतन कहावतो का भी निर्माण होता है। चीनी के कट्रोल के दिनो मे एक कहावत मैंने सुनी थी :

'मुरै की साड और कट्रोल की खाड कदेई न्ह्याल कोनी करै।'

अर्थात् बिना नकेल की ऊँटनी तथा कट्रोल की खाँड से हैरान ही होना पडता है।

किन्तु इस प्रकार की कहावतें चिरस्थायी नही हुआ करती। देश की आर्थिक परिस्थितियो मे परिवर्तन के साथ-साथ ऐसी कहावतें उद्भूत होती हैं और जब वे किसी आवश्यकता की पूर्ति नही करतीं तो विलीन हो जाती हैं।

इस प्रकार बहुत सी पुरानी कहावतो का अप्रचलन और उनका लोप तथा समय-समय पर नई कहावतो का निर्माण लोकोक्ति-ससार का नियम है किन्तु जिन कहावतो मे सार्वजनिक सत्यो की अभिव्यक्ति होती है, वे निरन्तर चमकने वाले रत्नो की भाँति जगमगाती रहती हैं, उनकी आभा कभी मन्द नही पडती।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी कहावतों का वर्गीकरण

वर्गीकरण के सिद्धान्त

कहावतो का वर्गीकरण किस आधार अथवा किन आधारो पर किया जाय, वास्तव में यह एक बडा जटिल प्रश्न है। एक ही कहावत को भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखते है। उदाहरण के लिए एक राजस्थानी कहावत को लीजिये 'काणती भेड को र्‌याडो ही न्यारो' अर्थात् कानी भेड का रहन-सहन ही अलग है। इसी आशय को व्यक्त करने वाली अन्य भाषाओ की भी कुछ लोकोक्तियाँ निम्नलिखित हैं

(१) अलगी विलरिया के अलगें डेरा—भोजपुरी

(२) मुरारेस्तृतीयः पन्थाः—सस्कृत

(३) कानी गैया के अलगे वठान—विहारी

उक्त राजस्थानी कहावत तथा कहावत न० १ और ३ को पशुओ सम्वन्धी कहावतो के अन्तर्गत रखा जा सकता है, इनका सम्वन्ध सासारिक ज्ञान से जोडा जा सकता है, इन्हें सामाजिक कहावतें भी कहा जा सकना है, अथवा ये कहावतें नैतिक अथवा चारित्रिक दुर्वलता को भी प्रकट कर सकती हैं। इसलिए कठिनाई यह है कि इन कहावतों को कौनसे वर्ग में रखा जाय ?

दूसरी वात यह है कि कहावतों का एक सामान्य वर्ग निर्धारित कर देना भी वडा दुष्कर व्यापार है क्योकि कहावतो के विषय इतने विविध होते हैं कि उनकी इयत्ता निर्धारित नहीं की जा सकती। किसी सामान्य वर्ग मे कई उपविभाग वनाये जायें तो यह कठिनाई और भी वढ जाती है।

फिर भी वर्गीकरण के सम्वन्ध में विद्वानो ने कई सिद्धान्त स्थिर किये हैं।[१] संभवत. सवसे सरल और सीधा ढग तो वह है जिसका अनुसरण फैलन ने अपने कहावतो के कोश में किया है। उन्होंने कहावतो के पहले शब्द को लेकर अकारादि-क्रम से उनका विन्यास कर दिया है। लेकिन इस पद्धति की त्रुटि यह है कि एक कहावत को सभी लोग उसी ढग से शुरू नहीं करते। तव या तो यह हो सकता है कि कहावतो के पदार्थों को लेकर उनका वर्गीकरण किया जाय अथवा वर्ण्य-विषय को लेकर उनके वर्ग स्थिर किये जायें। पहली पद्धति के अनुसार पक्षी, पेड-पौधे आदि वर्गों के अन्तर्गत कहावतें रखी जायँगी, दूसरी पद्धति के अनुसार नीति-धर्म, अन्ध-विश्वास आदि वर्ग निर्धारित किये जायँगे। लेकिन कहने में उक्त दोनो पद्धतियाँ जितनी सरल दिखाई पड़ती हैं, व्यावहारिक दृष्टि से उनका निर्वाह उतना ही कठिन है। सभवत वर्ण्य-

---

१ द्रष्टव्य विहार प्रावर्ब्स (Behar Proverbs) के सम्पादक जान क्रिश्चियन (John Christian) के नाम लिखा हुआ जी० ए० ग्रियर्सन का पत्र (भूमिका में उद्धृत)।

विषय को लेकर कहावतों का वर्गीकरण करना अधिक उपादेय है और सबसे अन्त में एक ऐसी सूची दी जा सकती है जिसमें कहावतो के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द का समावेश कर दिया जाय। यह सूची नितान्त आवश्यक है क्योकि यदि इस प्रकार की सूची न दी जाय तो कहावतें आसानी से ढूंढ़ी नही जा सकती और यदि वे ढूंढ़ी न जा सकें तो फिर उनकी कोई उपयोगिता नही रह जाती। कहावतो के सग्रह तो एक प्रकार से सदर्भ-ग्रन्थ होते हैं और सदर्भ-ग्रन्थो की सब से बडी उपयोगिता यह है कि उन्हें आसानी से प्रयोग में लाया जा सके।

Behar Proverbs के सम्पादक ने कहावतों को निम्नलिखित छ वर्गों मे विभक्त किया है—

(१) मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियो तथा अवगुणो से सबद्ध।
(२) सासारिक ज्ञान-विषयक।
(३) सामाजिक और नैतिक।
(४) जातियों की विशेषताओ से सम्बद्ध।
(५) कृषि और ऋतुओ-सम्बन्धी।
(६) पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से सम्बन्धित।

इसी प्रकार मैनवारिंग (Manwaring) ने अपनी मराठी प्रावर्ब्स (Marathi Proverbs) नामक पुस्तक मे कहावतो के १४ वर्ग निर्धारित किये हैं—कृषि, जीव-जन्तु, अग और प्रत्यग, भोजन, नीति, स्वास्थ्य और रुग्णता, गृह, धन, नाम, प्रकृति, सम्बन्ध, धर्म, व्यापार और व्यवसाय तथा प्रकीर्ण।

कहावतो के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे जो चर्चा ऊपर की गई है, उससे मेरा अभिप्राय यह दिखलाने का रहा है कि वर्गीकरण की पद्धति के सम्बन्ध मे कहीं ऐकमत्य दिखलाई नही पडता और जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस विषय मे मतभेद बराबर बना रहेगा।

अपने द्वारा किये हुए राजस्थानी कहावतों के वर्गीकरण के विषय मे दो शब्द कहना यहाँ अप्रासगिक न होगा। रूप और वर्ण्य-विषय दोनो को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतो का अध्ययन किया है। रूपात्मक अध्ययन करते समय मैंने तुक, छन्द, अलकार, लौकिक न्याय, अध्याहार, सवाद, सख्या, व्यक्ति आदि उन सभी तत्त्वो पर विचार किया है जिन्होंने राजस्थानी कहावतो के रूप को किसी न किसी अश में प्रभावित किया है। वर्ण्य-विषय को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतो का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है

(१) ऐतिहासिक कहावतें।
(२) स्थान-सम्बन्धी कहावतें।
(३) राजस्थानी कहावतो में समाज का चित्र।
  (क) जाति-सम्बन्धी कहावतें।
  (ख) नारी सम्बन्धी कहावत।
(४) शिक्षा, ज्ञान और साहित्य।
  (क) शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें।
  (ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें।

(ग) राजस्थानी साहित्य मे कहावतें।

(५) धर्म और जीवन-दर्शन।

(क) धर्म और ईश्वर-विषयक कहावतें।

(ख) शकुन-सम्बन्धी कहावतें

(ग) लोक-विश्वास-सम्बन्धी कहावतें।

(घ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी कहावतें।

(६) कृषि-सम्बन्धी कहावतें।

(७) वर्षा-सम्बन्धी कहावतें।

(८) प्रकीर्ण कहावतें।

वर्गीकरण के सम्बन्ध में यद्यपि मैंने अनेक ग्रन्थो से लाभ उठाया है तथापि किसी भी वर्गीकरण को मैंने ज्यो का त्यो नही अपनाया है। अपने द्वारा किये हुए वर्गीकरण को यथासाध्य वैज्ञानिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है।

(क) रूपात्मक वर्गीकरण

१. राजस्थानी कहावतो में तुक के विविध रूप

तुक का महत्त्व—कहावतो के निर्माण मे तुक का बडा हाथ रहता है। तुकान्त रचना आसानी से याद हो जाती है और स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेती है। भूल जाने पर भी अपेक्षाकृत सरलता से उसका पुनः स्मरण किया जा सकता है तथा सामान्यतः शुष्क गद्यात्मक वाक्य की अपेक्षा तुकान्त-रचना में अधिक आकर्षण भी पाया जाता है। यही कारण है कि तुकान्त-लोकोक्तियाँ अधिक लोकप्रिय हो जाती हैं।

तुक के विविध रूप राजस्थानी कहावतो मे उपलब्ध होते हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं —

(१) **द्विधा विभक्त**—तुकान्त कहावतो में से अधिकाश दो भागो में विभक्त रहती हैं और इन भागो के अन्तिम शब्दो की परस्पर तुक मिलती है। जैसे,

(क) कीडी नै कण, हाथी नै मण।

अर्थात् ईश्वर चीटी को उदर-पूर्ति के लिए जहाँ कण भर देता है, वहाँ हाथी को मन भर दे देता है।

(ख) कात्या जी का सूत, जाया जी का पूत।

अर्थात् सूत तो उसी का है जो कातता है और पुत्र उसी का है जो उसे पैदा करता है।

(ग) गोद को छोरो, राखणो दोरो।

अर्थात् गोद के पुत्र का रखना कठिन होता है।

कुछ कहावतें ऐसी भी होती हैं जो दो भागो में विभक्त तो रहती हैं किन्तु जिनके केवल अन्तिम शब्दो की ही परस्पर तुक नही मिलती, प्रथम और अन्तिम शब्दों की भी तुक मिलती हैं। जैसे,

(घ) **करन्ता सो भोगन्ता, खोदन्ता सो पडन्ता।**

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अपनी करनी का फल भोगना पडता है। जो दूसरो के लिए खड्डा खोदता है, वह स्वय उसमें गिरता है।

(२) त्रिधा विभक्त—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जो तीन भागो में विभक्त रहती हैं और प्रत्येक भाग के अन्तिम शब्द की शेष भागो के अन्तिम शब्दों से तुक मिलती है। उदाहरणार्थ ·

(क) एक बार योगी, दो बार भोगी, तीन बार रोगी।

अर्थात् योगी एक बार शौच जाता है, भोगी दो बार और रोगी तीन बार।

(ख) एक दिन पावणू, दूजे दिन अनखावणू, तीजे दिन बाप को मु'घावणू।[1]

अर्थात् मेहमान तो एक दिन का ही होता है, दूसरे दिन वह अन्न खाने वाला (धन बरबाद करने वाला) समझा जाता है, अनादरणीय हो जाता है और तीसरे दिन तो वह गाली के योग्य हो जाता है अर्थात् सर्वथा उपेक्षणीय बन जाता है।

तीन भागो में विभक्त कहावतें अपेक्षाकृत सख्या मे कम हैं।

(३) चतुर्धा विभक्त—अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जो आकार-प्रकार में छन्द के चार चरण जैसी जान पड़ती हैं। उदाहरण के लिए कुछ कहावते लीजिये

(क) चालणी को चाम, घोड़ै की लगाम।
सजोगी को जाम, कदे न आवै काम॥

अर्थात् चलनी का चमड़ा, घोडे की लगाम और जोगी का लड़का, ये तीनों किसी के नही होते।

(ख) कातिक की छांट बुरी, वाणियां की नाट बुरी,
भाया की आट बुरी, राजा की डांट बुरी।

अर्थात् कार्तिक की वर्षा बुरी, बनिये को 'नही' बुरी, भाइयो की लड़ाई बुरी और राजा की डांट बुरी।

उक्त दोनो कहावतो में से प्रत्येक में चार-चार चरण हैं और प्रत्येक चरण के अन्तिम शब्दो की तुक मिलती है।

(४) तुकों की झड़ी—कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमे चरणो की कोई सीमा नही रहती, जिनमें तुको की झडी-सी लग जाती है और जो प्रवाह और लय के साथ-साथ आगे बढती चली जाती हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसी कहावत पर विचार कीजिये—

'ओछो वोरो
गोद को छोरो
मुरै की साड
नातै की रांड
ओछै की प्रीत
वालू की भीत कदेई न्हाल कोनी करै।'

अर्थात् निकृष्ट ऋणदाता, गोद का लड़का, बिना नकेल की ऊँटनी, नाते की स्त्री (वैदिक मन्त्रो द्वारा जिसका विवाह-सस्कार न हुआ हो), ओछे मनुष्य की प्रीति तथा बालू की दीवार, ये कभी निहाल नही करते।

---

१ मिलाइये : 'एक दिन पहुना, दोसर दिन ठेहुना, तीसर दिन केहुना।'
(भोजपुरी लोकोक्ति)

इस प्रकार की कहावतों में वक्ताओं के मुख से एक साथ कहीं कम और कहीं धिक तुकें सुनाई पड़ती हैं। ये कहावतें आकार में इसी प्रकार की होती हैं।

(५) खण्ड-हीन—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनके पहले और अन्तिम शब्द में तुक तो दिखाई पड़ती है किन्तु जिनके कोई विभाग नहीं किये जा सकते, जो एक ही साँस में बोल दी जाती हैं। उदाहरणार्थ :

(क) जाणे सो ताणे।
अर्थात् बात को वही खींचता है (आगे बढ़ाता है) जो जानता है।

(ख) साठी बुध नाठी।
अर्थात् साठ वर्ष की आयु होने पर मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

(ग) हजारी बजारी।
अर्थात् जो सहस्राधीश है, वह बाज़ार से चाहे जो चीज़ खरीद सकता है।

(घ) पेट करावे वेठ।
अर्थात् पेट के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

(ङ) शक्ती लारे भगती।
अर्थात् शरीर की शक्ति के अनुसार ही भक्ति की जाता है।

(च) तंगी में कुण संगी।
अर्थात् धनाभाव या गरीबी की अवस्था में कोई साथ नहीं देता।

(६) आंतरिक—असंख्य कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें आंतरिक तुक का निर्वाह देखा जाता है। आंतरिक तुक नाद-सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक होता है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में भी अनेक स्थानों पर आन्तरिक तुक का प्रयोग हुआ है।[1]

आन्तरिक तुक से सम्बन्ध रखने वाली कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(क) गाडी सूँ र लाडी सूँ बच कर रैण।
अर्थात् गाड़ी से और पहली स्त्री की मृत्यु के बाद लाई हुई नवविवाहिता स्त्री से बचकर रहना चाहिए।

(ख) झूठ को बोलणियो र धरती पर सोवणियो सकडेलो क्यू भुगतै ?
अर्थात् झूठ बोलने वाला और धरती पर सोने वाला तंगी क्यो सहे ?

(ग) मरै जको तो बोली सैं ही मर ज्यावै नई गोली सूँ ही कोनीं मरै।
अर्थात् प्रतिष्ठित मनुष्य के लिए तो अनादर ही मृत्यु के समान है।

(घ) ओसर चूक्या नैं मोसर कोनी मिलै।
अर्थात् गया हुआ अवसर दुवारा हाथ नहीं आता।

(ङ) ठाकर नै चाकर घणा।
अर्थात् ठाकुर को सेवकों की क्या कमी है ?

(च) चोरी को धन मोरी में जाय।
अर्थात् चोरी का धन लाभप्रद नहीं होता, योंही बरबाद हो जाता है।

---

१. कब लगि रहिय सहिय मन मारे।
नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥ (रामचरितमानस)

(छ) **रूम्रां धूम्रां** अर **मूंवां**, जाडो कोनी लागै ।

अर्थात् जिन पशुओं की पीठ पर बाल होते हैं, उनको जाडा नही सताता, अग्नि के पास जाड़ा नही लगता तथा मृतक को जाड़े से कोई भय नही रहता ।

(ज) **कम** खाणो, र **गम** खाणो फायदो ही करै ।

अर्थात् कम खाने तथा धैर्य धारण करने से लाभ ही होता है ।

ऊपर की कहावतो में जहाँ आन्तरिक तुक है, वहाँ शब्दो को मोटे टाइप में छापा गया है । आन्तरिक तुक के राशि-राशि उदाहरण राजस्थानी कहावतों मे सहज ही मिल जायेंगे ।

(७) **तुक और संख्या**—कहावतो में जहाँ सख्या का प्रयोग होता है, वहाँ तुक का महत्त्वपूर्ण योग रहता है ।

(क) 'छोडो ईस, बैठो बीस' राजस्थानी की एक कहावत है जिसका आशय यह है कि चारपाई की पाटी छोड दी जाय तो उस पर चाहे वीस आदमी बैठ जायें, वह नही टूटेगी । यहाँ अनिश्चित सख्या के द्योतनार्थ निश्चित संख्या वीस का जो प्रयोग हुआ है, उसका मुख्य कारण 'ईस' के साथ तुक का निर्वाह करना है । 'बीस' के प्रयोग से "बैठो और बीस" मे अनुप्रास की भी रक्षा हो गई है ।

इसी प्रकार (ख) "आँख है जो लाख है" में भी निश्चित सख्या "लाख" का प्रयोग आँख के साथ तुक मिलाने के लिए ही किया गया है ।

(८) **तुक और व्यक्ति**—कभी-कभी तुक के लिए भी कहावतो में तदनुरूप व्यक्तिवाचक नाम की कल्पना कर ली जाती है । जैसे,

(क) "अर्जन जैसा ही फर्जन, अर्थात् जैसे अर्जुन हैं, वैसे ही हैं उनके फर्जन्द (लडके) । जैसा पिता, वैसा ही पुत्र । यहाँ "फर्जन" से तुक मिलाने के लिए "अर्जुन" नाम की कल्पना कर ली गई है ।

(ख) भाई भूरा, लेखा पूरा ।

निमन्त्रण मे भोज्य-द्रव्य जब ठीक पर्याप्त ही रहा हो और भोजन कर लेने के बाद बचा भी कुछ न हो तथा निमन्त्रितो को असली स्थिति का पता भी न चले तो उक्त लोकोक्ति का सामान्यत प्रयोग किया जाता है । यहाँ "पूरा" से तुक मिलाने के लिए "भूरा" नाम का प्रयोग हुआ है ।

(९) **तुक और तथ्य**—अनेक लोकोक्तियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमे तुक की ओर पहले ध्यान दिया गया है, तथ्य की ओर बाद में । इस प्रकार की लोकोक्तियो में तुक का चमत्कार जितना मिलता है, उतना तथ्य का नही । उनमें तथ्य को लक्ष्य में रखकर तुक पर नही पहुँचा जाता, तुक को लक्ष्य में रखकर तथ्य पर पहुँचा जाता है । उदाहरण के लिए एक राजस्थानी कहावत लीजिए—

आँख फडूकै बांई । कै बीर मिलै कै सांई ।

अर्थात् यदि स्त्री की बाँई आँख फडके तो या तो भाई मिले या पति मिले । साधारणत लोक-विश्वास के अनुसार स्त्री की बाँई आँख का फडकना शुभ और दाहिनी आँख का फडकना अशुभ समझा जाता है किन्तु उक्त लोकोक्ति में शुभ परि-णाम का जो स्वरूप निश्चित किया गया है, वह सब तुकदेव की कृपा है ।

ऊपर दी हुई कहावत में तुक की प्रमुखता अवश्य है किन्तु वस्तुत तथ्य का

कोई हनन नही है, तुक का आश्रय लेने के कारण तथ्य को अपनी अभिव्यक्ति के लिए केवल एक नूतन प्रकार मिल गया है। तुक के लिए यदि तथ्य का बलिदान होता रहे तो केवल तुक के भरोसे लोकोक्तियाँ चिरस्थायित्व प्राप्त नही कर सकती। जिन कहावतो में तुक और तथ्य समान रूप से अपना जौहर दिखाते हैं, वे लोक-प्रियता के साथ-साथ मानस-पट पर भी चिर काल तक अंकित रहती हैं। 'भूख कै लगावण कोनी, नीद कै बिछावण कोनी' एक ऐसी ही कहावत है जो उदाहरण के तौर पर यहाँ रखी जा सकती है।

राजस्थानी कहावतो में, जैसा ऊपर दिखाया गया है, तुक के विविध रूप प्राप्त होते हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस भाषा में अतुकान्त कहावतो की संख्या कुछ कम है। राजस्थानी में अतुकान्त कहावतें भी बहुत बडी संख्या में उपलब्ध हैं।

२. राजस्थानी कहावतों मे छन्द के विविध रूप

(१) लय का महत्त्व—"छन्द-स्पन्दन समग्र सृष्टि मे व्याप्त है। कलाएँ ही नही, जीवन की प्रत्येक शिरा में यह स्पन्दन एक नियम से चल रहा है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह-मण्डल और विश्व की प्रगति मात्र मे एक लय है जो समय के ताल पर यति लेती हुई अपना काम कर रही है। टेलेस्कोप, माइक्रोस्कोप, मनुष्य के निरावृत्त नेत्र तथा मनुष्य के मस्तिष्क के भीतर से विज्ञान ज्यो-ज्यों सृष्टि को देखता है, त्यों-त्यो उसे प्रत्यक्ष होता जाता है कि यह महान् सृष्टि एक अद्भुत सुर-सामंजस्य के बीच बँधी हुई है, इस क्रम में छन्दोभंग नहीं होता, यतियाँ खिचकर आगे नही जातीं, तथा समय अपनी ताल देना नही भूलता। केवल स्वर वाली कलाएँ ही नही, प्रत्युत चित्रण मूर्ति और स्थापत्य की कलाएँ भी काट-छांट, रूप और रंग के संतुलित प्रयोग से, इसी सामंजस्य का अनुसरण करती हैं।'[१]

ऊपर की पंक्तियो में जिस स्वर-सामंजस्य की चर्चा की गई है, उसके दर्शन हमे कहावतो में भी होते हैं। लय, स्वर-सामंजस्य का ही एक रूप है। "एक विशिष्ट प्रकार की अविच्छिन्न प्रवहमान नियमित स्वर-लहरी या ध्वनि-समूह को 'लय' की संज्ञा दी गई है।"[२] तुक से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है लय, क्योंकि लय से ही किसी छन्द को गति मिलती है। तुकान्त रचनाएँ तो लय का आधार लेकर चलती ही हैं, अतुकान्त रचनाएँ भी लय का आश्रय नही छोडती यहाँ तक कि "मुक्त छन्द" भी लय से मुक्त होना नही चाहता। लयप्रधान कहावतो मे तुक और लय के प्रयोग की जो विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है, उसका मुख्य कारण यह है कि कहावतें प्रायः अलिखित होती हैं और अलिखित रचनाएँ तुक और लय की सहायता से न केवल स्मृति-पट पर चिरकाल तक अंकित रहती हैं बल्कि उनको यथेच्छ स्मृति-पथ में ले जाना भी अपेक्षाकृत सुगम होता है।

(२) तुक और लय—राजस्थानी कहावतों में तुक के विविध रूपो पर पहले

---

१ हिन्दी कविता और छन्द—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' पारिजात, फर्वरी १९४६।

२ मुक्त छन्दों का विश्लेषण (श्री पुत्तूलाल शुक्ल एम. ए.,) हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४, अंक ३।

विचार किया जा चुका है। पद्यात्मक कहावतों में जितना महत्त्व तुक का है, उतना ही महत्त्व है लय का। जिन कहावतो मे तुक का प्रयोग किया जाता है, उनमे तो तुक के साथ-साथ लय भी मिलती है। तुक के प्रकरण मे ऐसी कहावतो के अनेक उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं। किन्तु ऐसी भी बहुत सी राजस्थानी कहावतें हैं जिनमें तुक भले न हो, लय का प्रयोग प्रायः देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

✓(१) घर का पूत कुँवारा डोलै, पाडोसी को नौ नौ फेरा।

अर्थात् घर के लडके कुँवारे भटकते हैं जब कि पडौसी के यहाँ नौ-नौ भाँवर होते हैं।

(२) बुरी बुरी बामण कै सिर।

अर्थात् बुराई के लिए ब्राह्मण उत्तरदायी है।

इस प्रकार की कहावतो में 'पूर्ण लय' का सगीत नहीं मिलता पर उसका एक लयाश रहता है, जिसे अग्रेजी मे 'रिदम' कहते हैं, इस लय को तुक और सुविधामय बना देती है।[1]

नीचे की राजस्थानी कहावतो में तुक के प्रयोग के कारण 'लयाश' खिल उठा है।

(१) 'भाई बडो न भय्यो, सब से बडो रुपय्यो।'

अर्थात् न भाई बडा है, न भैया, सबसे बडा रुपया है।

(२) 'माया अट की, विद्या कठ की।'

अर्थात् धन पास हो और विद्या कठस्थ हो, तभी काम आते हैं।

✓(३) 'स्यालो तो भोगी को, र ऊद्यालो जोगी को।'

अर्थात् भोगी तो जाड़े की ऋतु मे आनन्द मनाता है और योगी गर्मी में सुख पाता है।

(३) **कहावतें और आंशिक छन्द रचना**—जब कोई कवि दोहे तथा अन्य छन्दों की सृष्टि करता है तो छन्दशास्त्र के नियमानुसार वह सभी चरण बनाता है। किसी ने दोहे छन्द के केवल दो चरण ही बनाये तो दोहा अधूरा ही रह जायगा, चारो चरण बन जाने पर ही छन्द पूरा समझा जाता है किन्तु कहावत के सम्बन्ध मे ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। किसी छन्द का केवल एक चरण ही कहावत के रूप मे प्रयुक्त हो सकता है, कभी-कभी कहावत के लिए दो चरणो की आवश्यकता पड सकती है और कभी-कभी चारों चरण ही कहावत के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। क्रमश. एक-एक उदाहरण लीजिये—

(क) **एक चरण वाली कहावतें**—'घिरत ढुल्यो मूंगां कै मांय'; 'वाण्यो लिखै पढै करतार।'

इन दोनों कहावतों को 'चौपई छन्द' के एक-एक चरण के रूप में अथवा वीर छन्द के एक चरण के उत्तरार्द्ध के रूप मे ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार की अनेक कहावतें राजस्थानी भाषा मे हैं जिनको लेकर पूरे छन्द बनाये जा सकते हैं।

(ख) **दो चरणों वाली कहावतें**—'फागण में सी चौगणो, जे चालैगी बाल।'

यह एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि यदि हवा चले तो फाल्गुन में चौगुना जाडा पडने लगेगा। इस कहावत मे दोहे छन्द के दो चरण हैं जिनमें क्रमश.

१ ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ, ५३२।

१३ और ११ मात्राएँ हैं। यह कहावत दोहे के अवशिष्ट चरणो की अपेक्षा नही रखती। दो चरणो में ही कहावत समाप्त हो गई है। इस प्रकार की कहावतें राजस्थान में बहुत बडी सख्या में उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) चूनड़ ओढ़ै गाँठ की, नाव पीर को होय।

अर्थात् चुनरी तो अपने पास से पैसे खर्च करके ओढ़ती है और नाम पीहर का होता है। जिसके पीहर वाले गरीब हो, उसके सम्बन्ध में उक्ति है।

(२) जैंकी चावै घूघरी, वैंका गावै गीत।

अर्थात् जो जिसका खाता है, वह उसी के गीत गाता है।

(३) पाँच सात की लाकडी, एक जणै को भार।

अर्थात् यदि पाँच-सात आदमी मिलकर बोझ को आपस में बाँट लें तो उनके हिस्से मे एक-एक लकडी आती है, यदि न बाँटें तो एक के लिए वह भार-रूप हो हो जाता है। विवाह आदि मे मदद के लिए इस कहावत का प्रयोग होता है।

(४) बाप न मारी ऊदरी, बेटो तीरदाज।

अर्थात् पिता ने तो चुहिया भी नही मारी और पुत्र तीरन्दाज कहलाता है।

(५) सीर सगाई चाकरी, राजीपैंरो काम।

अर्थात् साझा, सम्बन्ध और नौकरी दोनों ओर से राजी रहने पर ही निभ सकते हैं।

(६) मना विहूणा पावणा, घी घालूँ अक तेल।

अर्थात् हे विना मन के पाहुने! तुम्हे घी खिलाऊँ या तेल?

(७) बाहर बाबू सूरमा, घर मे गीदडदास।

अर्थात् बाहर तो बाबू साहब सूरमा कहलाते हैं और घर में गीदडदास बने बैठे हैं।

उक्त कहावतो में दोहे के दो-दो चरणो का प्रयोग हुआ है। किन्तु दोहे के अतिरिक्त अन्य छन्दो के दो चरण भी राजस्थानी कहावतो में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे की कहावतो मे 'चौपई' छन्द के दो-दो चरणो का प्रयोग देखिये—

(१) खेती करै न विणजी जाय।
विद्या कै बल बैठ्यो खाय॥

अर्थात् ब्राह्मण न खेती करता है, न वाणिज्य के लिए जाता है, वह अपनी विद्या के बल पर बैठा खाता है।

(२) बड्डी भू का बड्डा भाग।
छोटो बनड़ो घणा सुहाग॥

अर्थात् वर यदि छोटा हो और वहू बडी हो तो वहू के वृद्ध होने पर भी वह युवा ही रहेगा, इसलिए वर की ओर से स्त्री को अपनी मृत्यु तक सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। यह उक्ति राजस्थान के बाल-विवाह के प्रेमियो पर घटित होती है।

(ग) चारों चरण वाली कहावतें—

गैलो भलो न कोस को, बेटी भली न एक।
लहणो भलो न बाप को, साहब राखै टेक॥

कोस का भी रास्ता चलना अच्छा नही, बेटी एक भी अच्छी नही, ऋण तो

पिता का भी अच्छा नही—भगवान ही टेक रखे।

इस दोहे के चारो चरण मिलाकर कहावत के रूप मे प्रयुक्त हैं, प्रथम तीन चरण अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से भी तीन कहावतो के रूप में लिये जा सकते हैं।

(४) अधूरा पूरा—राजस्थानी भाषा में दोहों तथा अन्य छन्दो में कुछ इस तरह के प्रयास भी किये गये जिन्हें 'अधूरा पूरा' कहते है। एक प्रचलित कहावत को लेकर उसे छन्दवद्ध कर दिया गया, अन्तिम चरण या चरणो में कहावत दे दी गई तथा शेष चरणो में व्याख्या द्वारा उस कहावत की एक प्रकार से पूर्ति कर दी गई। उदाहरण के लिए तीन 'अधूरे पूरे' यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१) लाखां लोहां चम्मड़ां, पहली किसा वखाण।
वहू बछेरा डीकरां, नीमटियाँ परवाण॥

अर्थात् लाख, लोहा, चमडा, वहू, घोडे का वच्चा तथा पुत्र, इनकी पहले कैसी प्रशसा? प्रौढ होने पर ही इनका पता चलता है।

(२) अकल सरीरां ऊपजै, दियी न आवै सीख।
अणमाग्या मोती मिलै, मांगी मिलै न भीख॥

अर्थात् बुद्धि शरीर के साथ पैदा होती है, समझ-बूझ किसी के द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती। बिना माँगे मोती तक मिल जाते हैं, माँगने पर भीख भी नही मिलती।

(३) हेठि ह थाली ऊपरि थाली, जिणमें घाली साल सुहाली।
गीत गावें नो नो जणी, हांती थोड़ी हलर घणी॥[१]

अर्थात् नीचे थाली है, ऊपर थाली है किन्तु उसके अन्दर केवल सात सुहालियाँ रखी हैं, गीत गाने के लिए नौ-नौ स्त्रियाँ है—"हाते" थोडी है, हलचल अधिक है।

प्रथम तथा द्वितीय 'अधूरे-पूरो' के उत्तरार्द्ध कहावतें हैं तथा तृतीय अधूरे पूरे का अन्तिम चरण एक कहावत है। ऐसा भी अनेक बार देखा जाता है कि किसी कवि द्वारा सम्पूर्ण छन्द की रचना की जाती है किन्तु कहावती लोकप्रियता छन्द के किसी अश को ही मिल पाती है।

बहुत से कहावती अश तो ऐसे होते हैं जिनमें मात्राएँ बराबर-बराबर रहती हैं किन्तु अनेक कहावती टुकडे ऐसे भी मिलते हैं जिनमें आरोह-अवरोह अथवा उच्चारण-सौकर्य के अनुसार मात्राओ में भी कमी-वेशी कर ली जाती है। यहाँ दोनो प्रकार के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(५) **सममात्रिक** (१) घडै कुम्हार ८ मात्राएँ
भरै ससार ८ मात्राएँ
(२) राज सल्ला को ९ मात्राएँ
काज पल्ला को ९ मात्राएँ
(३) घणा हेत टूटण नै १२ मात्राएँ
वडा नैण फूटण नै १२ मात्राएँ

(६) **असम मात्रिक**—(१) भागा का वलिया, १० मात्राएँ
राधी खीर, होगा दलिया १५ मात्राएँ

---

१. अजायुद्ध मुनिश्राद्ध प्रभाते मेघटवरम्_ दम्पत्यो· कलहश्चैव वहारम्भो लघुक्रिया।

(२) भीज्या कान ७ मात्राएँ
हुया असनान ८ मात्राएँ
(३) मानँ तो देव ९ मात्राएँ
नहि भींत को लेव १० मात्राएँ

(७) क्षति-पूर्ति—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें दो खण्डो के बीच 'और' के लघु रूप 'र' का प्रयोग कर मात्राओ की कमी पूरी करली जाती है। 'घी बाट रो र तेल हाट रो' इस कहावत के प्रथम खण्ड' 'घी बाट रो' में ७ मात्राएँ हैं जब कि 'तेल हाट रो' में ८ मात्राएँ हैं किन्तु दोनो के बीच मे समुच्चयबोधक 'र' के प्रयोग से दोनो खडो में मात्राएँ बराबर-बराबर हो गई हैं।

(८) लय-विहीन कहावतें—बातचीत में ऐसी भी अनेक लोकोक्तियो का प्रयोग किया जाता है जिनसे किसी विशिष्ट कहावती रूप का परिचय नही मिलता। यहाँ दो ऐसी कहावतें उद्धृत की जा रही हैं जिनमे न तुक है, न लय।

(१) सरीर कै रोगी की दवा है, मन कै रोगी की कोनी।
(२) मारणिये सें जिवाणियूँ ठाडो[1] है।

(९) उपसहार—यहाँ मात्राओ को लेकर राजस्थानी कहावतो के छन्दो की जो विवेचना की गई है, उसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि कहावत बोलने वाले छन्दशास्त्र के नियमो का पूरा अनुसरण करते हैं। अनेक बार वे मात्राओ को घटा-बढा कर बोलते हैं। मेरे विवेचन का मुख्य अभिप्राय केवल यह दिखलाना है कि कहावत के निर्माताओ अथवा कहावत के प्रयोक्ताओ को छन्दशास्त्र का चाहे ज्ञान न हो, फिर भी कहावतों मे छन्द का स्पन्दन मिलता है और उसके असख्य रूप दृष्टिगोचर होते हैं। सच्ची बात तो यह है कि छन्दो का प्रयोग तो पहले होता है, नियम बाद मे बनते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे लक्ष्य-ग्रन्थो के बाद लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण होता है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने यथार्थ ही कहा है कि 'ग्रामीण लोग मानव-छन्द से भले परिचित न हो, 'लय' और 'ध्वनि' का परिचय उन्हें खूब होता है। मानव-छन्द अभी कल का बच्चा है, इसके मुख में दूध के दाँत दिखाई देते हैं। ध्वनि उतनी ही पुरानी है जितनी पानी की लहर। 'लय' उस समय भी थी, जब प्रभात की प्रकाश-रेखा भी न थी।'[2]

३. राजस्थानी कहावतें और अलंकार

कुछ आलकारिक लोकोक्ति नामक एक स्वतन्त्र अलंकार को मानकर चले हैं। लोक-प्रसिद्ध कहावत का किसी प्रसग में जहाँ उल्लेख किया जाता है, वहाँ लोकोक्ति अलकार होता है।[3] बाँकीदास ग्रन्थावली में से निम्नलिखित दोहे को लीजिये—

✓ गोलां सूँ न सरै गरज, गोला जात जबून।
ऊखाणो सायद भरै, सो गोलां घर सून॥

अर्थात् गोलो (दासी-पुत्रों) से काम नहीं निकलता है, दासी-पुत्र की जाति ही बुरी है। यह कहावत साक्ष्य भर रही है कि सौ दासी-पुत्रो के रहते हुए भी घर सूना रहता है।[4]

---

१. बलवान।
२. 'वर्तमान'; १५ अप्रैल, १९५४।
३ लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति कथ्यते (कुवलयानन्द)।
४ बाँकीदास ग्रन्थावली, दूसरा भाग, पृष्ठ ८८।

उक्त दोहे के चोथे चरण में लोक-प्रसिद्ध कहावत का उल्लेख होने के कारण 'लोकोक्ति' अलकार का प्रयोग समझना चाहिए।

इस प्रकार यद्यपि लोकोक्ति को स्वत' एक अलकार माना जा सकता है किन्तु लोकोक्तियो के रूप-निर्माण मे अनेक प्रकार के शब्दालकारो तथा अर्थालकारो का योग रहता है जिनका अध्ययन वडा मनोरजक एव कुतूहलवर्द्धक है। राजस्थानी कहावतो के रूपात्मक अध्ययन मे यहाँ शब्दालकार तथा अर्थालकार दोनों ही दृष्टियो से विचार किया जा रहा है।

अ शब्दालकार—शब्दालकरो में अनुप्रास का वडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व की प्राय. सभी भाषाओ की कहावतो में तुक की भाँति अनुप्रास का प्रयोग भी विशेष रूप से देखा जाता है। राजस्थानी भाषा भी इसका कोई अपवाद नही है। राजस्थानी में यद्यपि सभी प्रकार के अनुप्रासों के उदाहरण मिलते हैं तथापि वृत्यनुप्रास और छेका-नुप्रास के प्रयोग प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं। इन दोनों अनुप्रासों के कुछ उदाहरण लीजिये

(१) वृत्यनुप्रास—पूत का पग पालणें ही दीख्यावें।

अर्थात् बालक के लक्षणों को देखकर बाल्यावस्था में ही उसके भविष्य की कल्पना करली जाती है।

(२) जमी जोरू जोर की, जोर हट्यां ओर की।

अर्थात् जमीन और स्त्री पर से जब जोर हट जाता है तो वे दूसरे की हो जाती हैं।

वर्णमाला के अक्षरो को लेकर जो कहावतें राजस्थानी भाषा मे मिलती हैं, उनमे भी विशेषत वृत्यनुप्रास की ही छटा दर्शनीय है। इस प्रकार की कुछ कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं।

✓ (क) दाँत दराँती दायमो, दारी और दरवान।
ये पाँच दद्दा बुरा, पत राखै भगवान॥

इस कहावत मे 'द' से प्रारम्भ होने वाली पाँच वस्तुओ, दाँत, दराँती, दायमा, दारी (पुश्चली स्त्री) और दरवान को बुरा ठहराया गया है।

✓ (ख) मोत मानगी मामलो, मदी माँगण हार।
पाँचू नम्मा एकसा, पत राखै करतार॥

अर्थात् मृत्यु, माँदगी (बीमारी), मामला (मुकद्दमा), मदी और माँगनेवाला (ऋणदाता) 'म' से प्रारम्भ होने वाली ये पाँच वस्तुएँ बुरी हैं, भगवान ही इनसे बचाये।

✓ (ग) साँसी साह सरावगी, सिरीमाल सूनार।
ये सस्सा पाँचू बुरा, पहले करो विचार॥

अर्थात् साँसी, साह, सरावगी, श्रीमाल और सुनार, 'स' से प्रारम्भ होने वाले ये पाँचो बुरे होते हैं। पहले भली भाँति सोच-समझकर ही इनसे व्यवहार करना चाहिए।

एक ही अक्षर से प्रारम्भ होने वाली कई वस्तुओ को कहावतो मे एक साथ

देने से उनको याद रखना अपेक्षाकृत सरल होता है। सम्भवत: इसी कारण इस प्रकार की कहावतो का प्रादुर्भाव हुआ होगा। वर्णमाला के अक्षरो को लेकर सोचने की यह पद्धति भी काफी प्राचीन है। वाममार्गियो के पच 'मकार' मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन भी इसी प्रवृत्ति के परिचायक जान पडते हैं। ऊपर उद्धृत की हुई राजस्थानी कहावतो मे भी सख्या सर्वत्र पाँच ही है।

कुछ कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें यद्यपि स्पष्टत: यह नही कहा गया है कि ये 'ककार' अथवा 'मकार' निकृष्ट हैं किन्तु फिर भी जो वर्णमाला के एक ही अक्षर-विशेष से प्रारम्भ होती हैं और गिनती को लेकर चलती हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसी कहावत लीजिये।

काग कुता कुमाणसा, तीन्यां एक निकास।
ज्यां-ज्यां सेर्यां नीसरें, त्यां-त्यां करें विनास॥

अर्थात् कौवे, कुत्ते और दुर्जन, तीनो इकसार होते हैं, ये जिस मार्ग से निकलते हैं, वहाँ ही विनाश करते हैं अर्थात् नुकसान पहुँचाते हैं।

अनेक कहावते ऐसी भी हैं जो गिनती को लेकर नही चलतीं किन्तु वर्णमाला के एक ही अक्षर का कई वार प्रयोग होने से वृत्यनुप्रास की प्रवृत्ति जिनमे स्पष्टत देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ—

(क) बीछ वानर व्याल विष, गर्दभ गडक गोल।
ये अलगा ही राखणा, यो उपदेश अमोल॥[1]

अर्थात् विच्छू, वन्दर, सर्प, विष, गधे, कुत्ते और दरोगे को दूर ही रखना उचित है।

(ख) काग कुहाडो कुटिल नर, काटैं ही काटैं।
सुई सुहागो सापुरस, सांठैं ही सांठैं॥

अर्थात् कौआ, कुल्हाडा और कुटिल मनुष्य, ये काटते ही काटते हैं और सुई, सुहागा और सत्पुरुष, ये जोडते ही जोडते हैं।

(ग) कांसी कुत्ती कुभारजा, कर लागा कूकत।
सीसो सोनो सापुरस, मधुर वाण वोलत॥

अर्थात् कांसी, कुतिया और कुभार्या जरा-सा हाथ लगने से कूकने लगते हैं किन्तु सीसा, सोना और सत्पुरुष हाथ लगने से और भी मधुर वाणी से वोलने लगते हैं।[2]

छेकानुप्रास—छेकानुप्रास मे अनेक व्यजनों की स्वरूप और क्रम से एक वार आवृत्ति होती है। राजस्थानी कहावतो में छेकानुप्रास के भी अनेक उदाहरण सहज ही उपलब्ध हो जायेंगे। उदाहरण—

(१) पीसो पास को, हथियार हाथ को।

अर्थात् पैसे की उपयोगिता तभी है जब वह अपने पास हो, इसी प्रकार

---

१. मेवाड़ की कहावतें, भाग १—(श्री लक्ष्मीलाल जोशी), पृष्ठ ६७.

२. मिलाइये, जैसे-जैसे मुझको छेड़ें, वोलूं अधिक मधुर मोहन।—श्री सुमित्रानन्दन पंत

हथियार भी हस्तगत होने पर ही काम देता है ।

(२) **नेम निमाणा, धर्म ठिकाणा ।**

अर्थात नियम और धर्म नियमी और धर्मी के पास ही रहते हैं ।

प्रथम कहावत के पूर्वार्द्ध मे 'पस' उत्तरार्द्ध मे 'हथ' तथा द्वितीय कहावत के पूर्वार्द्ध मे 'नम' की एक बार स्वरूप और क्रम से आवृत्ति होने के कारण छेकानुप्रास अलकार है ।

अन्य अनुप्रास—"भाई कै मन भाई भायो, बिना बुलाये आपै आयो" मे श्रुत्यनुप्रास माना जा सकता है क्योकि इस लोकोक्ति में एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले 'ब' और 'भ' का अनेक बार प्रयोग हुआ है । सामान्यत इस अनुप्रास को विशेष महत्त्व नही दिया जाता ।

अन्त्यानुप्रास तो तुक का ही एक प्रकार है जिसका विवेचन पहले किया जा चुका है । लाटानुप्रास ...शब्द और अर्थ की पुनरुक्ति होने पर भी तात्पर्य मे भेद रहता है । जैसे,

"पूत सपूता क्यूं धन सचै, पूत कपूता क्यूं धन सचै ?"[१]

उक्त कहावत में 'क्यूं धन सचै' की यद्यपि शब्दत. और अर्थत आवृत्ति हुई है किन्तु तात्पर्य की दृष्टि से भेद अवश्य है । आशय यह है कि यदि पुत्र सपूत होगा तो स्वय कमा लेगा, कपूत होगा तो जोडा हुआ धन भी उडा देगा । इसलिए दोनो अवस्थाओ में धन-सचय करना व्यर्थ है । यह लोकोक्ति हिन्दी और राजस्थानी, दोनों भाषाओ मे समान रूप से प्रसिद्ध है ।

वैण सगाई—डिंगल भाषा मे एक विशेष प्रकार का अनुप्रास होता है जिसे 'वैण सगाई' कहते हैं । यह एक प्रकार का शब्दालकार है जिसके अनुसार सामान्यतः किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर उस चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से मिलता है । वैण सगाई का एक लोकोक्तिगत प्रयोग लीजिए—

लोह तणी तलवार न लागै, जीभ तणी तलवार जिसी ।

अर्थात् लोहे की तलवार उतनी नही लगती जितनी जीभ की तलवार लगती है । तलवार का घाव भर जाता है किन्तु बोली का घाव नही भरता । उक्त कहावती पद्य मे 'लोहै' और 'लागै' तथा 'जीभ' और 'जिसी' मे वैण सगाई का निर्वाह हुआ है ।

कहावती रूप सामान्यतः बदलता नही, किन्तु डिंगल का कवि जब किसी कहावत का प्रयोग करता है तो वह कहावत को वैण सगाई के अनुरूप बदल देता है । उसकी दृष्टि में कहावती रूप के निर्वाह की अपेक्षा वैण सगाई का निर्वाह अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

राजस्थानी ७१ । एक कहावत है **"खाणो मन भातो, पैरणो जग भातो"** अर्थात् जो मन को अच्छा लगे वह खाना चाहिए, जो ससार को अच्छा लगे, वह पहनना चाहिए ।

---

१ राजस्थानी कहावता (भाग दूसरो) सम्पादक स्वामी नरोत्तमदास तथा प० मुरलीधर ... पृष्ठ २२ ।

डिंगल कवि के हाथो पडकर यही कहावत निम्नलिखित रूप में परिवर्तित हो गई—

"पहरीजें पर प्रीत, खाईजें अपनी खुसी।"[1]

यहाँ 'प्रीत' और 'खुशी' का प्रयोग क्रमश 'पहरीजें' और 'खाईजें' के साथ वैंण सगाई के निर्वाहार्थ किया गया है।

तुक की भाँति लोकोक्तियो में प्रयुक्त नामो और सख्याओ के निर्धारण मे भी अनुप्रास का विशेष हाथ रहता है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणो से स्पष्ट है—

१. खेता खेती मत करै, उद्दम कर कइ ओर।
मोंठ मूसा खा गया, चारो लेग्या चोर॥

अर्थात् हे खेता! खेती मत कर, कोई और उद्यम कर। चूहे मोठ खा गये और चोर चारा ले गये। क्या रखा है ऐसी खेती मे?

इस कहावत मे 'खेती' के साथ अनुप्रास का निर्वाह करने के लिए 'खेता' नाम का जान-बूझकर प्रयोग किया गया है। मूसा, मोठ तथा चारो और चोर का सानुप्रास-प्रयोग भी यहाँ द्रष्टव्य है।

२. बारा कोसां बोली पलटै, वनफल पलटै पाकां।
सौ कोसां तो साजन पलटै, लखण नी पलटै लाखां॥

अर्थात् बारह कोस पर बोली बदल जाती है, पकने पर वनफल बदल जाते हैं, सौ कोस पर साजन बदल जाते हैं किन्तु लक्षण लाखो कोसो पर भी नही बदलते।

इस कहावती पद्य में बारह, सौ तथा लाख, इन तीनो सख्याओं का प्रयोग हुआ है। पढ़ते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि बोली के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'बारह', साजन के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'सौ' तथा लक्षण के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'लाख' का प्रयोग हुआ है।

३. फूलां फूलगी, गैल का दिन भूलगी।

अर्थात् फूलां (स्त्री-विशेष) अब घमड में आ गई, अपने सामने किसी को गिनती ही नही। पिछले दिन उसे अब याद नही रहे। धन हो जाने पर लोग गरीबी को भूल जाते हैं। यहाँ ऐसा लगता है कि 'फूलगी' क्रिया के साथ अनुप्रास की रक्षा करने के लिए 'फूला' का प्रयोग हुआ है।

४. कर ये महती मालपुआ, बोहरो लेसी हुया हुया।

अर्थात् हे महती! मालपूआ बनाओ, बोहरे को तो जैसे-जैसे अपने पास रुपये होते जायेंगे, देते रहेंगे। बिना अपने पास कुछ हुए, वह लेगा भी कहाँ से?

यहाँ 'मालपुआ' के साथ अनुप्रास के निर्वाहार्थ 'महती' नाम की कल्पना की गई है।

अनेक बार ऐसा भी देखा जाता है कि किसी कहावत के प्रथम और अन्तिम शब्दों में यदि तुक नहीं मिलती है तो उसकी कमी-पूर्ति सानुप्रास शब्दों द्वारा कर ली जाती है। 'जुग देख जीवणू' अर्थात् युग देखकर जीना चाहिए, इस कहावत में 'जुग'

१. सम्बोध अष्टोत्तरी म० १८५८—हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।

और 'जीवणू' में अनुप्रास द्वारा काम चला लिया गया है।

जहाँ पर एक कहावत में दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में मिलती-जुलती बात कही जाती है, वहाँ अनुप्रासमयी शब्दावलि का प्रयोग प्राय. देखा जाता है। जैसे,

"पानी पाला पावसा उत्तर सूं आवै।"

अर्थात् वर्षा, पाला और बादशाह उत्तर दिशा से ही आया करते हैं।

अनेक बार कहावतो के महत्त्वपूर्ण शब्द सानुप्रास होते हैं। जैसे,

(क) कथनी सूं करणी दोरी।

अर्थात् कहने से करना मुश्किल है।

(ख) करम में लिख्या कक्कर तो के करै सिवसकर।

अर्थात् कर्म मे ककड लिखे हो तो शिवशकर क्या करे ?

(ग) टाबरां की टोली बुरी।

अर्थात् बहुत से बच्चों का होना अच्छा नही।

(घ) नाई की परख नूंवां में।

अर्थात् नाखून काटने मे ही नाई की चतुराई देखी जाती है।

(ङ) व्या बिगाड़ै दो जणां के मूंजी के मेह।

अर्थात् विवाह या तो कजूस से बिगडता है या वर्षा से।

ऊपर के उदाहरणो मे जो रेखाकित शब्द हैं वे ही अनुप्रासयुक्त और महत्त्वपूर्ण हैं।

अनुप्रासमयी पदावलि श्रुतिमधुर होती है, इसलिए लोक-रुचि स्वभावत ही इस ओर दौड पडती है। सस्कृत के उन कवियो ने भी जो शब्दालकार को विशेष महत्व देते थे, अनुप्रास का प्रचुर प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य के पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियो की अनुप्रासमयी भाषा अत्यन्त प्रसिद्ध है। अग्रेजी कवि टेनीसन की रचनाओ में अनुप्रास का प्रयोग बराबर मिलता है। वामनादि मराठी भाषा के कवियो ने भी स्थान-स्थान पर अनुप्रास का आश्रय लिया है। इसलिए राजस्थानी कहावतों में भी यदि अनुप्रास का प्रचुर प्रयोग हुआ हो तो कोई आश्चर्य की बात नही।

यमक—वृत्यनुप्रास और छेकानुप्राम के बाद राजस्थानी कहावतों में यमक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अलकार के कुछ उदाहरण लीजिये—

(क) घडै सुनार, पहरै नार अर्थात् गहने गढता तो सुनार है और पहनती है नारी।

✓(ख) मजूरी में के हजूरी ? अर्थात् जो परिश्रम करके पैदा करता है, वह किसी की हाजिरी क्यो दे ?

(ग) के सहरां, के डहरां अर्थात् मनुष्य या तो शहर का आश्रय लेकर ही पल सकता है या उपजाऊ खेत पर निर्भर रहकर ही जीवन बसर कर सकता है।

समोच्चार-विनोद और श्लेष—अंग्रेजी में जिसे Pun[1] अथवा समोच्चार-विनोद कहते हैं, उसके भी अनेक उदाहरण राजस्थानी कहावतो में मिल जाते हैं। Pun के लिए समान उच्चारण वाले शब्दो को ले लिया जाता है और उच्चार-साम्य के आधार पर शब्द-क्रीडा चलती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कहावती पद्य को लीजिए—

> वांस चढ़ी नटणी कहै, हुया न नटियो कोय।
> मैं नट के नटणी हुई, नटै सो नटणी होय॥

अर्थात् बाँस पर चढी हुई नटनी कह रही है कि किसी के पास देने की थोडी बहुत भी सामर्थ्य होने पर वह इन्कार न करे। दान न देने से, 'न' कहने से, नटने से मैं नटनी हुई। जो नटता है, दान नही देता है, उसे आगे के जन्म मे नटनी का नाच नाचना पडता है। इस पद में नटणी (नाट्य करने वाली, इन्कार करने वाली,) नट के (नाट्य करके, इन्कार करके) तथा नटै (नाट्य करती है, इन्कार करती है) इन तीनों शब्दों के साथ खिलवाड किया गया है।

इसी प्रकार एक कहावती 'प्रश्नोत्तरी' को लीजिये—

"रास कोड ? कह—पहाड कै मान। दिवालो कोड ? कह—अम्बर कै मान। तो कह फाटै अम्बर कै थेगली कोनी लागै।"[2]

अर्थात् किसी ने पूछा—अन्न-राशि कितनी ? उत्तर—पहाड के बरावर। फिर पूछा—दिवाला कितना ? उत्तर—अम्बर जितना।

यह उत्तर सुनकर पूछनेवाले ने कहा कि यदि ऐसी वात है तो फटे अम्बर के जोड नहीं लग सकते।

यहाँ 'अम्बर' शब्द मे समोच्चार-विनोद है। कहने का तात्पर्य यह है कि अम्बर (वस्त्र) यदि फट जाय तो जोड लगकर सिलाई हो सकती है किन्तु अम्बर (आकाश) फटने पर उसके पैंवद नही लग सकता।

कभी-कभी समान उच्चारण वाले किसी पद्याश तथा पद में भी शब्द-विनोद देखने को मिलता है। 'वेगम' की जात कै गम कोनी' अर्थात् स्त्री जाति अधीर होती है। इस कहावत में 'वेगम' के गम और दूसरे गम को लेकर शब्द-चातुर्य प्रदर्शित किया गया है। ऐसा जान पडता है मानों 'वेगम' शब्द को द्विधा विभक्त (वे+गम) कर

---

१ Pun शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ लोग उसे इटली भाषा के 'Puntiglio' शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं जिसका अर्थ है शब्द-श्लेष।

—चमत्कारियानु तत्त्वदर्शन (फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता), पृ० १६७

२ मिलाइये—

अरे चन्द तुम गल्ह, इहा नाहीं अधिकारिय,
ए घर जानी खेल, नहीं डिमरू खिल्लारिय।
इहै अग्गि नहिं दीप, अहै आगै होए दिप्पै,
जब फुट्टै आकास, कोन थिगरी सूं रप्पै॥
हम दुरे नहीं जीवन मरन, नह लगै गल्हा बुरी।
मा मत्ति इहै अप उब्बरो, करौ मन्ति गो ब्रह्म छुरी॥—पृथ्वीराज रासो, छंद ७०२

यह विनोद चला है। 'बेगम' है ही बे+ग़म अर्थात् बिना गम वाली, तब उसमें (ग़म) धैर्य कहाँ से हो? किन्तु यदि 'बेगम' से यह अभिप्राय यहाँ न लिया जाय और बेगम के 'गम' को निरर्थक पदाश तथा दूसरे को सार्थक मानकर चला जाय तो यह यमक अलकार का उदाहरण हो जायगा।

अनेक वार एक शब्द के प्रयोग से एक समान उच्चारण वाला दूसरा शब्द सामने आ जाता है जिससे भिन्न अर्थ की प्रतीति होने लगती है। जैसे,

वापो मत कह बखतसी, कांपत है केकाण।
एक बार वापो कह्यां, पवंग तजैलो प्राण॥

अर्थात् हे बखतसिंह! अश्व को 'बाप बाप' मत कहो, यह सुनकर घोडा कॉप रहा है। एक बार फिर 'बाप बाप' कह दोगे तो घोडा प्राण त्याग देगा क्योकि तुम 'बाप-मार' जो ठहरे!

इस दोहे में 'बाप' शब्द के आधार पर व्यग्य कसा गया है। घोडे को उत्साहित करने के लिए 'बाप बाप' का प्रयोग किया जाता है। प्रवाद प्रचलित है कि अपने पिता के घातक जोधपुरनरेश बखतसिंह जी अपने अश्व को एक बार 'बाप बाप' कहकर 'विडदा' रहे थे। इस पर एक चारण ने उक्त दोहे द्वारा ताना मारा था।

कभी-कभी श्लेष का आश्रय लेकर जो वक्रोक्ति प्रचलित हो जाती है, उसमें भी यह समोच्चार-विनोद देखने को मिलता है। नैणसी पर जब एक लाख रुपये का जुर्माना कर दिया गया तब उसने कहा लाख! लाख, मेरे पास कहाँ? लाख, जो बड पीपल से पैदा होती है, लखारो के यहाँ मिलेगी। मैं तो ताँबे का एक पैसा भी देने से रहा![1]

व्यक्ति के नाम को लेकर जो समोच्चार-विनोद किया जाता है, वह भी कम आकर्षण और कुतूहल का कारण नही। निम्नलिखित कहावती दोहे मे 'जड्डा' शब्द इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है।

धर जड्डी अम्बर जडा, जड्डा चारण जोय।
जड्डा नाम अलाह रा, और न जड्डा कोय॥

प्रवाद प्रचलित है कि नवाब खानखाना ने जड्डा नाम के एक चारण को तीन लाख रुपये इनाम में दिये थे और उसकी प्रशसा में उक्त दोहा कहा था जिसका अभिप्राय यह है कि पृथ्वी और आसमान असीम हैं, इस चारण की कवित्व-शक्ति भी असीम है। इनके अतिरिक्त असीम नाम तो केवल परमात्मा का है, और कोई असीम नहीं।

इस प्रकार समोच्चार-विनोद के तथा श्लेष के अनेक रूप राजस्थानी कहावतो में उपलब्ध होते हैं।

जहाँ तक शब्दालकारों का प्रश्न है, राजस्थानी भाषा की सामान्य लोकोक्तियो में वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास तथा यमक का प्रयोग विशेषत देखने को मिलता है तथा श्लेष व समोच्चार-विनोद मुख्यत. साहित्यिक कहावतो में उपलब्ध होते हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

---

१ लाख लखरां नीपजै, बड पीपल री साख।
नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक॥

आ. अर्थालंकार

(१) **लोकोक्ति और अलंकार**—आचार्य भामह ने जहाँ प्रत्येक अलंकार को वक्रोक्तिमूलक[1] माना है, वहाँ आचार्य दण्डी के मतानुसार समस्त अलकारो का एक मात्र आश्रय अतिशयोक्ति है।[2] किन्तु वस्तुत देखा जाय तो भामह की वक्रोक्ति और दण्डी की अतिशयोक्ति में कोई तात्विक अन्तर नही है, अर्थ-वैचित्र्य अथवा वक्रोक्ति मूलत अतिशय उक्ति ही है। किसी भी उक्ति मे अतिशयता अथवा वक्रता तभी आती है जब कि उसे लोकोत्तर रूप मे प्रस्तुत किया जाय। यही अभिव्यक्ति का वैचित्र्य है जिसके कारण किसी उक्ति को 'अलंकार' की सज्ञा मिलती है। अलकार वास्तव मे अभिव्यक्ति की एक वैचित्र्यमयी प्रणाली का ही नाम है।

लोकोक्ति और अलकार का बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सक्षिप्तता और अर्थ-गर्भितता के साथ-साथ चटपटापन (Salt) भी लोकोक्ति का एक प्रमुख गुण माना गया है, और लोकोक्ति में चटपटापन तभी आता है जब कि उसकी अभिव्यक्ति मे कोई चमत्कार हो, कोई वैचित्र्य हो। दूसरे शब्दो में हम यह भी कह सकते हैं कि अलकार के कारण ही लोकोक्ति में चटपटापन आता है। इस दृष्टि से विचार किये जाने पर अलकार किसी भी श्रेष्ठ लोकोक्ति का एक आवश्यक गुण माना जाना चाहिए। मेरे कहने का अर्थ यह कदापि नही है कि प्रत्येक लोकोक्ति अलकारमयी होती है किन्तु इसमे सदेह नहीं, प्रत्येक भाषा की लोकोक्तियो में अनेक ऐसी श्रेष्ठ उक्तियाँ होती हैं जिनका चटपटापन हमें आकृष्ट करता है, जिनकी वैचित्र्यमयी अभिव्यक्ति से हम प्रभावित होते हैं।

(२) **अलकारों का वर्गीकरण**—राजस्थानी कहावतो में भी ऐसी अनेक वक्रोक्तियाँ हैं जिन्हें सहज ही अलकार के नाम से अभिहित किया जा सकता है। अलकारो के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे यद्यपि आचार्यों में तीव्र मतभेद चला आता है तथापि हम सब अलकारो को निम्नलिखित चार वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं।

(१) विरोधमूलक, (२) साम्यमूलक; (३) साहचर्यमूलक और (४) बौद्धिक शृखलामूलक।[3]

राजस्थानी कहावतो से उक्त सभी वर्गों से सम्बन्ध रखने वाले अलकारो के कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) विरोधमूलक

(अ) **अधिक**—विरोधमूलक अलकारों के बडे मर्मस्पर्शी उदाहरण हमे राजस्थानी कहावतों मे मिल जाते हैं। 'लुगाई कै पेट मे टावर खटा ज्याय, वात कोनी

---

१. सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते,
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलकारोऽनया विना।
—भामह काव्यालकार २।८५.

२. अलकारान्तराणामप्येकमाहु. परायणम्,
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयान्॥—काव्यादर्श २।२२७.

३ विस्तृत विवेचन के लिए देखिये 'आलोचना के पथ पर' में प्रकाशित लेखक का 'अलकार और मनोविज्ञान' शीर्षक लेख।

खटावै' राजस्थानी भाषा की एक कहावत हैं जिसका तात्पर्य यह है कि स्त्री के पेट में बच्चा समाया रहता है, बात नही समाती । स्त्रियाँ कोई गुप्त भेद नही रख पाती, इस सामान्य-सी बात को जिस विरोध-पद्धति द्वारा यहाँ प्रकट किया गया है, वह बडी जोरदार है । बच्चे और बात में आकार को लेकर वैषम्य प्रकट करना बडा कौतूहल-जनक है । भला बात का भी क्या कोई आकार होता है ? किसी बात को याद रखना, कहना, सुनना ये सब मनुष्य की चेतना से सम्बन्ध रखते हैं किन्तु गर्भस्थ-बच्चे से बात की तुलना कर इस तरह की एक लोकोक्ति कह दी गई है जो अपनी अभिव्यक्ति की भगिमा के कारण बडी प्रभावोत्पादक हो गई है ।

अलकारशास्त्र की दृष्टि से उक्त कहावत को 'अधिक' अलकार का उदाहरण माना जा सकता है क्योकि आधार और आधेय में से किसी एक के आधिक्य-वर्णन को 'अधिक' अलकार कहते हैं ।[1] यहाँ आधार पेट की अपेक्षा आधेय बात का आधिक्य प्रदर्शित किया गया है ।

(आ) विषम—विषम अलकार की परिभाषा देते हुए काव्यप्रकाशकार ने कहा है कि—

क्वचिद् यदतिवैधर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात् ।
कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्च यद् भवेत् ॥

अर्थात् अत्यन्त असमानता के कारण जहाँ दो वस्तुओ में मेल घटित न हो अथवा जहाँ इष्टफल की प्राप्ति तो निश्चय ही न हो किन्तु साथ ही में कोई अनर्थ और हो जाय, वहाँ विषम अलकार होता है ।

'कठे राम राम, कठे ट्या-ट्या' तथा 'कठे राजा भोज, कठे गागलो तेली' जैसी लोकोक्तियो में अनुरूपता के अभाव के कारण विषम अलकार समझना चाहिए । 'कागलो हस हाली सीखै हो, आप हाली भी भूलगो' अर्थात् कौवा हस की चाल सीख रहा था, अपनी भी भूल गया । यह कहावत भी विषम अलकार का उदाहरण है क्योकि यहाँ न केवल इष्ट की अप्राप्ति ही है बल्कि एक अनर्थ और घटित हो गया है । इसी प्रकार 'धणी की काच दावण गई, आ पडी आपकी' अर्थात् पति की काँच दबाने गई किन्तु आ पडी अपनी । तथा 'गई बेटै ताई, खोयाई कसम नै' अर्थात् गई थी पुत्र के लिए किन्तु पति भी गँवा आई[2] आदि कहावतो में विषम अलकार के अनेक उदाहरण सहज ही मिल सकते हैं ।

(इ) विरोधाभास—"भाई बरोबर वैरी नही, र भाई बरोबर प्यारो नही" में विरोधाभास अलकार है क्योंकि इसमें एक ही साँस में दो विरोधी बातें कह दी गई है । यह विरोध केवल प्रातिभासिक है, तात्विक अथवा पारमार्थिक नही ।

(ई) आक्षेप—आक्षेप अलकार के दो लोकोक्तिगत उदाहरण लीजिए—

१. "राजा कै बेटै केरडी मार दी, म्हे क्यूँ कहाँ" अर्थात् राजा के लडके ने

---

१. आश्रयाश्रयिणोरेकस्याधिक्येऽधिकमुच्यते—साहित्यदर्पण ।

२ मिलाइये—
"पुत्र भजन्त्या प्रियोऽपि नष्ट ।"

बछिया मार दी, मैं क्यो कहूँ ?

२. 'गूगो वडो क राम ? कह—वडो तो है सो ही है पण सापा का देवता नै साची बात कहकर कुण रुसावै' अर्थात् गूगा वडा या राम ? उत्तर—वडा तो जो है सो ही है अर्थात् राम ही वडा है किन्तु सच्ची वात कहकर साँपो के देवता गूगा को कौन रुष्ट करे ?

उक्त दोनो लोकोक्तियो में कही हुई बात का वडे सुन्दर ध्वन्यात्मक ढग से निषेध कर दिया गया है। बात कह भी दी गई है और प्रतिषेध भी कर दिया गया है।

(ख) साम्यमूलक

(अ) उपमा—साम्यमूलक अलकारो मे उपमा, रूपक आदि अलकार प्रमुख हैं। "आवा की सी वीजली, होली की सी झल" राजस्थानी भाषा की एक प्रसिद्ध कहावती उपमा है जिसमें किसी नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह दीप्ति में आकाश में चमकती हुई विजली तथा होली की ज्वाला के समान है। पूर्वार्द्ध की उपमा में नायिका का चापल्य, आकर्षण, लुका-छिपी, चकाचौंध करने की शक्ति आदि सब एक साथ ही व्यजित हो रहे हैं। सयोग की वात है कि स्व० प्रसाद जी ने भी कामायनी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कुछ इसी तरह की बात कही थी "खिला हो ज्यो बिजली का फूल, मेघ वन वीच गुलावी रग।"

कहावतो में उपमा का बडा महत्वपूर्ण स्थान है। अरबी भाषा में तो कहावत के लिए जो Mathal शब्द प्रयुक्त होता है, उसका शाब्दिक अर्थ ही है उपमा अथवा सादृश्य। अरबवासियों के काव्य में भी उपमाओ का औचित्य और उनका प्राचुर्य स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है।[1] राजस्थानी भाषा की कहावतो में भी उपमाओं के उदाहरण वहुत वडी सख्या में उपलब्ध होते हैं।

(आ) रूपक – रूपक अलकार वही फवता है जहाँ आरोप औचित्य लिए हुए होता है। उदाहरण के लिए राजस्थानी कहावतो में से रूपक के दो उदाहरण लीजिए—

✓ १. चालणी को पीदो, पूतमुई की छाती।

अर्थात् उस स्त्री का हृदय जिसका पुत्र काल-कवलित हो गया हो, चलनी का पेंदा ही समझिए। जैसे चलनी के पेंदे में सैकडो छिद्र होते हैं, उसी प्रकार पुत्र-शोक-विह्वला माता के हृदय में भी असख्य छेद हो जाते हैं। वह कभी पुत्र की किसी वस्तु को देखती है स्मरण करती है अथवा दूसरो से सुनती है तो उसका हृदय शतधा विदीर्ण होकर चलनी हो जाता है।

२ "साँप चालती मौत है"

इस राजस्थानी कहावत मे भी साँप पर चलती-फिरती मौत का आरोप वहुत ही औचित्यपूर्ण हुआ है।

(इ) सम—अनुरूप वस्तुओ के वर्णन में सम अलकार होता है। इस अलकार के भी वहुत से उदाहरण राजस्थानी कहावतो में मिल जाते हैं। यथा,

(१) वडां की वडी ई वात अर्थात् वडों की वातें भी वडी ही होती हैं।

---

1 Introduction to the Proverbs of Arabia by H. A R Gibb.

(२) वडी राता का वडा ई तडका अर्थात् वडी रातो के प्रात काल भी बड़े ही होते हैं।

(३) इसी खाट का इस्या ही पाया अर्थात् ऐसी खाट के पाये भी ऐसे ही होते हैं।

(४) इसै परथावा का इसा ही गीत अर्थात् ऐसे विवाहो के गीत भी ऐसे ही होते हैं।

(५) जसा साजन, उसा भोजन अर्थात् जैसे साजन हैं, वैसे ही भोजन मिलते हैं।

(६) जसा देव उसा ही पुजारा अर्थात् जैसे देव हैं, वैसे ही पुजारी हैं।

(७) खुदा जैडा ही फरेस्ता अर्थात् जैसा खुदा है, वैसे ही हैं फरिश्ते।

(ई) **अर्थान्तरन्यास**—अर्थान्तरन्यास और लोकोक्ति का वडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अर्थान्तरन्यास के रूप में प्रयुक्त अनेक उक्तियाँ कहावतें वन गई हैं, इसे कौन नही जानता ? 'भिन्नरुचिर्हि लोक.' जैसी पक्तियाँ सम्भवत इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं।[1]

राजस्थानी लोकोक्तियों में से एक उदाहरण लीजिये—

आयाँ मुँह बोली नहीं, पिउ चाल्यो करि रोस।
आप कमाया काँमड़ा, दई न दीजे दोस॥

अर्थात् प्रियतम के आने पर जव नायिका मुँह से नही बोली तो प्रिय रुष्ट होकर चला गया। अपने किये हुए कामो के लिए दैव पर दोषारोपण नही करना चाहिए।

इस दोहे के उत्तरार्द्ध में अर्थान्तरन्यास अलंकार है जहाँ विशेष द्वारा सामान्य का समर्थन किया गया है।

(ग) साहचर्यमूलक

(अ) **अप्रस्तुतप्रशंसा**—अप्रस्तुतप्रशसा आदि अलकारो को 'साहचर्यमूलक' वर्ग में रखा जा सकता है। जहाँ तक अप्रस्तुतप्रशसा का सम्बन्ध है, प्रत्येक कहावत ही इस अलकार का उदाहरण प्रस्तुत करती है क्योकि कहावती वाक्य एक प्रकार से अप्रस्तुत-कथन ही होता है जिसका प्रयोग प्रस्तुत पर घटित करने के लिए हुआ करता है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिए—

'एक म्यान में दो तलवार कोनी खटावै।'

एक स्थान में दो समान शक्ति वाले व्यक्तियों का निर्वाह नही हो सकता, इस प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने के लिए ही अप्रस्तुत-कथन के रूप में उक्त कहावत का प्रयोग हुआ है।

---

१. अथागराजादवनार्य चक्षुर्याहीति जन्यामवदत्कुमारी।
नासौ न काम्यो न च वेद सम्यक् द्रष्टुं न सा भिन्न रुचिर्हि लोक'।
—कालिदास

(आ) मिथ्याध्यवसिति—मिथ्याध्यवसिति नामक एक अलंकार होता है जिसमें कोई एक असम्भव या मिथ्या बात निश्चित करके तब कोई दूसरी बात कही जाती है, और इस प्रकार वह दूसरी बात भी मिथ्या ही होती है। राजस्थानी लोकोक्तियो में कुछ ऐसे कहावती वाक्य हैं जो असमव अर्थ को प्रकट करते हैं और मिथ्याध्यवसिति अलकार के निदर्शनार्थ रखे जा सकते हैं।

'ससै सीग की धनुषडी रमै बाँझ को पूत' एक ऐसी ही कहावत है जिसका आशय यह है कि यदि खरगोश के सींग का धनुष बनाया जा सके तभी वन्ध्या का पुत्र उससे खेल सकता है।

मिथ्याध्यवसिति अलकार को भी साहचर्यमूलक ही मानना चाहिए, क्योकि इसमें एक असम्भव बात के साहचर्य से हम दूसरी असम्भव बात पर पहुँचते हैं।[1]

(घ) बौद्धिक शृंखलामूलक

बौद्धिक शृंखलामूलक अलकारो मे से यथासख्य आदि के उदाहरण राजस्थानी कहावतो में से दिये जा रहे हैं।

(अ) यथासख्य—यथासख्य अलकार के उदाहरणार्थ निम्नलिखित कहावती पद्य को लीजिये—

काल कुसम्मै ना मरै बामण बकरी ऊँट।
वो मांगै, वा फिर चरै, वो सूखा चावै ठूंट॥'

अर्थात् अकाल अथवा कुसमय मे ब्राह्मण, बकरी और ऊँट नही मरते। ब्राह्मण माँगकर काम निकाल लेता है, बकरी इधर-उधर चरकर पेट भर लेती है तथा ऊँट सूखे डठल चबाकर ही जीवित रह जाता है। यहाँ पर दोहे के पूर्वार्द्ध में कही हुई वस्तुओ के कार्य का वर्णन उत्तरार्द्ध मे उसी क्रम से किया गया है। इसलिए इस दोहे में यथासख्य अथवा क्रमालकार है।

(आ) देहली दीपक—देहली दीपक अलकार वहाँ होता है जहाँ एक ही पद का दो वाक्यो मे अन्वय होता हो। उदाहरण के लिए निम्नलिखित राजस्थानी कहावत लीजिये—

बिना बाप को छोरो बिगडै, बिना माय की छोरी।

इसमें 'बिगडै' क्रिया 'बिना बाप को छोरो बिगडै' तथा 'बिना माय की छोरी बिगडै' इन दोनो वाक्यो के साथ लगती है।

राजस्थानी कहावतो में और राजस्थानी कहावतों मे ही क्यो, अन्य बहुत सी भाषाओ की कहावतो में भी देहली दीपक के बहुत से उदाहरण मिल जाते हैं क्योकि यह अलकार वाक्य-लाघव मे सहायक होता है।

(इ) उत्तर—उत्तर अलंकार के अनेक भेदो में से एक भेद वह भी है जहा अनेक प्रश्नों का एक ही उत्तर दे दिया जाता है। इस अलकार से सम्बन्ध रखने वाले

1 There is a saying both in greek and Latin 'where mice nibble iron' apparently referring to the land of nowhere
—*Quoted in "The Ocean of Story", Vol V p 66.*

बहुत से दोहे राजस्थानी भाषा में मिलते हैं। यथा,

गाडी पडी उजाड़ में, कांटो लागै पांव ।
गोरी सूखै सेज में, कह चेला, किए दाय ।
गुरूजी जोडी नाहीं ।

अर्थात् गाडी उजाड मे पडी है, पैर मे कांटा लगता है और गोरी सेज में सूखती है। हे शिष्य ! यह क्योकर हुआ ? शिष्य ने उत्तर दिया—'जोडी नही।'

इस दोहे में 'जोडी' श्लिष्ट प्रयोग है। गाडी के पक्ष मे बैलो की जोडी, पैर के पक्ष में जूतो की जोडी और गोरी के पक्ष में पति से तात्पर्य है। इस प्रकार तीन प्रश्नो का एक ही उत्तर यहाँ दे दिया गया है।

(ई) **यूरोपीय अलकार**—यूरोपीय अलकारो मे से भी मानवीकरण आदि के उदाहरण राजस्थानी कहावतो मे मिल जाते हैं। यथा,

(१) रिपिया ! तेरी रात दूजो नर जलम्यो नहीं ।
जे जलम्या दो च्यार तो जुग में जीया नहीं ।।

अर्थात् हे रुपये ! जिस रात तुम पैदा हुए, उस रात कोई भी पैदा नहीं हुआ क्योकि तुम जैसा इस ससार मे कही कोई दिखलाई ही नही पडता। यदि कदाचित् दो-चार पैदा हुए हों तो वे जीवित नही रहे क्योकि यदि वे जीवित रहते तो देखने मे तो आते।

(२) आ रै मेरा सम्पटपाट, मैं तनै चाटूं तू मनै चाट ।

अर्थात् हे मेरे सर्वनाश ! आओ, मैं तुम्हे चाटूं और तू मुझे चाट।

उक्त उदाहरणो मे 'रुपया' और 'सम्पटपाट' का मानवीकरण हुआ है।

(३) **निष्कर्ष**—ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थानी कहावतो मे अलकारों के प्रयोग के कारण चटपटापन आ गया है। दूसरी बात यह है कि कहावतो में अलकारो का प्रयोग अबोधपूर्व और अनायास होता है जिसके कारण अभिव्यक्ति सहज स्वाभाविक बनी रहती है, उसमे कृत्रिमता नही आ पाती। कहावतो के अधिकाश उद्भावक ऐसे होते हैं जिनको अलकारशास्त्र का ज्ञान नही हुआ करता किन्तु फिर भी जिनकी कहावतो मे स्थान-स्थान पर अलकारों के सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं। अलकारो के ऐसे ही स्वाभाविक प्रयोगों के कारण भावोत्कर्ष में सहायता मिलती है।

राजस्थानी कहावतो से अलकारो के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे केवल दिग्दर्शन के रूप मे हैं। वैचित्र्यमयी अभिव्यक्ति के सभी प्रकारो पर यहाँ विचार नही किया गया है, यहाँ केवल उन्ही अलकारों को विचारार्थ लिया गया है जिनसे उनके वैज्ञानिक वर्गीकरण में किसी प्रकार की सहायता मिली है। अभिव्यक्ति के सभी प्रकारो को गिनकर रख देना वस्तुत सभव नही होता। यही कारण है कि आलकारिको में अलकारो की सख्या के सवध में सदा से मतभेद चलता आया है और कदाचित् हमेशा चलता रहेगा। वैसे कहावतो मे ही अभिव्यक्ति के ऐसे प्रकार मिल सकते हैं जिनका आलकारिको द्वारा अभी तक कोई नामकरण ही नही किया गया हो।

४. राजस्थानी कहावतो के अध्याहार

स्वल्पाक्षरता श्रेष्ठ कहावत का गुण है। इसलिए जिन कहावतो मे न्यूनतम शब्दो के प्रयोग के द्वारा अधिकतम अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, वे कहावतें श्रेष्ठ समझी जाती हैं। अनेक कहावतें ऐसी होती हैं जिनमे अर्थ का अध्याहार करना पडता है। यह अर्थ का अध्याहार राजस्थानी लोकोक्तियो में अनेक रूपो मे उपलब्ध होता है।

(१) अध्याहार के विविध रूप — (क) उद्देश्य (Subject) का अध्याहार।

(अ) 'ढल्यो घाटी, हुयो माटी।'

अर्थात् जब भोजन कठ की घाटी को पार कर गया तो मिट्टी हो गया क्योंकि स्वाद तो जिह्वा में ही है।

(आ) 'निकली होठा, चढी कोठा।'

अर्थात् बात मुँह से निकलते ही सब जगह फैल जाती है।

(इ) 'धायो मीर, भूखो फकीर, मर्‍या पाछै पीर।'

अर्थात् मुसलमान यदि तृप्त हो तो अमीर कहलाता है, भूखा हो तो फकीर कहा जाता है और मरने पर पीर कहलाता है।

उक्त दोनो कहावतो में क्रमशः भोजन, बात और मुसलमान का अध्याहार किया गया है। ये तीनो शब्द यहाँ कर्त्ता कारक में हैं।

(ख) विधेय (Predicate) का अध्याहार।

(अ) 'राजा को दान, प्रजा को स्नान।'

अर्थात् राजा दान करके और प्रजा स्नान करके ही पुण्य-लाभ करती है क्योंकि दान देने की शक्ति सामान्य प्रजा-जन में नही होती। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा दान द्वारा जितना पुण्यार्जन करता है, प्रजा उतना ही पुण्यार्जन स्नान द्वारा कर लेती है।

(आ) 'फलको जेट को, टावर पेट को।'

अर्थात् फुलको के समूह के बीच का जो फुलका होता है, वह मुलायम होता है तथा पेट का बालक ही काम देता है, गोद का नही।

(इ) 'लुगाई को न्हाणू, मरद को खाणू।'

अर्थात् स्त्री का स्नान और पुरुष का भोजन जल्दी होना चाहिए। जो स्त्री स्नान-शृंगार में अपना बहुत सा समय लगा देती है, वह कहावती दुनियाँ में अच्छी नहीं समझी जाती। राजस्थान में एक दूसरी कहावत मे कहा गया है 'एडी रगडी अर बहू बगडी'[1] अर्थात् गाँवो मे अधिक साफ-सुथरे रहने मे भी स्त्री की निन्दा होने लगती है। पुरुष भी भोजन करने में यदि अधिक समय देने लगे तो उसे परिवार के पालन-पोषण के लिए धनार्जन आदि मे अधिक समय नही मिलेगा।

जैसा ऊपर की व्याख्या से स्पष्ट है, तीनो कहावतों मे विधेय का अध्याहार किया गया है।

---

१ मेवाड़ की कहावतें, भाग १, (पण्डित लक्ष्मीलाल जोशी), पृष्ठ ११।

(२) **अध्याहार का कारण**—ऊपर जितनी कहावतें उद्धृत की गई हैं, उन सब मे न्यूनपदत्त्व के कारण अध्याहार करना पडता है और सम्भव है, इस न्यूनपदत्त्व का कारण लोकोक्तिकारो की तुकप्रियता हो किन्तु ऐसी भी अनेक कहावतें मिलती हैं जिनमें तुक का अभाव होते हुए भी अध्याहार करना पडता है। उदाहरणार्थ—

(अ) 'दूवली अर दो साढ।'

अर्थात् गाय-भैंस यदि निर्बल हो और किसी वर्ष अधिक मास के कारण दो आषाढ़ आ जायें तो उनके लिए वर्षा के अभाव में और भी मुश्किल पडती है।

(आ) 'देस चोरी, परदेस भीख।'

अर्थात् देश मे चोरी और परदेश मे भीख प्रकट नही होती।

अनेक बार छन्द के अनुरोध से भी कहावतो में अध्याहार कर लिया जाता है। 'लीप्यो-पोत्यो आँगणूँ पहरी-ओढ़ी नार' राजस्थानी भाषा की एक कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि लिपा-पुता आँगन और पहनी-ओढी स्त्री सुन्दर लगती है। इस कहावत में क्रिया के प्रयोग के विना ही दोहे-छन्द के दो चरण पूरे हो गये जिन्होने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया।

ऊपर के विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनेक बार चाहे तुक अथवा छन्द अध्याहार के कारण भले ही रहे हो किन्तु अध्याहार का मुख्य कारण है वह सामासिकता जो श्रेष्ठ कहावत का एक गुण ठहराया गया है।

(३) **न्यूनपदत्व और अध्याहार**—लोकोक्तियाँ सामान्यत सहजबोध्य होती हैं। इसलिए अग्रेजी में एक कहावत प्रचलित है कि किसी मूर्ख के सामने जब कोई कहावत कही जाती है तो उसका अर्थ उसे समझाना पडता है।[1] आशय यह है कि जिसमें तनिक भी बुद्धि होगी, वह लोकोक्ति का अर्थ समझ जायगा किन्तु इस उक्ति को सर्वांश मे स्वीकार नही किया जा सकता क्योकि कभी-कभी न्यूनपदत्व के कारण लोकोक्तियो में भी दुर्बोधता आ जाती है। अध्याहार के वल पर ही हम इस प्रकार की कहावतो का अर्थ समझ पाते हैं।

५. राजस्थानी भाषा की कथात्मक कहावतो के विविध रूप

अनेक कहावतें ऐसी होती हैं जिनके आकार-प्रकार और रग-ढग को देखकर ही पता चल जाता है कि उनमे से प्रत्येक के पीछे कोई-न-कोई कथा अवश्य है। राजस्थानी भाषा मे इस प्रकार की कथात्मक कहावतें विविध रूपो मे उपलब्ध होती हैं जिनमे से उदाहरण के लिए कुछ रूप यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) **समस्त घटनात्मक**—वहुत सी कहावतो मे घटनाओ द्वारा ही कथा समझ ली जाती है। जैसे,

(अ) नो पेठा तेरा लगवाल।
घोड़तं ने लेगो कोतवाल॥

एक व्यापारी के पास ९ कुष्माण्ड थे। वह उन्हे बेचने के लिए एक नगर में

---

1 "when a fool is told a proverb, the meaning of it has to be explained to him"

प्रविष्ट हुआ तो वहाँ के अधिकारियो ने कर के रूप में उससे वे नवो कुष्माण्ड छीन लिये और फिर भी कर वसूल करने वाले चार और वाकी वच गए । कोतवाल ने उसका गधा ही छीन लिया ।।

(आ) फूड कै घर हुई कु वाडी, कुत्ता मिल चाल्या रेवाडी ।
काणे कुत्तै लीन्या सूण,[1] करा तो ली पण ढकसी फूण ।

अर्थात् फूहड के घर किवाड लग गये । इसलिए कुत्तों ने मिलकर रिवाडी जाने का निश्चय कर लिया क्योकि घर के किवाड वन्द हो जाने पर वे अव अन्दर नही जा सकेंगे । इतने में काने कुत्ते ने शकुन देखकर कहा—हमे रिवाडी जाने का कष्ट नही उठाना चाहिए । फूहड के घर मे किवाड तो अवश्य हो गये हैं किन्तु वह उनको वन्द करने का कष्ट कभी न उठायेगी । इसलिए हम पहले की तरह विना किमी आशका के अन्दर प्रवेश करते रहेंगे ।

(इ) आघो घाल्यो ऊँखली, आवो घाल्यो छाज ।
सांगर साटै घण गई, मघरो मघरो गाज ।।

एक वार अनावृष्टि के कारण जव अकाल पडा तो किसी किसान को विवश होकर सागर के वदले ही अर्थात् वहुत कम मूल्य मे अपनी स्त्री को वेच देना पडा । आधा अन्न तो ऊँखली में रख लिया, आधा छाज में । इतना ही अन्न उसे मिला । अव जव वादल गरजता है तो किसान उससे धीरे-धीरे गरजने के लिए कह रहा है ताकि वह व्यथित न हो । अव चाहे वर्षा होती रहे, उसकी स्त्री तो गई ।

उक्त तीनो कहावतो मे सम्वन्धित सभी घटनाओ का उल्लेख हुआ है ।

(२) प्रमुख घटनात्मक—

(अ) तिरिया चरित न जाणे कोई । खसम मार के सत्ती होई ।

अर्थात् स्त्री के चरित्र को कोई नही जान सकता, वह अपने पति को मारकर सती हो गई ।

(आ) दगो कर्‌यो वणिए की जोय । पूत खसम नै लीनी रोय ।

अर्थात् वनिये की स्त्री ने दगा दिया जिससे पुत्र और पति के लिए उसे रोना पड़ा ।

उक्त दोनो कहावतो मे कथा की सव घटनाओ का उल्लेख नही हुआ है, उद्धृत प्रत्येक कहावत में केवल प्रमुख घटना दे दी गई है किन्तु मात्र प्रमुख घटना के उल्लेख से सारी कहावत का मर्म नही खुलता । कहावत को भली भाँति समझने के लिए पूरी कथा का समझना आवश्यक होता है ।

(३) शीर्षकात्मक—कुछ कहावतें ऐसी हैं जो कथाओ के शीर्षक जैसी जान पडती हैं । उदाहरणार्थ नीचे लिखी कहावतें लीजिए—

(अ) तुरत दान महा पुन ।[2]

---

१ पाठान्तर ·
"बांडै कुत्तै बींद्या सूण" ।

२ इस कहावत पर पूरी कहानी के लिए देखिए जैन जगत, वर्ष ७, अंक १—में प्रकाशित श्री भवयचन्द्र शर्मा का लेख ।

अर्थात् तुरत दान देने से बडा पुण्य होता है।

(आ) साच कह्यां मार्यो जाय।

अर्थात् सत्य कहने वालो की मौत है।

इस प्रकार की कहावतो में सारी कथा का सार शीर्षक में ही समाया रहता है।

(४) **शिक्षात्मक**—कुछ कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें कथा के माध्यम से कोई शिक्षा दी जाती है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिये—

चिड़ी चीख मारती, कागलियाजी सुणै।
सांची कही है सायरां, जो वावै सो लुणै ॥[1]

यहाँ 'जो वावै सो लुणै' शिक्षा (Moral) के रूप में प्रयुक्त है।

इस शिक्षात्मक कहावत के पहले 'साची कही है सायरा' अर्थात् कवियो ने सत्य कहा है, इस पदावलि का प्रयोग हुआ है। राजस्थान की लोक-कथाओ के बीच-बीच मे बहुत सी कहावतें बिखरी पडी हैं। बात कहने वाला जब यथास्थान लोक-प्रचलित कहावतो का प्रयोग करता है तो वह अनेक बार 'सायरा साची कही है' और 'सायरा रा वचन भूठा को हुवै नी' द्वारा लोकोक्ति की अवतारणा करता है। मलय भाषा में भी 'विज्ञजन ऐसा कहते हैं' द्वारा किसी कहावत का उपक्रम किया जाता है।[2]

(५) **चरम वाक्यात्मक**—अनेक कहावतें ऐसी हैं जो किसी कथा के चरम वाक्य के रूप में प्रयुक्त हैं। उदाहरण के लिए एक निम्नलिखित कहावत लीजिये—

'बाबाजी, आपरै ही चरणा रो परसाद है' राजस्थान में प्रचलित एक लोकोक्ति है जिसका मर्म समझने के लिए हमें निम्नलिखित घटना को लक्ष्य में रखना होगा—

'एक बाबाजी एक दूकानदार के पास गये। बाबा बडे प्रतिष्ठित थे, दूकानदार के लिए उनका स्वागत करना आवश्यक हो गया। किन्तु दूकानदार था बडा कजूस। जूठे हाथो कुत्ते को भी नहीं हटाता था। बाबाजी ने अपने जूते दूकान की सीढ़ियो पर रख दिये थे। दूकानदार ने मन ही मन सोचा—क्या ही अच्छा हो, यदि 'मियाजी की ही मोगरी और मियाजी का ही सिर' वाली नीति का प्रयोग किया जाय। दूकानदार ने तुरन्त अपने नौकर से इशारा किया कि वह बाबाजी के जूते बेच दे। किसी यजमान से हाल ही में नये जूतो की जोडी बाबाजी को मिली थी। जूते बेच दिये गये और बिक्री से जो कुछ वसूल हो सका, उससे बाबाजी के लिए वडी अच्छी मिठाइयाँ मँगवाई गई। जब बाबाजी पेट भर मिठाई खा चुके तो बडे आत्मसन्तोष और प्रशसा के स्वर में कहने लगे—"क्या ही स्वादिष्ट मिठाई आज प्राप्त हुई है। श्रद्धा और भक्ति-भाव से खिलाई हुई वस्तु में स्वभावत. ही मिठास बढ जाया करता है।"

---

१ द्रष्टव्य 'मरु भारती' वर्ष २, अक २ में प्रकाशित श्री मनोहर शर्मा का 'राजस्थान की लोक-गाथाएँ' शीर्षक लेख।

2 Proverbs are frequently introduced in writing by the expression "Saperti Kala arif" as say the wise

(—*Racial Proverbs (S G. Champion), Introduction, P XVI.*

दूकानदार ने उत्तर दिया, "बावाजी, यह आपके ही चरणो का प्रसाद है।"

यह उक्त कथा का चरम वाक्य है जो कहावत के रूप मे प्रयुक्त होने लगा है। यह वाक्य नाटकीय व्यंग्य (Dramatic irony) का भी अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

कथात्मक कहावतो के कुछ प्रकारो का निर्देश ऊपर किया गया है किन्तु सब प्रकारो का उल्लेख करना न तो यहाँ सम्भव ही है और न वाछनीय ही।

६. राजस्थानी कहावतो के संवाद

क्या महाकाव्य, क्या नाटक, क्या उपन्यास और क्या आख्यायिका, सभी में सवादो की योजना दृष्टिगोचर होती है। सवाद, मुख्यत एक नाटकीय उपकरण है जिसके समावेश से रोचकता बढती है और उक्तियाँ भी प्रभावोत्पादक बन जाती हैं। राजस्थानी कहावतो के रूप-निर्माण मे सवाद-शैली के विविध रूप दिखलाई पडते हैं। सवाद-पद्धति के न जाने कितने प्रकार होते हैं और इस शैली का आश्रय लेने से किस प्रकार आकर्षण में वृद्धि हो जाती है, यह दिखलाने के लिए राजस्थानी कहावतो से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं। राजस्थानी कहावनो के सवादो को हम दो भागो में बाँट सकते हैं (१) वे सवाद जिनमें मानवी सृष्टि का योग है और (२) वे सवाद जिनमे मानवेतर सृष्टि अपना हाथ बँटाती है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) मानवी सृष्टि और कथोपकथन के प्रकार—

(क) वाद-विवाद के रूप में संवाद

किसी ने कहा—

"मरद तो मूञ्छयाल बको, नैण बकी गोरिया।
सुरहल तो सींगाल बंकी, पोड बंकी घोडिया॥"

अर्थात् मर्द तो वही श्रेष्ठ है जो मूँछो वाला हो, कामिनी तो वही है जिसके नेत्र बाँके हो, गाय तो वही है जिनके सीग अच्छे हों और घोडी तो वही है जिसके सुम सुन्दर हो।

इस उक्ति को सुनकर राजस्थानी संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति ने तुरन्त इसका सशोधन के रूप मे प्रतिवाद उपस्थित करते हुए कहा—

"मरद तो जब्बान बको, कूख बकी गोरिया।
सुरहल तो दूधार बकी, तेज बकी घोड़िया॥"

अर्थात् मर्द तो वही है जो जबान का धनी हो, रानी तो वही है जो वीर-प्रसविनी हो, गाय तो वही है जो दूध देने वाली हो (कोरे सींगो को लेकर कोई क्या करे?) घोडी तो वही है जो तेज चलने वाली हो।

(ख) प्रश्नोत्तर के रूप में संवाद

प्रश्नोत्तर के रूप में प्रचलित सवादो को हम दो भागो में विभक्त कर सकते हैं। (१) एक व्यक्ति द्वारा प्रश्न और दूसरे व्यक्ति द्वारा उत्तर और (२) स्वत. ही प्रश्न और स्वत ही उत्तर।

(अ) परस्पर प्रश्नोत्तर—(१) परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप मे प्रचलित निम्न-

लिखित कहावती पद्यों को लीजिये—

खड्यो न दीसै पारधी, लग्यो न दीसै बाण।
मैं तोय बूझूँ हो पिया, आँ किस विद तज्या पिराण।
जल थोड़ा नेहा घणा, लग्यो प्रीत को बाण।
'तू पी तू पी, करत आँ, मिरगाँ तज्या पिराण॥

एक बार एक दम्पति किसी वन-खण्ड में जा रहे थे। उन्होने मृगो का एक जोडा मरा हुआ देखा किन्तु न तो वहाँ कोई शिकारी ही दिखाई पडता था और न मृगों के कही कोई घाव ही था। पत्नी ने अपने प्रिय से जब मृग-दम्पति की मृत्यु का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि यहाँ पानी थोडा था, प्रेम की अधिकता थी, 'तू पी', 'तू पी' करते हुए ही दोनो ने अपने प्राण दे दिये। किसी शिकारी के बाण से नही, प्रेम-बाण से विद्ध होकर ही मृगो के इस जोडे ने अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया। इस प्रकार के सवाद में एक लघु कथा का-सा आनन्द मिलता है।

(२) **गुरु-चेला-सवाद**—गुरु-चेला-सवाद के कहावती दोहे राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार के दोहो में गुरु शिष्य से एक साथ तीन-चार प्रश्न पूछता है और शिष्य उन सब प्रश्नो का एक ही उत्तर देता है जो अनेकार्थवाची होने के कारण सब प्रश्नो पर एक समान घटित होता है। उदाहरणार्थ गुरु-चेला-सवाद सम्बन्धी एक पद्य लीजिए —

पान सडै घोडो अडै, विद्या वीसर ज्याय,
रोटी जलै अँगार में, कह चेला, किण दाय।
गुरूजी फेर्यो नाही।

अर्थात् पान सडता है, घोडा अडता है, पढा हुआ याद नही रहता, रोटी अगारों मे जलती है। हे शिष्य। बतलाओ, यह क्योकर हुआ ? शिष्य ने उत्तर दिया, 'फेरा नही।' यहाँ 'फेरा नही' श्लिष्ट प्रयोग है। पान इसलिए सडा कि उलट-पलट नही किया गया, घोडा इसलिए अडा कि फिराया नही गया, विद्या का विस्मरण इसलिए हुआ कि पुनरावृत्ति नही की गई, रोटी अगारो मे इसलिए जली कि उलटी नही गई।

श्री अगरचन्दजी तथा भँवरलालजी नाहटा ने विक्रम की १७वी शताब्दी के प्रारम्भ मे होने वाले जैन कवि कुशललाभ के 'पिंगल सिरोमणि' ग्रन्थ के आधार पर गुरु-चेला सवाद सम्बन्धी पद्यो की सख्या ३५० मानी है।[1]

(३) **आनन्द-करमानन्द-सवाद**—श्री खेतसिंह जी मिश्रण के मतानुसार महान् वैयाकरण हेमचन्द्र के समय मे सिद्धराज सोलकी के दरबार में ककालण भाटडी को परास्त करने वाले दो चारणो की एक जोडी थी जिनका नाम था आनन्द और करमानन्द। इस जोडी की एक विशेषता यह थी कि आनन्द दोहे की पहली पक्ति बनाता और करमानन्द दूसरी पक्ति मे उसका उत्तर देता। ज्ञान, नीति, प्रेम और व्यावहारिक बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाले आनन्द करमानन्द के बहुत से दोहे आज भी गुजरात,

---

१ देखिये : 'गुरु-चेला सवाद' श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा श्री भवरलालजी नाहटा, राजस्थान भारती, भाग २, अक १।

काठियावाड़ और राजपूताने में प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिए एक दोहा लीजिये :

आणद कहे करमाणदा, काँटो वडो के शरीर।
आश वलूधी सुन्दरी, सौंपी दियो शरीर॥

श्री खेतसिंहजी मिश्रण का अनुमान है कि हेमचन्द्र की प्राकृत व्याकरण में उद्धृत निम्नलिखित दोहा भी, बहुत सम्भव है, आनन्द करमानन्द का ही बनाया हुआ हुआ हो—

बिंवाहरि तणु रयणवणु किउ ठिउ सिरि आणद।
निरुवम रसु पिएं पिअविजण सेस हो दिण्णी मुद्द॥

अर्थात् हे आनन्द! बिंब फल के समान अधर पर किया हुआ यह दंत-क्षत कैसी शोभा दे रहा है? ऐसा लगता है, मानो प्रिय ने अनुपम रस पीकर बाकी रस के ऊपर इसलिए छाप लगादी है कि उसे और कोई न पी जाय।[1]

(आ) स्वतः प्रश्न और स्वतः उत्तर—ऐसी कहावतें भी अनेक हैं जहाँ स्वतः उठाये गये प्रश्न का स्वतः ही उत्तर दे दिया गया है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिये—

'कुत्ती क्यूं भुसै है? कह—टुकड़ै खातर।'

अर्थात् कुत्ती क्यों भौंकती है? उत्तर—टुकड़े के लिए।

इस प्रकार की कहावतों में ऐसा नहीं होता कि एक व्यक्ति प्रश्न करता है और दूसरा उसका उत्तर देता है। अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए इस प्रकार की प्रश्नोत्तर-पद्धति एक चातुर्यपूर्ण कौशल का काम देती है।

(२) मानवेतर सृष्टि और संवाद—अनेक कहावतें ऐसी हैं जिनमें सृष्टि के प्राणियों ने कहावत को जोरदार बनाने में योग दिया है जैसे

(अ) मकोडो कह—मा! मैं गुड़ की भेली उठा ल्याऊँ। कह—कड़तू कानी देख!

अर्थात् मकोडा (कीट-विशेष) कहता है कि हे माँ! मैं गुड़ की भेली उठा लाऊँ! उसे उत्तर मिला—अपने कटि-प्रदेश की ओर तो देख! तात्पर्य यह है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार ही काम किया जा सकता है।

(आ) धोली! धाड़ आई। बांधैगो, बो ही नीरैगो।

किसी ने कहा—हे धवल गाय! डाकू आ रहे हैं। गाय ने उत्तर दिया—इससे मुझे क्या? मुझे तो जो बाँधेगा, वही मेरे लिए दाने-पानी की भी व्यवस्था करेगा।

(इ) टांडो क्यूं हो, कै सांड हां। गोबर क्यूं करो? कै—गऊ का जाया हां।

अर्थात् गरजते क्यों हो? सांड हैं। गोबर क्यों करते हो? गाय से पैदा हुए हैं।

अवसरवादियों को लक्ष्य में रखकर यह कहावत कही गई है।

इस प्रकार की कहावतों में मानवेतर सृष्टि के प्राणी प्रतीकवत् व्यवहृत होते हैं।

---

१. चारण साहित्य नां दुहा नुं स्थान। (श्री खेतसिंहजी नारायणजी मिश्रण) चारण वर्ष १, अंक ४, पृष्ठ ७-८।

७. राजस्थानी कहावतों में 'लौकिक न्याय' का रूप

सस्कृत में जिस प्रकार अजाकृपाणी आदि न्याय प्रचलित हैं, उसी प्रकार राजस्थानी भाषा मे कुछ ऐसे दृष्टान्त हैं जो कहावतो की भाँति ही प्रचलित हैं। इस प्रकार के दृष्टान्त वस्तुत. 'लौकिक न्याय' ही हैं। निम्नलिखित उदाहरण से प्रकृत विषय का स्पष्टीकरण हो सकेगा

'नाई हालो ठोलो, वाणिया हालो टक्को।'

एक नाई किसी बनिये के यहाँ हजामत बनाने गया। जब वह हजामत बना चुका तो उसने बनिये की टाट को एक बार अपनी अँगुलि की ग्रन्थि से बजाया। यद्यपि इससे बनिया मन ही मन रुष्ट तो बहुत हुआ तथापि उसने नाई को उसकी करतूत का फल चखाने के उद्देश्य से कृत्रिम हर्ष प्रकट किया और उसे एक टका भेंट कर दिया। वही नाई एक दिन किसी ठाकुर के यहाँ हजामत बनाने गया। बनिये से पुरस्कार मिल जाने के कारण उसे तो हजामत के बाद टाट बजाने का चस्का पड गया था। इसलिए पुरस्कार के लिए लालायित होकर ठाकुर के सिर पर भी उसने अँगुलि की ग्रन्थि को आजमाया। ठाकुर ने इसे अपना अपमान समझा और तुरन्त ही तलवार हाथ में ले नाई का सिर धड से अलग कर दिया।

इस प्रकार जब किसी को उसके कुकर्म की सजा दिलवाने के लिए कुछ प्रलोभन देकर कुमार्ग की ओर प्रवृत्त कर दिया जाता है, तब उक्त 'न्याय' का प्रयोग किया जाता है।

'गुजराती कहेवत सग्रह' में इसी घटना का निम्नलिखित रूप में उल्लेख हुआ है ·

"एक पैसावालो वाणीओ अेक हजामनी पासे हजामत करावा वेठो, हजामत करी रह्या पछी हजामे वाणीआने माथे, सारी हजामत थई छे के केम ते जोवा, हाथ फेरव्यो सारी हजामत थई मालुम पडी अैटले हजामे वचली आगली वालीने वाणीआना माथा मा टकोरो मार्यो। वाणीआने रीस तो चडी, पण ते दबावी राखी ने मुनीम ने हुकम कर्यो के अेक सुना मोहोर घाअेजाने आपो। घाअेजे मान्यु के टकोरो मारयो ते सारी वात छे, केम के हजामती अेक सुना मोहोर टकोराथी पाकी। घाअेजाए टकोरा माखानो रिवाज बरावर ग्रहण कर्यो ने कोई अमीरनु वतु करू तो टकोरो मारू। तेम करता बादशाही फोजना सेनापतिनु वतु करवा जोग आव्यो, त्यारे हजामत करीने सेनापति ने टकोरो मार्यो तेनी साथे ज सेनापतिअे घाअेजानु शिर उडावी दीधु ते ऊपर थी आ दोहरो थयो छे।"[1]

राजस्थानी और गुजराती आख्यान में अन्तर इतना ही है कि राजस्थान के नाई को बनिये से एक टका मिला है जब कि गुजराती नाई को एक स्वर्ण-मोहर, राजस्थानी नाई की मृत्यु हुई है एक ठाकुर के हाथो, जब कि गुजरात का नाई बाद-

---

१. मिलाइये: टोकर साथी हजाम नी, आप्यु भलु इनाम।
शिर छेदाव्यु हजाम नु, जुओ वणिक ना काम॥
—गुजराती कहेवत सग्रह (आशाराम दलीचद शाह), द्वितीय सस्करण, पृ० ४३८।

शाही फौज के सेनापति द्वारा मारा गया है किन्तु तत्त्वत: दोनो भाषाओं मे प्रचलित आख्यान एक ही हैं।

किन्तु काश्मीर तक आते-आते इस उपाख्यान का आकार-प्रकार बदल गया यद्यपि इसकी आत्मा मे कोई परिवर्तन नही हुआ। Rev. J. Hinton Knowles ने 'काश्मीरी कहावतो और उक्तियो के अपने कोश' में एक कहावत सगृहीत की है 'नमाज की अँगुलि'[1] जिसके पीछे निम्नलिखित कथा कही जाती है :—

"एक उच्चवशीय पठान जुम्मा मसजिद में नमाज पढ रहा था किन्तु पीछे से एक आदमी उसे अँगुलि से परेशान कर रहा था। पठान ने उसे एक रुपया दिया। तग करने वाले व्यक्ति ने पठान को तो तग करना छोड दिया किन्तु इस प्रकार रुपया मिल जाने से उसे शरारत करने में मजा आने लगा। उसने एक दूसरे नमाज पढ़ने वाले के साथ शरारत करना शुरू किया किन्तु यह दूसरा व्यक्ति उग्र स्वभाव का था। वह तुरन्त उठ खडा हुआ, म्यान से अपनी तलवार निकाली और शरारती का सिर धड़ से अलग कर दिया।"[2]

यह नही कहा जा सकता कि इस आख्यान का मूल स्रोत क्या है किन्तु इतना निश्चित है कि देश-काल की भिन्नता के कारण इस प्रकार के आख्यानो मे बाह्य परिवर्तन होते रहते हैं। काश्मीरी आख्यान में वहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप ही परिवर्तन हो गया है जो स्वाभाविक है।

राजस्थानी भाषा मे इस प्रकार के बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं और प्रसग आने पर कहा जाता है 'नाई कै ठोलै हाली वात हुई।' राजस्थानी मे इस प्रकार के दृष्टान्तो का यद्यपि नामकरण नही हुआ है किन्तु इन्हें यदि 'लौकिक न्याय' की सज्ञा दी जाय तो कुछ अनुचित न होगा। 'अजाकृपाणी' आदि न्यायो के सादृश्य पर उक्त दृष्टान्त को 'नाई-ठोलो न्याय' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। परिशिष्ट में इस प्रकार के कुछ दृष्टान्त राजस्थान के 'लौकिक न्यायो' के नाम से ही सग्रहीत कर दिये गये हैं।

८. राजस्थानी कहावतो मे व्यक्ति

१ नाम और गुण का वैषम्य—व्यक्ति का आश्रय लेकर भी कहावतो मे अनेक प्रकार के भाव व्यक्त किये गये हैं। राजस्थानी कहावतो में इस प्रकार के नामो का प्राचुर्य है जिनमें व्यक्तियो का नाम उनकी स्थिति के विरोध रूप मे आता है। उदाहरणार्थ—

(क) आख्या में गीड पडै नाव मिरगानैणी।

अर्थात् आँखें तो नेत्र-मल से लिप्त हैं और नाम है मृगनयनी!

---

1 Nemazi Sung unguj (A Dictionary of Kashmiri Proverbs and sayings by J. H knowles)

2 Because sentence against an evil work is not executed speedily, therefore the heart of the sons of men is fully set in them to do evil

Eccl VIII-II.

(ग) टावर कुटावर हो जावै, मायत कुमायत को हुवै नी। अर्थात् पुत्र कुपुत्र हो जाता है, माता कुमाता नही होती।	(ग) कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।
(घ) खावै जिसो अन्न, तिसो हुवै मन्न। अर्थात् जो जैसा अन्न खाता है, उसका वैसा ही मन हो जाता है।	(घ) यादृश भक्षयेदन्न बुद्धिर्भवति तादृशी।
(ङ) मिनखा मे नाई, पखेरुवा में काग। अर्थात् मनुष्यो में नाई तथा पक्षियो मे कौवा चालाक होता है।	(ङ) नराणा नापितो धूर्त, पक्षिणा चैव वायस:।
(च) ऊत गाव में अरड ही रूख। अर्थात् छोटे गांव मे एरण्ड ही पेड समझा जाता है।	(च) निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।

(२) देश-परिवर्तन—कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जो सस्कृत से राजस्थानी में आई हैं किन्तु तत्सम रूप में ग्रहण करने के प्रयास मे जिनके वेश मे यत्किंचित् परिवर्तन हो गया है। 'आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज सुखी भवेत्' यह सस्कृत की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है जो राजस्थानी में आते-आते 'आहारे व्योहारे लज्जा न कारे' के रूप में वदल गई है। 'व्योहारे' के साथ तुक मिलाने के लिए राजस्थानी लोकोक्ति मे 'कारे' रह गया है। जैसा पहले कहा जा चुका है, कहावतो के रूप-निर्माण में इस तुक का वडा हाथ है। सस्कृत की इसी लोकोक्ति ने मराठी भाषा मे 'आहारी व्यवहारी कदापि लज्जा न धरी' का रूप धारण कर लिया है। यहाँ भी 'व्यवहारी' और 'धरी' का तुक द्रष्टव्य है।

सस्कृत का कोई कहावती वाक्य जव राजस्थानी में आया है तो तुक अथवा उच्चारण की सुविधा के लिए उसके रूप मे लोक-मानस ने यथेच्छ परिवर्तन कर लिया है। 'व्यापारे वर्धते लक्ष्मी' अथवा 'व्यापारे वसते लक्ष्मी' के स्थान में 'व्योपारे वधते लक्ष्मी' राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित हो गया।

इसी प्रकार 'अग्रे अग्रे विप्राणा नदी नाल विवर्जित' के स्थान में 'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नार विवर्जिता' अथवा 'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नाला वरजन्ते' वोलचाल में प्रयुक्त होने लगे। इसी प्रकार निरक्षरो से सम्बद्ध राजस्थानी भाषा की निम्न-लिखित कहावत में 'ॐ नम सिद्धम्' के स्थान मे 'ओनामासी धम' रह गया

'ओनामासी धम, न वाप पढे न हम।'

(३) सस्कृतीकरण—राजस्थानी मे कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें सस्कृत रूप देने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ दो लोकोक्तियाँ लीजिये

(क) खड खडेतू पडेतू। (खडे खडे तु पडित।)

(3) Measure a thousand times before cutting once.

ऊपर से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है कि टर्की भाषा में हजार का प्रयोग उस अत्युक्ति की प्रवृत्ति के कारण है जो पौरस्त्य देशो की विशेषता है किन्तु वस्तुतः इसका मुख्य कारण यह है कि टर्की भाषा मे 'एक हजार' के लिए जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे हैं 'Bin, bir'. जिनमें अनुप्रास और नाद-सौन्दर्य इतना है कि प्रयोक्ता इन शब्दों के प्रयोग का लोभ सवरण नही कर पाते ।[1]

विश्व की प्राय. सभी भाषाओं की कहावतो मे अनुप्रास और तुक सख्याओ को प्रभावित करते हैं ।

ख. संख्या और वैषम्य आदि

'सात वार, नो त्युहार' अर्थात् वार तो सात होते हैं किन्तु त्यौहार नौ हो जाते हैं । दिनो और त्यौहारो के वैषम्य को लेकर इस कहावत में व्यग्य कसा गया है ।[2] अनेक वार अपनी वात पर वल देने तथा उक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए भी एक वडी सख्या का प्रयोग किया जाता है । 'एक नन्नू सो दुख हडै' अर्थात् एक 'नही' कह देने से सौ दुख दूर हो जाते हैं । इस कहावत मे 'सौ' के प्रयोग से उक्ति को वल मिल गया है । सख्या के सम्बन्ध में जो अत्युक्तियाँ कहावतो में मिलती हैं, उनके कारण भी उक्तियाँ प्रभावोत्पादक बन जाती है । अनेक वार सख्या का प्रयोग शाब्दिक अर्थ को प्रकट करने के लिए नही होता, वह किसी तथ्य की प्रतीति कराने के लिए एक प्रमुख साधन है ।

१०. राजस्थानी कहावतो के रूप पर संस्कृत का प्रभाव

भारतवर्ष की प्राय सभी भाषाएँ किसी न किसी रूप में सस्कृत वाङ्मय द्वारा प्रभावित हुई हैं । राजस्थानी भाषा भी इसका कोई अपवाद नही है । जहाँ तक राजस्थानी लोकोक्तियो का सम्बन्ध है, सस्कृत भाषा ने उसके रूप को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है ।

(१) अनुवाद—राजस्थानी में कुछ कहावतें ऐसी हैं जो सस्कृत कहावतो की अनुवाद-सी जान पडती हैं । जैसे,

राजस्थानी लोकोक्ति	सस्कृत लोकोक्ति
(क) हाथी रे पग में सगला रा पग अर्थात् हाथी के पैर में सबके पैर समा जाते हैं ।	(क) सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्ना. ।
(ख) मूंड मूंड री मत न्यारी । अर्थात् जितने मस्तिष्क हैं, उतनी ही बुद्धियाँ हैं ।	(ख) मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना ।

---

1 Introduction to the proverbs of Turkey by S Topalian P. C IV

२. इस कहावत को यदि व्यग्यात्मक न माना जाय तो यह मनृद्धिसूचक भी मानी जा सकती है ।

(आ) लूखा भोजन मग वहण, वडका वोली नार ।
मदर चुवै टपूकडाँ, पाप तणाँ फल च्यार ॥

अर्थात् रूखा-सूखा भोजन, पैदल रास्ते चलना, वढ-वढ कर वोलने वाली स्त्री और टपकने वाला घर, ये चार पाप के फल हैं ।

(इ) भैंसो मींडो वाकरो चौथी विधवा नार ।
ये च्यारूं, माडा भला, मोटा करै विगाड ॥

अर्थात् भैंसा, मेंडा, वकरा, और विधवा स्त्री, ये चारो दुवले-पतले ही अच्छे; हृष्ट-पुष्ट होने पर ये विगाड करते हैं ।

(ग) पाँच सख्या—पाँच सख्या से सम्वन्ध रखने वाले अनेक पद्य वृत्युनुप्रास के प्रसग मे उद्‌वृत किये जा चुके हैं ।

(घ) छ सख्या—छ सख्या से सम्वन्ध रखने वाले कहावती पद्यो का प्राय अभाव है ।

(ङ) सात सख्या—जहाँ तक सात सख्या का प्रश्न है, राजस्थानी भाषा में निम्नलिखित सात सुख अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ।

पहलो सुख नीरोगी काया । दूजो सुख हो घर में माया ॥
तीजो सुख पुत्र अधिकारी । चोथो सुख पतिवर्ता नारी ॥
पाँचवों सुख राज में पासा । छठो सुख सुस्थाने वासा ॥
सातवों सुख विद्या फलदाता । ए सातों सुख रच्या विधाता ॥

वस्तु-समुच्चय की दृष्टि मे ७ वस्तुओ से अधिक सख्या के कहावती उदाहरण प्राय नही मिलते क्योकि कहावत के लिए उपयुक्त छोटे छद मे वहुत सी वस्तुओ को एक साथ नही रक्खा जा सकता और सख्या वढाकर कई छन्द एक साथ वनाने से फिर उन वस्तुओं को याद रखना कठिन हो जाता है । एक छन्द में चार-पाँच वस्तुओ का समुच्चय अपेक्षाकृत सुगमता से हो जाता है, यही कारण है कि चार और पाँच सख्या को लेकर कही हुई समुच्चयात्मक कहावतें सख्या मे अधिक मिलती हैं ।

(२) असमुच्चयात्मक—असमुच्चयात्मक सख्या का प्रयोग तुक, अनुप्रास तथा वैषम्य आदि के लिए किया जाता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित राजस्थानी कहावत लीजिये—

क. अनुप्रास और तुक

हाथी हजार को, महावत कोडी च्यार को ।'

यहाँ पर 'हजार' का प्रयोग हाथी के साथ अनुप्रास की रक्षार्थ किया गया है तथा महावत के साथ 'च्यार' का प्रयोग 'हजार' और 'च्यार' की तुक मिलाने के लिये हुआ है । ऐसा जान पडता कि कहावतो मे तुक और अनुप्रास सख्या को वहुधा निर्धारित करते हैं । टर्की भाषा मे 'हजार' सख्या का वहुत प्रयोग होता है जैसा कि निम्नलिखित तीन कहावतो के प्रयोग से स्पष्ट है ।

(1) One accident teaches more than a thousand good counsels.

(2) A thousand worries do not pay one single debt

(3) Measure a thousand times before cutting once.

ऊपर से देखने पर ऐसा मालूम पडता है कि टर्की भाषा में हज़ार का प्रयोग उस अत्युक्ति की प्रवृत्ति के कारण है जो पौरस्त्य देशो की विशेषता है किन्तु वस्तुतः इसका मुख्य कारण यह है कि टर्की भाषा में 'एक हज़ार' के लिए जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे हैं 'Bin, bir'. जिनमें अनुप्रास और नाद-सौन्दर्य इतना है कि प्रयोक्ता इन शब्दो के प्रयोग का लोभ सवरण नहीं कर पाते ।[1]

विश्व की प्राय· सभी भाषाओं की कहावतो मे अनुप्रास और तुक सख्याओ को प्रभावित करते हैं ।

ख. संख्या और वैषम्य आदि

'सात वार, नो त्युंहार' अर्थात् वार तो सात होते हैं किन्तु त्योहार नौ हो जाते हैं । दिनो और त्योहारो के वैषम्य को लेकर इस कहावत में व्यग्य कसा गया है ।[2] अनेक वार अपनी वात पर वल देने तथा उक्ति को प्रभावशाली वनाने के लिए भी एक वडी सख्या का प्रयोग किया जाता है । 'एक नन्नू सो दुख हुडै' अर्थात् एक 'नहीं' कह देने से सौ दुख दूर हो जाते हैं । इस कहावत मे 'सौ' के प्रयोग से उक्ति को वल मिल गया है । सख्या के सम्वन्ध में जो अत्युक्तियाँ कहावतों में मिलती हैं, उनके कारण भी उक्तियाँ प्रभावोत्पादक वन जाती है । अनेक वार सख्या का प्रयोग शाब्दिक अर्थ को प्रकट करने के लिए नही होता, वह किसी तथ्य की प्रतीति कराने के लिए एक प्रमुख साधन है ।

१०. राजस्थानी कहावतो के रूप पर संस्कृत का प्रभाव

भारतवर्ष की प्राय सभी भाषाएँ किसी न किसी रूप में सस्कृत वाङ्मय द्वारा प्रभावित हुई हैं । राजस्थानी भाषा भी इसका कोई अपवाद नही है । जहाँ तक राजस्थानी लोकोक्तियो का सम्वन्ध है, सस्कृत भाषा ने उसके रूप को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है ।

(१) अनुवाद—राजस्थानी में कुछ कहावतें ऐसी हैं जो संस्कृत कहावतो की अनुवाद-सी जान पडती हैं । जैसे,

राजस्थानी लोकोक्ति	संस्कृत लोकोक्ति
(क) हाथी रे पग में सगला रा पग अर्थात् हाथी के पैर में सवके पैर समा जाते हैं ।	(क) सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्ना ।
(ख) मूंड मूंड री मत न्यारी । अर्थात् जितने मस्तिष्क हैं, उतनी ही वुद्धियाँ हैं ।	(ख) मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना ।

1. Introduction to the proverbs of Turkey by S Topalian P. C IV

२ इस कहावत को यदि व्यंग्यात्मक न माना जाय तो यह समृद्धिसूचक भी मानी जा सकता है ।

(ग) टावर कुटावर हो जावै, मायत कुमायत को हुवै नी। अर्थात् पुत्र कुपुत्र हो जाता है, माता कुमाता नही होती।	(ग) कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।
(घ) खावै जिसो अन्न, तिसो हुवै मन्न। अर्थात् जो जैसा अन्न खाता है, उसका वैसा ही मन हो जाता है।	(घ) यादृश भक्षयेदन्न बुद्धिर्भवति तादृशी।
(ङ) मिनखा मे नाई, पखेरुवा में काग। अर्थात् मनुष्यो में नाई तथा पक्षियो मे कौवा चालाक होता है।	(ङ) नराणा नापितो धूर्त, पक्षिणा चैव वायसः।
(च) ऊत गाव में अरड ही रूख। अर्थात् छोटे गाँव मे एरण्ड ही पेड समझा जाता है।	(च) निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।

(२) वेश-परिवर्तन—कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जो सस्कृत से राजस्थानी में आई हैं किन्तु तत्सम रूप में ग्रहण करने के प्रयास मे जिनके वेश में यत्किचित् परिवर्तन हो गया है। 'आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज सुखी भवेत्' यह सस्कृत की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है जो राजस्थानी में आते-आते 'आहारे व्योहारे लज्जा न कारे' के रूप में बदल गई है। 'व्योहारे' के साथ तुक मिलाने के लिए राजस्थानी लोकोक्ति मे 'कारे' रह गया है। जैसा पहले कहा जा चुका है, कहावतों के रूप-निर्माण में इस तुक का वडा हाथ है। सस्कृत की इसी लोकोक्ति ने मराठी भाषा मे 'आहारीं व्यवहारी कदापि लज्जा न धरी' का रूप धारण कर लिया है। यहाँ भी 'व्यवहारीं' और 'धरी' का तुक द्रष्टव्य है।

सस्कृत का कोई कहावती वाक्य जव राजस्थानी में आया है तो तुक अथवा उच्चारण की सुविधा के लिए उसके रूप में लोक-मानस ने यथेच्छ परिवर्तन कर लिया है। 'व्यापारे वर्धते लक्ष्मी' अथवा 'व्यापारे वसते लक्ष्मी' के स्थान में 'व्योपारे वधते लक्ष्मी' राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित हो गया।

इसी प्रकार 'अग्रे अग्रे विप्राणा नदी नाल. विवर्जित' के स्थान में 'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नार विवर्जिता' अथवा 'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नाला वरजन्ते' वोलचाल में प्रयुक्त होने लगे। इसी प्रकार निरक्षरो से सम्बद्ध राजस्थानी भाषा की निम्न-लिखित कहावत में 'ॐ नम' सिद्धम्' के स्थान मे 'ओनामासी धम' रह गया

'ओनामासी धम, न वाप पढे न हम।'

(३) सस्कृतीकरण—राजस्थानी में कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें सस्कृत रूप देने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ दो लोकोक्तियाँ लीजिये

(क) खंड खडेतू पडेतू। (खडे खडे तु पडित.।)

अर्थात् ज्ञान क्रमश. ही प्राप्त किया जा सकता है।

(ख) पापोपाप समोसमा।

(४) सादृश्य—कभी-कभी ऐसी लोकोक्ति भी सुन पड़ती है जो सस्कृत की किसी प्रसिद्ध पक्ति के अनुकरण पर बना ली गई है। 'भज कलदार, भज कलदार कलदार भज मूढमते' एक ऐसी ही लोकोक्ति है जो श्री शंकराचार्य के 'भज गोविन्द भज गोविन्द, गोविन्द भज मूढमते' के सादृश्य पर बनी है। कविराजा ऊमरदान ने 'भज गोविन्द' के गीत की तरह 'भज कलदार' का गीत बनाया है जो उनके कविता-सग्रह ऊमर काव्य में छपा है। इस प्रकार की रचनाओं में विडम्बन-काव्य (Parody) का आनन्द मिलता है।

११. राजस्थानी कहावतो का एक विशिष्ट रूप

चन्द्रायण (चाद्रायण)[1] छन्द मे कुछ इस प्रकार के कहावती पद्य राजस्थान की सामान्य जनता मे प्रचलित हैं जिनके अन्तिम चरण मे कहा जाता है—

(अ) एता दे करतार फेर नह बोलणा।

अथवा

(आ) एता दे करतार फेर क्या चावणा।

अथवा

(इ) एता दे करतार फेर क्या बोलणा।

इस प्रकार के दो छन्द यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

उणी गाँव में पीर उणी मे सासरो।
आयमणी दिस खेत चुवै नह आसरो॥
नाडी खेत नजीक जठै हल खोलणा।
एता दे करतार फेर नह बोलणा॥

जाट की बेटी परमात्मा से प्रार्थना करती है कि हे करतार! एक ही गाँव में मेरे नैहर और ससुराल दोनो हो, पश्चिम दिशा मे खेत हो, मेरी झोंपडी चुवा न करे। खेत के पास ही तलैया हो जहाँ हल खोल सकूँ। यदि मुझे इतना-सा दे दे तो मै कुछ नहीं बोलूँगी।

ठाकुर ह्वै यो जांण समज्झै अक्खरां।
सीरोई तरवार वहै सिर बक्करां॥
पातां सांमी पांत क पैल परूसणा।
एता दे करतार फेर क्या चावणा॥

एक चारण परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे परमपिता! ठाकुर जो मिले, वह बहुत सी बातों का जानकार हो, गुणी हो जो कविता को समझ सके। सिरोही की तलवार बकरो पर चलती रहे। जब थाल परोसने का समय आवे तब

---

१ चान्द्रायण एक मात्रिक छन्द होता है जिसके प्रत्येक चरण में ११ और १० के विराम से २१ मात्राएँ होती हैं। पहले विराम पर जगण और दूसरे पर रगण होना चाहिए।

—हिन्दी शब्द सागर, (दूसरा भाग); पृष्ठ ९९७

सबसे पहले मुझे ही थाल मिले। यदि इतना-सा तू प्रदान करे तो फिर मुझे और कुछ मांगना नही है।

श्री रामदेवजी चोखानी ने सवत् १९९२ मे 'राजस्थानियो की अभिलाषाएँ' शीर्षक एक लेख राजस्थान वर्ष १, सख्या ४, में प्रकाशित करवाया था जिसमे इस प्रकार के करीव २० छन्दो का हिन्दी अनुवाद सहित सग्रह किया गया था। इसके बाद डा० सत्यप्रकाश ने इन छन्दो के सग्रह-कार्य को और आगे बढाया और उन्होंने इस विषय पर कुछ लेख भी लिखे।

इस प्रकार के इच्छा-विषयक कहावती पद्य केवल राजस्थान में ही नही, अन्य प्रदेशो में भी मिलते हैं। डा० सत्येन्द्र के शब्दों मे कुछ लोकोक्तियां ऐसी भी होती हैं, जिनमें लोकोक्तिकार सुखदायक वस्तुओ की सयोजना कर देता है। इनमें वह यह बताना चाहता है कि किस प्रकार की स्थितियाँ मनुष्य को आनन्द दे सकती हैं। ऐसी लोकोक्तियाँ 'ओलना' कहलाती हैं।

रिमझिम बरसै मेह कि ऊँची रावटी।
कामिन करै सिगार कि पहरै पामटी॥
बारह बरस की नारि गरे में ढोलना।
इतनौ दे करतार फेरि ना बोलना॥

एक अन्य लोकोक्तिकार सुख की यह कल्पना करता है।

बर पीपर की छांह कि सगत घनों की।
भाँग तमाखू मिर्च कि मुट्ठी चनों की॥
भूरी भैंस को दूघ बतासे घोलना।
इतनौ दे करतार फेरि ना बोलना॥[1]

डा० सत्येन्द्र द्वारा उद्धृत दोनो कहावती पद्य चाद्रायण छन्द मे ही हैं और आकार-प्रकार तथा भावना की दृष्टि से भी राजस्थानी छन्दो से पूरे-पूरे मिल जाते हैं।

१. ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, (डा० सत्येन्द्र), पृष्ठ ५४१।

(ख) विषयानुसार वर्गीकरण

१. राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें

(१) ऐतिहासिक कहावतो की भारतीय परम्परा—राजस्थान की पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतें एक प्रकार से राजस्थान की ऐतिहासिक गाथाएँ ही हैं। भारतवर्ष में गाथाओ की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग एक प्रकार के विशिष्ट साहित्य के अर्थ में ऋग्वेद[१] में ही किया गया है जहाँ इसे रैभी और नाराशंसी से अलग निर्दिष्ट किया गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थो में गाथाओ का विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण[२] में ऋक् और गाथा में पार्थक्य दिखलाया गया है। ऋक् दवी होती थी और गाथा मानुषी अर्थात् गाथाओ की उत्पत्ति में मनुष्य का उद्योग ही प्रधान कारण होता था। ब्राह्मण-ग्रन्थो के अनुशीलन से यही प्रतीत होता है कि गाथाएँ ऋक्, यजु और साम से पृथक् होती थी, अर्थात् गाथाओ का व्यवहार मंत्र के रूप में नही किया जाता था। अत प्राचीन काल में किसी विशिष्ट राजा के किसी अवदान (सत्कृत्य) को लक्षित कर जो गीत समाज में प्रचलित रूप से गाये जाते थे, वे ही 'गाथा' नाम से साहित्य का एक पृथक् अग माने जाते थे। निरुक्त[३] में दुर्गाचार्य ने स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि वैदिक सूक्तो में कही-कही जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कहीं ऋचाओ के द्वारा, और कही गाथाओ के द्वारा निबद्ध हुआ है। ऋचाओ के समान गाथाएँ भी छन्दोबद्ध हुआ करती थी।

वैदिक गाथाओ के नमूने शतपथ ब्राह्मण[४] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[५] में उपलब्ध होते हैं जिनमे अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओ के उदात्त चरित्र का सक्षेप मे वर्णन किया गया है। दुष्यन्त-पुत्र भरत-विषयक एक गाथा लीजिए—

महाकर्म भारतस्य न पूर्वे नापरे जनाः।
दिव मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पचमानवा.॥

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य अपने हाथो से आकाश को नहीं छू सकता है, वैसे ही पच मानवो में से भूत और भविष्यत् के कोई भी मनुष्य भरत-पुत्र के अद्भुत कार्य की समता नही कर सकते।

इन ऐतिहासिक गाथाओ की परम्परा महाभारत-काल मे भी अक्षुण्ण दीख पडती है। महाभारत में इसी दुष्यन्त-पुत्र भरत के सम्बन्ध में अनेक अन्य गाथाएँ दी गई हैं जो नितान्त प्राचीन प्रतीत होती हैं।[६] ऐतरेय वाली गाथाएँ ठीक उसी रूप में श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में भी उपलब्ध होती हैं।[७]

---

१ ऋग्वेद, १०।८५।६।
२. ऐतरेय ब्राह्मण, ७।१८।
३ स पुनरितिहास ऋग्बद्धो गाथाबद्धश्च (निरुक्त ४।६)।
४ शतपथ ब्राह्मण, १३।५।४।
५. ऐतरेय ब्राह्मण, ८।४।
६. आदिपर्व, ७४ अ०, ११०-११३।
७ श्री बलदेव उपाध्याय द्वारा लिखित भोजपुरी ग्राम-गीत की भूमिका, पृष्ठ ६-७।

आगे चलकर पालि, प्राकृत और अपभ्र श में भी गाथाओ का निर्माण बरावर होता रहा। अपभ्र श-काल के वाद राजस्थानी भाषा मे तो इस प्रकार की गाथाओ का जाल-सा विछ गया। राजस्थान की वातो, ख्यातो तथा कथा-काव्यो के वीच-वीच में असख्य गाथाएँ विखरी पडी हैं जिन्हें हम ऐतिहासिक कहावतो, उपाख्यानो अथवा प्रवादो का नाम दे सकते हैं। डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के शब्दो में "राजस्थान की जनता में जो स्वाभाविक इतिहास-वोध विद्यमान है, उसका अच्छा परिचय इन ऐतिहासिक प्रवादो मे मिल जाता है।" किन्तु यह नही कहा जा सकता कि राजस्थान में जितनी ऐतिहासिक गाथाएँ अथवा कहावतें मिलती हैं, उनमे से सब इतिहास की कसौटी पर भी खरी उतरती हैं।

(२) **इतिहास और अनुश्रुतियाँ**—किसी प्रदेश की ऐतिहासिक किंवदन्तियो का वाहुल्य उसके विशिष्ट इतिहास-वोध का परिचायक अवश्य होता है किन्तु सभी देशो मे इतिहास के साथ परम्परागत अनुश्रुतियाँ इस तरह मिली रहती हैं कि उनका पृथक्करण यदि असम्भव नही, तो कठिन अवश्य हो जाता है। अनुश्रुतियाँ पीढी दर पीढी मौखिक रूप मे चली आती हैं और मौखिक आदान-प्रदान के कारण उनमें वहुत से क्षेपको का भी समावेश हो जाता है। इसलिए कोई आश्चर्य की वात नही, यदि वैज्ञानिक पद्धति द्वारा इतिहास प्रस्तुत करने वाले इतिहासकार अनुश्रुतियो को सन्देह की दृष्टि से देखें। मारवाड 'नवकोटि मारवाड' के नाम से प्रख्यात है जिसकी 'साख' का निम्नलिखित कहावती छप्पय अत्यन्त प्रसिद्ध है[1]—

मडोयर सामन्त हुवो, अजमेर सिद्धसुव।
गढ़ पूगल गजमल्ल हुवो, लोद्रवै भाणभुव।
आलपाल अरवद्द, भोजराजा जालन्धर।
जोगराज धरधाट हुवो, हासू पारक्कर।
नवकोटि किराडू सजुगत, थिर पवारहर थप्पिया।
धरणीवराह धर भाइया, कोट वाट जू जू किया॥

अर्थात् मारवाड में धरणीवराह नाम का एक वडा प्रतापी राजा हुआ था। उसने अपने राज्य को नौ जिलों में वाँटकर जव अपने भाइयो को अलग-अलग प्रदेश सौंपे तो मडोर सामन्त को, अजमेर सिन्धु को, पूगल गजमल को, लोद्रवा भान को, आवू आलपाल को, जालन्धर अर्थात् जालोर भोजराज को, धाट (ऊमरकोट) जोगराज को और पारकर हसराज को मिला। कोट किराडू (वाडमेर) धरणीवराह के पास रहा। प्रवाद प्रचलित है कि मारवाड राज्य के नौ कोट (किले) होने से, मारवाड 'नौकोटी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। धरणीवराह के समय का कोई शिलालेख व ताम्रपत्र नही मिलता, तथापि वक्ष्यमाण प्रमाण से उसका समय स० १०४० के लगभग होना चाहिए। हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट धवल के सवत् १०५३ के वीजापुर के शिलालेख से जाना जाता है कि धरणीवराह अणहिलवाडा पाटण के स्वामी सोलकी मूलराज प्रथम और राष्ट्रकूट धवल का समकालीन था। उक्त शिलालेख में लिखा है कि मूलराज ने धरणीवराह को उखेड दिया। तव वह भगा हुआ राठौड धवल राजा की शरण में

१ राजस्थान के सास्कृतिक उपाख्यान, पृष्ठ ८६-८७।

आया और शरणागतवत्सल धवल ने मूलराज की परवाह न करके उसे अपने यहाँ रख लिया।[1]

किन्तु इस छप्पय की ऐतिहासिक तथ्यता अत्यन्त सदेहास्पद है। श्री ओझाजी ने इस छप्पय के सम्बन्ध में लिखा है—

'अनुमान होता है कि यह छप्पय किसी ने पीछे से बनाया हो और उसके बनाने वाले को परमारो के प्राचीन इतिहास का ठीक-ठीक ज्ञान न हो।'[2]

ओझा जी की भाँति श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ भी उक्त छप्पय की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करते।[3]

बहुत सम्भव है कि नवकोटि नाम शाकम्भर सपादलक्ष आदि की तरह प्रचलित हुआ हो। उस हालत में 'कोटि' का अर्थ दुर्ग नही, करोड होना चाहिए।

कुछ भी हो, राजस्थानी इतिहास के प्रमाणभूत आचार्य श्री ओझा जी के उपर्युक्त स्पष्ट साक्ष्य के होते हुए धरणीवराह-विषयक छप्पय मे निर्दिष्ट नवकोटि मारवाड सम्बन्धी इस प्रवाद को मात्र किंवदन्ती ही मानकर चलना चाहिए, उसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप मे गृहीत नही किया जा सकता।

राजस्थान मे अनुश्रुति अथवा किंवदन्ती के रूप में प्रचलित एक दूसरे छप्पय पर भी विचार कीजिये—

"आदि मूल उतपत्ति, ब्रह्मपण क्षत्री जाणा।
आणदपुर सिणगार, नयर आहोर वखाणां॥
दल समूह राव रांण, मिले मंडलीक महा भड़।
मिले सर्व भूपती, गुरू गहलोत नरेसर॥
एकलल मल्ल धू ज्यू अचल, कहे राज वापं कियो।
एकलिंग देव प्रा तूठता, राजपाट इण पर दियो॥"

अर्थात् उसकी मौलिक उत्पत्ति तो ब्राह्मण से है किन्तु हम इसे क्षत्रिय के रूप मे ही जानते आये हैं। वह आनन्दपुर का शृंगार है और 'आहोर' उसकी राजधानी है। सैन्य-समूह, राव, राणा, महाभट, माडलिक शासक, सब राजा और कुलगुरु गहलोत नरेश्वर से आ मिले। कहा जाता है कि इस अद्वितीय मल्ल वापा ने ध्रुव की तरह अटल राज्य किया और एकलिंग देव ने उस पर प्रसन्न होकर राजपाट उसे ही सौंप दिया। इस छप्पय से जान पडता है कि गहलोत पहले ब्राह्मण थे, बाद में वे क्षत्रिय हो गये। श्री डी० आर० भडारकर ने 'गुहलोत' शीर्षक[4] अपने लेख में उक्त छप्पय को

---

१ यं मूलादुदमूलयद्गुरुबल श्रीमूलराजो नृपो
दर्पान्धो धरणीवराहनृपति यद्वद्द्विप. पादपम्
आयान्त भूवि कादिशीकमभिज्ञो यस्त शरण्यो दधौ
दंष्ट्रायामिव रूढमूढमहिमा कोलो महीमण्डलम्॥
—मारवाड़ का सक्षिप्त इतिहास : (पडित रामकर्ण आसोपा), पृष्ठ ११-१२।

२ सिरोही का इतिहास : (श्री गौरीशंकर हीराचद ओझा), पृष्ठ १४७।
द्रष्टव्य हिन्दी टाड राजस्थान के प्रकरण ७वें पर श्री ओझा जी का टिप्पणी न ७४, पृष्ठ ३७६।

3 "It is also said that owing to these nine chiefships Marwar has come to be known as 'नवकोटि मारवाड़' but there is very little truth in the above 'छप्पय'। —*The Glories of Marwar.*

4 Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, June 1909.

उद्धृत किया है और अनेक प्रमाणो द्वारा इस छप्पय के ऐतिहासिक तथ्य को स्वीकार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गहलोत पहले ब्राह्मण थे, बाद में वे क्षत्रिय हो गये। इस प्रकार जो ब्राह्मण से क्षत्रिय हुए, वे 'ब्रह्मखत्री' कहलाने लगे।[1]

ऊपर जो दो छप्पय उद्धृत किये गये हैं, उनसे जान पडता है कि एक छप्पय तो ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रामक है तथा दूसरा छप्पय अनुश्रुति के रूप में प्रचलित होने पर भी इतिहास की कसौटी पर खरा उतरता है। इससे स्पष्ट है कि अनुश्रुतियों मे ऐतिहासिक तथ्य मिलता है और नही भी मिलता। अनुश्रुतियो के ऐतिहासिक तथ्या-तथ्य के सिद्धान्त को किसी ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

'बिना कल्पना के अथवा बिना नमक-मिर्च मिलाये मजा नही आता किन्तु अत्यधिक कल्पना का प्रयोग भी दुःख का कारण बन जाता है। जिस प्रकार स्वाद की वृद्धि के लिए आटे में नमक डाला जाता है, उसी प्रकार रसास्वाद के लिए उतनी ही मात्रा में कल्पना का प्रयोग किया जाना चाहिए। बढी हुई तोद से जैसे यह अनुमान लगा लिया जाता है कि तोदधारी को आराम मिला है, नदियो से जिस प्रकार नालो की सत्ता प्रकट हो जाती है, वर्षा से ही जैसे पता चलता है कि गर्मी पड चुकी है, उसी प्रकार गीतों से इस बात का आभास मिलता है कि उनमे वर्णित घटनाएँ घटित हो चुकी हैं।[2]

किन्तु उक्त सिद्धान्त को, बिना पर्यालोचन के, यो ही स्वीकार नही किया जा सकता क्योंकि ऐसे भी गीतों की सृष्टि हुई है जिनमें निर्दिष्ट घटनाएँ कभी घटित हुई ही नही। उदाहरण के लिए एक गीत लीजिये :

"अजे सूर झलहलै, अजे प्राजलै हुतासण।
अजे गग खलहलै, अजे सावत इद्रासण॥
अजे धरणि ब्रह्मण्ड, अजे फल फूल धरत्ती।
अजे नाथ गोरक्ख, अजे अहमात सकत्ती॥
आजू हीलोहल घू अटल, वेद धरम बाणारसी।
पतसाह हून चीतोडपत, राण मिलै किम राजसी॥"[3]

अर्थात् अभी तक सूर्य तेजमय है, अभी तक अग्नि में दाहक शक्ति है, अभी तक गगा बह रही है, इन्द्र का आसन अभी तक ज्यो का त्यो है, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड अभी तक अपनी-अपनी सीमा पर स्थित हैं, फल फूल अभी तक पूर्ववत् पृथ्वी पर वर्तमान हैं, अभी तक गोरखनाथ विद्यमान हैं, और योगमाया ने अभी तक अपनी-अपनी शक्ति धारण

---

१. द्रष्टव्य मारवाड़ सेंसस रिपोर्ट (सन् १८९१), पृष्ठ ४८२-८३।

2 Without fiction there will be a want of flavour,
But too much fiction is the cause of sorrow
Fiction should be used in that degree
That salt is used to flavour flour
As a large belly shows comfort to exist,
As a rivers show that brooks exist,
As rain shows that heat has existed,
So songs show that events have happened
—रासमाला Forbes, पृष्ठ २६६

३ महाराणा यश प्रकाश, ठाकुर भूरसिंह शेखावत द्वारा सगृहीत, पृष्ठ १६७-१६९।

कर रखी है, समुद्र अभी तक अपनी मर्यादा पर अटल बना हुआ है और काशी भी यथावत् स्थित है, फिर चित्तौड का महाराणा राजसिंह बादशाह से क्यो कर मिलेगा ?

वंशभास्कर के रचयिता महाकवि सूर्यमल्ल लिखते हैं कि उक्त छप्पय जिलिया चारणवास के कम्मा नामक नाई ने महाराणा राजसिंह जी को बादशाह से मिलने के लिए दिल्ली जाते समय मार्ग मे सुनाया था, जिसे सुनते ही वे वापिस उदयपुर लौट आये थे। इस छप्पय को पढकर पाठक के मन में भी कुछ इसी प्रकार की धारणा बँधती है किन्तु ऐतिहासिक तथ्य इसके विपरीत है। इतिहास के विज्ञ पाठक जानते हैं कि महाराणा राजसिंह जी ने बादशाह से मिलने का कभी इरादा किया ही नही। तो फिर इस छप्पय की सार्थकता क्या ? वस्तुस्थिति यह है कि जैसे महाराणा राजसिंह की प्रशसा मे अन्य लोग काव्य-रचना करते थे, वैसे ही इस नाई ने भी यह छप्पय उक्त महाराणा के लिए बनाकर उनको सुनाया था।

ऐसी स्थिति मे अनुश्रुतियो के मूल्याकन मे बडी सावधानी की आवश्यकता है। उनके सम्बन्ध में प्राय यह देखा जाता है कि उनका कलेवर अनेक प्रकार की कपोल-कल्पनाओ से आवेष्टित हो जाता है। किन्तु अन्य प्रमाणो के अभाव में इतिहासकार को भी अनुश्रुतियो की शरण लेनी पड़ती है, और फिर भारतवर्ष में तो और भी अधिक कठिनाई रही है। यहाँ के निवासियो ने महापुरुषो के जीवन की वास्तविक घटनाओ को महत्त्व न देकर उनके द्वारा दिये गये उपदेशो मे सन्निहित उनके सांस्कृतिक जीवन को ही सर्वाधिक गौरव प्रदान किया है। यही कारण है कि मुसलमानों के इस देश में आने से पहले राजतरगिणी जैसे कुछ अपवादो को छोडकर भारतवर्ष का कालक्रमागत इतिहास नही मिलता। अलबरूनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग वस्तुओ के ऐतिहासिक अनुक्रम की ओर विशेष ध्यान नहीं देते, घटनाओ के कालक्रमागत वर्णन की ओर वे सचेष्ट नहीं हैं और ऐतिहासिक घटनाओ की जानकारी के लिए जब उनसे आग्रहपूर्वक पूछा जाता है तो वे निश्चय ही गप हाँकने लगते हैं।[1]

जैसा ऊपर कहा गया है, अनुश्रुतियो में सत्य और कल्पना का बडा जटिल सम्मिश्रण मिलता है। तथ्यान्वेषण करनेवाला इतिहासकार अनेक प्रकार के साधक-बाधक प्रमाणो का आश्रय ले, कपोल-कल्पना में से सत्य को पृथक् करने का प्रयत्न करता है। यह निःसन्देह इतिहासकार का क्षेत्र है जिसमें प्रवेश करने का ध्येय लेखक का नही है। राजस्थान की जिन ऐतिहासिक कहावतो का विवेचन नीचे किया जा रहा है, उनके स्वरूप तथा प्रकारादि-निर्धारण तक ही लेखक ने मुख्यत अपने आपको सीमित रखा है। यद्यपि विषय के स्पष्टीकरण के लिए स्थान-स्थान पर इतिहास-सम्बन्धी टिप्पणियाँ दी गई हैं तथापि इतिहासकार से जिस शोध-दृष्टि की आशा और अपेक्षा की जाती है उसका अनुसन्धान यहाँ नही किया जाना चाहिए क्योंकि इन पृष्ठो में राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो का अध्ययन किया जा रहा है, राजस्थान के इतिहास का नही। राजस्थान के इतिहास का आश्रय उसी अंश तक लिया गया है

---

1. "The Hindus do not pay much attention to the historical order of things, they are careless in relating the chronological succession of things, and when they are pressed for information, they invariably take to tale-telling." —*Alberuni's India*

जिस अश तक ऐतिहासिक कहावतो के समझाने और उनके विश्लेषण मे सहायता मिलती है। किसी प्रकार की भ्रात धारणा न हो, इसलिए प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक एव वाछनीय है कि ऐतिहासिक कहावतें इतिहास के लिए अमूल्य सामग्री तो अवश्य प्रस्तुत करती हैं किन्तु जिस रूप मे वे हमें मिलती हैं, उस रूप को सर्वांश मे ऐतिहासिक तथ्य मानने की भूल नही करनी चाहिए।

राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें गाथा (पद्य) तथा गद्य दोनो रूपो मे मिलती है। यहाँ अध्ययन के लिए दोनो ही प्रकार की कहावतो का उपयोग किया गया है।

(३) ऐतिहासिक कहावतों का वर्गीकरण—प्राय प्रत्येक देश की भाषा मे ऐतिहासिक कहावतें मिलती हैं किन्तु राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जहाँ इस प्रकार की कहावतो का प्राचुर्य है। जहाँ छोटे से छोटे गाँव मे थर्मापली और लियोनीदास के दृश्य उपस्थित हो चुके हो, उस प्रदेश की अनेक घटनाएँ यदि ऐतिहासिक कहावतो के रूप में प्रचलित हो गई हो तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही। राजस्थान मे आज भी ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं जो अपने कठाग्र कहावती दोहो की सहायता से राजस्थान के इतिहास की अनेक घटनाएँ सुनाते चले जाते हैं। इस प्रकार की ऐतिहासिक कहावतें अनेक रूपो में उपलब्ध होती हैं। सबसे पहले हम घटनाओ से सबद्ध कहावतो पर ही विचार कर रहे हैं।

(क) घटनाओं से सबद्ध—'घटनाओ के साथ जुडी हुई उन कहावतो को, जिनका अर्थ उन घटनाओ को जाने बिना नही खुलता, 'वातालार्थ' कहते हैं। वे मनोरजक और शिक्षाप्रद तो होती ही हैं, उनसे अनेक ऐतिहासिक बातो का बोध भी होता है। इस प्रकार के अनेक वातालार्थ ख्यातो में 'साखी या साख' नाम से विविध छन्दो के रूप में मिलते हैं। चारणो, भाटो एव पुराने लोगो की बातचीत में भी बहुत से सुनने में आते हैं।[1] उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये :

(अ) **"बीलाडी पर पडो सिलाडी।**
म्हे तो लेसां बाजरगढ़॥"

अर्थात् बीलाडी पर शिला पडे, हम तो बाजरगढ लेंगे। प्रसिद्ध है कि जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम (स० १६९५-१७३५) ने प्रसन्न होकर किसी ब्रह्म-भट्ट कवि को बीलाडा गाँव उदक (पुण्यार्थ) लिखने की आज्ञा दी। गाँव बडा और तीस हजार की वार्षिक आय का था, इसलिए राजकर्मचारी ने इतना बडा गाँव देना ठीक न समझा। उसने युक्ति से चारण को पूछा कि बीलाडी लोगे या बाजरगढ ? भट्ट जी बाजरगढ का नाम सुन कर फूल उठे और उसका पट्टा लिखा लाये। जब वहाँ पहुँचे तो गढ के स्थान पर एक छोटा-सा बाजडा गाँव देखा तो महाराज के पास जाकर रोये। महाराज ने दीवान से पूछा तो उसने अर्ज की :

"कलम दिवानी बह गया,
क्या बदे का सारा ?"

अर्थात् दीवानी कलम आप ही चल गई, मेरा कुछ वश नहीं। तब महाराज ने चारण से कहा कि जो भाग्य में था सो मिल गया, उसी पर सन्तोष करो।

---

१ राजस्थानी भाग ३, अक १ में प्रकाशित श्री जगदीशसिंह गहलोत का 'राजपूताने के वातालार्थ' शीर्षक लेख, पृष्ठ ३०।

वीलाडा मिल जाता तो उसके पास रहना भी था नही, मगर वाजडा जो एक छोटा-सा गाँव चार सौ रुपये की आय का है, अब तक उसकी सन्तान के पास है। इसी से मिलता-जुलता एक दूसरा 'वातालार्थ' है :

(आ) "भाग नहीं भँरोदे जोगा।
टैला जोगी टाट॥"

जोधपुर के एक महाराजा ने किसी चारण को भँरोदे का शासन-पत्र लिख देने का हुक्म फरमाया। भँरोदा मेडते परगने का एक वडा गाँव है। दीवान वख्शी लोगो ने चाल करके चारण से कहा—वारठ जी, भँरोदा लेकर क्या करोगे, टीलागढ ले लो। वारठ जी गढ के नाम से राजी होकर टीलागढ का पट्टा लिखा लाये। टीलागढ ढूँढते-ढूँढते वहाँ पहुँचे तो उसकी जगह टैला नाम का छोटा सा गाँव पाया। 'नाम वडे, दर्शन थोडे' वाली मसल हुई।

टैला लाखावत चारणो के पास माफी का गाँव है। उसकी सनद तलाश करके देखी गयी तो मालूम हुआ कि यह गाँव सवत् १७०७ की श्रावण सुदी ५ तारीख २३ जुलाई, सन् १६५० ई०) मगलवार को महाराजा रामसिह राठोड ने वारठ अजवदान के पोते और रामदान के वेटे तेजदान को दिया था। उसकी सन्तान में रूपदान, सुमकरण, हिंगलाजदान आदि उसे अभी तक भोगते हैं। इस कहावत को वे भी कहते हैं पर इसका असली हाल नही जानते। यह कथा यदि सत्य है तो इसका सम्वन्ध तेजदान से होना चाहिए।[1]

(इ) "भाग लल्ला! प्रथीराज आयो।
सिह के सांयरै स्याल व्यायो॥"

अर्थात् हे लल्ला! पृथ्वीराज आ गया। अब यदि अपनी खैर चाहता है तो भग चल। सिह की गुफा मे गीदड ने बच्चा दिया है, कैसे निर्वाह होगा!

इतिहास में प्रसिद्ध है कि लल्ला नामक पठान ने सोलकियो से टोडा छीन लिया था। महाराणा श्री रायमल्ल जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री पृथ्वीराज जी अत्यन्त यशस्वी और प्रतापी हुए। वे इस समाचार से कुपित होकर अकस्मात् टोडे जा पहुँचे थे, और टोडा विजय करके इन्होंने सोलकियो को दे दिया था। इस आकस्मिकता के कारण लोग इस वात का अनुमान भी न लगा सके कि क्योंकर महाराज इतना शीघ्र टोडा पहुँच सके। कहते हैं, उसी दिन से यह 'उडणा पृथ्वीराज' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। उनकी वीरता का तो इतना आतक छा गया कि उक्त पद्य ही कहावत के रूप में प्रचलित हो गया।

(ई) अलाउद्दीन महिमशाह (मुहम्मदशाह) से, जो नव मुस्लिमो का नेता था, रुष्ट हो गया था। मुहम्मदशाह ने अलाउद्दीन के सेनापति उलूगखा और नसरतखा के अशिष्ट व्यवहार के कारण जालोर के पास वगावत की और जालोर आदि होता हुआ यह रणथम्भोर पहुँचा। यह वास्तव में महान् वीर और योद्धा था। रणथम्भोर के शासक राव हमीर चौहान ने उसे निर्भीकतापूर्वक शरण दे दी। वादशाह ने हमीर को लिखा कि वह पठान को अपने पास न रखे किन्तु हमीर ने जो उत्तर भिजवाया, वह

१. 'राजपूताने के वातालार्थ (श्री जगदीशसिह गहलोत): राजस्थानी भाग ३, अक १।

केवल राजस्थान में ही नहीं, बल्कि उत्तर भारत में भी कहावत की भाँति समय-समय पर प्रयुक्त होता है

"सिंह सग सत्पुरुष बच, केल फलै इक बार ।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार ।।"

अलाउद्दीन ने किले पर घेरा डाल दिया। वर्षों के युद्ध के बाद वीरता से लडते हुए हमीर ने अपने प्राण दे दिये। वह पठान भी जिसको हमीर ने शरण दी थी, अलाउद्दीन के विरुद्ध लडता हुआ काम आया।

घटनाओ से सम्बद्ध जो कहावतें ऊपर दी गई हैं, वे सब प्रसगोद्भूत हैं किन्तु अनेक बार परम्पराप्राप्त प्रचलित पद्यो का भी प्रसगानुरूप उपयोग कर लिया जाता है जैसा कि नीचे दिए हुए उदाहरण से प्रकट होगा—

(उ) जोधपुर के राजा मालदेव की रानी उमादे रूठी रानी के नाम से विख्यात है। उमादे के साथ जैसलमेर से दहेज में आई हुई भारमली दासी पर राव मालदेव के आसक्त होने के कारण जब वह अपने पति से रुष्ट हो सदा के लिए जैसलमेर जा बैठी, तब मालदेव ने उमादे को समझाकर वापिस जोधपुर लिवा लाने के लिए कवि आशानन्द को जैसलमेर भेजा। आशानन्द जब जैसलमेर पहुँचे तब उमादे ने अपने पति की अपनी ओर सच्ची प्रीति और हार्दिक आकर्षण जानने के लिए प्रश्न किया कि मेरे पति ने भारमली को अब तक रख छोडा है या निकाल दिया है? इस पर आशानन्द ने रानी को मानवती देख कहा—

"मान रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण ।
दोय-दोय गयन्द न बधही, हेकै खम्भू ठाण ।।"

अर्थात् यदि तू अपना मान रखना चाहती है तो पति का परित्याग करदे और पति को रखना चाहती है तो मान को तज दे क्योंकि एक ही 'खुम्हालै' (हाथी बाँधने के खभे) पर दो हाथी नहीं बँधा करते।

आशानन्द का यह दोहा सुन मानवती उमादे ने सदा के लिए मालदेव का परित्याग कर दिया और अपनी सारी आयु पिता के घर में ही बिता दी।

ऐसा लगता है कि यह दोहा आशानन्द के मुख से उसी समय निकल पडा हो और रूठी रानी के इस प्रसग में यह अत्यन्त समीचीन भी लगता है। इसका उत्तरार्द्ध तो आकार-प्रकार मे भी निश्चय ही एक कहावत जान पडता है। किन्तु निम्नलिखित प्राकृत गाथा को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि उमादे को समझाते समय आशानन्द ने गाथा के लोक-प्रचलित राजस्थानी रूपान्तर का ही प्रयोग किया था—

"जइ माणो कीस पिओ अहव पिओ कीस करिए माणो ।
माणिणि दोवि गइन्दा, एक्कर कम्भे न वज्झन्ति ।।"[1]

आशानन्द द्वारा प्रयुक्त दोहा 'कबीर ग्रन्थावली' में भी निम्नलिखित रूप मे उपलब्ध है—

---

१ जयवल्लभा नाम वज्जालग्ग, माण वज्जा, पृष्ठ ७३।

संस्कृत छाया—

यदि मान: किं प्रियो ऽथवा प्रिय किं क्रियते मान ।
मानिनि द्वावपि गजेन्द्रावेकस्तम्भे न बध्येते ।।

'खंभा एक गइन्द दोइ, क्यू करि वधिसि वारि ।
मानि करै तौ पीव नहिं, पीय तो मानि निवारि ।।' ४२ ।।
(चितावणी को अग, पृष्ठ २५)

इतिहास में घटना और व्यक्ति का पार्थक्य एक असम्भव व्यापार है क्योंकि व्यक्ति द्वारा ही घटना घटित होती है और घटना स्वत व्यक्ति के चरित्र को प्रभावित करती है। इस प्रकार घटना और व्यक्ति के सम्बन्ध में पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त लागू होता है। यहाँ पर मात्र विश्लेषण की सुविधा के लिए ही प्रधानता के आधार पर ऐतिहासिक कहावतो के घटना-प्रधान और व्यक्ति-प्रधान जैसे वर्ग निर्धारित कर लिए गये हैं।

राजस्थान में व्यक्ति-प्रधान कहावतें अपरिमित सख्या में प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

(ख) व्यक्ति-प्रधान—

(अ) 'नटियो मूतो नैणसी, तावो देण तलाक' राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रयुक्त है। नैणसी का जन्म स० १६६० में हुआ था। स० १७१४ मे जोधपुर महाराज जसवन्तसिंह प्रथम ने इसे अपना दीवान बना लिया था। एक बार किसी कारण से महाराज, नैणसी और उसके भाई सुन्दरदास पर नाराज हो गये और दोनो को कैद कर लिया। फिर सवत् १७२५ मे उन पर एक लाख रुपये का जुर्माना कर उन्हे छोड दिया गया। परन्तु नैणसी ने एक पैसा तक देना मजूर नही किया जिस पर स० १७२६ में दोनो भाइयो को फिर कैद कर लिया गया। राजस्थान मे इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित कहावती दोहे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

"लाख लखारां नीपजै, वड पीपल री साख।
नटियो मूतो नैणसी, तावो देण तलाक ।।
लेसो पीपल लाख, लाख लखारा लावसी।
तावो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी ।।"[1]

अर्थात् एक लाख रुपये जुर्माने की वात सुनकर नैणसी ने कहा था कि लाख तो लखारो के यहाँ मिलेगी जो वड-पीपल से पैदा होती है। मैं तो ताँबे का एक पैसा भी न दूँगा। यही वात कहकर नैणसी के भाई सुन्दरदास ने भी जुर्माना देने से साफ इन्कार कर दिया था।

जेल में जव इन दोनो भाइयो को कष्ट दिये जाने लगे तो कटारी खाकर सवत् १७२७ मे उन्होंने आत्म-हत्या करली। 'मूता नैणसी की ख्यात' के रचयिता के रूप मे नैणसी का नाम राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

(आ) उन व्यक्तियो के सम्बन्ध में भी जिनके विषय मे इतिहास ने मौन धारण कर रखा है, राजस्थान में असख्य कहावती पद्य सुनाई पडते हैं। उदाहरण के लिए एक प्रचलित पद्य लीजिये—

✓ "तरवर ज्याहाँ मोरिया, सरवर ज्याहाँ हस।
वाघो ज्याहाँ भारमलो, वारू ज्याहाँ मंस ।।"

---

१. राजस्थान के सास्कृतिक उपाख्यान, पृष्ठ ७३।

अर्थात् जहाँ तरुवर हैं, वही मोर हैं; जहाँ सरोवर हैं वही हस हैं; जहाँ बाघा है, वही भारमली है, जहाँ मदिरा है, वही मास है।[1]

(इ) गोगा को लेकर राजस्थान में अनेक कहावतें प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिए—

"गांव-गांव गोगो ने गांव-गांव खेजड़ी" अर्थात् गांव-गांव में गोगा है और गांव-गांव में खेजडी का वृक्ष है।

गोगा चौहान राजस्थान मे देवता की भाँति पूजा जाता है। जिसे साँप काटता है, उसके गोगा के नाम का डोरा बाँधते हैं जिसको ताती कहते हैं। गोगा का 'थान' जिसमे साँप की मूर्ति, पत्थर मे खुदी होती है बहुधा गांवो में होता है। इसीलिए उक्त राजस्थानी कहावत प्रचलित हुई है।

गोगा के थान प्राय खेजडी के नीचे होते हैं और गांव में जिसके घर साँप निकलता है, वह गोगाजी को याद करके दूध के छीटे देता है। मेह बरसने पर जिस दिन हल चलाना शुरू करते हैं, गोगाजी के नाम की राखी जिसको 'गोगा राखडी' कहते हैं, नौ गाँठें देकर हल और हाली के बाँधते हैं तथा बार-बार यह पढ़ते हैं "हली वालदी गोगो रखवालो।"[2]

(ई) रामदेवजी मारवाड के एक सत्यवादी वीर हो चुके हैं। कहते हैं कि भैरव नामक एक दुष्ट को मारने से रामदेव जी की ख्याति चारो ओर फैल गई थी। मुसलमान हिन्दू सभी इन्हे पूजने लगे और ये रामशाह पीर के नाम से पुकारे जाने लगे। सवत् १५१५ में इन्होने मारवाड के रूणेचा गांव में जीवित समाधि ले ली। राजस्थान के अनेक स्थानो में रामदेवजी के उपलक्ष मे मेले भरते हैं और देवता की भाँति इनकी पूजा होती है। जहाँ मेले भरते है, वहाँ बहुत से यात्री जाते हैं किन्तु यात्रियो में ज्यादा निम्न श्रेणी के लोग होते हैं जिससे यह कहावत राजस्थान में प्रसिद्ध हो गई—

"रामदेवजी नै मिल्या जिका ढेढ ही ढेढ (कामडिया ही कामड़िया)" अर्थात् रामदेवजी को सबके सब चमार ही मिले। रामदेवजी के पुजारी भी चमार-साधु होते हैं जो 'कामडिया' कहलाते हैं।

(उ) इसी प्रकार की एक कहावत पाबूजी के सम्बन्ध में कही जाती है **"पाबूजी नै मिलिया जिका सै थोरी ही थोरी"** अर्थात् पाबूजी को जितने भी मिले, सब थोरी ही मिले। यद्यपि थोरियो ने पाबूजी के प्रति बडी स्वामि-भक्ति का परिचय दिया था किन्तु आजकल इस लोकोक्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जब किसी को एक के बाद एक इस तरह के व्यक्ति मिलते हैं जिनके कारण इष्ट-सिद्धि में सहायता नही मिलती। थोरियो के सामाजिक निम्न स्तर के कारण सम्भवत यह कहावत इस अर्थ में रूढ हो गई।

ऊपर व्यक्ति-सम्बन्धी जो कहावतें दी गई हैं, वे राजस्थान के अनेक पुरुषो के नामो के सम्बद्ध है। कुछ कहावतें ऐसी भी हैं जो स्त्रियो के नामो को लेकर प्रवृत्त

---

१. बाघा और भारमली के प्रेमाख्यान के सम्बन्ध में देखिए 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद', पृष्ठ १६-२३।

२. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ईसवी, भाग ३, पृष्ठ १४।

हुई हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो कहावतें लीजिये—

(ऊ) "राज पोपा बाई रो, लेखो राई राई रो।" एक ऐसी ही कहावत है। पोलखाता और अन्धेरगर्दी के प्रतीक के रूप में पोपाबाई का नाम राजस्थान में विख्यात है, किन्तु न केवल राजस्थान मे बल्कि मध्यभारत, गुजरात, मालवा आदि अनेक राज्यो मे पोपाबाई इसी रूप में विख्यात है तथा पोपाबाई के सम्बन्ध मे इन सभी प्रदेशो में कहानियाँ प्रचलित हैं।[1] कवि राजा बाकीदास ने भी एक स्थान पर कहा है—

"पोपा बाई प्रगट हुवं, नवी चलावे नीत।"

बाकीदास ग्रन्थावली[2] की टिप्पणियो में कहा गया है कि पोपाबाई एक कुम्हारिन थी जो खडेले के राज्य इलाके जयपुर मे हुई थी। उसका पोल का राज्य मशहूर है। अन्त में वह अपनी ही मूर्खता से शूली पर टँगी थी। उसके राज्य में सब धान बाईस पसेरी बिकता था। श्रीयुत गणपतलाल जी जोशी[3] के मतानुसार पोपाबाई गुजरात के राजकर्ताओ के वश में उत्पन्न हुई थी। गुजरात के शासक अपनी उदारता और विशालहृदयता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इस देवी का हृदय विशेष उदार था। उसका लाभ नौकरो ने उठाया जिससे उसके राज्य की कीर्ति मन्द पड गई। मध्य-भारतीय पोपाबाई को भी कुम्हारिन ही कहा गया है किन्तु राजस्थान और मध्य-भारत की पोपाबाई-सम्बन्धी कहानियो में अन्तर है।

(ए) 'अरे, ये तो बाँका पग बाई पद्मा रा' अर्थात् ये तो बाई पद्मा के बाँके पैर हैं।

जिस पद्मा को लेकर यह कहावत प्रचलित हुई है, वह एक साहसिक महिला थी। उसकी सगाई प्रसिद्ध कवि बारहठ शकर से हुई थी। एक बार बारहठजी अपने नौकर-चाकरो के साथ कही जाते हुए पद्मा के गाँव पहुँचे। पद्मा के पिता उस दिन वहाँ नही थे। ऊँट-घोडो पर सवार प्रतिष्ठित अतिथियो को जब पद्मा ने घर पर आया देखा तो उनके आतिथ्य-सत्कार के लिए वह स्वय मर्दाने कपडे पहनकर बाहर आ गई और अतिथियों का यथोचित सत्कार किया। तत्पश्चात् विदा होकर जब अतिथि गाँव मे बाहर निकलकर जा रहे थे तो एक व्यक्ति ने उनके हुक्के की मनुहार की। प्रसगवश बारहठजी ने कहा कि जिनसे हम मिलने आये थे, वे तो मिले नहीं परन्तु उनके कुँवर बहुत समझदार हैं जिन्होंने हम सब की बडी आवभगत की। यह सुन कर उस व्यक्ति ने कहा कि हमारे ठाकुरो के तो एक बाईजी ही हैं, कुँवर तो कोई भी नही। इस पर मतभेद होने पर उस व्यक्ति ने कहा कि उन कुँवरजी का पद-चिन्ह मुझे दिखला दो तो मैं पहचान जाऊँगा कि पद—चिन्ह किसका है? यही किया गया और पद-चिन्ह देखते ही वह बोल उठा 'अरे, ये तो बाँका पग बाई पद्मा रा'। पद्मा के पैर कुछ टेढे पडते थे। बारहठजी को जब निश्चय हो गया कि पुरुष-वेश में वह

---

१. पोपाबाई-सम्बन्धी कहानियों के लिए देखिये 'लोकवार्ता' वर्ष १, अंक ४, मार्च १९४५।

२ बांकीदास ग्रन्थावली (दूसरा भाग), पृष्ठ २०।

३ शारदा, जुलाई १९५४।

पद्मा ही थी तो उन्होने रुष्ट होकर सगाई छोड दी । पद्मा को हार्दिक दुख हुआ किन्तु एक बार जिसके साथ उसका सम्बन्ध स्थिर हो चुका था, उसको छोडकर स्वप्न मे भी वह दूसरे की कल्पना नही कर सकती थी । इसलिये उसने आजन्म कौमार्य-व्रत का सकल्प कर लिया । पद्मा की प्रतिभा की खबर सर्वत्र फैल गई । जब बीकानेर यह खबर पहुँची तो वीर अमरसिंह ने उसे बुला लिया और तभी से वह उनके अन्त पुर में रहने लग गई थी ।

पद्मा का समय सन् १५९७ के लगभग माना जाता है । वह चारण मालाजी सादू की पुत्री थी । बीकानेर के अमरसिंह उन दिनो अकबर के विरुद्ध क्रान्तिकारी स्वर उठाकर उसके कोष इत्यादि को लूटने मे प्रवृत्त रहते थे, पर अकबर के विशाल वैभव के सामने इस छोटे से आत्माभिमानी सरदार की भला क्या चलती ? मुगल सेना ने उनके सैनिको को कुचलते हुए उनका गढ़ घेर लिया । अमरसिंह उस समय निद्रावस्था में थे । सोते हुए सिंह को छेडने का साहस किसी मे नही था क्योकि अमरसिंह क्रोध में अपना विवेक खो बैठते थे । ऐसी स्थिति में पद्मा ने ही 'जाग रे जाग कलियाण जाया' गीत द्वारा उनकी निद्रा भग की थी । आक्रमणकारियो को परास्त करते हुए अमरसिंह वीर गति को प्राप्त हुए । पद्मा ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया ।[1]

राजपूताने में किसी सदेहास्पद बात का निश्चय होने पर या कोई नई बात मालूम होने पर **'अरे, ये तो बांका पग बाई पद्मा रा'** ये शब्द कहावत की तरह प्रचलित हो गये ।

(ऐ) राजस्थान में प्रचलित ऐतिहासिक कहावतो में से कुछ ऐसी भी हैं जिनका राजस्थान के इतिहास से कोई सम्बन्ध नही है । **'कठे राजा भोज, कठे गांगलो तेली'** यह तो एक ऐसी कहावत है जो उत्तरी भारत की प्राय सभी भाषाओ मे समान रूप से प्रचलित है । 'महाराष्ट्र वाक् सम्प्रदाय कोश' मे इस कहावत की व्याख्या में कहा गया है—

'कहाँ भोज राजा, कहाँ गगु (गगा तेली), कोठें भोज राजा व कोठें गगा तेली, गगराज तैलप येथें मुंराजालाच चुकीनें भोज सबोधून ह्मण रचिली आहे । मुंजाचें राज्य तैलपानें घेतलें तेंव्हांची त्यांची तुलना केली आहे, भोज राजा उदार तर गगराज तैलप त्या मानान कांहीच नाही, तु० गते मुंजे यश पुंजे निरालबा सरस्वती ।'[2]

उक्त व्याख्या के अनुसार कहावत का भोज मुंज राजा है और गगा तेली हैं गगराज तैलप । यद्यपि यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि गगराज तैलप (९७३-९९७) ने परमार वश के मुंज का वध कर डाला था किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण न मिले, केवल इसी के आधार पर गगा तेली को गगराज तैलप और भोज को मुंज नहीं ठहराया जा सकता ।

श्री पी० के० गोडे ने गगा तेली की एक सस्कृत में लिखी हुई लोक-कथा का पता लगाया है जिसका साराश निम्नलिखित है—

---

१ राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (प्रथम शतक), पृष्ठ ८५-८८ ।

२ महाराष्ट्र वाक् सप्रदाय कोश, विभाग पहला, सपादक यशवत रामकृष्ण दाते और चिन्तामण गगेश कर्वे, पृष्ठ २४९-२५० ।

एक छात्र दक्षिण देश के प्रतिष्ठानपुर मे गया। उसने अपने आचार्य से तीस वर्ष तक विद्याध्ययन किया। उसे अपनी विद्वत्ता का बडा गर्व था। वह पण्डितो को पराजित करने के लिए गुजरात, मारवाड आदि प्रदेशो की ओर बढा। उसने अपने सिर पर अकुश रख लिया, अपने पेट को एक कपडे से ढक लिया ताकि उसकी विद्या फूटकर न निकल जाय। उसका अनुचर एक निश्रेणी (सीढी) इस उद्देश्य से साथ रखता था कि यदि वाद-विवाद में पराजित प्रतिपक्षी आसमान में भी जाना चाहे तो वह इस सीढी पर चढकर उसे नीचे गिरा देगा। यदि प्रतियोगी पाताल में चला जाय तो वह कुदालो की सहायता से, जो वह हाथ में लिये रहता था, उसे पाताल खोदकर बाहर निकाल लेगा। अनुचर अपने हाथ में तृणपुलक इसलिए लिये रहता था कि प्रतिपक्षी के पराजित होते ही पराजय के चिन्हस्वरूप उसे दाँतो-तले तृण दबाने को विवश कर दिया जाय। गुजरात मारवाड के पण्डितो को जीतकर इस छात्र ने सरस्वती कंठाभरण आदि की उपाधियाँ प्राप्त करली। तब यह सुनकर कि भोज राजा के यहाँ पचास प्रसिद्ध पण्डित हैं, वह उज्जयिनी गया और पचासो पण्डितो को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया जिनमे कालिदास, क्रीडाचन्द्र और भवभूति आदि प्रमुख थे। भोजराजा खिन्नमन होकर विनोद के लिए वन में गया। लौटते समय उसकी दृष्टि गाँगा नामक तेली पर पडी जो घाणी से तेल निकाल रहा था और एक घडे मे डाल रहा था। तेली यद्यपि काना था लेकिन राजा भोज को वह बुद्धिमान् जान पडा। उसने तेली से पूछा कि एक भट्टाचार्य से क्या तुम वाद-विवाद कर सकोगे। तेली ऐसा करने को राजी हो गया। बडे सम्मान से वह सभा में लाया गया और सिंहासन पर बिठलाया गया। उसने सुन्दर वस्त्र पहन रखे थे और स्वर्णाभूषणो से वह सुसज्जित था। अपने तुन्दिल शरीर से वह मदमत्त गजराज की भाँति शोभित हो रहा था। उसके सभा मे प्रवेश करते ही राजा खडे हुए और साथ ही सभी सभासद। तब उसे एक सिंहासन पर बिठलाया गया। शास्त्रार्थ शुरू हुआ। दक्षिणीय भट्टाचार्य ने अपनी एक अँगुलि दिखाई, तेली भट्टाचार्य ने रुष्ट होकर दो अँगुलियाँ दिखलाई।[1] इस पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने पाँच अँगुलियो वाला अपना हाथ आगे कर दिया। तब भोजराज के भट्टाचार्य ने अपनी बद्ध मुष्टि दिखला दी। इस पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने अपने सिर पर से अकुश उतार लिया, विद्यापट्ट पेट से अलग कर दिया, सीढी तोड डाली, कुदालो को अलग डाल दिया और तृणपुलक को आग लगा दी। भोज भट्ट के चरणो में गिर पडा और अपनी हार स्वीकार कर ली। भोजराज के पूछने पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने कहा कि वाद-विवाद के प्रारम्भ में मैंने एक अँगुली दिखलाई जिसका आशय यह था कि शिव एक है। आपके भट्टाचार्य ने यह सकेत करते हुए दो अँगुलियाँ दिखलाई कि यद्यपि शिव एक है, वह शक्ति से युक्त है। फिर पाँच इन्द्रियो के सूचनार्थ मैंने पाँच अँगुलियाँ दिखलाई तो आपके भट्टाचार्य ने बद्धमुष्टि दिखलाकर यह जताया कि इन्द्रियो का निग्रह सभव है। राजा भोज ने गाँगा तेली से भी वाद-विवाद के बाबत प्रश्न किया तो उसने दूसरा ही उत्तर दिया। वह कहने लगा—भट्ट ने मुझे एकाक्षी प्रकट करने के लिए जब एक अँगुली उठाई तो मैंने उसे दो अँगुलियाँ दिखलाई कि तुम्हारी दोनो आँखें

१. ऐसी ही एक कथा कालिदास और विद्योत्तमा के सम्बन्ध में भी सुनी जाती है।

फोड डालूँगा। तब दक्षिणीय भट्ट ने पाँच अँगुलियो वाला अपना हाथ इस आशय से दिखलाया कि मैं तुम्हे चाँटे लगाऊँगा। यह सुनकर राजा सहित सारी सभा खिलखिला कर हँस पडी। गागा तेली के दिन फिरे, राजा ने उसका वडा सम्मान किया। राजा ने सभासदो से कहा—आप सभी को सफलता मिली, इसलिए आपके शब्द मेरे लिए सत्य सिद्ध होंगे।

श्री गोडे के अनुसार उक्त लोक कथा ही "कहाँ राजा भोज, कहाँ गगा तेली" की लोक मूल। यह कथा सन् १६५० से पुरानी ही प्रतीत होती है क्योंकि जिस कागज़ पर यह लिखी हुई मिलती है, वह २५० वर्ष से अधिक पुराना है। १६वी शती के भोज प्रवन्ध से यह पूर्ववर्ती है या परवर्ती, यह नही कहा जा सकता किन्तु पिछले ३५० वर्षो से यह कथा देश मे प्रचलित रही है जिसने राजा भोज और गगा तेली की लोकोक्ति को जन्म दिया है।[1]

सुविख्यात पुरातत्वविद् स्व० डा० हीरालाल जी ने कलचुरिनरेश गागेय देव और तैलप चालुक्य के साथ गगू और तेली शब्दो का सम्बन्ध स्थापित किया था। उनकी सम्मति मे गगू और तेली क्रमश गागेय और तैलप के विकृत रूप हैं। नही कहा जा सकता कि यह कल्पना कहाँ तक ठीक है।

मौलाना नियाज़ फतेहपुरी ने गगुवा तेली के सम्बन्ध मे एक दूसरा ही मत प्रकट किया है। उन्ही के शब्दो में "कहावतो की एक किस्म और है जिन्हे तल्मीही कहते हैं, याने उनका तअल्लुक किसी-न-किसी तारीखी रिवायत से होता है। एक मसल मशहूर है "कहाँ राजा भोज और कहाँ गगुवा तेली।" इस कहावत मे इशारा है उस रिवायत की तरफ कि मालवा व गुजरात के राजा भोज ने अपनी लडकी गगुवा तेली के लडके से विवाह दी थी, सिर्फ इसलिए कि उसने एक वार दीपक राग गाकर महल के चिराग़ रोशन कर दिये थे।[2]

"राजा भोज और गगू तेली" विषयक जो भिन्न-भिन्न मत-मतान्तर मिलते हैं, उनके सम्वन्ध में अभी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। यह इतिहास के आचार्यों की गवेषणा का विषय है।[3]

(ओ) राजा भोज की गुणग्राहकता, दानशीलता और प्रसिद्धि के कारण किसी-किसी लोकोक्ति मे राजा भोज का नाम जोड दिया गया है जिससे कहावत पर प्रामाणिकता की छाप लग जाय।

उदाहरण के लिए प्रश्नोत्तरी के रूप मे प्रचलित इस लौकिकी गाथा को लीजिए—

"केडी चालै डोकरी, कँका काडै खोज।
काँई थारो खो गयो, पूछै राजा भोज॥

1 Vide "The Story of King Bhoja and Ganga Teli in Sanskrit and its relation to a proverb current in the Marathi Language"
—*The poona Orientalist Vol x, 3 & 4 July 1945-Oct. 1945*

२ रेडियो संग्रह, (त्रैमासिक) वर्ष १, अक २ मे 'कहावतें' शीर्षक मौलाना नियाज़ फतेहपुरी की वार्ता, पृष्ठ ३५।

३ विशेष विवरण के लिए देखिये मरु-भारती वर्ष ४, अक ३ में प्रकाशित एक कहावनी लोक-कथा' पृ० ११४-१५-१६।

म्हारै सं थारै गई, जैका काढ़ै खोज ।
थारै सं वी जायगी, मत गरवावै भोज ॥"

अर्थात् हे बुड्ढी स्त्री, तुम झुक-झुक कर चल रही हो, किसके खोज निकालती हो, तुम्हारा क्या खो गया है ? बुढ़िया राजा भोज के इस प्रश्न का उत्तर देती है—मेरी युवावस्था जाती रही, वह आज तुम्हारे पास है, मैं उसी को खोज रही हूँ, किन्तु याद रखना, वह तुम्हारे पास भी सदा के लिए न रहेगी। इसलिए हे भोज ! गर्व न कर ।

उक्त राजस्थानी कहावत को पढते ही संस्कृत सुभाषितकार का निम्नलिखित श्लोक अनायास स्मरण हो आता है—

"अधः पश्यसि किं बाले तव किं पतितं भुवि ।
रे रे मूढ न जानासि गतं तारुण्य मौक्तिकम् ॥"

अर्थात् हे बाले ! नीचे क्या देख रही हो ? भूमि पर तुम्हारा क्या गिर पड़ा है ? स्त्री ने उत्तर दिया—मूढ ! तुम्हे मालूम नही, मेरा यौवन रूपी मोती चला गया !

प्रकारान्तर से मलिक मुहम्मद जायसी भी यही कह गये हैं—

"मुहम्मद बिरिध जो नइ चलै, काह चलै भुंइ टोइ ।
जोबन रतन हिरान है, मकु धरती मैं होइ ॥"

युधिष्ठिर द्वारा किये गये यक्ष के प्रश्नोत्तरों पर जैसे हम पूर्ण विश्वास-सा करने लगते हैं, उसी प्रकार उक्त राजस्थानी प्रश्नोत्तर भी हमें इसके सम्पूर्ण सत्य को स्वीकार करने के लिए विवश कर देता है । इस सत्य की लोकप्रियता तो इसी से स्पष्ट है कि किस प्रकार यह भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप मे अवतरित हुआ है । इसको पढकर हम सोचते ही रह जाते हैं कि "जो आके न जाय ऐसा बुढापा देखा, जो जाके न आय ऐसी जवानी देखी ।" राजस्थानी कहावत मे भुक्तभोगी की उक्ति होने से बुढिया की कही हुई बात बडी मार्मिक हो गई है ।

(औ) राजस्थान मे ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमें पौराणिक पुरुषों का निर्देश हुआ है । जैसे,

१ "वैरोचन कै कस घर हिरणाकुश कै प्रहलाद ।"

जब योग्य व्यक्ति के अयोग्य अथवा अयोग्य के घर योग्य का जन्म होता है तब उक्त कहावत का प्रयोग किया जाता है ।

२. "सोनू गयो करण कै साथ ।"

अर्थात् सोना तो कर्ण के साथ चला गया । कर्ण जैसे दानी अब इस ससार में नही रहे । विशेष गुणी की मृत्यु होने पर उस गुणविशेष के स्मरणार्थ यह कहावत प्रयुक्त होती है ।

३. "नन्द रा फन्द तो कृष्ण जाणै पण कृष्ण रा छन्द कोई नी जाणै ।"

अर्थात् नन्द का फन्द तो कृष्ण जानते हैं किन्तु कृष्ण की कूटनीति को समझने वाला कोई नही । भागवत की वह कथा प्रसिद्ध है जिसमें कृष्ण ने वरुण-पाश से नन्द को मुक्ति दिलाई थी । जो स्वयं सबके छल-कपट को समझता हो किन्तु जिसका छल-कपट अन्य सभी की पहुँच के बाहर हो, ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध मे उक्त कहावत व्यवहृत होती है ।

इस प्रकार की पौराणिक प्रसग-गर्भित कहावतें न केवल राजस्थान में, वल्कि भारत के सभी प्रदेशो में प्रचलित है ।

सवाद-पद्धति हमारे देश की अत्यन्त प्राचीन पद्धति है। वेदो में भी यम-यमी जैसे सवादो के हमें दर्शन होते हैं। रामचरितमानस की तो समस्त कथा ही सवादो द्वारा कहलवाई गई है। इतिवृत्त भी यदि वार्तालाप के माध्यम द्वारा प्रस्तुत किया जाय तो उसका विशेष प्रभाव पडता है। सवाद के रूप मे जो ऐतिहासिक कहावतें राजस्थान में मिलती हैं, उनका सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियो के साथ होने से वे हमारे लिये असाधारण आकर्षण की वस्तु वन गई हैं। यह स्वाभाविक भी है कि महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो की बातचीत में हमारी अभिरुचि हो। इस अभिरुचि के कारण ऐतिहासिक महापुरुषो के सवादो को हम बार-बार स्मृति-पथ पर लाया करते हैं जिसके कारण वे कहावती रूप धारण कर लेते हैं। वार्तालाप के रूप मे प्रचलित इस प्रकार के कहावती प्रसग राजस्थान मे असंख्य हैं। नमूने के रूप में कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

(ग) वार्तालाप-सम्बन्धी—

(अ) **'नरा नाहरा डिगमरा पाक्यां ही रस होय'** अर्थात् मर्दों, सिंहो और दिगम्बरो (योगियो) मे रस-परिपाक अवस्था पकने पर ही होता है। यह सूक्ति कहावत की भाँति राजस्थान मे प्रचलित है। किन्तु निम्नलिखित वार्तालाप को समझ लेने पर ही इस उक्ति का मर्म समझ में आता है—

बीकानेर के महाराज रायसिंह जी के छोटे भाई पृथ्वीराज सुप्रसिद्ध 'पीथल' कवि थे जिनकी 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल का सर्वोत्तम काव्य समझा जाता है। इनकी रानी चापादे को भी कवि-हृदय मिला था। मुशी देवीप्रसाद ने इनका रचना-काल वि० स० १६५० माना है।[1] कहते हैं कि एक वार महाराज अपनी दाढी सँवार रहे थे। दाढी मे उनको एक सफेद बाल दिखाई पडा तो उन्होंने उसे उखाडकर फेंक दिया। पीछे से रानी चापादे ने महाराज को ऐसा करते देख लिया। महाराज मुस्कराकर कविता मे ही अपनी प्रिया से कहने लगे—

"पीथल धोला आविया, वहुली लागी खोड।
पूरे जोवन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड॥
पीथल पलीट भुक्किया, वहुली लागी खोड।
मरवण मत्त गयन्द ज्यूं, ऊभी मुक्ख मरोड॥"

पीथल कहता है कि सफेद वाल उग आए, यह तो वडी खोड (खोट, खरावी, त्रुटि) लग गई। वडा बुरा हुआ कि पूर्ण यौवन को प्राप्त पद्मिनी-सी मोहिनी प्रिया खडी हुई मेरी ओर देखकर मुख मरोड रही है। पीथल कहता है कि दाढी के वाल पकने लगे, वडा बुरा हुआ, जिसके कारण मदोन्मत्त हाथी के समान प्रिया मरवण खडी-खडी मुख मरोड रही है। यह सुनकर चापादे महाराज का भाव ताड गई और उनकी आत्म-ग्लानि के भाव को दूर करती हुई अपने पति के सतोषार्थ कहने लगी—

---

१. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ (डा० सावित्री सिन्हा), पृष्ठ ३६।

"प्यारी कहै पीथल सुणो, धौला दिस मत जोय।
नरां नाहरां डिगमरा, पाखया ही रस होय॥"

प्यारी कहती है कि हे पीथल ! सुनो, सफेद बालों की ओर न देखो "नरां नाहरां डिगमरा, पाख्या ही रस होय।"

(आ) इसी प्रकार "धर रहसी, रहसी धरम, खप जासी खुरसाण" एक कहावती दोहे का अंश है। कहते हैं कि महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिंह के लिए मुगलों से युद्ध करते-करते जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि या तो उनको देश छोड़ना पड़ता या उनको कैद होना पड़ता तो उन्होंने अपने मित्र अब्दुर्रहीम मिर्जाखां खानखाना को, जो हिन्दी, फारसी, अरबी, संस्कृत आदि के विद्वान् होने के साथ-साथ अच्छे कवि भी थे, निम्नलिखित दोहे लिखकर भेजे—

"गोड कछाहा राठवड, गोखा जोख करन्त।
कहजो खानखान ने, वनचर हुया फिरन्त॥
तवरां सू दिल्ली गई, राठोडां कनवज्ज।
अमर पयपै खान ने, वो दिन दीसै अज्ज॥"

अर्थात् गौड, कछवाहा और राठौड महलों में झरोखों में, मौज उड़ा रहे हैं। खानाखान से कहना कि हम जंगलों में भटक रहे हैं। तवर राजपूतों से दिल्ली गई, राठोडों से कन्नौज गया। अमरसिंह के लिए भी वह दिन आज दिखाई दे रहा है। इस सन्देश के उत्तर में खानखाना ने नीचे लिखा हुआ दोहा लिख भेजा—

✓ "धर रहसी, रहसी धरम, खप जासी खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरां, राखो नहचो राण॥"

अर्थात् धरती और धर्म रह जायेंगे, खुरासान वाले मुगल खप जायेंगे। हे राणा अमरसिंह, तुम विश्वम्भर भगवान पर भरोसा रखो। राज्य तो आते-जाते रहते हैं, धरती और धर्म ही हमेशा बने रहेंगे। खानखाना के उत्तर की ये मार्मिक पंक्तियाँ आज भी अवसर पड़ने पर राजस्थान में लोकोक्ति की भाँति व्यवहृत होती हैं। इस उत्तर से महाराणा का उत्साह बढ़ गया और वे निरन्तर लड़ाइयाँ लड़ते रहे।

(इ) मनुष्य के जीवन में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो विवादास्पद हैं, जिनके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु जो पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है, इसमें किसी को सन्देह नहीं। अँग्रेजी साहित्य में तो निश्चयात्मकता के लिए मृत्यु एक कहावती उपमान के रूप में प्रयुक्त होता है और वह मृत्यु भी कब आ जाय, इसका कोई ठिकाना नहीं। प्रबन्ध चिन्तामणि में अपभ्रंश का एक दोहा मिलता है—

"कृया ताविउ जहि न किउ, लक्खउ भणइ निघट्ट।
गणिया लब्भइ दीहडा, के दहक अहवा अट्ठ॥"[1]

अर्थात् मुंजाल लाखा का कथन है कि शत्रु का उदय होते ही यदि उसे नष्ट न किया जाय तो फिर न जाने भविष्य में क्या हो ! गिने-गिनाये आठ-दस दिन ही तो

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २, सं० १९७८ में प्रकाशित 'पुरानी हिन्दी' (प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी), पृष्ठ ३४।

जीने के लिए मिलते हैं। सम्भवत प्रबन्ध चिन्तामणि के उक्त पद्य के आधार पर ही राजस्थान मे लाखा फूलाणी आदि का निम्नोक्त मार्मिक प्रवाद प्रचलित हुआ हो—

"मरवो माया माणलो, लाखो कहै सुपट्ठ।
घणा दिहाडा जावसी, के सत्ता के अट्ठ॥"

अर्थात् हे मनुष्यो ! अधिक से अधिक सात या आठ दिन के लिए ही तो यह माया मिली है, क्यो नही इसका उपभोग कर लेते ? यह लाखा की स्पष्ट उक्ति है। इस पर लाखा की पत्नी कहती हैं--

"फूलाणी ! फेरो घणो, सत्ता सू अठ दूर।
रोते देख्या मुलकता, वे नहि उगते सूर॥"

स्वामिन् ! सात और आठ मे तो बहुत अन्तर है। जिन्हें हमने रात्रि में हँसते हुए देखा था, वे प्रात काल होते ही उस लोक को चल दिये जहाँ से लौटकर कोई नही आता। फूलाणी की पुत्री ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—

"लाखो भूल्यो लखपति, मा भी भूली जोय।
आखां तणे फरूकडे, क्या जाणू क्या होय॥"[1]

अर्थात् माता-पिता दोनो ने ही अच्छी तरह विचार कर बात नही कही। सच तो यह है कि आँखों के फडकने में जितना समय लगता है, उसमें ही न जाने क्या का क्या हो जाय।

दासी ने तो, जो यह सब सुन रही थी, और भी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए कहा—

"लाखो अधो, धी अँधी, अँध लाखा री जोय।
सांस बटाऊ पावणों, आवे न आवण होय॥"

अर्थात् लाखा, उसकी स्त्री, उसकी लडकी सब इस प्रकार बातें करते हैं जैसे उन्होने दुनिया को देखा ही न हो। आँखो के फडकने में भी तो समय लगता है। साँस के जाने मे समय कैसा ? अरे, श्वास तो बटाऊ (पथिक) के समान है, एक बार आकर फिर आये न आये, इसका कौन भरोसा ! श्वासोच्छ्वास के बीच का जो समय है, उसमे ही कितनी बडी घटना घटित हो जाय, जीव महाप्रयाण के लिए निकल पडे।

नश्वर जीवन का तथ्य दासी की उक्ति में चरम सीमा पर पहुँच जाता है। 'आंखां तणे फरूकडे क्या जाणू क्या होय' और 'सांस बटाऊ पावणो आवे न आवण होय' दोनो ही लोक-प्रचलित उक्तियाँ हैं जो ऊपर के कहावती वार्तालाप में से जीवन-निष्कर्ष के रूप में निकल पडी हैं। कविकुल गुरु की सूक्ति 'मरण प्रकृति. शरीरिणाम्' से इन लोकोक्तियो अथवा बोध-वाक्यो की तुलना की जा सकती है।

(ई) प्रवाद है कि राव चूंडा ने नागौर की विजय के बाद राज्य का प्रबन्ध अपनी नई रानी को सौंप दिया। रानी ने कई मदो में कटौती कर दी। घोडो को जो

---

१ मिलाइये "धरम विलब न कीजियइ, खिण खिण त्रूटइ आय।
आँखि तणइ फरूकडइ, घडी घरू थल थाय॥"
— कविवर समयसुन्दर-कृत सीताराम चौपाई

घी दिया जाता था, वह भी बन्द कर दिया । रावजी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने कहा—

"कलह करे मत कामणी, घोडा घी देताह ।
आडा कदेक आवसी, वाडेली वहताह ।।"

अर्थात् हे कामिनी ! घोडो को घी देते समय कलह मत कर । कभी तलवार चलाने का काम पडने पर अर्थात् युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर ये घोडे काम आयेंगे ।

वाक्-चातुर्य प्रदर्शित करते हुए रानी ने उत्तर दिया—

"आक चटूकै पवन भख, तुरिया आगल जाय ।
मैं तनै पूछूँ सायवा, हिरण किसा घी खाय ।।"

अर्थात् हे स्वामिन् ! मैं आपसे पूछती हूँ कि हरिण कौनसा घी खाते हैं ? वे तो आक चबाते हैं और पवन का भक्षण करते हैं । फिर भी दौड में घोडो से आगे निकल जाते हैं ।

रानी की इस कटौती की नीति से असन्तुष्ट होकर सरदार भी एक-एक करके रावजी को छोडकर चल दिये । रावजी ने रानी को कोसना शुरू किया किन्तु अब उपाय ही क्या रह गया था ? कहा जाता है कि शत्रुओ ने परिस्थिति से लाभ उठाकर रावजी पर विजय प्राप्त की । नागौर शत्रुओ के हाथ चला गया और स्वय रावजी भी इस युद्ध मे खेत रहे ।[1]

उक्त सवाद भी राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित है ।

(उ) बूँदी के हाडा चौहान बुधसिंह विपत्तिग्रस्त होकर अपनी रानी चूँडावत के घर बेगूँ चले आये । बेगूँ के रावत देवीसिंह ने इनकी बडी खातिरदारी की और इन्हे बडे सम्मान से अपने पास रखा, अपनी जागीर ही इनके सुपुर्द कर दी । इस अह-सान का बुधसिंह पर बहुत प्रभाव पड़ा । उन्होने रावत देवीसिंह से कहा—

"धर पलटी, पलट्यो धरम, पलट्यो गोत निसक ।
दवो हरीचंद राखियो, अधपतियाँ सिर अक ।।"

अर्थात् जमीन गई, ईमान गया, गोत्री भाई भी नि.शक बदल गये । ऐसे समय हरिसिंह के पुत्र देवीसिंह ने राजा बुधसिंह के ऊपर बहुत बडा अहसान किया । उसके उत्तर में रावत देवीसिंह ने कहा ।

"देवा दरियावाँ तणो, होड न नाडो होय ।
जो नाडो पार्जा छलै, तो दरियाव न होय ।।"

---

१. राजस्थान के ऐतिहासिक संवाद (प्रथम शतक), पृष्ठ ३१-३२.
मिलाइये—

चोंच खावा कनधरी, घी खायो लोगाह ।
चूक चाली ठाकरां, हाथे होताह ।।

अर्थात् ठाकुरों को घास खाने को मिला और लोगों ने घी के माल उड़ाये । हे ठाकुर साहब, (चूक ठाकुर साहब से मतलब है) इसी का फल है कि आपका यह किला दौड़ लगाते हुए हाथ से निकल रहा है ।

राजस्थान रा दूहा, भाग पहलो : (श्री नरोत्तमदास स्वामी), पृष्ठ ६६।

अर्थात् दरियाव स्वरूप राजा बुधसिंह की बराबरी देवा-जैसा नाला कर नहीं कर सकता। नाले का पानी अपनी सीमा का अतिक्रमण करके भी वहने लग जाय तब भी वह दरियाव नहीं बन सकता।

महाराव बुधसिंह बारह वर्षों तक वेगूं में रहे और विक्रम सवत् १७९६ में वेगूं के पास वाघपुरे गाँव मे इनका देहान्त हो गया।[१]

उक्त दोहे का उत्तरार्द्ध एक कहावत-सा जान पडता है। ऐसा लगता है कि यह पक्ति प्रसगोदभूत है। कहावत के रूप मे राजस्थान में चाहे इस पक्ति का प्रचलन न हुआ हो किन्तु इसमे एक कहावत बनने की क्षमता है, इसका आकार-प्रकार भी कहावतोचित है।

(घ) स्थानीय कहावतें—

कुछ कहावतें ऐसी होती हैं जो स्थान-विशेष में ही अधिक प्रचलित होती हैं। इस प्रकार की कहावतें प्राय दुनिया के सभी देशो मे मिलती हैं। राजस्थान में भी ऐसी कहावतो का अभाव नही है। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें लीजिए।

(अ) 'सपनै देखं सांखली नापासर रा रूंख' अर्थात् हे सांखली! अब नापासर के पेडो को स्वप्न मे ही देखना।

नापासर के सुप्रसिद्ध नापा साखला की वीर पुत्री साखली अपनी कोमल भावनाओ के लिए प्रसिद्ध थी। अपनी सखी-सहेलियो से जितना प्यार साखली करती थी, उतना और कोई शायद ही कर पाता हो। होली-दिवाली पर नगर भर की कुमारियाँ राज-महल में एकत्र हुआ करती थी। राज्य की ओर से सबको एक रग के रेशमी वस्त्र पहनने को मिलते थे। साखली उन सब के साथ डाँडियो का सुप्रसिद्ध नाच नाचती थी। वह अपने पिता की लाडली बेटी थी। नापा पुत्री की बात को टालते न थे। बाप और बेटी का प्रेम प्रसिद्ध था।

साखली सपनी मातृभूमि के कण-कण से प्रेम करती थी। उसकी माँ बचपन मे मर चुकी थी। विमाता की उससे बनती न थी, पर साखली के आगे विमाता की कुछ चलने न पाती थी। नापा अपनी बेटी के लिए सब कुछ करने को तैयार था। राज्य के छोटे-मोटे सभी अफसर साखली के आगे हाथ जोडे खडे रहते थे।

बडी मनौती मनाने पर विमाता के पुत्र हुआ पर वह बडा कुरूप था, काना और कुबडा। नापा को वह फूटी आँख न सुहाता था, साखली पर ही उसका सारा वात्सल्य न्योछावर था।

साखली बडी हुई। नापा उसका विवाह किसी घर-जमाई के साथ करके उसे वही रखना चाहता था ताकि वह राज्य-भार सँभालने मे अपने अयोग्य भाई का हाथ बँटा सके। विमाता भला उसे कब सहन कर पाती! षड्यन्त्र रचकर उसने नापा की अनुपस्थिति मे धोखा देकर साखली का विवाह दूरदेशवासी राणा से कर दिया। सारा नापासर रो रहा था। विदा होती हुई साखली को विमाता ने शरारत की हँसी हँसते हुए कहा था—

---

१ चौहान कुल कल्पद्रुम, प्रकाशक न्यायरत्न देसाई लल्लूभाई सन् १९२७, पृष्ठ ७७।

"सपनें देखें सांखली, नापासर रा रूख ।"

(आ) 'वणज्या एक वार तो रतन' एक बार तो रतन बन जा ।

इस कहावत का निकास इस प्रकार है—"स्वनामधन्य एव भगवद्भक्त सेठ रामरतन जी डागा वर्तमान सुविख्यात फर्म बंशीलाल जी अबीरचन्द के मालिकों के पुरखे थे । आप जाति के माहेश्वरी डागा थे । महादेव के आप पूर्ण भक्त थे और दानी तो ऐसे थे कि लोग उन्हें दूसरा कर्ण कहा करते थे । उनकी दानशीलता से लोग इतने प्रभावित हो गये कि वे उन्हें रतन ही कहकर पुकारते थे । उनके द्वार से कभी कोई याचक खाली हाथ नही लौटा । कजूस व्यक्ति को लज्जित करने के लिए आज भी कहा जाता है कि 'एक बार तो सेठ रामरतन बन जा ।'[१]

उक्त दोनो कहावतें अधिकतर बीकानेर की ओर ही प्रचलित हैं ।

(इ) "काल पडे तो कुम्भा धणी, मेह बरसे तो मजूरी घणी ।"

अर्थात् मेवाड के राणा कुम्भा की प्रजा कहती है कि यदि अकाल पडा तो हमारे राजा मालिक हैं, वे हमारा पालन करेंगे और यदि वर्षा हुई तो मजदूरी बहुत । हमको किसी प्रकार की चिन्ता नही है ।

(ई) "सन्त सगाई ना करे, माथे ना बांधे मौड़ ।
परणी लावे पार की, जाय घोसुण्डे दौड ।।"

अर्थात् वैरागी साधु न तो सिर पर मौड बांधते हैं और न सगाई ही करते हैं । ये तो घोसुंडे के मेले मे जाकर दूसरो की विवाहित स्त्री को ले आते हैं । मेवाड के घोसूंडे नामक गांव मे पहले बाबो का एक मेला लगता था जिसमे अपनी नापसन्दगी की पत्नियां कपडे से पूरी ढँककर बैठा दी जाती थीं । जिसके जी मे जो आती, वही उसे उठा लाता था और कम से कम आगामी मेले तक एक वर्ष उसे रखना ही पडता था ।[२]

इ, और ई, कहावतो का मेवाड की तरफ ही अधिक प्रचार है ।

(उ) माया नांगी बाघला कै लागी फूलाणी ।
रहती पैती मांणगो, हरगोविन्द नाटाणी ।।[३]

अर्थात् ऐश्वर्य या तो बाघलो ने भोगा या नागा फूलाणी ने, बचा-खुचा ऐश्वर्य भोगा हरगोविन्द नाटाणी ने । यह नाटाणी जयपुर का खंडेलवाल महाजन था जिसने महाराजा ईश्वरीसिंह जी को धोखा देकर केशवदास खत्री मुसाहिब को जहर पिलवाकर मरवा दिया और आप मुसाहिब हो गया, और राज्य के धन को ऐश-आराम और दातारी में उडाकर दातार मशहूर हो गया, और मरने का काम पड़ा तब माधोसिंह जी में मिल गया कि जिससे ईश्वरीसिंह जी को भी विष से आत्म-हत्या करनी पडी । यद्यपि यह बडा षड्यन्त्रकारी था तो भी याचकों ने इनके दान की बडी

१. राजस्थानी कहावतें, भाग दूसरा संपादक प्रो० नरोत्तम दास स्वामी तथा पंडित मुरलीधर व्यास विशारद पृष्ठ १२२ ।

२. मेवाड़ की कहावतें, भाग १ (पं० लक्ष्मीलाल जोशी), पृष्ठ १८६-१८७ ।

३. राजस्थान रा दूहा (तीसरा भाग), भूमिका, पृष्ठ ८८-८९ ।

प्रशसा की है। उसी समय का ईश्वरीसिंह जी का कहा हुआ यह मर्मस्पर्शी वाक्य प्रसिद्ध है—

"साँचो तू ईसरा, झूठी या काया।
प्याला केशोदास ने पाया सो पाया॥"

उक्त कहावत जयपुर की तरफ अधिक प्रसिद्ध है।

(ङ) राजवंशों से सम्बद्ध—

राजवशो को लेकर भी राजस्थान में अनेक कहावतें कही जाती हैं। उनमे से अत्यन्त प्रसिद्ध उक्तियों का आश्रय ले यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराने की चेष्टा की जा रही है।

(अ) "जद कद दिल्ली तंवरा" राजस्थान की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसका अर्थ है कि जब कभी दिल्ली पर किसी ने शासन किया तो तवरो ने ही। हमारे पास कोई ऐसा ऐतिहासिक साधन नही है जिसके आधार पर हम दिल्ली पर तवरो के अधिकार की तिथि निश्चित कर सकें। · परम्परा से यह प्रसिद्ध है कि अनगपाल ने सवत् ७९२ में दिल्ली नगर वसाया। हम इस अनगपाल को अनगपाल प्रथम मानें तो यह मानना असगत न होगा कि राजा वत्सराज प्रतिहार के समय के आस-पास तवरो ने दिल्ली नगर बसाया। पुराना इन्द्रप्रस्थ उस समय से पहले उजड चुका होगा। सन् १३२८ के दिल्ली म्यूजियम के शिलालेख मे भी तवरो द्वारा दिल्ली के बसाये जाने का उल्लेख है। उसके अनुसार पृथ्वी पर हरियाना नाम का स्वर्ग-तुल्य देश है। वहाँ तोमरो द्वारा निर्मित दिल्ली नाम की पुरी है। तोमरो के अनन्तर कटको को दूर कर प्रजा के पालन मे तत्पर चाहमान राजाओ ने वहाँ राज्य किया।

तवरो का सवसे प्राचीन उल्लेख पेहवे के एक शिलालेख में मिला है। उसके अनुसार तोमर जाउल के वश मे वज्रट नाम का एक पुरुष हुआ जिसने खूब उन्नति की।···जाउल के वशजों का दिल्ली प्रदेश से शायद कुछ सम्बन्ध रहा हो। उसे ही तवर अपना मूल स्थान मानते आये हैं।

तोमरवश के कुछ अन्य व्यक्तियो का उल्लेख हमे सवत् १०३० (ई० सन् ९७३) के हर्षनाथ के शिलालेख मे मिलता है। चौहान और तोमर, दोनो कन्नौज के प्रतिहार राजाओ के सामन्त थे। प्रतिहार सम्राट् महेन्द्रपाल की मृत्यु के वाद जव प्रतिहार साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी तो इधर-उधर के दूसरे सामन्तो की तरह इन्होने भी सिर उठाना और परस्पर लडना शुरू किया।

चौहान-तवर-सघर्ष से इतिहास के पृष्ठ भरे हैं। किन्तु अर्णोराज की मृत्यु के वाद जव विग्रहराज चतुर्थ गद्दी पर वैठा तो मुसलमानो ने फिर अपनी किस्मत आजमाई। किन्तु वे फिर हारे और चौहान फिर एक वार उत्तर की तरफ वढे। तत्कालीन प्रमाणो और अनुश्रुति से भी यह सिद्ध है कि चौहानो ने तवरो को हराया तथा दिल्ली और हासी के दुर्गों को हस्तगत कर लिया। तवरो के स्वाधीन राज्य की इससे इतिश्री हुई। उस समय दिल्ली का राजा सम्भवत मदनपाल तवर था। श्री जिनपाल रचित खरतरगच्छ पट्टावली मे हमे ज्ञात है कि सवत् १२२३ मे यही

मदनपाल दिल्ली का राजा था ।[1]

मुद्दत तक दिल्ली में तवरो का राज्य रहने से उक्त कहावत प्रचलित हुई होगी किन्तु तवरो के राज्य की इतिश्री होने पर भी अब इस कहावत की सार्थकता क्या है ? डाक्टर दशरथ शर्मा के शब्दो मे "तवर अब भी आशा करते हैं कि दिल्ली में किसी-न-किसी दिन तवरो का राज्य होगा । तवर सरदार मूँछों पर ताव देते हुए 'जद-कद दिल्ली तवरा' कहते हैं तो प्रतीत होता है कि स्वप्न-ससार मे भी कुछ आनन्द है । आठ सौ वर्ष मे तवर दिल्ली पर अधिकार जमाने का स्वप्न लेते रहे हैं । किन्तु अधिकतर यह स्वप्न ही रहा है । तलवार के बल पर इस लम्बे अर्से में किसी तवर ने दिल्ली को पुन हस्तगत करने का प्रयत्न भी नही किया ।"

वस्तुस्थिति शायद यह है कि कोई कहावत जब एक बार प्रचलित हो जाती है, तो अभिधेयार्थ घटित न होने पर भी, उसका प्रचलन रुकने नही पाता क्योकि प्रस्तुत के अतिरिक्त कहावत का एक अप्रस्तुत अर्थ भी हुआ करता है जिसके बल पर चिरकाल तक वह अपना अस्तित्व बनाये रखती है । 'जद कद दिल्ली तवरा' इस लोकोक्ति का केवल तवर ही प्रयोग नही करते, आज भी जब किसी का अधिकार छीन लिया जाता है तो वह उसकी पुन प्राप्ति के लिए गर्वोक्ति के रूप में कहता सुना जाता है, 'जद कद दिल्ली तवरा' । दिल्ली चाहे आज तवरो की न रही हो किन्तु कहावत का प्रयोक्ता अपने हृदय के उद्‌गार इसी कहावत के माध्यम द्वारा व्यक्त कर जाता है । कहावत की महिमा ही कुछ ऐसी है ।

(आ) एक दूसरी कहावत है "कीली तो ढीली थई, तवर हुए मतहीन" । कहते हैं कि एक तवर राजा से ज्योतिषियो ने कहा था कि एक ऐसा शुभ क्षण आता है जिसमें कीली गाडने से आपका राज्य सदा के लिए अचल हो जायगा क्योकि वह कीली शेषनाग के मस्तक मे जा धसेगी । एक बडी कीली अष्टधातु की बनवाई गई । जब वह शुभ वेला आई तो पडितो ने कीली को जमीन में गाड दिया और राजा से कहा कि अब आपका राज्य अचल हो गया । किन्तु राजा को इस पर यकीन नही आया और उसने जिद्द करके कीली उखडवाई । कीली की नोक खून से भरी हुई देख पंडितो ने कहा—देख लीजिये, यह शेषनाग का खून है । राजा ने शर्मिन्दा होकर पंडितो से फिर कीली गाडने को कहा किन्तु उन्होंने उत्तर दिया 'वह पानी मुल्तान गया ।' कुछ लोग कहते हैं कि यह कीली वासुकि नाग के सिर पर गाडी गई थी और उसके उखेडने से तवर उखड गये । चौहानो ने उनसे दिल्ली का राज्य छीन लिया और तवर दूसरे मुल्को मे निकल गये ।[2]

उक्त कहावत मे धर्म-गाथा अथवा दन्त-कथा के तत्त्व का समावेश हो गया है । आज जब इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा रहा है, इस प्रकार की

---

१. राजस्थान भारती, भाग ६, अंक ३-४ में प्रकाशित डाक्टर दशरथ शर्मा का 'दिल्ली का तोमर' (तवर राज्य), पृष्ठ १७-२१ ।

२. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, सन् १८९१ ईस्वी, भाग ३, पृष्ठ ८ ।

मिलाइये—

"तवरां सूं दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज ।
अमर पयम्पे भान ने, ओ दिन आयो अज्ज ॥"

कहावतें विश्वसनीय नही रह गई हैं। इस कहावत से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि चौहानो ने तवरों से दिल्ली का राज्य छीन लिया था।

(इ) पवारों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें भी बहुत समय से चली आती हैं—

"पिरथी बडा पमार, पिरथी परमारा तणी।
एक उजीणी धार, वीजो आवू बैसणो॥
ज्यां पमार त्या धार है, धारा जठे पमार।
बिन पमार धारा नहीं, धारा बिना पमार॥"

अर्थात् पृथ्वी पर पवार राजपूत बडे हैं, पृथ्वी ही पवारो की है। उनके बैठने की जगह एक तो उज्जैन और धार है और दूसरे आबू के पहाड हैं। जहाँ पवार है, वही धारा है। जहाँ धारा है, वही पवार हैं। पवारो के बिना धारा नहीं और धारा के बिना पवार नही।

जिस जाति ने वाक्पति और भोज, उदयादित्य एव जयदेव जैसे महापुरुषो को जन्म दिया, वह वास्तव मे महान् थी, उसका प्रभुत्व अत्युच्च था। अपनी प्राचीन गरिमा से परमार वश अब भी गौरवान्वित है। ऐसे वश के सम्बन्ध मे यदि उक्त कहावतें प्रचलित हो गई हो तो यह सर्वथा स्वाभाविक है, इसमे आश्चर्य की कोई बात नही।

(ई) 'राजकुलां राठौड' और 'रणवका राठौड' जैसी अनेक कहावतें राठौडो के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। हाडो के सम्बन्ध में भी कहा जाता है—**'हाडा बांका राड मे'** अर्थात् हाडे युद्ध मे बाके होते हैं किन्तु इस उक्ति की अपेक्षा **'रणबका राठौड़'** अधिक

कहावतो-सम्बन्धी ग्रन्थ में चीन की अनेक ऐतिहासिक कहावतो की प्रसग-सहित व्याख्या की है। कहावतो के तुलनात्मक अध्येता के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य सामग्री से भरा हुआ है। स्काटलैण्ड में भी इतिहास-सम्बन्धी कहावतें विशेष रूप से पाई जाती हैं।[1]

राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो से जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे प्राय पद्यात्मक हैं। इन कहावती पद्यो में इतिहास-बोध और काव्य दोनो का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। राजस्थान में ऐसे अनेक लोग पाये जाते हैं जिन्होने इतिहास के ग्रन्थो का कभी कोई अध्ययन नही किया किन्तु फिर भी इतिहास की बहुत-सी बातो से जिनका परिचय है। इसका मुख्य कारण यह है कि बहुत-से कहावती दोहे आज भी लोगो की जबान पर हैं। दोहो द्वारा इतिहास को सजीव बनाये रखना राजस्थान और गुजरात जैसे प्रान्तो की अपनी विशेषता रही है।

इतिहास-सम्बन्धी जो पद्य राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रचलित हैं, उन्हे राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो का नाम दिया गया है। किन्तु इन ऐतिहासिक कहावतो और सर्व-सामान्य लोकोक्तियो में थोडा अन्तर है। 'करणी भोगै आपकी, कै बेटो कै बाप' अर्थात् चाहे पिता हो, चाहे पुत्र, सब अपने किये का फल भोगते हैं। 'गाय न वाछी, नींद आवै आछी' अर्थात् जिनके पास न गाय है, न बछिया, वह निश्चित होकर सोता है। इस प्रकार की सामान्य लोकोक्तियाँ जितने विस्तृत जन-समुदाय में प्रचलित हैं, उतनी व्याप्ति इन पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतो की नही है। इतिहास-सम्बन्धी ये कहावतें राजवंशो, चारणो तथा राजस्थानी भाषा के विद्वानो में अधिक प्रचलित हैं।

उक्त कहावतो मे ऐतिहासिक तथ्य कितना है और कल्पना के अश का समावेश किस मात्रा मे हो गया है, इस दृष्टि से किसी विद्वान् ने इनका विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन अभी नही किया है। राजस्थान का इतिहास लिखने वाले विद्वानो ने स्थान-स्थान पर अपने ग्रन्थो में इन कहावतो का उल्लेख अवश्य किया है।

राजस्थान के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली कहावतो में सामन्ती युग की झलक मिलती है, वर्तमान जनतन्त्रात्मक युग में बहुत-सी कहावतो का रंग भी फीका पड गया है किन्तु फिर भी राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। पुरानी परम्परा के चारणो तथा बडे-बूढो के मुख से ही इस प्रकार के उपाख्यान सुनने को मिलते हैं। ये उपाख्यान विस्मृति के गर्भ में विलीन न हो जावें, इस दृष्टि से पहला महत्त्वपूर्ण कार्य इनको संग्रह करने का है।

कहना न होगा, राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें स्वत एक अनुसधान का विषय है।

Historical, Semi-Historical, Legendary or Mythical Persons & Events pertaining to Specific places or districts

1 Historical Scottish Proverbs

—*Chambers's Journal, Feb., 1897.*

कहावतें विश्वसनीय नही रह गई हैं। इस कहावत से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि चौहानों ने तवरो से दिल्ली का राज्य छीन लिया था।

(इ) पवारो के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें भी बहुत समय से चली आती हैं—

"पिरथी वडा पंमार, पिरथी परमारां तणी।
एक उजीणी धार, बीजो आवू बैसणो॥
ज्यां पमार त्या धार है, धारा जठे पमार।
विन पमार धारा नहीं, धारा विना पमार॥"

अर्थात् पृथ्वी पर पवार राजपूत बडे हैं, पृथ्वी ही पवारो की है। उनके बैठने की जगह एक तो उज्जैन और धार है और दूसरे आबू के पहाड हैं। जहाँ पवार है, वही धारा है। जहाँ धारा है, वही पवार हैं। पवारो के विना धारा नही और धारा के विना पवार नही।

जिस जाति ने वाक्पति और भोज, उदयादित्य एव जयदेव जैसे महापुरुषो को जन्म दिया, वह वास्तव मे महान् थी, उसका प्रभुत्व अत्युच्च था। अपनी प्राचीन गरिमा से परमार वश अब भी गौरवान्वित है। ऐसे वश के सम्बन्ध मे यदि उक्त कहावतें प्रचलित हो गई हो तो यह सर्वथा स्वाभाविक है, इसमे आश्चर्य की कोई बात नही।

(ई) 'राजकुला राठौड' और 'रणवका राठौड' जैसी अनेक कहावतें राठौडो के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। हाडो के सम्बन्ध में भी कहा जाता है—'हाडा वाका राड में' अर्थात् हाडे युद्ध मे बाके होते हैं किन्तु इस उक्ति की अपेक्षा 'रणवका राठौड' अधिक प्रचलित है।[1] राठौड मैदान की लडाई को हमेशा पसन्द करते थे और बादशाही फौज मे तो हमेशा हरावल मे यही रहते थे, किले की लडाइयो में भी इन्होने सब जगह प्रसिद्धि ही प्राप्त की है।

(उ) 'गाडा टलै, हाडा न टलै' यह हाडो के सम्बन्ध मे सबसे प्रसिद्ध कहावत है। हाडा चौहान राजपूतो की एक शाखा है। बूंदी का राज्य देवा जी हाडा ने स्थापित किया था। देवाजी के वशधरो ने वीरता मे बडा नाम पैदा किया जिसके कारण उपर्युक्त कहावत प्रचलित हो गई। अन्य राजवशो के सम्बन्ध मे भी यद्यपि कहावती पक्तियो का अभाव नही है, तथापि विस्तार-भय से यहाँ उन सबका विवेचन अभीष्ट नही है।

निष्कर्ष—ऊपर जो कहावतें दी गई हैं, उनमे अनेक ऐतिहासिक हैं, अनेक अर्द्ध-ऐतिहासिक हैं तथा कुछ धर्म-गाथाओ से सबद्ध हैं। राजस्थान की भाँति चीन की भाषा में भी इस प्रकार की कहावतो का प्राचुर्य है। एच० स्मिथ[2] ने अपने

---

१ वलहट वका देवडा, करतब वका गोड।
हाडा वाका गाढ में, रणवका राठोड॥
गरुड खगा लका गढा, मेरु पहाडा मोड।
रूखा में चन्दन भनो, राजकुला राठोड॥

2 Vide proverbs and Common Sayings from the Chinese by Arthur H Smith Chapters V-Vi. Proverbs containing Allusions to

कहावतों-सम्बन्धी ग्रन्थ में चीन की अनेक ऐतिहासिक कहावतों की प्रसंग-सहित व्याख्या की है। कहावतों के तुलनात्मक अध्येता के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य सामग्री से भरा हुआ है। स्काटलैण्ड में भी इतिहास-सम्बन्धी कहावतें विशेष रूप से पाई जाती हैं।[1]

राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतों के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे प्राय पद्यात्मक हैं। इन कहावती पद्यों में इतिहास-बोध और काव्य दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। राजस्थान में ऐसे अनेक लोग पाये जाते हैं जिन्होंने इतिहास के ग्रन्थों का कभी कोई अध्ययन नहीं किया किन्तु फिर भी इतिहास की बहुत-सी बातों से जिनका परिचय है। इसका मुख्य कारण यह है कि बहुत-से कहावती दोहे आज भी लोगों की जबान पर हैं। दोहों द्वारा इतिहास को सजीव बनाये रखना राजस्थान और गुजरात जैसे प्रान्तों की अपनी विशेषता रही है।

इतिहास-सम्बन्धी जो पद्य राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित हैं उन्हें राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतों का नाम दिया गया है। किन्तु इन ऐतिहासिक कहावतों और सर्व-सामान्य लोकोक्तियों में थोड़ा अन्तर है। 'करणी भोगै आपकी, कै बेटो कै बाप' अर्थात् चाहे पिता हो, चाहे पुत्र, सब अपने किये का फल भोगते हैं। 'गाय न बाछी, नींद आवै आछी' अर्थात् जिसके पास न गाय है, न बछिया, वह निश्चिंत होकर सोता है। इस प्रकार की सामान्य लोकोक्तियाँ जितने विस्तृत जन-समुदाय में प्रचलित हैं, उतनी व्याप्ति इन पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतों की नहीं है। इतिहास-सम्बन्धी ये कहावतें राजवंशों, चारणों तथा राजस्थानी भाषा के विद्वानों में अधिक प्रचलित हैं।

उक्त कहावतों में ऐतिहासिक तथ्य कितना है और कल्पना के अंश का समावेश किस मात्रा में हो गया है, इस दृष्टि से किसी विद्वान् ने इनका विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन अभी नहीं किया है। राजस्थान का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने स्थान-स्थान पर अपने ग्रन्थों में इन कहावतों का उल्लेख अवश्य किया है।

राजस्थान के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली कहावतों में सामन्ती युग की झलक मिलती है, वर्तमान जनतन्त्रात्मक युग में बहुत-सी कहावतों का रंग भी फीका पड़ गया है किन्तु फिर भी राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व है। पुरानी परम्परा के चारणों तथा बड़े-बूढ़ों के मुख से ही इस प्रकार के उपाख्यान सुनने को मिलते हैं। ये उपाख्यान विस्मृति के गर्भ में विलीन न हो जायें, इस दृष्टि से पहला महत्त्वपूर्ण कार्य इनको संग्रह करने का है।

कहना न होगा, राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें स्वतः एक अनुसंधान का विषय है।

Historical, Semi-Historical, Legendary or Mythical Persons & Events pertaining to Specific places or districts.

1 Historical Scotish Proverbs

—*Chambers's Journal, Feb., 1897.*

कहावतें विश्वसनीय नही रह गई हैं। इस कहावत से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि चौहानो ने तवरों से दिल्ली का राज्य छीन लिया था।

(इ) पवारों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें भी बहुत समय से चली आती हैं—

"पिरथी वडा पमार, पिरथी परमारा तणी।
एक उजीणी धार, बीजो आबू बैसणो॥
ज्यां पमार त्या धार है, धारा जठे पमार।
विन पमार धारा नहीं, धारा विना पमार॥"

अर्थात् पृथ्वी पर पवार राजपूत बडे हैं, पृथ्वी ही पवारो की है। उनके बैठने की जगह एक तो उज्जैन और धार है और दूसरे आबू के पहाड हैं। जहाँ पवार है, वही धारा है। जहाँ धारा है, वही पवार हैं। पवारो के विना धारा नही और धारा के विना पवार नही।

जिस जाति ने वाक्पति और भोज, उदयादित्य एव जयदेव जैसे महापुरुषों को जन्म दिया, वह वास्तव मे महान् थी, उसका प्रभुत्व अत्युच्च था। अपनी प्राचीन गरिमा से परमार वश अब भी गौरवान्वित है। ऐसे वश के सम्बन्ध मे यदि उक्त कहावतें प्रचलित हो गई हो तो यह सर्वथा स्वाभाविक है, इसमें आश्चर्य की कोई बात नही।

(ई) 'राजकुलां राठोड' और 'रणबका राठोड' जैसी अनेक कहावतें राठौडों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। हाडो के सम्बन्व मे भी कहा जाता है—'हाडा बांका राड में' अर्थात् हाडे युद्ध मे बाके होते हैं किन्तु इस उक्ति की अपेक्षा 'रणबका राठोड' अधिक प्रचलित है।[1] राठोड मैदान की लडाई को हमेशा पसन्द करते थे और बादशाही फौज मे तो हमेशा हरावल मे यही रहते थे, किले की लडाइयो में भी इन्होने सब जगह प्रसिद्धि ही प्राप्त की है।

(उ) 'गाडा टलै, हाडा न टलै' यह हाडो के सम्बन्ध मे सबसे प्रसिद्ध कहावत है। हाडा चौहान राजपूतो की एक शाखा है। बूदी का राज्य देवा जी हाडा ने स्थापित किया था। देवाजी के वशधरो ने वीरता मे बडा नाम पैदा किया जिसके कारण उपर्युक्त कहावत प्रचलित हो गई। अन्य राजवशों के सम्बन्ध में भी यद्यपि कहावती पक्तियो का अभाव नही है, तथापि विस्तार-भय से यहाँ उन सबका विवेचन अभीष्ट नही है।

निष्कर्ष—ऊपर जो कहावतें दी गई हैं, उनमे अनेक ऐतिहासिक है, अनेक अर्द्ध-ऐतिहासिक हैं तथा कुछ धर्म-गाथाओ से सबद्ध हैं। राजस्थान की भाँति चीन की भाषा में भी इस प्रकार की कहावतो का प्राचुर्य है। एच० स्मिथ[2] ने अपने

---

१ वलहट बका देवडा, करतब बका गोड।
हाडा बाका गाढ में, रणबका राठोड॥
गरुड खगा लका गढा, मेरु पहाडा मोड।
रूखा में चन्दन मनो, राजकुला राठोड॥

2 Vide proverbs and Common Sayings from the Chinese by Arthur H Smith Chapters V-Vi Proverbs containing Allusions to

कहावतो-सम्बन्धी ग्रन्थ में चीन की अनेक ऐतिहासिक कहावतो की प्रसग-सहित व्याख्या की है। कहावतो के तुलनात्मक अध्येता के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य सामग्री से भरा हुआ है। स्काटलैंड में भी इतिहास-सम्बन्धी कहावतें विशेष रूप से पाई जाती हैं।[1]

राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो से जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे प्राय पद्यात्मक हैं। इन कहावती पद्यो में इतिहास-बोध और काव्य दोनो का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। राजस्थान में ऐसे अनेक लोग पाये जाते हैं जिन्होने इतिहास के ग्रन्थो का कभी कोई अध्ययन नही किया किन्तु फिर भी इतिहास की बहुत-सी बातो से जिनका परिचय है। इसका मुख्य कारण यह है कि बहुत-से कहावती दोहे आज भी लोगो की जबान पर हैं। दोहो द्वारा इतिहास को सजीव बनाये रखना राजस्थान और गुजरात जैसे प्रान्तो की अपनी विशेषता रही है।

इतिहास-सम्बन्धी जो पद्य राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रचलित हैं उन्हे राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतो का नाम दिया गया है। किन्तु इन ऐतिहासिक कहावतो और सर्व-सामान्य लोकोक्तियो में थोडा अन्तर है। **'करणी भोगै आपकी, कै बेटो कै बाप'** अर्थात् चाहे पिता हो, चाहे पुत्र, सब अपने किये का फल भोगते हैं। **'गाय न वाछी, नींद आवै आछी'** अर्थात् जिसके पास न गाय है, न बछिया, वह निश्चित होकर सोता है। इस प्रकार की सामान्य लोकोक्तियाँ जितने विस्तृत जन-समुदाय में प्रचलित हैं, उतनी व्याप्ति इन पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतो की नही है। इतिहास-सम्बन्धी ये कहावतें राजवशो, चारणो तथा राजस्थानी भाषा के विद्वानो में अधिक प्रचलित हैं।

उक्त कहावतो मे ऐतिहासिक तथ्य कितना है और कल्पना के अश का समावेश किस मात्रा मे हो गया है, इस दृष्टि से किसी विद्वान् ने इनका विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन अभी नही किया है। राजस्थान का इतिहास लिखने वाले विद्वानो ने स्थान-स्थान पर अपने ग्रन्थो में इन कहावतो का उल्लेख अवश्य किया है।

राजस्थान के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली कहावतो में सामन्ती युग की झलक मिलती है, वर्तमान जनतन्त्रात्मक युग में बहुत-सी कहावतो का रंग भी फीका पड गया है किन्तु फिर भी राजस्थान के सास्कृतिक इतिहास की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व है। पुरानी परम्परा के चारणो तथा बडे-बूढो के मुख से ही इस प्रकार के उपाख्यान सुनने को मिलते हैं। ये उपाख्यान विस्मृति के गर्भ में विलीन न हो जायें, इस दृष्टि से पहला महत्वपूर्ण कार्य इनको सग्रह करने का है।

कहना न होगा, राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें स्वत एक अनुसधान का विषय है।

Historical, Semi-Historical, Legendary or Mythical Persons & Events pertaining to Specific places or districts

1 Historical Scotish Proverbs

—Chambers's Journal, Fe , 1897.

कहावतें विश्वसनीय नही रह गई हैं। इस कहावत से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि चौहानो ने तवरो से दिल्ली का राज्य छीन लिया था।

(इ) पवारो के सम्वन्ध में निम्नलिखित कहावतें भी वहुत समय से चली आती हैं—

"पिरथी वडा पमार, पिरथी परमारां तणी।
एक उजीणी धार, वीजो आवू बैसणो॥
ज्या पमार त्या धार है, धारा जठे पमार।
विन पमार धारा नहीं, धारा विना पमार॥"

अर्थात् पृथ्वी पर पवार राजपूत वडे हैं, पृथ्वी ही पवारो की है। उनके वैठने की जगह एक तो उज्जैन और धार है और दूसरे आवू के पहाड हैं। जहाँ पवार है, वही धारा है। जहाँ धारा है, वहीं पवार हैं। पवारो के विना धारा नही और धारा के विना पवार नही।

जिस जाति ने वाक्पति और भोज, उदयादित्य एव जयदेव जैसे महापुरुषो को जन्म दिया, वह वास्तव मे महान् थी, उसका प्रभुत्व अत्युच्च था। अपनी प्राचीन गरिमा से परमार वश अव भी गौरवान्वित है। ऐसे वश के सम्वन्ध मे यदि उक्त कहावतें प्रचलित हो गई हो तो यह सर्वथा स्वाभाविक है, इसमे आश्चर्य की कोई वात नही।

(ई) 'राजकुला राठोड' और 'रणवका राठोड़' जैसी अनेक कहावतें राठौड़ों के सम्वन्ध में प्रसिद्ध हैं। हाडो के सम्वन्ध मे भी कहा जाता है—'हाडा वाका राड मे' अर्थात् हाडे युद्ध मे बाके होते हैं किन्तु इस उक्ति की अपेक्षा 'रणवका राठोड' अधिक प्रचलित है।[1] राठौड मैदान की लडाई को हमेशा पसन्द करते थे और वादशाही फौज मे तो हमेशा हरावल मे यही रहते थे, किले की लडाइयो में भी इन्होने सव जगह प्रसिद्धि ही प्राप्त की है।

(उ) 'गाडा टलै, हाडा न टलै' यह हाडो के सम्वन्ध मे सवसे प्रसिद्ध कहावत है। हाडा चौहान राजपूतो की एक शाखा है। बूदी का राज्य देवा जी हाडा ने स्थापित किया था। देवाजी के वशधरो ने वीरता में वडा नाम पैदा किया जिसके कारण उपर्युक्त कहावत प्रचलित हो गई। अन्य राजवशो के सम्वन्ध में भी यद्यपि कहावती पक्तियो का अभाव नही है, तथापि विस्तार-भय से यहाँ उन सवका विवेचन अभीष्ट नही है।

निष्कर्ष—ऊपर जो कहावते दी गई हैं, उनमे अनेक ऐतिहासिक है, अनेक अर्द्ध-ऐतिहासिक हैं तथा कुछ धर्म-गाथाओ से सवद्ध हैं। राजस्थान की भाँति चीन की भाषा में भी इस प्रकार की कहावतो का प्राचुर्य है। एच० स्मिथ[2] ने अपने

---

१ वलहट वका देवडा, करतव वका गोड।
हाडा वाका गाढ में, रणवका राठोड॥
गरुड खगा लका गढा, मेरु पहाडा मोड।
रूखा में चन्दन भलो, राजकुला राठोड॥

2 Vide proverbs and Common Sayings from the Chinese by Arthur H Smith Chapters V-VI Proverbs containing Allusions to

(आ) "घर घर पदमण नीपजै, अद्दहो घर जेमाण।"

(इ) "उर चोडी कड पातली, जीकारा री वाण।
जे सुख चावै जीव रो, तो धण माटेची माण॥"

अर्थात् मर्द तो मारवाड में ही उत्पन्न होते हैं और स्त्रियाँ जैसलमेर मे। घोडे सिन्ध मे ही जन्म लेते हैं और ऊँट बीकानेर में। धन्य है जैसलमेर की धरा जहाँ घर-घर में पद्मिनियाँ जन्म लेती हैं। यदि सुख प्राप्त करना चाहो तो जैसलमेर की पद्मिनी लाओ जिसका वक्ष स्थल चौडा और कटि-प्रदेश पतला होता है और स्वभावतः ही बातचीत मे जो सम्मान-सूचक 'जी' का प्रयोग करती है।

ऊपर के पद्यो मे मारवाड़ के पुरुषो और जैसलमेर की स्त्रियो की प्रशसा की गई है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि राजस्थान के अन्य शहरो की कामिनियो के सम्बन्ध में कहावती पद्यो का अभाव है। 'ढोला मारू रा दूहा' के मालवणी-मारवणी सवाद मे मारवणी ने मारवाड की कामिनियो के सम्बन्ध मे जो निम्नलिखित पद्य कहे हैं वे अर्थवाद के रूप मे प्रयुक्त होने पर भी कहावत की भाँति प्रचलित हैं—

(ई) "मारू देश उपन्निया, तिहा का दन्त सुसेत।
कूभ बची गोरंगिया, खजर जेहा नेत॥
मारू देश उपन्निया, सर ज्यउ पध्धरियाह।
कडवा कदे न बोलही, मीठा बोलणियाह॥
देश निवाण' सजल जल, मीठा बोला लोइ।
मारू कांमिणि दिखणि घर हरि दीयइ तउ होइ॥"[1]

अर्थात् जो मारू देश में उत्पन्न हुई हैं, उनके दांत बडे उज्ज्वल होते हैं, वे क्रौंचशावकों की भाँति गौर वर्ण होती हैं, और उनके नेत्र खजन जैसे होते हैं। मारू देश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ तीर की भाँति सीधी होती हैं, वे भी कटु वचन नहीं बोलती और स्वभाव से ही मीठी बोलने वाली होती हैं। वहाँ की भूमि नीची और उपजाऊ है, पानी स्वच्छ एव स्वास्थ्यप्रद है और लोग मीठे बोलने वाले हैं। ऐसे मारू देश की कामिनी, ईश्वर ही दे तो, दक्षिण की भूमि में मिल सकती है।

इसी प्रकार उदयपुर की कामिनियाँ जब झरोखो के बाहर अपने सुन्दर शरीर को निकालती हैं तो उन्हें देखकर देवो का भी मन डिग जाता है, मनुष्यो की तो बात ही कितनी!

(उ) "उदियापुर री कामणी, गोखां काढ़ै गात।
मन तो देवां रा डिगै, मिनखां कितीक बात॥"

राजस्थान मे ऐसी भी अनेक कहावतें उपलब्ध हैं जिनके द्वारा देशगत विशेषताओ पर अच्छा प्रकाश पडता है। विभिन्न शहरों के सम्बन्ध मे कुछ उक्तियाँ लीजिये—

(२) देशगत विशेषताओ को लक्ष्य में रखकर।

ढूंढाड

(अ) "ऊँचा परवत सेर बन, कारीगर तरवार।
इतरा वस्ता नीपजै, रग देस ढूंढाड॥"

---

१. 'ढोला मारू रा दूहा', प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ २२३

२. राजस्थान की स्थान-सम्बन्धी कहावतें

(१) प्रास्ताविक—राजस्थान में शहरो आदि के सम्बन्ध मे अनेक कहावती पद्य प्रचलित हैं। कोई स्थान भी जब अपनी विशेषताओ के कारण लोगो की दृष्टि मे महत्त्व प्राप्त कर लेता है तो उसके सम्बन्ध में कहावतें चल पडती हैं।

इस प्रकार की कहावतो को स्थान-सम्बन्धी कहावतो का नाम दिया गया है जो ऐतिहासिक कहावतो के अन्तर्गत 'स्थानीय कहावतो' से भिन्न हैं। स्थानीय (Local) कहावतो से तात्पर्य उन कहावतो से है जो एक ही प्रदेश अथवा शहर मे विशेष प्रचलित हैं किन्तु स्थान-सम्बन्धी कहावतो की व्याप्ति स्थानीय कहावतो से कही अधिक होती है। कुछ विद्वान् इस प्रकार की कहावतो को भौगोलिक कहावतो का नाम देते हैं। स्वामी नरोत्तमदास जी ने अपने 'राजस्थान रा दूहा' में इस प्रकार के कहावती पद्यो को 'भौगोलिक' वर्ग के अन्दर रखा है।

(२) वर्गीकरण—यहाँ स्थान-सम्बन्धी कहावतो को शहर, नदी-नाले तथा किले, इन तीन वर्गों मे विभक्त किया गया है। सबसे पहले शहरो-सम्बन्धी कहावतो के उदाहरण दिये जा रहे हैं।

(क) शहरों-सम्बन्धी—

(१) ऋतुओ को लक्ष्य में रखकर—

(अ) "सीयालै खाटू भलो, ऊनालै अजमेर।
नागाणो नित नित भलो, सावण बीकानेर॥"

(आ) "स्यालै भलो ज मालवो, ऊनालै गुजरात।
चोमासै सोरठ भलो, वड़वो बारहमास॥"

अर्थात् शीतकाल में खाटू, ग्रीष्म मे अजमेर और श्रावण में बीकानेर अच्छा लगता है, जोधपुर का नागौर शहर तो सभी ऋतुओ में पसन्द किया जाता है। इसी प्रकार शीतकाल में मालवा, ग्रीष्म मे गुजरात तथा वर्षा में सोरठ अच्छा है किन्तु वडवा (गुजरात) तो सभी ऋतुओ में अच्छा लगता है।

प्रथम दोहे का अन्तिम चरण 'सावण बीकानेर' राजस्थान मे अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। वस्तुत वर्षा-ऋतु मे बीकानेर की शोभा देखते ही बनती है।[1]

दूसरे दोहे से यह भी स्पष्ट है कि किसी एक प्रदेश मे अन्य प्रदेशो के शहरो के सम्बन्ध में भी कहावतें बन जाया करती हैं।

ऊपर के दोहो में विभिन्न ऋतुओ को लेकर स्थानो की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में लोक-मत की अभिव्यक्ति हुई है। अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें स्त्री-पुरुषों आदि को लेकर शहरो को उत्कृष्ट ठहराया गया है। उदाहरण के लिए नीचे लिखे कहावती पद्य अथवा पद्यांशो पर विचार कीजिये—

(२) स्त्री-पुरुषो को लक्ष्य में रखकर—

(अ) "मारवाड नर नीपजे, नारी जैसलमेर।
तुरी तो सिन्धा सातरा, करहल बीकानेर॥"

---

१. मिलाइये—
बोर मतीरा बाजरी, खेलर काचर खाट।
अनधन धीणा धूपटा, बरसाले बीकाण॥

(आ) "घर घर पदमरण नीपजै, ग्रड्हो घर जेसाण।"

(इ) "उर चोड़ी कड़ पातली, जीकारा री वाण।
जे सुख चावै जीव रो, तो धरण माडेची माण॥"

अर्थात् मर्द तो मारवाड में ही उत्पन्न होते हैं और स्त्रियां जैसलमेर मे। घोड़े सिन्ध मे ही जन्म लेते है और ऊंट बीकानेर में। धन्य है जैसलमेर की धरा जहां घर-घर में पद्मिनियां जन्म लेती है। यदि सुख प्राप्त करना चाहो तो जैसलमेर की पद्मिनी लाओ जिसका वक्ष स्थल चौड़ा और कटि-प्रदेश पतला होता है और स्वभावत. ही बातचीत में जो सम्मान-सूचक 'जी' का प्रयोग करती है।

ऊपर के पद्यो मे मारवाड के पुरुषो और जैसलमेर की स्त्रियो की प्रशसा की गई है, किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि राजस्थान के अन्य शहरो की कामिनियो के सम्बन्ध में कहावती पद्यो का अभाव है। 'ढोला मारू रा दूहा' के मालवणी-मारवणी सवाद मे मारवणी ने मारवाड की कामिनियो के सम्बन्ध में जो निम्नलिखित पद्य कहे हैं वे अर्थवाद के रूप मे प्रयुक्त होने पर भी कहावत की भांति प्रचलित हैं—

(ई) "मारू देश उपन्निया, तिहा का दन्त सुसेत।
कूझ बची गोरंगिया, खजर जेहा नेत॥
मारू देश उपन्निया, सर ज्यउं पध्धरियाह।
कड़्या कदे न बोलही, मीठा बोलणियाह॥
देश निवाण सजल जल, मीठा बोला लोइ।
मारू कामिणि दिखणि घर हरि दीयइ तउ होइ॥"[1]

अर्थात् जो मारू देश में उत्पन्न हुई हैं, उनके दांत बड़े उज्ज्वल होते हैं, वे क्रौंचशावकों की भांति गौर वर्ण होती है, और उनके नेत्र खजन जैसे होते हैं। मारू देश में उत्पन्न हुई स्त्रियां तीर की भांति सीधी होती हैं, वे भी कटु वचन नहीं बोलती और स्वभाव से ही मीठी बोलने वाली होती हैं। वहां की भूमि नीची और उपजाऊ है, पानी स्वच्छ एव स्वास्थ्यप्रद है और लोग मीठे बोलने वाले हैं। ऐसे मारू देश की कामिनी, ईश्वर ही दे तो, दक्षिण की भूमि मे मिल सकती है।

इसी प्रकार उदयपुर की कामिनियां जब झरोखो के बाहर अपने सुन्दर शरीर को निकालती हैं तो उन्हें देखकर देवो का भी मन डिग जाता है, मनुष्यो की तो बात ही कितनी!

(उ) "उदियापुर री कामणी, गोखां काढ़ै गात।
मन तो देवां रा डिगै, मिनखां कितीक बात॥"

राजस्थान मे ऐसी भी अनेक कहावतें उपलब्ध हैं जिनके द्वारा देशगत विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। विभिन्न शहरो के सम्बन्ध मे कुछ उक्तियां लीजिये—

(३) देशगत विशेषताओं को लक्ष्य में रखकर।

ढूंढाड

(अ) "ऊंचा परबत सेर बन, कारीगर तरवार।
इतरा वपका नीपजै, रग देस ढूंढाड॥"

---

१. 'ढोला मारू रा दूहा', प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ ३३३

अर्थात् जहाँ ऊँचे पर्वत हैं, वनों में शेर रहते हैं, तलवार के कारीगर जहाँ प्रसिद्ध हैं, ऐसे ढूँढाड़ देश को धन्य है।

आमेर

(आ) "बागा वागा बावड्या, फुलवादा चहुँ फेर।
कोयल करै टहूकड़ा, अइहो धर आवेर॥"[1]

अर्थात् धन्य है आमेर की धरा जहाँ बाग-बाग में वाटिकाएँ हैं, चारों ओर फुलवारियाँ हैं और कोकिल जहाँ मधुर स्वर में आलाप करती रहती है।

जयपुर

(इ) "जे न देख्यो जैपरियो तो कल् में आकर के करियो।"

अर्थात् यदि जयपुर नहीं देखा तो मनुष्य-जन्म लेकर क्या किया? जयपुर की प्रशसा मे यह कहावत कही जाती है। वैसे भी जयपुर को 'भारतवर्ष का पेरिस' कहा गया है।

किन्तु इसके साथ-साथ यह भी कटु सत्य है कि यदि पास मे पैसा हो तभी जयपुर का आनन्द लूटा जा सकता है, अन्यथा वहाँ कोई नही पूछता।

"जैपुर पैसा हो तो जैपुर नहीं तो जमपुर है।" (कनै पीसो हो तो जैपर नईं तो जमपुर)।

जयपुर-विषयक एक कहावत मे यह भी कहा गया है 'जैपुर शहर चितरवाँ छाजा, लोग मजूर लुगाई राजा, अर्थात् जयपुर शहर में छज्जे रगे हुए हैं, मर्द तो कमाते हैं और औरतें उडाती हैं।

बीकानेर

(ई) "ऊँठ, मिठाई, अस्तरी, सोनो गहणो, साह।
पाँच चीज पिरथी सिरे, वाह बीकाणा वाह॥"

अर्थात् धन्य है वह बीकानेर जहाँ ऊँट, मिठाई, स्त्री, स्वर्णभूषण और साहूकार, ये पाँच वस्तुएँ पृथ्वी मे सबसे बढकर हैं।[2]

मारवाड़

(उ) "जल ऊंडा, थल् ऊजला, नारी नवलै वेस।
पुरख पटाधर नीपजै, अइहो मुरधर देस॥"

अर्थात् वह मरुधर देश धन्य है जहाँ का जल गहरा है, स्थल उज्ज्वल है, नवयुवती स्त्रियाँ हैं तथा जहाँ तलवारधारी वीर पुरुष उत्पन्न होते हैं।

"ढोला मारू रा दूहा' की मालवणी ने मारवाड की निन्दा मे में जो निम्नलिखित दोहे कहे थे, वे भी कहावत की भाँति प्रसिद्ध हैं—

१. राजस्थान रा दूहा (स्वामी नरोत्तमदास), पृष्ठ १०२।

२. राजपूताने के वातालार्थ (श्री जगदीशसिंह गहलोत), राजस्थानी भाग ३, अक ३, जनवरी १९४०।

पाठान्तर

दारू अमल मिठाइयाँ, सोनों गहणो साह।
पाच थोक पृथ्वी सिरे, वाह बीकाणा वाह॥

अर्थात् शराब, अफीम, मिठाई, विशेषत मिश्री, सोने के आभूषण और सेठ लोग, ये पाँच चीजें बीकानेर में ससार भर से अच्छी होती हैं।

"बालउं बाबा, देसडउ, पांणी जिहां कुवांह।
आधी रात कुहक्कड़ा, ज्यउं माणसा मुवांह।।
बालउं, बाबा, देसडउ, पाणी सदी तांति।
पाणी केरइ कारणइ, प्री छंडइ अवरांति।।
जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर कटाला रूंख।
आके फोगे छांहड़ी, हूंछा भाजइ भूख।।"[1]

अर्थात् हे बाबा, ऐसा देश जला दूं जहां पानी गहरे कुओं मे मिलता है और जहां पर लोग आधी रात को ही पुकारने लगते हैं मानो मनुष्य मर गये हो। हे बाबा, उस देश को जला दूं जहां पानी का भी कष्ट है और पानी निकालने के लिए प्रियतम आधी रात को ही छोड़कर चले जाते हैं। जिस भूमि में पीणे सांप हैं, जहां करील और ऊटकटारा घास ही पेड़ गिने जाते हैं, जहां आक और फोग के नीचे ही छाया मिलती है और जहां भुरट नामक कंटीली घास के बीजो से ही भूख दूर होती है।

निम्नलिखित कहावती पद्य मे मारवाड की प्रजा की साधारण रहन-सहन और खाने-पीने की व्यवस्था का वर्णन किया गया है—

"आकन का झोपड़ा, फोगन की बाड।
बाजरी का सोगरा, मोठन की दाल।
देखी राजा मानसिंह, थारी मारवाड।।"

अर्थात् मारवाड मे रहने के लिए आक के झोपड़े और फोग की बाड़ें हैं तथा खाने के लिए बाजरी के सोगरे और मोठ की दाल है। हे राजा मानसिंह ! तेरी मारवाड देख ली।[2]

मारवाड़ की रेल के सम्बन्ध में कही हुई निम्नलिखित पंक्तियों ने भी कहावत की-सी ख्याति प्राप्त कर ली है—

"नहीं तार, नहिं टेम है, नहीं बत्ती में तेल।
आ चालै मन रे मते, मारवाड़ री रेल।।"

हाड़ौती और मेवाड़

(ऊ) हाड़ौती अर्थात् बूंदी और कोटा राज्यो में सधवा और विधवा स्त्रियां एक ही रंग के कपड़े (काले और रंगीन) पहनती हैं। इसलिए किसी मारवाड़ निवासी ने (जहां ऐसा वेश नहीं है) कहा है—

"देख्यो, हाड़ा थारो देस, रांड सुहागण एक ही वेस।"[3]

हाड़ौती का-सा हाल मेवाड़ में भी है। इसलिए कोई हाड़ा के स्थान में 'राणा' भी बोलते हैं। विधवा स्त्री पक्के रंग के और सुहागिन कच्चे रंग के कपड़े पहनती और ओढ़ती हैं।

आबू और सिरोही

(ए) राजस्थान के एक कहावती पद्य में पृथ्वी और आसमान के बीच आबू

---

१. 'मैं [illegible]' [illegible]
२. [illegible]
३. वही।

को तीसरा लोक कहा गया है—

"जमीं श्रोर श्रासमान विच, श्राबू तीजो लोक।"

पहाड के शिखर-शिखर पर जहाँ केतकी फूली हुई है श्रौर झरने-झरने पर जहाँ चमेली है, उस श्राबू की प्राकृतिक सुषमा को देखते हुए श्रौर कोई वस्तु अच्छी नही लगती—

"टूँके टूँके केतकी, झरणे झरणे जाय।
श्रर्बुद की छवि देखता, श्रौर न श्रावै दाय॥"

कहते हैं कि सिरोही के महाराव सुरताण देवडा ने अपनी रानी को, जो राडधडे की राजकुमारी थी, उक्त दोहा सुनाया था जिससे असहमत होकर रानी ने उत्तर दिया था—

"जब खाणों भखणो जहर, पालो चलणो पंथ।
श्राबू ऊपर बैसणो, भलो सरायो कथ॥"

अर्थात् जहाँ जौ खाने पडते हैं, अफीम का सेवन होता है श्रौर पैदल चलना पडता है, हे कत! उस श्रावू पर बैठने की श्रापने भली प्रशसा की। रहने योग्य स्थान तो राडधडा (मारवाड राज्य के मालाणी परगने का एक इलाका) ही है जहाँ का निवास देवताओं को भी दुर्लभ है। राडधडे की प्रशसा मे उसने निम्नलिखित दोहा कह सुनाया—

"धर ढागी श्रालम धणी, परवल लूणी पास।
लिखियो जिण ने लाभसी, राडधडा रो वास।"

अर्थात् जहाँ ढागी नामक रेत के टीले की जमीन है, श्रालमजी नामक इष्टदेव रक्षक हैं श्रौर प्रबल लूणी नदी पास ही बहती है, ऐसे राडधडे का निवास तो जिसके भाग्य में लिखा है, उसी को मिलेगा।

एक दोहे में कहा गया है कि श्रावू में रहकर चम्पा का सुख भोगो, पहाड पर चढो श्रौर उमदा श्राम खाश्रो। यदि श्रावू से दूर जा पडे तो न जाने क्या हाल होगा?

"चम्पा माणो, गिर चढ़ो, श्रावा भखो श्रवल्ल।
अरवुद सूँ अलगा रहे, जिण रो कोण हवल्ल।"

श्रावू तथा सिरोही-विषयक कुछ गद्यात्मक कहावतें भी मिलती हैं। जैसे,

१ "श्रावू री छाया ने प्रभु री माया।"

२. "श्रावू री छाया में लीला लहरे है।[1]"

३. शमशेर तो सिरोही की अर्थात् तलवार तो सिरोही की ही प्रसिद्ध है।

सिरोही की तलवार क्यो प्रसिद्ध हुई? इस विषय में कहा जाता है कि वर्तमान समय मे जहाँ पर नीलकठेश्वरजी महादेव का मन्दिर है, उस जगह एक बावडी थी जिसका पानी बहुत तेज था। वह पानी पिलाने से हथियार बहुत तेज हो जाते थे। दूसरी बात यह कही जाती है कि सिरोही के लोहार कच्चे लोहे को इस तरह पक्का बनाते थे कि एक खड्डे में लोहा रखकर उसमे गोबर भर ऐसी रसायन उस पर डालते थे कि उस रसायन से श्राकृष्ट होकर बिजली उस पर गिरती थी, जिससे गोबर

१. सिरोही की कहावतें, दीपावली विशेषांक, लोकवाणी, पृष्ठ १४।

जलकर लोहा भी पक्का हो जाता था।[1]

आबू और सिरोही ही क्यो, अन्य स्थानो के सम्बन्ध मे भी कतिपय कहावतें ऐसी हैं जो दोहो के रूप मे नही हैं। उदाहरणार्थ—

१. "सांगर फोग थली को मेवो" अर्थात् रेगिस्तान वालो के लिए तो सांगर और फोग जैसी वस्तुएँ ही मेवे का काम देती हैं।

२ "साभर पड्यो सो लूण" अर्थात् साभर झील में जो पडा वही नमक हो गया। इस झील मे गिरे हुए ऊँट, भेड, बकरी आदि सब गलकर नमक के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। 'साभर जाय अलूणो खाय' तथा 'साभर में लूण रो टोटो' जैसी कहावतें भी साभर के सम्बन्ध में सुनी जाती हैं।

३. "साजा वाजा केस, गोड़ बगाला देस" अर्थात् बगालियो के केश सजे-सजाये रहते हैं।

तुलनात्मक—कुछ कहावतें ऐसी होती हैं जिनमे अनेक स्थानो की विशेषताएँ एक ही पद्य में दिखला दी जाती हैं। कतिपय उदाहरण लीजिये—

(अ) पख हाडोती मालवे, ढब देखै ढूंढाड़।
अखर परखै मुरधरा, आडम्बर मेवाड ॥[2]

अर्थात् हाडौती (बूंदी कोटा) व मालवा मे पक्ष और ढूंढाड (जयपुर राज्य) मे ढब (बसीला) देखते हैं। मारवाड में अखरो (विद्या) को परखते हैं और मेवाड मे आडम्बर पसन्द किया जाता है।

(आ) कभी-कभी "चूरू तेरो चूरमो, बिसाऊ तेरी बाटी" जैसी सानुप्रास कहावतें भी सुनने मे आती हैं।[3]

(इ) मारवाड़ मनसूबे डूबी, पूरब डूबो गाणा में।
खानदेश खुरदां में डूबो, दक्षिण डूबो दाणा में ॥

उक्त पद्य मे मारवाड, पूर्व, खानदेश और दक्षिण की विशेषताओ का एक साथ उल्लेख कर दिया गया है।

(ई) उपालम्भोक्ति अथवा व्यंग्योक्ति के रूप मे निम्नलिखित दोहा राजस्थान मे अत्यन्त लोकप्रिय है—

कहाँ गयो गोपाल को, गई निटल्ली भूल।
काबुल में मेवा किया, व्रज में किया बबूल ॥[4]

कुछ कहावती पद्य ऐसे भी मिलते हैं जिनके चरणों में भिन्न-भिन्न वस्तुओं

---

१. चौहान कल्पद्रुम, पृष्ठ १६७।

२ राजस्थानी के दोहे (श्री [illegible]) मरुभारती भाग ७, अंक ३, पृष्ठ २०।

३. पाठान्तर—

"चूरू तेरो चूरमो, बिसाऊ तेरो [illegible]।"

४. पाठान्तर—

कहाँ गयो गोपाल को, गई [illegible] भूल।
काबुल में मेवा करी, [illegible] में [illegible] बबूल॥

देखिये [illegible], [illegible], सन् १९६१, [illegible] पृष्ठ १५।

का उल्लेख होता है और अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण उन्हे प्रशस्य ठहराया जाता है। जैसे—

(उ) सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवण री वात।
जोवन छाई धण भली, तारां छाई रात ॥[1]

इस दोहे के प्रथम चरण मे सोरठ के दोहे, द्वितीय चरण में मरवण की वात, तृतीय चरण में युवती स्त्री और चतुर्थ चरण में तारो छाई रात की प्रशसा की गई है।

(ख) नदी-नालों-सम्बन्धी

नदी-नालो से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें भी राजस्थान मे प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो कहावतें लीजिये—

(अ) "वलै बूठी ने तलै तूठी" यह कहावत लूणी नदी के विषय में है। इसका तात्पर्य यह है कि यह आडावला पहाड अजमेर में से तो बूठी अर्थात् बरसी है और पहाड के नीचे या तलवाडे गाँव के पास तूठी अर्थात् तुष्ट हुई है।

लूणी नदी आडावला पहाड से निकलती है और फिर उसी पहाड के नदी-नालो से, जो जगह-जगह मिलते जाते हैं, बढती हुई तलवाडा (मारवाड) गाँव के पास फैल जाती है जहाँ उसके पानी से हजारो मन गेहूँ निपजता है। दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि कहाँ तो बरसी है और कहाँ तुष्ट हुई है अर्थात् पानी तो कही का और उसका फायदा कहीं ही पहुँचता है।

(आ) "रेडियो रणका करै, लूणी लहरां खाय।
बांडी बपडी क्या करै, गुहिया सें घर जाय ॥"

अर्थात् मारवाड में रेडिया और गुहिया दो नाले हैं और लूनी तथा बाडी नदियाँ हैं। दोहे में चारो के गुण-अवगुण बतलाये गये हैं। रेडिया तो रण अर्थात् शोर करता हुआ चलता है, लूनी लहरें खाती हुई जाती हैं, बाडी बेचारी क्या करती है अर्थात् किसी का कुछ बिगाड नही करती, और गुहिये से तो घर चला जाता है क्योकि वह वहुत जोर से चढता है।[2]

उदयपुर की पीछोला झील सम्पूर्ण राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। पीछोला के उस पत्थर को भी निम्नलिखित दोहे में सौभाग्यशाली कहा गया है जिस पर सहारे के लिए पैर रखकर उदयपुर की सुन्दरियाँ पानी भरती हैं—

(इ) भाटा तूं सोभागियो, पीछोला री टग्ग।
गुललंजा पाणी भरै, ऊपर दे दे पग्ग ॥[3]

(ग) किलों-सम्बन्धी

नदी-नालो, झीलो और तालावो के सम्बन्ध में राजस्थान जैसे मरुस्थल में अधिक कहावतें न मिलती हो तो कोई आश्चर्य की वात नहीं किन्तु जिस प्रदेश मे

---

१. पाठान्तर—
सोरठियो दूहो भलो, घोड़ी भली कुमैत।
नारी बीकानेर नी, कपड़ो भलो सपेत॥

२ 'राजपूताने के वातालार्थ' राजस्थानी, भाग ३, अंक ३, पृ० ३४।

३. उदियापुर लंजा सहर, मायस धणमोलाह।
दे झाला पाणी भरै, रग रे पीछोलाह॥

चित्तौड़ और रणथम्भौर जैसे किले हैं और जो भीषण युद्धों की क्रीडा भूमि रहा है, उनसे यह सहज ही आशा की जा सकती है कि वहाँ किलो-सम्बन्धी कहावतों का प्राचुर्य रहा होगा किन्तु सच तो यह है कि राजस्थान में किलो के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र उक्तियाँ कम मिलती हैं, योद्धाओं के वीरतापूर्ण कार्यों के साथ-साथ उनका वर्णन अवश्य मिलता है जैसा कि नीचे के कुछ उदाहरणों से स्पष्ट है—

(अ) खगा जु दाखी खेतजी, भड़ फाको अभमात ।
गढपति राख्यो गोद में, नवकूटी रो लाल ॥
गढ वांको डूगर गुडे, भड वांको झुंझार ।
एकज आगे असुर गण, भाग्या पाच हजार ॥
लडपुर सीकर खेतडी, दातो धृड बुरग ।
वेला जुध आगा वढ़े, रायसलोतां रग ॥
गहर विसाऊ नवलगढ, सूरज कोट सुढग ।
चेलो कीरत चोकडो, रायसलोता रग ॥
दाव फतेपुर देश में, फर तुरका ने तग ।
सीकर गढ़ घाल्यो सिवै, रायसलोता रग ॥

आमेर के किले के सम्बन्ध मे निम्नलिखित दोहे प्रसिद्ध हैं—

(आ) घर ढ्ढाहड देश वड़, गढा गिरवरा घेर ।
चौतरफा खेती फबै, अनुपम गढ़ आमेर ॥
ऊँचा गढ़ आमेर का, नीचा घणा निवास ।
भुजां भरोसे या भडा, दिल्ली पलटसै वास ॥

किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है, किलो के सम्बन्ध में स्वतन्त्र उक्तियाँ विरल हैं। किलो सम्बन्धी स्वतन्त्र रचना करने वालो में कविराज बांकीदास का नाम अग्रगण्य है। अपने भुरजालभूषण मे उन्होंने चित्तौड़ को लक्ष्य मे रखकर सत्तर दोहे कहे हैं जिनमें से निम्नलिखित पद्यांश प्रसिद्ध हैं—

(इ) 'औ सातू अक्लीम मे, चावो गढ़ चीतोड ।' अर्थात् चित्तौड का यह किला सातों विलायतों मे प्रसिद्ध है।

'चंगो गढ चीतोड' अर्थात् चित्तौड का किला उत्कृष्ट है। इस किले के न सीढी लग सकती है, न सुरंग। यह नव गढो का सिरताज है।[१]

चित्तौड को सर करने के सम्बन्ध में आलफखां और अकबर का निम्नलिखित वार्तालाप अत्यन्त प्रसिद्ध है जिससे इस दुर्ग की दुर्गमता का दृश्य आँखो के सामने प्रत्यक्ष हो उठता है।

---

१. गिर [illegible] गुजरा गिर, [illegible] दौड़ ।
[illegible] गढ़ चीतोड़ ॥
[illegible] नहीं, लागे नहीं सुरंग ।
गढ़ नहिं [illegible] ॥
—बांकीदास ग्रन्थावली [illegible], पृष्ठ १४

अकबर सूं ऊभो करै, आसिफखांन अरज्ज।
हजरत गढ़ कीजे हलो, करो जेज किण अज्ज॥

अर्थात् आसफखां खडा हुआ बादशाह से अर्ज कर रहा है कि हजरत! गढ पर आक्रमण कर दीजिये, देर किस कारण हो रही है?

आसिफखां अकबर कहै, भींता भुरजा जोय।
बांको गढ़ भड वाकड़ा, हलो कियां की होय॥
भीतरला फूटां भडां, कै खूटा सामान।
इण गढ़ में होसी अमल, खम तूं आसिफखान॥[1]

अर्थात् चित्तौड के किले की दीवारो को देखकर अकबर कहता है कि हे आसफखां! पहले तो यह गढ ही बडा बाँका है, फिर इसकी रक्षार्थ बाँके राजपूत योद्धा उद्यत हैं, इसलिए केवल आक्रमण करने से ही क्या हो सकता है? यह किला तो तभी सर हो सकता है जब इसके अन्दर के योद्धाओ मे फूट पड जाय और वे हमसे आ मिलें अथवा इसके अन्दर की रसद खतम हो जाय, इसलिए हे आसफखां! तू धैर्य रख।

दुर्गरक्षक जयमल ने इस प्रकार चित्तौड की रक्षा की जिससे बादशाह के दाँत खट्टे हो गये। कई महीने बीत जाने पर भी वह किले पर अपना अधिकार न कर सका। कूटनीतिज्ञ बादशाह ने चालाकी से काम लेना चाहा। उसने जयमल से कहलवाया कि यदि एक बार चित्तौड हमे सौंप दिया जाय तो हम तुम्हे ही चित्तौड का सूबेदार बना देंगे। जयमल ने जो उत्तर लिखकर भेजा उसे राजस्थान के कवि ने इस प्रकार पद्यबद्ध किया है।

जैमल लिखै जबाब जब, सुणजै अकबर साह।
आण फिरै गढ़ ऊपरां, तूटां सिर पतसाह॥
है गढ़ म्हारो हूं धणी, असुर फिरै किम आण।
कूंची गढ़ चित्तौड़ री, सौंपी मुज्भ दिवाण॥

अर्थात् जयमल उत्तर देते हैं कि हे अकबर शाह! सुनिये, मेरे सिर के टुकडे-टुकडे होने पर ही चित्तौडगढ़ पर आपकी दुहाई फिर सकती है। और आप यह खूब कहते हैं कि चित्तौड तुम्हें सौंप दूंगा और यहाँ का सूबेदार बना दूंगा। चित्तौड तो मेरा ही है और मैं ही यहाँ का स्वामी हूं। एकलिंग के दीवाण महाराणा ने इस किले की कुंजी मुझे सौंप दी है, इसलिए मेरे जीते-जी यहाँ मुगलो की दुहाई कैसे फिर सकती है?

राजस्थान का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जयमल ने अपने प्राणो की आहुति देकर भी अपने वचन को पूरा किया।

कहते हैं कि मौर्य वश के राजा चित्रागद ने इस किले को बनवाया था। इसी से इसको चित्रकूट (चित्तौड) कहते हैं। बापा रावल ने मौर्य वश के अन्तिम राजा मानमोरी से यह किला छीनकर अपने अधिकार में कर लिया था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहे कहे जाते हैं—

१. बांकीदास ग्रन्थावली, दूसरा भाग पृष्ठ १००।

चित्रकोट चित्रांगदे, मोरी कुल महिपाल।
गढ़ मढ़्या ध्रुवलोकि गिर, देवनमीढा ढाल॥
संगहि लिए सीसोदिए, दुर्गराह रिपिदान।
बापा रावल जोरवर, वसुमति जासु बखान॥
पाट अचल मेवाड़पति, रघुवंशी राजान।
बापा रावल बड़ बहुत, थिरि चीतोड़ सुथान॥

चित्तौड के सम्बन्ध में कही गई उक्ति 'गढ़ों में चित्तौड़गढ़ और सब गढ़ैया है' राजस्थान की उक्ति नहीं रह गई, सम्पूर्ण उत्तरी भारत में लोकोक्ति की भाँति प्रचलित है।

३) निष्कर्ष—ऊपर जो स्थान-सम्बन्धी कहावतें दी गई हैं, उन सबकी व्याप्ति भी एक समान नहीं है। कुछ कम प्रचलित है और कुछ अधिक। कुछ शिक्षित वर्ग में प्रचलित हैं और कुछ शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों की सामान्य सम्पत्ति हैं।

परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ अनेक कहावतों की व्याप्ति तथा उनके तथ्य में भी अन्तर पड़ता है। जोधपुर के महाराजा मानसिंह के जमाने में मारवाड़ के सम्बन्ध में एक कहावत प्रसिद्ध हुई थी—

आकन की झोंपडी, फोगन की बाड़।
देसी राजा मानसिंह, थारी मारवाड़॥

किन्तु मानसिंह के समय से लेकर अब तक मारवाड़ की स्थिति में परिवर्तन हो जाने से यह कहावत न तो अब उतनी प्रचलित कही जा सकती है और न इसमें व्यक्त तथ्य ही सर्वांश में स्वीकृत किया जा सकता है।

स्थानों से सम्बन्ध रखनेवाली कहावतें अथवा कहावतें न केवल राजस्थान में ही नहीं, प्राय भारत के सभी प्रान्तों में प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ भोजपुरी भाषा की एक कहावत लीजिये जो भोजपुरियों के अक्खड़पन के विषय में समूचे बिहार में खूब मशहूर है।[1]

भागलपुर का भगेलुआ भैया, कहलगांव का ठग।
जो पावै भोजपुरिया, तोड़ै दोनों का रग॥

३. राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र

एक दृष्टि से देखा जाय तो सभी कहावतें सामाजिक होती हैं क्योंकि समाज जिस तथ्य को स्वीकार करता है, वही कहावत के रूप में प्रचलित हो पाता है। इस-लिए किसी भी प्रदेश के सामाजिक जीवन से परिचय प्राप्त करने के लिए उस प्रदेश की कहावतों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। जिस प्रदेश की सामाजिक स्थिति का अध्ययन हमें अभीष्ट है, उस प्रान्त के लोगों की नारी के सम्बन्ध में क्या धारणा है, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह आदि के सम्बन्ध में उस समाज के क्या विचार हैं, सामाजिक संस्थाएँ वहाँ किस रूप में विकसित हैं, मनुष्यों के जीवनादर्श किन सिद्धान्तों पर आधारित हैं, कौन से व्यवहारों को वह समाज आदर की दृष्टि से

१. भोजपुरी ग्रामगीत [illegible] की भूमिका, पृष्ठ [illegible]।

अनुभव पर आश्रित होती हैं तथापि यह अनुभव देश, काल और समाज की सीमाओं मे बँधा होता है।[1] कहना न होगा कि जाति-सम्बन्धी कहावतें विशेष-वर्ग की कहावतें हैं, सामान्य-वर्ग की नही।

(२) जाति-सम्बन्धी कहावतें—शताब्दियो से जाति-प्रथा भारतवर्ष के सामाजिक जीवन पर छाई हुई है। राजस्थान में तो जाति-पाँति का बन्धन अपेक्षाकृत और भी कड़ा रहा है। जिस प्रदेश के आचार-विचार, लेन-देन, साख-सम्बन्ध, मान-मर्यादा आदि का आधार जाति-प्रथा रही हो, उस प्रदेश में जाति-सम्बन्धी कहावतो की प्रचुरता कोई आश्चर्य का विषय नही।

प्रमुख जातियाँ

ब्राह्मण—यहाँ हम विचारार्थ सब से पहले ब्राह्मण-सम्बन्धी कहावतों को ले रहे हैं। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में चाहे ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान दिया गया हो किन्तु राजस्थानी कहावतो मे जिस ब्राह्मण का चित्र अंकित हुआ है, उसमें उसकी मूर्खता, भिक्षा-वृत्ति, मिष्टान्न-प्रियता तथा दक्षिणा-लिप्सा आदि ही मुखरित हुई हैं। कहावती ब्राह्मण की यदि झाँकी देखनी हो तो निम्नलिखित कहावतें नेत्रोन्मीलन का काम करेंगी।

"बामण नैं साठ बरस ताईं तो बुध आवै कोन्या अर पछै जा मर।"[2]

अर्थात् साठ वर्ष तक तो ब्राह्मण को बुद्धि नहीं आती और पीछे वह जाता है मर। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण जन्म से मृत्युपर्यन्त मूर्ख ही बना रहता है।

मूर्खता के साथ-साथ ब्राह्मण की भिक्षा-वृत्ति भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। ब्राह्मणेतर विशेषत वैश्य माताएँ अपने कर्त्तव्य-पराङ्मुख किसी पुत्र को समझाते अथवा आड़े हाथो लेते समय बहुधा कहा करती हैं कि ब्राह्मण का लड़का यदि कोई कारबार न करे और निकम्मा भी रह जाय तब भी वह किसी प्रकार माँगकर गुजर कर सकता है किन्तु दूसरो के लिए तो किसी रोजगार के अतिरिक्त चारा ही नही।

ब्राह्मण के लिए कहा गया है कि "ब्राह्मण हाथी चढ्यो ई मांगै" अर्थात् सम्पन्न होने पर भी ब्राह्मण अपने माँगने की आदत से बाज नहीं आता। कहते हैं कि एक बार श्री महाराजा मानसिंहजी ने प्रसन्न होकर एक श्रीमाली ब्राह्मण को किसी परगने की हाकिमी इनायत कर दी थी। जब उसकी सनद दस्तखत होकर श्रीमाली साहब को मिली तो आपने पूछा कि "इण मे म्हारो पेटियो पण लिख्यो छै" अर्थात् इसमें हमारा पेटिया भी लिखा है न? महाराजा साहब ने यह सुनकर उसका पेटिया कोठार मे चालू कर दिया और सनद वापिस लेकर फरमाया—सच है, "राजयोग्याः नहि विप्रा भिक्षायोग्या पुनः पुन।"[3]

एक अन्य कहावत में कहा गया है कि भिक्षा-वृत्ति अपना लेने के कारण ब्राह्मण अकाल में भी भूखो नहीं मरता—

---

1. The people of Ind.a by Sir Herbert Risley, p 125-126

२. मिलाइये—"[illegible]"

३. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी, राज मारवाड़ सन् १८९१, पृष्ठ [illegible]।

देखता है और किन्हें वह हेय समझता है, इन सबकी जानकारी जितनी कहावतो के द्वारा हमे प्राप्त हो सकती है, उतनी अन्य किसी साधन द्वारा नही।

जिस प्रकार वशानुक्रम, शिक्षा-दीक्षा तथा वातावरण आदि के कारण वैयक्तिक सस्कारो का निर्माण होता रहता है, उसी प्रकार एक विशिष्ट जीवन-पद्धति का अवलम्बन करते रहने के कारण जातियो के भी सस्कार बन जाते हैं और वे जातिगत सस्कार ज्ञात या अज्ञात रूप मे उस जाति के व्यक्तियो को भी प्रभावित करते रहते हैं। इसी प्रकार किसी भी समाज में नारी का जो स्थान है, उससे उस समाज-विशेष के उच्च अथवा निम्न सास्कृतिक स्तर का पता चल जाता है। यही कारण है कि आगे के पृष्ठो में राजस्थान की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए जाति तथा नारी-सम्बन्धी कहावतो को लेकर अपेक्षाकृत विस्तार से विचार किया गया है। दूसरी बात यह भी है कि सामाजिक कहावतों में जाति तथा नारी के सम्बन्ध मे ही सर्वाधिक कहावतें उपलब्ध होती हैं।

राजस्थान के आर्थिक और राजनैतिक जीवन से सम्बद्ध कहावतों को भी मैंने सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत ही रखा है। समाज की व्यापक परिधि में अर्थ और राजनीति का भी अन्तर्भाव हो जाता है।

(क) राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतें

(१) कहावतों के दो वर्ग—सर हर्बर्ट रिजले ने कहावतो के दो वर्ग निर्धारित किये हैं (क) सामान्य और (ख) विशेष। सामान्य वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें वे हैं जिनमे किसी सार्वकालिक अथवा सार्वदेशिक सत्य की अभिव्यक्ति होती है। ऐसी कहावतो पर सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक व राजनीतिक क्रान्तियो का कोई प्रभाव नही पडता। उदाहरण के लिए इस प्रकार की कुछ कहावतें लीजिये—

(१) काज सर्‌या दुख बीसर्‌या, वैरी होगा वैद। (राजस्थानी)[१]
(२) गरज सरी के वैद वेरी। (गुजराती)
(३) अर्थ रो सर्यो ने वैद रो वेरी। (कच्छी)
(४) गरज सरो, वैद्य मरो। (मराठी)
(५) उपाध्यायश्च वैद्यश्च ऋतुकाले वरस्त्रिय।
सूतिका दूतिका नौका कार्यान्ते ते च शष्पवत्। (सस्कृत)

इन कहावतो में देश-भेद के कारण भाषा-भेद अथवा रूप-भेद भले ही हो गया हो किन्तु भाव की एकरूपता सर्वत्र दृष्टिगोचर होगी।

विशेष-वर्ग से सबद्ध कहावतो का क्षेत्र सीमित होता है। वे भी यद्यपि

---

१ मिलाइये—
1. The danger past, and God forgotten (*English*)
2. When the wound is healed, the pain is forgotten. (*Danish*)
3. The river past, the saint forgotten (*Spanish*)
4 The peril past, The saint mocked (*Italian*)
5. When the daughter is dead, what use of a son-in-law? (*Telugu*)

अनुभव पर आश्रित होती हैं तथापि यह अनुभव देश, काल और समाज की सीमाओं से बँधा होता है।[1] कहना न होगा कि जाति-सम्बन्धी कहावतें विशेष-वर्ग की कहावतें हैं, सामान्य-वर्ग की नहीं।

(२) जाति-सम्बन्धी कहावतें—शताब्दियों से जाति-प्रथा भारतवर्ष के सामाजिक जीवन पर छाई हुई है। राजस्थान में तो जाति-पाँति का बन्धन अपेक्षाकृत और भी कड़ा रहा है। जिस प्रदेश के आचार-विचार, लेन-देन, शादी-सम्बन्ध, मान-मर्यादा आदि का आधार जाति-प्रथा रही हो, उस प्रदेश में जाति-सम्बन्धी कहावतों की प्रचुरता कोई आश्चर्य का विषय नहीं।

प्रमुख जातियाँ

ब्राह्मण—यहाँ हम विचारार्थ सब से पहले ब्राह्मण-सम्बन्धी कहावतों को ले रहे हैं। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में चाहे ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान दिया गया हो किन्तु राजस्थानी कहावतों में जिस ब्राह्मण का चित्र अंकित हुआ है, उसमें उसकी मूर्खता, भिक्षा-वृत्ति, मिष्टान्न-प्रियता तथा दक्षिणा-लिप्सा आदि ही मुखरित हुई है। कहावती ब्राह्मण की यदि झाँकी देखनी हो तो निम्नलिखित कहावतें नेत्रोन्मीलन का काम करेंगी।

"बामण नै साठ बरस तांई तो बुध आवै कोन्या अर पछै जा मर।"[2]

अर्थात् साठ वर्ष तक तो ब्राह्मण को बुद्धि नहीं आती और पीछे वह जाता है मर। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण जन्म से मृत्युपर्यन्त मूर्ख ही बना रहता है।

मूर्खता के साथ-साथ ब्राह्मण की भिक्षा-वृत्ति भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। ब्राह्मणेतर विशेषतः वैश्य माताएँ अपने कर्त्तव्य-पराङ्मुख किसी पुत्र को समझाते अथवा आड़े हाथों लेते समय बहुधा कहा करती हैं कि ब्राह्मण का लड़का यदि कोई कारबार न करे और निकम्मा भी रह जाय तब भी वह किसी प्रकार माँगकर गुजर कर सकता है किन्तु दूसरों के लिए तो किसी रोजगार के अतिरिक्त चारा ही नहीं।

ब्राह्मण के लिए कहा गया है कि "बामण हाथी चढ्यो ही मांगै" अर्थात् सम्पन्न होने पर भी ब्राह्मण अपने माँगने की आदत से बाज नहीं आता। कहते हैं कि एक बार श्री महाराजा मानसिंहजी ने प्रसन्न होकर एक श्रीमाली ब्राह्मण को किसी परगने की हाकिमी इनायत कर दी थी। जब उनको सनद दस्तखत होकर श्रीमाली साहब को मिली तो आपने पूछा कि "इण में म्हारो पेटियो पण लिखेड़ो है" अर्थात् इसमें हमारा पेटिया भी लिखा है न? महाराजा साहब ने यह सुनकर उसका पेटिया भंडार में चालू कर दिया और सनद वापिस लेकर फरमाया—सच है, "राजयोग्याः नहि विप्रा भिक्षायोग्या पुनः पुनः।"[3]

एक अन्य कहावत में कहा गया है कि भिक्षा-वृत्ति अपना लेने के कारण ब्राह्मण अकाल में भी भूखो नहीं मरता—

---

1 The people of India by Sir Herbert Risley, p. 125-126.

२. [illegible]—"बामण का बेटा [illegible]।"

३. [illegible], राज[illegible] सन् १९६१ पृष्ठ १२४।

देखता है और किन्हें वह हेय समझता है, इन सबकी जानकारी जितनी कहावतों के द्वारा हमें प्राप्त हो सकती है, उतनी अन्य किसी साधन द्वारा नहीं।

जिस प्रकार वशानुक्रम, शिक्षा-दीक्षा तथा वातावरण आदि के कारण वैयक्तिक सस्कारो का निर्माण होता रहता है, उसी प्रकार एक विशिष्ट जीवन-पद्धति का अवलम्बन करते रहने के कारण जातियो के भी सस्कार वन जाते हैं और वे जातिगत सस्कार ज्ञात या अज्ञात रूप मे उस जाति के व्यक्तियो को भी प्रभावित करते रहते हैं। इसी प्रकार किसी भी समाज में नारी का जो स्थान है, उससे उस समाज-विशेष के उच्च अथवा निम्न सास्कृतिक स्तर का पता चल जाता है। यही कारण है कि आगे के पृष्ठो में राजस्थान की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए जाति तथा नारी-सम्बन्धी कहावतो को लेकर अपेक्षाकृत विस्तार से विचार किय गया है। दूसरी वात यह भी है कि सामाजिक कहावतो में जाति तथा नारी के सम्बन्ध मे ही सर्वाधिक कहावतें उपलब्ध होती हैं।

राजस्थान के आर्थिक और राजनैतिक जीवन से सम्बद्ध कहावतो को भी मैंने सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत ही रखा है। समाज की व्यापक परिधि में अर्थ और राजनीति का भी अन्तर्भाव हो जाता है।

(क) राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतें

(१) **कहावतों के दो वर्ग**—सर हर्बर्ट रिजले ने कहावतो के दो वर्ग निर्धारित किये हैं (क) सामान्य और (ख) विशेष। सामान्य वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें वे हैं जिनमे किसी सार्वकालिक अथवा सार्वदेशिक सत्य की अभिव्यक्ति होती है। ऐसी कहावतो पर सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक व राजनीतिक क्रान्तियो का कोई प्रभाव नही पडता। उदाहरण के लिए इस प्रकार की कुछ कहावतें लीजिये—

(१) काज सर्‌या दुख वीसर्‌या, वैरी होगा वैद। (राजस्थानी)[१]
(२) गरज सरी के वैद वेरी। (गुजराती)
(३) अर्थ रो सर्यो ने वैद रो वेरी। (कच्छी)
(४) गरज सरो, वैद्य मरो। (मराठी)
(५) उपाध्यायश्च वैद्यश्च ऋतुकाले वरस्त्रिय।
सूतिका दूतिका नोका कार्यान्ते ते च शष्पवत्। (सस्कृत)

इन कहावतो में देश-भेद के कारण भाषा-भेद अथवा रूप-भेद भले ही हो गया हो किन्तु भाव की एकरूपता सर्वत्र दृष्टिगोचर होगी।

विशेष-वर्ग से सवद्ध कहावतो का क्षेत्र सीमित होता है। वे भी यद्यपि

---

१ मिलाइये—
1 The danger past, and God forgotten (*English*)
2 When the wound is healed, the pain is forgotten (*Danish*)
3 The river past, the saint forgotten (*Spanish*)
4 The peril past, The saint mocked (*Italian*)
5 When the daughter is dead, what use of a son-in-law? (*Telugu*)

अनुभव पर आश्रित होती है तथापि यह अनुभव देश, काल और समाज की सीमाओं से बंधा होता है।[1] कहना न होगा कि जाति-सम्बन्धी कहावतें विशेष-वर्ग की कहावतें हैं, सामान्य-वर्ग की नहीं।

(२) जाति-सम्बन्धी कहावतें—शताब्दियों से जाति-प्रथा भारतवर्ष के सामाजिक जीवन पर छाई हुई है। राजस्थान में तो जाति-पाँति का बन्धन अपेक्षाकृत और भी कड़ा रहा है। जिस प्रदेश के आचार-विचार, लेन-देन, सगा-सम्बन्ध, मान-मर्यादा आदि का आधार जाति-प्रथा रही हो, उस प्रदेश में जाति-सम्बन्धी कहावतों की प्रचुरता कोई आश्चर्य का विषय नहीं।

प्रमुख जातियाँ

ब्राह्मण—यहाँ हम विचारार्थ सब से पहले ब्राह्मण-सम्बन्धी कहावतों को ले रहे हैं। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में चाहे ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान दिया गया हो किन्तु राजस्थानी कहावतों में जिस ब्राह्मण का चित्र अंकित हुआ है, उसमें उसकी मूर्खता, भिक्षा-वृत्ति, मिष्टान्न-प्रियता तथा दक्षिणा-लिप्सा आदि ही मुखरित हुई है। कहावती ब्राह्मण की यदि झाँकी देखनी हो तो निम्नलिखित कहावतें नेत्रोन्मीलन का काम करेंगी।

"बामण नै साठ बरस ताईं तो बुध आवै कोन्या अर पछै जा मर।"[2]

अर्थात् साठ वर्ष तक तो ब्राह्मण को बुद्धि नहीं आती और पीछे वह जाता है मर। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण जन्म से मृत्युपर्यन्त मूर्ख ही बना रहता है।

मूर्खता के साथ-साथ ब्राह्मण की भिक्षा-वृत्ति भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। ब्राह्मणेतर विशेषतः वैश्य माताएँ अपने कर्त्तव्य-पराङ्मुख किसी पुत्र को समझाते अथवा आड़े हाथों लेते समय बहुधा कहा करती हैं कि ब्राह्मण का लड़का यदि कोई कारबार न करे और निकम्मा भी रह जाय तब भी वह किसी प्रकार माँगकर गुजर कर सकता है किन्तु दूसरों के लिए तो किसी रोजगार के अतिरिक्त चारा ही नहीं।

ब्राह्मण के लिए कहा गया है कि "बाह्मण हाथी चढ्यो ही मांगै" अर्थात् सम्पन्न होने पर भी ब्राह्मण अपने माँगने की आदत से बाज नहीं आता। कहते हैं कि एक बार श्री महाराजा मानसिंहजी ने प्रसन्न होकर एक श्रीमाली ब्राह्मण को किसी परगने की हाकिमी इनायत कर दी थी। जब उसको सनद दस्तखत होकर श्रीमाली साहब को मिली तो आपने पूछा कि "इण में म्हारो पेटियो पण लिखयो छै" अर्थात् इसमें हमारा पेटिया भी लिखा है न? महाराजा साहब ने यह सुनकर उसका पेटिया कोठार से चालू कर दिया और सनद वापिस लेकर फरमाया—सच है, "राजयोग्याः नहि विप्रा भिक्षायोग्या पुनः पुनः।"[3]

एक अन्य कहावत में कहा गया है कि भिक्षा-वृत्ति अपना लेने से ब्राह्मण अकाल में भी भूखों नहीं मरता—

---

1. *The people of India by Sir Herbert Risley, p 125-126*

२. मिलाइये—"बामण का बेटा [illegible]।"

३. [illegible], पृ० १४५।

"काल् कुसम्मै ना मरै, बामण बकरी ऊंट ।
बो मागै बा फिर चरै, बो सूखा चावै ठूंठ ॥"

प्रसिद्ध है कि "बामण कै हाथ में सोना को कचोलो है।" सोने के कचोले से तात्पर्य उसकी यजमान-वृत्ति से है । आज भी राजस्थान में ऐसे बहुत से ब्राह्मण हैं जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं, गांजे-सुलफे मे मस्त रहते हैं और यजमान-वृत्ति के आधार पर गुलछर्रे उडाते हैं । किन्तु यह स्थिति बहुत समय तक बनी नही रह सकती । सामाजिक जीवन में अब परिवर्तन हो रहा है, वैज्ञानिक युग और देश-विदेश के सम्पर्क के कारण हमारी धारणाएँ बदल रही हैं । ब्राह्मणो के प्रति अब यजमानो की भी वह पहले जैसी श्रद्धा नही रही । ब्राह्मण का जीवन आज उपेक्षित हो रहा है । वर्तमान समय में त्याग-तपस्या और विद्वत्ता के बल पर ही वह अपने पूर्व-गौरव को प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नही । ब्राह्मण जब तक भिक्षा-वृत्ति नही छोडेगा, समाज उसे आदर की दृष्टि से नही देखेगा ।

कई कहावतें राजस्थान में ऐसी भी हैं जिनमें ब्राह्मण की मिष्टान्न-प्रियता का उल्लेख हुआ है । "बामण रीझै लाडुवां" तथा "बामण रो जी लाडू में" इसी प्रकार की कहावतें हैं जिनका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण लड्डुओ पर रीझता है तथा ब्राह्मण का जी लड्डुओ में रहता है । ब्राह्मण की मिष्टान्न-प्रियता जगद्विख्यात है । कालिदास आदि के सस्कृत-नाटको मे भी जहाँ ब्राह्मण को विदूषक बनाया गया है, वहाँ उसकी मोदकप्रियता को लेकर हास्य की सृष्टि की गई है ।

ब्राह्मण की दक्षिणा-लिप्सा और उसकी स्वार्थपरता के चित्र भी अनेक कहावतों में मिलते है जैसे, "बामण तो हथलेवो जुड़ावण रो गर्जी है" अर्थात् ब्राह्मण का स्वार्थ तो केवल पाणिग्रहण करवाने तक है, बाद मे वर-वधू चाहे जीवित रहे या न रहे, उसकी दक्षिणा तो उसे मिल ही जाती है। "बींद मरो बींनणी मरो, बामण रो टको त्यार ।"

"अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नाला वरजन्ते" से भी स्पष्ट है कि ब्राह्मण अपने लिए कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहता किन्तु जहाँ प्राप्ति की कुछ आशा हो, वहाँ वह तुरन्त पीछे हो लेता है । "बामाणियूं बतलायो, लेरां लाग्यो आयो ।"

ऐसी कहावतो का भी अभाव नही है जिनसे ब्राह्मण की अकिंचनता प्रकट होती है—

बामण सें बामण मिल्यो, पूरबला जनम का सस्कार ।
देण लेण नै कुछ नहीं, नमस्कार ही नमस्कार ॥"

अर्थात् पूर्व-जन्म के सस्कारो के कारण ब्राह्मण से ब्राह्मण की भेंट हुई किन्तु वहाँ लेन-देन के लिए कुछ नही, केवल नमस्कार ही नमस्कार है ।

एक कहावत में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि ब्राह्मण से कोई भलाई का काम नहीं होता ।

"काल बागड सूं नीपजै, बुरो बामण सूं होय ।"

अर्थात् बागड मे अकाल पडता है और ब्राह्मण से बुरा होता है ।

ब्राह्मण में भी इस दृष्टि से "दायमा ब्राह्मण" को और भी निकृष्ट ठहराया गया है।

खटमल कुत्तो दायमो, जयूयो[1] माछर जू ।
अकल गई करतार की, इता बणाया क्यूं ॥

दायमा कभी किसी का मित्र नही होता। यदि संयोगवश किसी का मित्र बन भी जाय तो बाद में धोखा देता है। दायमा की जाति ही बुरी होती है। खाने के बाद वह खिलानेवाले को ही हानि पहुँचाता है। जिस प्रकार धान मे कायमा (एक तरह का काला कूडा) होता है, उसी प्रकार ब्राह्मणो मे दायमा होता है। कहा जाता है कि एक बार एक गुर्जरगौड तथा दायमा दोनो विदेश गये और वहां खूब धनोपार्जन किया किन्तु संयोगवश दायमा बीमार पड गया। उसने सोचा कि मैं तो मर जाऊँगा और यह गुर्जरगौड अपने घर जाकर आनन्द करेगा। इस कारण उसने गुर्जरगौड से कहा कि जब मेरे प्राण निकल जाएँ तो मेरे मस्तक में कील ठोक देना। इससे मेरे प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकलेंगे और मुझे मुक्ति मिलेगी। गुर्जरगौड ने ऐसा ही किया। परिणाम-स्वरूप वह हत्या के अपराध में फांसी पर चढाया गया। तभी से कहावत चल पडी कि मरा हुआ दायमा जीवित गुर्जरगौड को खा गया।[2]

ब्राह्मणो में दायमा सबसे अधिक चतुर समझा जाता है। एक कहावत में कहा गया है "बिना पढ्योडो दायमो, पढ्यो पढायो गौड़" अर्थात् दायमा यदि पढा हुआ न भी हो तो भी वह शिक्षित गौड से कम नही समझा जाता। किन्तु दायमो में पहले पढ़े-लिखे लोग ज्यादा होते थे, इसीलिये "बणिया पूछ भावे दायमा पूछ" यह कहावत प्रसिद्ध हो गई।

पुरा काल में ब्राह्मणो की वचन-सिद्धता प्रसिद्ध थी। सम्भवतः निम्नलिखित कहावत में उसी की ओर संकेत किया गया है—

"बामण कह छटं, बलद वह छटं।"

अर्थात् बैल जैसे जमीन जोत डालता है, वैसे ही ब्राह्मण वचन कह डालता है।

ब्राह्मण बुरा भी हो तो भी उस पर प्रहार नही किया जाता। इसीलिए एक कहावत में कहा गया है।

"गायां बायां बामणां भाग्यां ही भला।"

अर्थात् गायों, स्त्रियो और ब्राह्मणों के आगे भागना ही अच्छा। इन पर प्रहार करके अथवा इनका वध करके विजय भी प्राप्त कर ली जाय तो भी वह कलंक का कारण होती है।

ब्राह्मणो से सम्बन्ध रखने वाली जो लोकोक्तियां ऊपर दी गई हैं उनमें से

---

१. एक कीट-विशेष जिसके काटने से बड़ी जलन (खुजली) लगती है।
२ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
—[illegible] (दक्षिण [illegible]), पृष्ठ [illegible]।

अधिकाश में ब्राह्मण-जाति के कृष्ण पक्ष का ही चित्रण हुआ है। इससे स्पष्ट है कि ये लोकोक्तियाँ उस समय की वनी हुई हैं जवकि ब्राह्मणो का अध पतन हो चुका था, अन्यथा मनुस्मृति में जिसके लिए कहा गया है—

"ब्राह्मणस्य तु देहोऽय क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
इह क्लेशाय तपसे प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥"

उस ब्राह्मण का चित्र कहावती ब्राह्मण के चित्र से तनिक भी नहीं मिलता किन्तु लोकोक्तियाँ किसी के साथ पक्षपात नहीं करती, जैसा देखती हैं, वैसा ही वे कह देती हैं। उन्हें इस वात की चिन्ता नहीं रहती कि वे किसके सम्वन्ध में क्या कह रही हैं ।

राजपूत—जिस धरती पर मनुष्य रहता है और जो उसके अधिकार में है तथा जिसके साथ उसके पूर्वजो की स्मृतियाँ लिपटी हुई हैं, उस धरती के साथ मनुष्य-मात्र का स्वाभाविक, नैसर्गिक मोह होता है। किन्तु यह धरती-प्रेम राजपूतों में सर्वाधिक दिखलाई पडता है। उस धरती को जव उनसे कोई छीनना चाहता है तो वे उसके सामने अपने प्राणो का मूल्य भी कुछ नही समझते। कहा भी है।

"धर जातां ध्रम पलटतां, त्रिया पड़न्तां ताव ।
तीन दियस ये मरण रा, कूण रक कुण राव ॥"

अर्थात् जव अपनी भूमि पर कोई दूसरा अधिकार कर रहा हो, धर्म-परिवर्तन की जवरदस्ती चेष्टा की जा रही हो और स्त्रियो की मान-मर्यादा पर जव आँच आ रही हो तो कौन ऐसा है जो इन तीन अवसरों पर भी अपने प्राणो की वाजी न लगा दे ?

एक प्रसिद्ध कहावत के अनुसार राजपूतो की तो जाति ही जमीन है,[1] जमीन न होने पर राजपूत अपने को राजपूत नही समझते। जमीन पास है तो नीचे दर्जे का राजपूत भी ऊँचा हो जाता है, नही तो ऊँचा भी नीचा है। राजपूत को रे, अरे या तू कहकर पुकारना गाली देने के वरावर है।[2]

किन्तु राजपूतों ने जव अपना कर्त्तव्य पालन करना छोड दिया तो इस प्रकार की कहावतें प्रचलित हो गई—

(१) ठाकुर गया, ठग रह्या रह्या मुलक रा चोर।
(२) रजपूती धोरा मे रलगी, ऊपर रलगी रेत ।
(३) रजपूती रैई नही, पूगी समदा पार।

अर्थात् जो सच्चे ठाकुर थे, वे तो चल वसे, अव तो केवल मुल्क के चोर रह गये हैं। राजपूती तो अव रह ही नहीं गई, वह तो टीवों में मिल गई और ऊपर मानो रेत पडी है। राजपूती तो अव सात समुद्र पार जा पहुँची।[3]

वनिया—राजस्थान की जाति-सम्वन्धी कहावतो में वनिये के विषय मे सवसे

---

१. राजपूत री जात जमी।
२. नाहर नै रजपूत नै रैंकारे री गाल ।
३ राजस्थानी की जाति सम्वन्धी कहावतें (श्री नरोत्तमदास स्वामी)।

अधिक कहावतें मिलती हैं। निम्नलिखित कहावतों द्वारा उनकी जातिगत विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

(१) "बाणियो के तो आंट में दे के खाट मे दे।"[1]

अर्थात् बनिया या तो मुश्किल का कोई अवसर आने पर अथवा बीमार होने पर डाक्टर आदि को देता है या धार्मिक कृत्यों में व्यय करता है।

(२) "बाणियो खाट मे तो बामण ठाठ में।"

अर्थात् बनिया यदि बीमार होता है तो फिर ब्राह्मण के ठाठ हैं क्योंकि ऐसे मौके पर जप-तप आदि के लिए वह ब्राह्मण को नियुक्त करता है।

(३) "बाणियो ठाठ में तो बामण खाट मे।"

अर्थात् बनिया जब अमन-चैन में रहता है तो धर्म-कर्म के प्रति वह उदासीन हो जाता है जिससे धनाभाव के कारण बेचारा ब्राह्मण रुग्णवत् अपना जीवन व्यतीत करता है।

(४) "आम नींबू बाणियो, कठ भींच्यां जाणियो।"

अर्थात् आम, नीबू और बनिया, ये दबने पर ही रस देते हैं।

(५) "बड़ो पकोड़ो बाणियो ताती लीजे तोड़।"[2]

अर्थात् बनिये, पकौड़े और बड़े को गरमागरम ही तोड़ लेना चाहिए।

(६) "रूठ्योड़ो भूपाल अर तूठ्योड़ो बाणियो बराबर।"

अर्थात् रूठा हुआ राजा और सन्तुष्ट बणिया, दोनों बराबर होते हैं क्योंकि राजा रुष्ट होकर भी जितना दे देता है, बनिया तुष्ट होकर भी उससे अधिक नहीं देता। कहा भी है—

"राजा प्रसन्नो गजभूमिदानम्।
वणिक् प्रसन्नो दमड़ीप्रदानम्॥"

(७) "विणज करेला वाणिया और करेला रीस।"

अर्थात् व्यापार तो बनिये ही करेंगे, और सब तो केवल झगड़ा ही मोल लेंगे। गीता में यथार्थ ही कहा गया है "कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।"

किन्तु यदि बनिये से गांव बसाने के लिए कहा जाय तो यह उसके वश का रोग नहीं क्योंकि गांव बसाने का काम वंश-परम्परा से क्षत्रिय लोग ही करते आये हैं, बनियों का पैतृक व्यवसाय व्यापार करना रहा है। इसलिये बनिये से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह गांव बसाने के काम में सफलता प्राप्त कर सकेगा।

(८) "गांव बसायो बाणियो, पार पड़े जद जाणियो।"

---

१ 'आंटे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।'

२ [illegible]—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

राजस्थान मे एक कहावती दोहा प्रसिद्ध है जिसमे कहा गया है कि यदि वनिया स्वर्ग में भी चला जाय तो भी वह व्यापार करने की अपनी आदत नही छोडेगा; वह स्वर्ग के स्वामी से ही सौदा करने लगेगा और बीच में कुछ टक्का-पैसा खा जायगा।

"वाणयो वाण न छोड़सी, जे सुरगापुर जाय।
साहब सो सौदो करै, कोई टक्को-पीसो खाय॥"

राजस्थान में अधिकतर वनिये लोग सट्टा करके मालामाल हो जाते हैं किन्तु सट्टा करनेवालों के लिए यह भी असम्भव नही कि कभी वे कौडी-कौडी के मोहताज हो जायँ।

"कर रै बेटा फाटको, घर को रह्यो न घाट को।
कर रै बेटा फाटको, खड़्यो पी दूध को बाटको॥"[1]

(९) "विणजी लाग्यो वाणियो, छूटी लागी गाय।
ब्यावडै तो ब्यावडै, नहि दूर नीकल ज्याय॥"

अर्थात् व्यापार मे फँसा हुआ वनिया तथा दूसरो के खेत मे हरा-हरा घास चरने वाली गाय वापिस आये तो आये, नही तो ये दोनो अपने काम में लगे ही रहते हैं। उस बनिये को जो समय पर व्यापार नही करता, निम्नलिखित लोकोक्ति में गँवार ठहराया गया है—

"वखत पड़ै विणजै नहीं सो वाणियो गँवार।"

(१०) वनिया जिस घसीट लिपि मे लिखता है उसे भगवान् ही पढ सकता है—

"वणियो लिखै पढ़ै करतार।"

इसलिए उसकी धन-सम्पत्ति और उसके व्यापारिक रहस्य को समझ लेना टेढी खीर है।

(११) वनिया यदि दिवालिया भी हो जाय तो भी वह पुराने वहीखातो को देख कर किसी के नाम कोई रकम निकाल ही देता है—

"खूट्यो वाण्यो जूना खत जोवै।"

(१२) एक कहावत में कहा गया है कि "वैठतो वाणियों र उठतो मालण ठगावै" अर्थात् शुरू-शुरू में दूकान खोलनेवाला वनिया और शाम को वेचकर घर जाने की उतावली करनेवाली मालिन, ये दोनो ठगाते हैं अर्थात् सस्ता सौदा वेचते हैं। कम मूल्य पर वस्तुएँ वेचने से वनिए की पैठ जम जाती है जिसके कारण भविष्य मे वह खूब कमाता है क्योकि "नामूंद वाण्यो कमा खाय, नामूद चोर मार्‌यो जाय।"

(१३) वनिये का मुख्य लक्ष्य पैसा पैदा करना होता है, उसके अन्य सब कार्य-व्यापार इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए साधन रूप होते हैं। पैदा अधिक होते रहने पर वह भूख-प्यास की भी परवाह नही करता। इसीलिए एक कहावत मे कहा गया है "भूखो वाण्यो हँसै।"

---

१ मिलाइये—"कद सूना कद सेठ।"

बनिया अपना काम बना लेना भली प्रकार जानता है जैसा कि नीचे के कहावती पद्य से स्पष्ट है—

(१४) "और मंत्री सब कीजिये, एक कीजे वाणिया।
डरो बुलावे मीठो बोले, करे मन का जाणिया॥"[1]

अर्थात् मन्त्रियों में एक पद वैश्य को अवश्य देना चाहिए, क्योंकि वह मीठा बोलकर जिसे चाहे अपने पास बुला लेता है, तदनन्तर इच्छानुसार कार्य करता है।

बनिये के लिए यह प्रसिद्ध है कि वह पदाधिकारियों की खुशामद करके किसी न किसी प्रकार अपना काम बना ही लेता है। घूँस देकर भी वह अपनी अर्थ-सिद्धि कर लेता है क्योंकि घूँस देने में जो व्यय उसे करना पड़ता है, उससे चौगुनी प्राप्ति वह रिश्वत की सहायता से कर लेता है। इसीलिए राजस्थान में एक कहावत प्रसिद्ध है कि यदि यमराज के यहाँ घूँस चलती तो बनिया कभी मरता ही नहीं।[2]

ऊपर दी हुई कहावतों में बनिये की अवसरवादिता तथा उसकी व्यापारिक एवं व्यावहारिक कुशलता का चित्रण हुआ है। अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें उसकी स्वार्थपरता तथा कायरता उभर आई है। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) वाणयो मीत न वेस्या सती। कागा हंस न गधा जती॥"

इस कहावत से स्पष्ट है कि बनिया किसी का मित्र नहीं होता, वह स्वार्थी होता है तथा अपना काम निकाल लेने के बाद मुँह से बात नहीं करता।

(२) "च्यार चोर चोरासी वाणिया के करै बापड़ा एकला वाणिया॥"

अर्थात् चार चोर हैं और चौरासी बनिये, बेचारे अकेले बनिये क्या करें? इस कहावत में बनिये की कायरता पर बड़ा जबरदस्त व्यंग्य है।

(३) "जाण मारै वाणियो, पिछाण मारै चोर।"

अर्थात् बनिया जानकार को अधिक ठगता है और भेद से चोरी होती है।

राजस्थानी कहावतों में कृपण और बनिये को लेकर एक आध ऐसी लोकोक्ति भी मिल जाती है जो आधुनिक युग की प्रगतिशील भावना के अनुरूप है। एक ऐसी ही कहावत लीजिए जिसमें कहा गया है कि किसानों को तो (जो अन्न पैदा करते हैं?) घटिया अनाज खाने को मिलता है और महाजन गेहूँ खाकर मौज करते हैं।

"कूरा करसा खाय, गेहूँ जीमैं जाटियो।"

इसी प्रकार श्रम की प्रतिष्ठा करनेवाली एक अन्य कहावत में कहा गया है—

"घावलो री भगर[3] को के होवै, धानरै री को तो मोलवूं हो।"

कहने का अभिप्राय यह है कि गरीब का लड़का भूखें रहने पर भी [illegible] श्रम तो कर ही सकता है किन्तु वह अमीर का लड़का किस काम का, जो ऐश-आराम

---

१. [illegible] (राजस्थानी [illegible]) पृष्ठ १६६।
२. [illegible]
३. [illegible] करते हैं।

का जीवन व्यतीत करने के कारण शिक्षा के लाभ से तो वंचित रह ही जाता है, शारीरिक श्रम भी जिससे नहीं बन पडता ।

जाट—जाट-विषयक कहावतें भी राजस्थानी मे कम नही हैं । बनिये आदि की तुलना में उसे "पिच्छम बुद्धि" कहा गया है, जाट को बुद्धि बाद में आती है। जामाता, भानजा और रैंबारी के साथ-साथ जाट के लिए भी कहा गया है कि वह कभी अपना नही होता जैसा कि निम्नलिखित कहावती दोहे से प्रकट है—

"जाट जवाई भाणजो, रैंबारी सूनार ।
कदे न होसी आपणा, कर देखो ब्योहार ।।"

इसी प्रकार किसी जाट की कृतघ्नता के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि एक बार बैलो आदि के अभाव में वह अपने खेत को नही जोत सका । इसलिए वह बैठा-बैठा विलाप कर रहा था कि दूसरों के खेत लहलहायेंगे और मेरा खेत खाली पडा रहेगा । शूकरो के स्वामी ने जाट को दुखी देखकर उससे दु.ख का कारण पूछा और सारा हाल सुनकर कहा, "यदि आधा हिस्सा देने के लिए तैयार हो जाओ तो खेत हम वाह दें ।" जाट ने यह शर्त स्वीकार करली । उसने खेत मे चने बिखेर दिये और शूकरो ने घुटनो तक जमीन फाड दी । बहुत चने लगे । खेत आधा आधा बाँट लिया गया । अच्छा हिस्सा जाट ने अपने लिए रख लिया, दूसरा शूकरो को दे दिया ।

शूकर अपना खेत तो चरते ही थे, किन्तु अपनी आदत से लाचार होकर दूसरो के खेतो में भी चरने जाया करते थे । खेतवाले उन पर कुल्हाडे का प्रहार किया करते किन्तु इसका उन पर कोई असर नही होता था । चन्दन के एक वृक्ष से रगड कर वे अपना घाव ठीक कर लिया करते थे । जाट चाहता था कि यदि शूकर किसी तरह मर जायें तो सारा खेत उसी का हो जाय । उसने एक दिन शूकरो के स्वामी से सारा भेद मालूम कर लिया । दूसरे दिन खाती को बुलवाकर उसने चन्दन का पेड कटवा डाला और कुल्हाडो से वह शूकरो को मारने लगा । परिणाम यह हुआ कि घाव ठीक न होने के कारण शूकर एक एक-कर मरने लगे । एक दिन शूकर-स्वामी वही बैठकर रोने लगा जहाँ जाट कभी रोया था । किसी बटोही ने वराह को दुखी देख उसके दु ख का कारण पूछा । उसने सारा हाल कह सुनाया । तब उस पथिक ने शूकर-स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहा—

"जाट न जायो गुण करँ, चणँ न मानी वाह ।
चन्नण विडो कटाय की, अब क्यूं रोवै वराह ।।"[१]

अर्थात् जाट किसी का गुण नही मानता, चना जोताई नही मानता । चन्दन का वृक्ष कटवाकर हे वराह ! अब क्यो रो रहे हो ।

"जाट न जायो गुण करँ" राजस्थान में कहावत की भाँति प्रसिद्ध है ।

जाट मारवाड में "मोडी जात" समझी जाती है और यह माना जाता है कि जब तक उसके साथ सख्ती न की जाय, तब तक वह कुछ काम नही देता । इस सम्बन्ध में एक प्राचीन "दो सखुन" तथा राजिया का एक प्रसिद्ध सोरठा लीजिये—

---

१. श्री गणपति स्वामी द्वारा सगृहीत एक लोक-गाथा के आधार पर जो बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त हुई ।

"कपड़ा तो सपीठ नहि, मूंज मेल नहि साय ।
कह्यो न मानै चोधरी, कह्यो चेला फिरण दाय ।"

गुरुजी ठोरिया नहीं ।

"दे मुख मे डाट, फूदाला दोला फिरै ।
जब रस आवै जाट, रागां बागां राजिया ॥"

"जाट जडूलै मारिये" इस कहावत में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि जाट को छोटी अवस्था में ही मारना चाहिए क्योंकि वयस्क होने पर वह वश मे नहीं आता ।

जाट की खुशामदी वृत्ति के सम्बन्ध मे निम्नलिखित कहावत प्राय सुनी जाती है ।

"जाट कहै सुण जाटणी, ई गांव मे रहणूं ।
ऊंट बिलाई ले गई, हांजी हांजी कहणूं ॥"

अर्थात् जाट अपनी स्त्री से कहता है कि हमें तो इसी गाँव में रहना है, इसलिए बिना खुशामद के काम चल नहीं सकता । यदि कोई यह भी कहे कि बिल्ली ऊँट को उठा ले गई तो भी हमें उसकी हाँ में हाँ मिलानी चाहिए ।

जो आदमी जिस तरह का पेशा करता है, जिस तरह के वातावरण मे वह रहता है, उसका ध्यान उसी की ओर जाता है । जाट ने गंगा स्नान किया तो पूछ बैठा—इसको खुदवाया किसने ? "जाट गंगाजी न्हायो—कह खुदाई कुण है ?" गंगा की पवित्रता की ओर उसका ध्यान नहीं गया, उसका ध्यान खुदाई की ओर ही गया ।

जाट में मसखरापन भी खूब पाया जाता है । उसकी मसखरी में एक अजीब-सा भोलापन, एक अजीब सी शरारत तथा एक अजीब-सा अक्खड़पन मिलता है जिसके कारण राजस्थान में जाट-सम्बन्धी अनेक प्रसंग कहावतों की भाँति प्रयुक्त होने लगे हैं । कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१) एक चौधरी चौपाल पर बैठा था । एक भलामानस उधर से निकला । सोचा कि चौधरी बैठे हैं, चुपचाप निकल जाना ठीक नहीं । जरा राम-रमी ही कर लें । बोला —चोधरी बैठो है ? कं तूं गुडाय दे । अर्थात् चौधरी जी, बैठे हो ! चौधरी जी ने उत्तर दिया—बैठा तो हूँ ही, तुझे अच्छा नहीं लगता तो मत बैठा रहने दे, उठाकर पटक दे । बेचारा अपना-सा मुँह लिये चलता बना ।[1]

(२) एक मुसलमान मर गया था । उसकी कब्र मे से मांस निकालकर एक जरख लिए जा रहा था । जाट ने इसे देख लिया और उस मुसलमान के लड़के से आकर कहा—अरे, तेरे पिता को तो जरख ले जा रहा था । लड़का नाराज होकर कहने लगा—मैं था जरख, अरे फरिश्ता कह । चौधरी बोला—मियां, नाराज क्यों होता है, जिसे तू फरिश्ता कहता है उसे ही मैं जरख कहता हूँ। बात यही है, केवल कहने-कहने में अन्तर है ।

---

१. देखिये—राजस्थानी की [illegible] (राजस्थान [illegible])।

का जीवन व्यतीत करने के कारण शिक्षा के लाभ से तो वचित रह ही जाता है, शारीरिक श्रम भी जिससे नही बन पडता ।

जाट—जाट-विषयक कहावतें भी राजस्थानी मे कम नही हैं । बनिये आदि की तुलना में उसे "पिच्छम बुद्धि" कहा गया है, जाट को बुद्धि बाद में आती है । जामाता, भानजा और रैंवारी के साथ-साथ जाट के लिए भी कहा गया है कि वह कभी अपना नही होता जैसा कि निम्नलिखित कहावती दोहे से प्रकट है—

"जाट जवाई भाणजो, रैबारी सूनार ।
कदै न होसी आपणा, कर देखो व्योहार ॥"

इसी प्रकार किसी जाट की कृतघ्नता के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि एक बार बैलो आदि के अभाव मे वह अपने खेत को नही जोत सका । इसलिए वह बैठा-बैठा विलाप कर रहा था कि दूसरो के खेत लहलहायेंगे और मेरा खेत खाली पडा रहेगा । शूकरो के स्वामी ने जाट को दुखी देखकर उससे दु.ख का कारण पूछा और सारा हाल सुनकर कहा, "यदि आधा हिस्सा देने के लिए तैयार हो जाओ तो खेत हम वाह दें ।" जाट ने यह शर्त स्वीकार करली । उसने खेत मे चने बिखेर दिये और शूकरो ने घुटनो तक जमीन फाड दी । बहुत चने लगे । खेत आधा आधा बाँट लिया गया । अच्छा हिस्सा जाट ने अपने लिए रख लिया, दूसरा शूकरो को दे दिया ।

शूकर अपना खेत तो चरते ही थे, किन्तु अपनी आदत से लाचार होकर दूसरो के खेतो में भी चरने जाया करते थे । खेतवाले उन पर कुल्हाडे का प्रहार किया करते किन्तु इसका उन पर कोई असर नहीं होता था । चन्दन के एक वृक्ष से रगड कर वे अपना घाव ठीक कर लिया करते थे । जाट चाहता था कि यदि शूकर किसी तरह मर जायें तो सारा खेत उसी का हो जाय । उसने एक दिन शूकरों के स्वामी से सारा भेद मालूम कर लिया । दूसरे दिन खाती को बुलवाकर उसने चन्दन का पेड कटवा डाला और कुल्हाडो से वह शूकरो को मारने लगा । परिणाम यह हुआ कि घाव ठीक न होने के कारण शूकर एक एक-कर मरने लगे । एक दिन शूकर-स्वामी वही बैठकर रोने लगा जहाँ जाट कभी रोया था । किसी बटोही ने वराह को दुखी देख उसके दु ख का कारण पूछा । उसने सारा हाल कह सुनाया । तब उस पथिक ने शूकर-स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहा—

"जाट न जायो गुण करै, चणं न मानी वाह ।
चन्नण बिड़ो कटाय की, अब क्यूं रोवै वराह ॥"[१]

अर्थात् जाट किसी का गुण नही मानता, चना जोताई नही मानता । चन्दन का वृक्ष कटवाकर हे वराह ! अब क्यो रो रहे हो ।

"जाट न जायो गुण करै" राजस्थान में कहावत की भाँति प्रसिद्ध है ।

जाट मारवाड में "मोडी जात" समझी जाती है और यह माना जाता है कि जब तक उसके साथ सख्ती न की जाय, तब तक वह कुछ काम नही देता । इस सम्बन्ध में एक प्राचीन "दो सगुन" तथा राजिया का एक प्रसिद्ध सोरठा लीजिये—

---

१. श्री गणपति स्वामी द्वारा सगृहीत एक लोक-गाथा के आधार पर जो बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त हुई ।

"कपड़ा तो सपीठ नहिं, मूंज मेल नहिं साथ।
कह्यो न मानै चोधरी, कह्यो चेला किण दाय।"

गुरुजी टोरिया नहीं।

"दे मुख में डाट, फंदाला दोला फिरं।
जद रस आवं जाट, रागां वागा राजिया॥"

"जाट जड़ूलै मारिये" इस कहावत में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि जाट को छोटी अवस्था में ही मारना चाहिए क्योंकि वयस्क होने पर वह वश में नहीं आता।

जाट की खुशामदी वृत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत प्रायः सुनी जाती है।

"जाट कहे सुण जाटणी, ई गांव में रहणूं।
ऊंट बिलाई ले गई, हाजी हाजी कहणू॥"

अर्थात् जाट अपनी स्त्री से कहता है कि हमें तो इसी गाँव में रहना है, इसलिए बिना खुशामद के काम चल नहीं सकता। यदि कोई यह भी कहे कि बिल्ली ऊँट को उठा ले गई तो भी हमें उसकी हाँ में हाँ मिलानी चाहिए।

जो आदमी जिस तरह का पेशा करता है, जिस तरह के वातावरण में वह रहता है, उसका ध्यान उसी की ओर जाता है। जाट ने गंगा स्नान किया तो पूछ बैठा—इसको खुदवाया किसने? "जाट गंगाजी न्हायो—कह खुदाई कुण ही?" गंगा की पवित्रता की ओर उसका ध्यान नहीं गया, उसका ध्यान खुदाई की ओर ही गया।

जाट में मसखरापन भी खूब पाया जाता है। उसकी मसखरी में एक अजीब-सा भोलापन, एक अजीब-सी शरारत तथा एक अजीब-सा अक्खड़पन मिलता है जिसके कारण राजस्थान में जाट-सम्बन्धी अनेक प्रसंग कहावतों की भाँति प्रयुक्त होने लगे हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१) एक चौधरी चौतरे पर बैठा था। एक भलामानस उधर से निकला। सोचा कि चौधरी बैठे हैं, चुपचाप निकल जाना ठीक नहीं। जरा राम-रमी ही कर लें। बोला—चौधरी बैठो है? कं तूं गुडाय दे। अर्थात् चौधरी जी, बैठे हो! चौधरी जी ने उत्तर दिया—बैठा तो हूँ ही, तुझे अच्छा नहीं लगता तो मत बैठा रहने दे, उठाकर पटक दे। बेचारा अपना-सा मुँह लिये चलता बना।[1]

(२) एक मुसलमान मर गया था। उसकी कब्र में से लाश निकालकर एक जरख लिए जा रहा था। जाट ने इसे देख लिया और उस मुसलमान के लड़के से जाकर कहा—अरे, तेरे पिता को तो जरख लिये जा रहा था। लड़का नाराज होकर कहने लगा—कैसा जरख, अरे फरिश्ता था। चौधरी बोला—मियाँ, नाराज क्यों होता है, जिसे तू फरिश्ता कहता है उसे ही मैं जरख कहता हूँ। बात वही है, केवल कहने में अन्तर है।

---

१. देखिये—राजस्थानी की हास्य-व्यंग्य कहानियाँ ([illegible])।

का जीवन व्यतीत करने के कारण शिक्षा के लाभ से तो वंचित रह ही जाता है, शारीरिक श्रम भी जिससे नही बन पडता।

जाट—जाट-विषयक कहावतें भी राजस्थानी मे कम नही हैं। बनिये आदि की तुलना में उसे "पिच्छम बुद्धि" कहा गया है, जाट को बुद्धि बाद में आती है। जामाता, भानजा और रैबारी के साथ-साथ जाट के लिए भी कहा गया है कि वह कभी अपना नही होता जैसा कि निम्नलिखित कहावती दोहे से प्रकट है—

"जाट जवाई भाणजो, रैबारी सुनार।
कदै न होसी आपणा, कर देखो व्योहार॥"

इसी प्रकार किसी जाट की कृतघ्नता के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि एक बार बैलो आदि के अभाव में वह अपने खेत को नही जोत सका। इसलिए वह बैठा-बैठा विलाप कर रहा था कि दूसरो के खेत लहलहायेंगे और मेरा खेत खाली पडा रहेगा। शूकरो के स्वामी ने जाट को दुखी देखकर उससे दु:ख का कारण पूछा और सारा हाल सुनकर कहा, "यदि आधा हिस्सा देने के लिए तैयार हो जाओ तो खेत हम बाह दें।" जाट ने यह शर्त स्वीकार करली। उसने खेत मे चने बिखेर दिये और शूकरो ने घुटनों तक जमीन फाड दी। बहुत चने लगे। खेत आधा आधा बाँट लिया गया। अच्छा हिस्सा जाट ने अपने लिए रख लिया, दूसरा शूकरो को दे दिया।

शूकर अपना खेत तो चरते ही थे, किन्तु अपनी आदत से लाचार होकर दूसरो के खेतो में भी चरने जाया करते थे। खेतवाले उन पर कुल्हाडे का प्रहार किया करते किन्तु इसका उन पर कोई असर नही होता था। चन्दन के एक वृक्ष से रगड कर वे अपना घाव ठीक कर लिया करते थे। जाट चाहता था कि यदि शूकर किसी तरह मर जायें तो सारा खेत उसी का हो जाय। उसने एक दिन शूकरो के स्वामी से सारा भेद मालूम कर लिया। दूसरे दिन खाती को बुलवाकर उसने चन्दन का पेड कटवा डाला और कुल्हाडो से वह शूकरो को मारने लगा। परिणाम यह हुआ कि घाव ठीक न होने के कारण शूकर एक एक-कर मरने लगे। एक दिन शूकर-स्वामी वहीं बैठकर रोने लगा जहाँ जाट कभी रोया था। किसी बटोही ने वराह को दुखी देख उसके दु:ख का कारण पूछा। उसने सारा हाल कह सुनाया। तब उस पथिक ने शूकर-स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहा—

"जाट न जायो गुण करं, चणं न मानी बाह।
चन्नण बिडो कटाय की, अब क्यूं रोवं वराह॥"[1]

अर्थात् जाट किसी का गुण नही मानता, चना जोताई नही मानता। चन्दन का वृक्ष कटवाकर हे वराह! अब क्यो रो रहे हो।

"जाट न जायो गुण करं" राजस्थान में कहावत की भाँति प्रसिद्ध है।

जाट मारवाड में "मोडी जात" समझी जाती है और यह माना जाता है कि जब तक उसके साथ सख्ती न की जाय, तब तक वह कुछ काम नही देता। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन "दो सखुन" तथा राजिया का एक प्रसिद्ध सोरठा लीजिये—

१ श्री गणपति स्वामी द्वारा संगृहीत एक लोक-गाथा के आधार पर जो बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त हुई।

"कपड़ा तो सपीठ नहिं, मूंज मेल नहिं साथ।
कह्यो न मानें चौधरी, कह्यो चेला किए दाय।"
गुरुजी ठोरिया नहीं।

"दे मुख में डाट, फंदाला दोला फिरैं।
जद रस धावै जाट, रागां वागां राजिया॥"

"जाट जड़ूलै मारिये" इस कहावत में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि जाट को छोटी अवस्था में ही मारना चाहिए क्योंकि वयस्क होने पर वह वश में नहीं आता।

जाट की खुशामदी वृत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत प्रायः सुनी जाती है।

"जाट कहै सुण जाटणी, ई गांव में रहणूं।
ऊंट बिलाई ले गई, हांजी हांजी कहणूं॥"

अर्थात् जाट अपनी स्त्री से कहता है कि हमें तो इसी गांव में रहना है, इसलिए बिना खुशामद के काम चल नहीं सकता। यदि कोई यह भी कहे कि बिल्ली ऊँट को उठा ले गई तो भी हमें उनकी हाँ में हाँ मिलानी चाहिए।

जो आदमी जिस तरह का पेशा करता है, जिस तरह के वातावरण में वह रहता है, उसका ध्यान उसी की ओर जाता है। जाट ने गंगा स्नान किया तो पूछ बैठा—इसको खुदवाया किसने ? "जाट गंगाजी न्हायो-कह खुदाई कुण है ?" गंगा की पवित्रता की ओर उसका ध्यान नहीं गया, उसका ध्यान खुदाई की ओर ही गया।

जाट में अक्खड़पन भी खूब पाया जाता है। उसकी अक्खड़ता में एक अजीब-सा भोलापन, एक अजीब-सी शरारत तथा एक अजीब-सा अक्खड़पन मिलता है जिसके कारण राजस्थान में जाट-सम्बन्धी अनेक प्रसंग कहावतों की भांति प्रयुक्त होने लगे हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१) एक चौधरी चौपाल पर बैठा था। एक भलामानस उधर से निकला। सोचा कि चौधरी बैठे हैं, चुपचाप निकल जाना ठीक नहीं। जरा राम-रमी ही कर लें। बोला—चौधरी बैठो है ? कै तू गुड़ाय दे। अर्थात् चौधरी जी, बैठे हो ! चौधरी जी ने उत्तर दिया—बैठा तो हूँ ही, तुझे अच्छा नहीं लगता तो मत बैठा रहने दे, उठाकर पटक दे। बेचारा अपना-सा मुँह लिये चलता बना।

(२) एक मुसलमान मर गया था। उसकी कब्र में से लाश निकालकर एक जरख लिए जा रहा था। जाट ने इसे देख लिया और उस मुसलमान के लड़के से आकर कहा—अरे, तेरे पिता को तो जरख लिये जा रहा था। लड़का नाराज होकर कहने लगा—कैसा जरख, अरे फरिश्ता था। चौधरी बोला—मियाँ, नाराज क्यों होता है, जिसे तू फरिश्ता कहता है उसे ही मैं जरख कहता हूँ। बात वही है, केवल कहने-

"थारी म्हारी बोली में, इतरो ही फरक्क।
तू तो व्है फरेस्ता अर हू कहू जरख्ख ॥"[1]

(३) कहते हैं कि एक बार चारण लोग राठौड वीर दुर्गादास का यश बखान रहे थे। वहाँ एक जाट भी उपस्थित था। उसने कहा—अब मेरी भी सुनो और निम्नलिखित पद्य कह सुनाया जिस पर सब वाह्-वाह करने लगे—

"ढम्मक ढम्मक ढोल बाजै दे दे ठोर नागरां की।
आसे घर दुरगो नहिं होतो सुन्नत होती सारां की ॥"

अर्थात् आसकरन के घर यदि दुर्गादास पैदा नही हुआ होता तो बादशाह सबको मुसलमान बना डालता।

(४) राजस्थान की एक कहावत है—"नट बुध आवे पर जट बुध नहीं आवे।" कहते हैं कि नट जाट के सामने तमाशा नही करते क्योकि जाट से चुप नही रहा जाता। वह किसी न किसी तरह उनकी बात को काट देता है। प्रसिद्ध है कि एक बार किसी बाजीगर ने ककड के गेहूँ बनाकर लोगो से कहा कि देखो, यह गेहूँ है, इसकी सब चीजें बन सकती हैं। वहाँ एक जाट भी बैठा था। वह तुरन्त बोल उठा—तू झूठ बोलता है। इसकी दाल तो नही बन सकती। यह सुनकर सब लोग हँसने लगे और बाजीगर खिसिया गया।[2]

(५) जाट गुड को बडी अमूल्य वस्तु समझते हैं। एक जाट राजा की सवारी देखकर आया था। उसने अपनी स्त्री से कहा कि राजा जी के सोने के पागडे हैं। जाटनी ने उत्तर दिया कि राजा जी बडे आदमी है, सोने के ही क्या, गुड के पागडे बना सकते हैं। जाटनी से इतना सुनते ही एक और जाट बोल उठा—राजा जी की सब दीवारें ही गुड की होगी। जब मन मे आता होगा, उनमे से गुड तोडकर खा लेते होंगे।

(६) एक जाट के लिए कहा जाता है कि वह बीस के ऊपर गिनती नही जानता था। अपने ऊँट को बेचने के लिए जब वह गया तो खरीदार ने ७० रुपये देने को कहे। जाट ने उत्तर दिया "सित्तर मित्तर तो मैं जानना नहीं, मुझे तो पूरे तीन बीसी (साठ रुपये) चाहिएँ।[3]

किन्तु आजकल इस प्रकार ठगे जाने वाले जाट दिखलाई नही पडते।

जगल मे जाट को छेडना खतरे से खाली नही समझा जाता। दूसरे खेती करने वालो की अपेक्षा जाट वीर और दृढाग होते हैं। खेती करने में भी वे बडा परिश्रम

---

१. पाठान्तर—

"बोली बोली आतरो, बोली बोली फरक।
तू तो कहै फरेस्ता 'र मैं कहूँ जरख॥"

२ रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ई०, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ ५१।

३. "सित्तर मित्तर हूँ समझू कोयनी, तीन बीसी पूरी लेसू"।

—राजस्थानी कहावता, भाग दूसरो (स्वामी नरोत्तमदास स्वामी और पण्डित मुरलीधर व्यास), पृष्ठ २५५।

करते हैं। "आसोजा का तावड़ा जोगी होगा जाट" से स्पष्ट है कि आश्विन की कड़ी धूप में भी वे अपने खेतों में काम करते रहते हैं। परिश्रम करने से खेती में उनको बरकत भी खूब होती है, इसीलिए "जाट जठे ठाठ" की कहावत प्रचलित हुई है।

एक कहावत में कहा गया है कि जाट दूध बेचने को पुत्र बेचने के बराबर समझता है।[1] किन्तु आर्थिक संघर्ष के कारण आजकल ऐसी बात नहीं रह गई, जाट भी अब दूध बेचने लगे हैं।

धनी वर्ग के मुकाबले जाट को कोई अच्छा भोजन नहीं मिलता, और न समाज में ही उसका कोई ऊँचा स्तर है। इसीलिए जाट के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें प्रचलित हुई हैं—

(१) जाट के भांवे कुंवाड़ ही पापड़।

अर्थात् जाट को पापड़ नसीब नहीं होते।

(२) जाट की बेटी 'र काका जी की सू।

अर्थात् जाट की लड़की और काका जी की शपथ!

छोटा भी जब नजाकत ज्यादा दिखलाने लगता है तो इस कहावत का प्रयोग होता है।

(३) जाटणी की छोरी 'र फलकै बिना छोरी।

अर्थात् जाट की लड़की को फुलका कहाँ मिलता है? इसलिए यदि उसे फुलका न मिले तो उसका रूठना कैसा?

किन्तु अब राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ जाटों की स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा है। उनमें शिक्षा का प्रचार भी बढ़ रहा है। शिक्षा-प्रचार के साथ साथ उनका आर्थिक और सामाजिक स्तर भी बढ़ेगा।

(३) पेशेवर जातियाँ

गूजर—अब कुछ पेशेवर जातियों को लीजिये। गूजर भेड़-बकरी अधिक पालते हैं और खेती कम करते हैं। खेती करने की अपेक्षा भेड़ें चराने का पेशा उनको अधिक पसन्द है। इसीलिए एक कहावत प्रचलित है "कं गूजर को दायजो, कं बकरी कं भेड़" अर्थात् गूजर का दहेज क्या? या तो बकरी या भेड़। भेड़-बकरी पालने के कारण गूजर लोग गाँवों के बाहर, बस्ती से किनारे एक तरफ को रहते हैं जहाँ उन्हें पानी और चारे की सुविधा रहती है। "गूजर कहाँ ऊजड़" की लोकोक्ति का यही रहस्य जान पड़ता है।

राजस्थान के कुछ हिस्सों में गूजर चोरी और डकैती के लिए भी बदनाम हैं। इनमें से [illegible] और लुटेरों की गिनती की जाती। इसीलिए राजस्थान की एक लोकोक्ति में कहा गया है, "नाहर, गूजर, मेर, कुत्ता, सोवे पीढ़ी सात भला।" अर्थात् सिंह, गूजर, मेर और कुत्ते की [illegible] बहुत अच्छी [illegible]

1. "दूध बेचणो पूत बेचणो।"

है। सोने के पहले उनका जो विचार रहता है, वह सोकर उठने पर नही रहता।

माली—मालियो के सम्बन्ध में उतनी कहावतें नहीं मिलती जितनी जाट और गूजरों के सम्बन्ध में मिलती हैं। नीचे की लोकोक्ति में मालियो को दूर-दूर बसने के लिए कहा गया है क्योंकि ये परस्पर लडते बहुत हैं।

"**माली अर मूला छीदा ही भला।**" अर्थात् माली और मूल (जैसे मूली आदि) दूर-दूर ही अच्छे।

नाई—राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतो में नाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह अपनी चतुराई के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। मनुष्यो में नाई, पक्षियो में कौवा और जलचरो में कछुआ, ये तीनो धोखेबाज होते हैं।[1] अनुभवी व्यक्ति नाइयो का बहुत विश्वास नही करते। कहते हैं, सिवाने का किला एक नाई की दग़ाबाजी से ही टूटा था। इसलिए अब भी किसी नाई को रात के समय उस किले मे नही रहने देते। "**नाई बात गँवाई**" यह भी एक राजस्थानी कहावत है।

नाई अपने आपको आपस मे ठाकुर कहते हैं। "**नाई री जान में से कोई ठाकर**" की कहावत इसी कारण चली है। किसी कवि ने नाई के लिए ठाकुर नाम को अमान्य ठहराते हुए लिखा है—

"**आख आवरण, घर सिलावरण, सोकड़ बहनड़ नांव।**
नाई ठाकुर भाट राजा पांचों नाव कुनांव॥
जगतन को भगतरण कहें, कहें चोर को साह।
नाई को ठाकर कहें, तीनों उलटी राह॥"

किन्तु नाई ठाकुर के नाम से बडा प्रसन्न होता है। सेन भगत के नाम से वह और भी खुश होता है क्योंकि सेन भगत एक नाई ही था जो साधुओ की सगति मे अपना बहुत सा समय लगाता था। कहते हैं कि एक बार उसके यहाँ कुछ साधु आ गये और जिस राजा की हजामत बनाने वह जाया करता था, उसके पास ठीक समय पर न पहुँच सका। इसलिए भगवान स्वय नाई का रूप धारण कर उस राजा की हजामत बनाने चले गये थे। इसीलिए भगवद्भक्तो मे यह कहावत चली आती है—

"**सेन भगत का सासा मेट्या, आप भये हर नाई।**"

नाई मौके पर कटाक्ष करने से भी नही चूकता। एक बार एक नाई किसी राजा की हजामत बना रहा था। एक चारण को अपने से नीचे बैठे हुए देखकर कटाक्ष करके बोला।

"**चारण मत कर चतुर्भुज, नाई कीजे नाथ।**
आवी गावी बंठ्वो, माथा ऊपर हाथ॥"[2]

---

१. मिनखा में नाई, पखेरुवा में काग।
पाणी वालो काछवो, तीनू दग़ँबाज॥
"नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः।"

२. मिलाइये—
खग याहा री खाट, बैठे जाय बराबरी।
नाई विमव निराट, रच्छाणी सू राजिया॥
—रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ई०, पृष्ठ ४५९

अर्थात् हे चतुर्भुज ! मुझे चारण न बनाना, नाई बनाना क्योंकि नाई राजा के पास ऊंची गद्दी पर बैठता है और राजा के मस्तक पर हाथ रखता है।

चारण ने भी जवाब में कहा—

"चारण कीजै चतुर्भुज, नाई मत कर नाथ।
बासी ऊपर बैठवो, ऐंठवाड़े में हाथ॥"

अर्थात् हे चतुर्भुज ! मुझे चारण बनाना, नाई नहीं क्योंकि नाई रात के पास बैठता है और उच्छिष्ट वस्तुओं पर उसका हाथ पड़ता है।

हिन्दुओं में विवाह-शादी तथा मृत्यु दोनों अवसरों पर नाई की उपस्थिति अनिवार्य होती है। इस दृष्टि से समाज के लिए नाई अत्यन्त उपयोगी है किन्तु स्पृश्या-स्पृश्य सभी की हजामत बनाते रहने के कारण यह सदा अपवित्र समझा जाता है। इसीलिए 'नाई बाई वैद कसाई इणरो सूतक कदे न जाई' जैसी कहावतों में नाई का भी नाम सम्मिलित कर लिया गया है। इसी प्रकार एक दूसरी कहावत है। "धार धार और सुसवार" जिसके अनुसार गाड़ीवान और तेली जो बैलों के धार चभूते हैं, नाई जो धार अर्थात् उस्तरे से हमेशा काम लेता रहता है और धोबी जो सुसवार करते हुए हर प्रकार का गंदा कपड़ा धोता है, इन सब को निकृष्ट ठहराया गया है।

धोबी—राजस्थानी भाषा में धोबी के सम्बन्ध में कई-कितनी कहावतें ही उपलब्ध हैं। "धोबी को कुत्तो घर को न घाट को" यह तो एक ऐसी कहावत है जो प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओं में मिल जाती है। धोबी लोग बेहतर कपड़ा कम पहनते हैं, दूसरों के यहाँ से धुलने के लिए जो कपड़े आते हैं, उन्हीं से वे अपना काम चलाते रहते हैं। इसीलिए निम्नलिखित दोनों कहावतें प्रचलित हैं—

(१) "धोबी बेटा चाद सा चोटी न पट्टा।"

अर्थात् धोबी का लड़का दूसरों के [illegible] पर [illegible] दिखता है।

(२) "धोबी के घर में चला चोर, लुट्या और ही और।"[1]

अर्थात् धोबी के घर में चोरी होने पर [illegible] हानि [illegible] होती है।

बहुत से धोबी [illegible] क्योंकि धोबी के लिए जो कपड़े उनके पास आते हैं, उन्हें वे गधों पर लादकर [illegible] ले जाते हैं। इसी से "धोबी की हानि गधो खाय" इस लोकोक्ति का [illegible] हुआ है।

धोबी का 'कुण्ड' जिसमें वह कपड़े धोता है, इतना मलिन समझा जाता है कि सामान्यतः नरक-कुण्ड से उसकी तुलना की जाती है। राजस्थान में प्रतिज्ञा [illegible] से कहलवाया जाता है कि यदि मैं अमुक काम पूरा न करूँ तो धोबी के कुण्ड में पड़ूँ।

धोबी [illegible] धोबी जाति के होते हैं किन्तु वे भी धोबी की बस्ती को नीचा समझते हैं और उनके घर की रोटी नहीं खाते। अब इनमें से किसी को कोई काम नहीं करना होता है तो कहते हैं कि अमुक काम करूँ तो धोबी की रोटी खाऊँ।

---

१. [illegible]—

"[illegible]"

दर्जी—दर्जियो का कहना है कि सिलाई का पेशा तो बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है किन्तु उस पुराने जमाने के दर्जी अब नही रहे। हम लोग तो राजपूतो से दर्जी हुए हैं। परशुरामजी ने जब क्षत्रियो का वध किया तो हमारे पूर्वजो ने सुई लेकर अपनी प्राण रक्षा की थी। इस 'साख' का निम्नलिखित कहावती पद्य प्रसिद्ध है—

"छत्री मार निछत्री कीधो, सूई ले ओलो ले लीधो।"

दर्जी को चिढाने के लिए ("पूरण माटी" कहा जाता है जिसका अर्थ यह है कि वह पूरा मर्द नही है। 'माटी' शब्द राजस्थान मे पति के अर्थ मे प्रयुक्त है।

दर्जियो की कायरता के सम्बन्ध में जोधपुर की तरफ एक कहावत "दरजियाँ वाली पाल है" जो बहुत समय से चली आ रही है। इस कहावत के पीछे निम्नलिखित कथा सुनने मे आती है—

"पाल एक गाँव है जो जोधपुर से करीब तीन कोस की दूरी पर स्थित है। एक बार कुछ दर्जिने कण्डे बीनने के लिए जगल में गई थी। पाल के किसी आदमी ने उनके कण्डे छीन लिये। इस पर दर्जी बहुत उत्तेजित हो गये और गज कतरनी ले-ले कर पाल मारने को चले। पाल पहुँचते-पहुँचते उनको रात हो गई। उन्होंने निश्चय किया कि प्रात काल उठकर पाल वालो से लडेंगे। वे अजीब ढग से एक लम्बी कतार बनाकर इस प्रकार सो गये कि एक का सिर दूसरे की टाँगो के नीचे था। किन्तु जो दर्जी सबसे आगे था वह यह सोचकर कि लडाई मे कही सबसे पहले मैं ही न मारा जाऊँ, अपनी जगह से उठकर सबसे पीछे आ सोया। यह देखकर दूसरा भी चुपके से उठा और जाकर उसके पीछे सो गया। फिर तीसरे-चौथे ने भी ऐसा ही किया। तात्पर्य यह है कि यो करते-करते वे सबके सब जोधपुर के सिवानची दरवाजे तक हटते चले आये। इतने मे प्रात काल हो गया। अपने को दरवाजे के पास देखकर सब आश्चर्य मे भरकर कहने लगे कि यहाँ कैसे आ गये। फिर बोले, खैर, अब तो घर चलो, पाल वालो पर फिर कभी आक्रमण करेंगे। इस प्रकार सब दर्जी अपने-अपने घरो को वापिस आ गये। तभी से दर्जियो के पाल मारने के सम्बन्ध में उक्त कहावत प्रचलित हुई है। जब कोई अपने बूते से बाहर काम करना चाहता है और उसमे उसे सफलता नही मिलती तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।"[१]

ढोली—ढोली नाम ढोल बजाने से पडा है। ढोली गाने-बजाने और माँगने का काम करते हैं। ये ढोल, सारगी, ढोलक और नगारे बजाकर यजमानो के यहाँ गाते हैं। जोधपुर की तरफ के ढोली नौबत खूब बजाते हैं और इस बात का दावा करते हैं कि शहनाई बजाने में कई राग और बोल ये साफ निकाल लेते हैं। प्रसिद्ध है कि जब चित्तौड के किले मे राव रिडमलजी को सीसोदियो ने धोखे से मारा था तो एक ढोली ने शहनाई में निम्नलिखित गीत गाकर जोधाजी को, जो नीचे थे, भगने का अवसर दिया था—

---

१. देखिये—रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ईसवी, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ ४८०।

दीवान रहकर बडी ख्याति प्राप्त की थी। ख्वाजा फरासत दीवान और नाजिर हरकरण के लिए प्रसिद्ध है कि वे जोधपुर के महाराजा श्री जसवन्तसिंह जी और तखतसिंह जी के वडे कृपापात्र थे। किसी समय नाजिर हरकरण के तो जरा सी जवान हिला देने से समस्त रियासत का काम-काज चलता था। इसीलिए **"धारे नाचे वादरियो, मायें नाचे नाजरियो"** की कहावत चल पडी।

नाजर-सम्वन्धी किसी-किसी कहावत मे मधुर विनोद के भी दर्शन होते हैं। किसी ने नाजर को आशीर्वाद दिया—नाजरजी, आपकी वश-वृद्धि हो। उत्तर मिला कि वस मुझ पर ही इतिश्री है।[1]

गोला—गोला कही दरोगा कहीं खवास, कही चाकर, कही चेला और कही वजीर के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार इनकी स्त्रियाँ भी डावडी, मारणस, वडारण और दरोगण आदि अनेक नामो से पुकारी जाती हैं।

राजपूतों में गोला-गोली रखने का विशेष रिवाज़ है। गोलो के सम्वन्ध मे जो कहावतें राजस्थान में प्रचलित हैं, उनसे उनकी कृतघ्नता का ही पता चलता है। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें लीजिये—

सौ गोलां ही घर सूनो।

अर्थात् सौ गोलो के रहते हुए भी घर सूना है।

"गोला किणसूं गुण करै, ओगणगारा आप।
माता जिण री खायली, सोला जिण रा वाप॥"

अर्थात् गोलो से किसी का भला नही होता। जिनकी माता पुश्चली और सोलह जिनके पिता हैं, ऐसे गोले अवगुणो की खान होते हैं।

गोलो के सम्वन्ध मे राजिया को सम्वोधित कर कहा हुआ निम्नलिखित दोहा भी अत्यन्त प्रसिद्ध है—

"गोला घणा नजीक, रजपूता आदर नहीं।
उण ठाकर री ठीक, रण मे पडसी राजिया॥"

अर्थात् जो ठाकुर वहुत से गोलो को आश्रय देता है और राजपूतो का सम्मान नही करता, उसे युद्ध का प्रसग उपस्थित होने पर सव पता चल जायेगा।

"गोलै कै सिर ठोलो" और **"गोलै को गुर जूतो"** जैसी कहावतो में वतलाया गया है कि गोले पिटने से ही ठीक होते हैं।

गोला-गोली रखने की प्रथा दास-प्रथा का ही अवशेष है। राजस्थान में भी अव इस प्रथा के विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगी है।

खटीक—पुराने समय से ही खटीकों का काम पशुओ के काटने का रहा है। इसीलिए **"छालो रोवै जीव ने खटीक रोवै मास ने"** तथा **"छालो खटीक ने ही धीजै है"** जैसी लोकोक्तियाँ प्रचलित हुई हैं किन्तु जव से कसाई मास वेचने लगे तव से खटीको का पेशा केवल खाल रंगने का रह गया।

---

१. नाजरजी, वेल वधो। कै वस म्हा ताणी ही है।

गया तो उसने उत्तर दिया "मैं हूँ तेली, थू ंगो रिपिये की धेली !" तेलियो के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

(१) तेली सूं खल ऊतरी, हुई वलीते जोग ।

अर्थात् घाणी से जब खली उतर गई तो वह ईंधन के योग्य हो गई ।

(२) घरे घाणी तेली लूखो क्यूं खावै ।

अर्थात् घर पर घानी होते हुए तेली रूखा-रूखा क्यो खावे ?

(३) तेली रो बलद सौ कोस जाय परो तो ही घरे रो घरे ।

अर्थात् तेली का बैल यदि सौ कोस भी चल ले तो भी घर का घर पर ही रहेगा ।

भील—भील एक प्रसिद्ध जगली जाति है जो राजपूताना, सिन्ध और मध्य भारत के जगलो और पहाडो में पाई जाती है । इस जाति के लोग बहुत वीर और तीर चलाने में सिद्धहस्त होते हैं । क्रूर और भीषण होने पर भी ये सीधे, सच्चे और स्वामिभक्त होते हैं । कुछ लोगो का विश्वास है कि ये भारत के आदिम निवासी हैं । पुराणो मे इन्हें ब्राह्मणी कन्या और धीवर पुरुष से उत्पन्न सकर माना गया है ।[1]

राजस्थान मे भीलो का निवास प्राचीन काल से है । महाराजा प्रताप के सहायक के रूप मे ये विख्यात हैं । इधर देशी रियासतो के कारण इनका काफी शोषण हुआ है और समय की दौड में ये पिछड गये हैं । साक्षरता का इनमे प्राय अभाव है किन्तु व्यावहारिक ज्ञान की कमी इनमे नही है । लोक-वार्ताओ, कहावतो और लोकगीतों के रूप में भीलो का व्यापक साहित्य प्राप्त होता है जिसके आधार पर उनकी ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है । इस महत्त्वपूर्ण कार्य मे कहावतें सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होगी । श्री गिरधारीलाल शर्मा द्वारा सम्पादित और राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुर द्वारा प्रकाशित "राजस्थानी भीलो की कहावतें" शीर्षक पुस्तक की पाण्डुलिपि से कुछ कहावतें यहाँ साभार उद्धृत की जा रही हैं—

(१) ऊठो बैठो ने धरती माते सूरज तये जेम तपो ।

स्वस्थ रहो और धरती पर सूर्य तपता है, उसी प्रकार तपो ।

(२) राजा राम चौवदे वर अन वगर् वेडे माए रेग्या जैम रहें ।

राजा राम चौदह वर्ष बिना अन्न के रह गये, हम भी उसी प्रकार रहेगे ।

(३) काम मोटो है, नाम मोटो नी ।

काम बडा है, नाम नही ।

(४) करै चाकराई सो करै ठाकराई ।

अर्थात् जो सेवा करता है, वही ठकुराई कर सकता है ।

ऊपर की कहावतो से स्पष्ट है कि भील काम करने में विश्वास रखते है तथा कष्ट-सहिष्णु होते हैं ।

---

१. हिन्दी शब्द सागर (नागरी प्रचारिणी सभा) तीसरा भाग, पृष्ठ २५७३ ।

भीलों की अनेक कहावतों में एकता, आत्म-सम्मान आदि जीवन के अनेक उच्च आदर्शों का प्रकटीकरण हुआ है। जैसे,

(१) आटा माये लूण मर्न जेम मली नें रवा हूं फायदो है।

अर्थात् आटे में नमक की तरह मिलकर रहने में लाभ है।

(२) ईजत नू मनख, वगर ईजत नू ढाहू।

अर्थात् इज्जत के बिना मनुष्य पशु-तुल्य है।

(३) कणानी हाची भूठी ने करवी, कणाक नु गैर नेंकली जामें।

अर्थात् इधर-उधर सत्य का झूठ और झूठ का सत्य नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से किसी का घर बरबाद हो जाता है।

(४) मन्दर हरको गैरो, धरती हरको भारी वेई ने रेवो।

अर्थात् इन्द्र के समान गम्भीर और धरती के समान भारी (उदार) होकर रहना चाहिए।

कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनका भीलों के शोषण से सम्बन्ध है। जैसे,

(१) करसो हात कमावे वाण्या ना बेटा हारू।

अर्थात् किसान अपने हाथ से कमाता है किन्तु बनिये के पुत्र के लिए।

(२) अणभणिया भील मन जाणिया पजावे।

अर्थात् अशिक्षित भीलों को कष्ट पहुँचाकर भी उनसे स्वेच्छापूर्वक काम लिया जाता है।

भीलों में गरीबी के कारण अनेक बार ऐसे अवसर आ जाते हैं जब घर वाले ऋण ले लेते हैं और चुकाना पड़ता है लड़कों को।

"करवा वाला तो कीदूं, छोरा ना गावड़ा घमलाना।"

अर्थात् करने वालों ने तो कर्ज कर लिया किन्तु बाद में आपत्तियाँ उठानी पड़ीं लड़कों को।

भील ईश्वर में विश्वास करते हैं। ईश्वर पर लोगों की घटती हुई आस्था को देखकर उनका जी दुखी हो उठता है।

"आज रामे फूंटा घोलके आपे राम है।" अर्थात् आज राम को कौन पहचानता है, सब राम बने बैठे हैं।

सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली निम्नलिखित कहावतें भी यहाँ उल्लेखनीय हैं

(१) मजाला फेरा है, काज ते टाकुरो गाने बड्गो।

अर्थात् [illegible]

(२) भाडली ना हो मारसा, कुणाई नो एक मारदो।

इस कहावत का संकेत [illegible] प्रथा की ओर है।

भीलों में सौन्दर्य-सम्बन्धी कहावतों का भी अभाव नहीं है। इस प्रकार की कुछ कहावतें लीजिये—

(१) आखाने भरोसे आधो चूकी जाहो ।

अर्थात् पूरे को प्राप्त करने की दुराशा मे आधा भी खो दोगे ।

(२) आज वार है ते काले कवार भी हैं ।

अच्छे दिन सदा नही रहते ।

यहाँ हम उन कहावतो की ओर भी दुर्लक्ष्य नही कर सकते जो भीलो के सम्बन्ध मे प्रचलित हैं । उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) भील के कई ढील ?

अर्थात् भील के काम करने में क्या देर होती है ? वह सदैव कार्य करने को तत्पर रहता है ।

(२) भील, भगी, भगतण, भोपा, देता लेता वाजे बोझा ।

अर्थात् भील, भगी, वेश्या और भोपे से लेन-देन करनेवालो को लोग गँवार समझते हैं ।

(३) भीलो का गाना कुछ अजीब तरह का होता है । उस सम्बन्ध में निम्न-लिखित कहावती पद्य उल्लेखनीय है—

काई चारण री चाकरी, काई आरण री राख ।
कांई भील रो गावणों, काई साटिये री साख ॥

गाडिया लुहार—गाडिया लुहार घर वाँधकर नही रहते । ये गाडे (शकट) में ही अपने घर का सारा सामान लिये फिरते रहते हैं । स्थायी रूप से ये किसी एक गाँव में नही रहते । इसीलिए "गाडिये लुहार को कुणसो गाव ?" एक राजस्थानी कहावत ही वन गई है ।

प्रसिद्ध है कि जव महाराणा प्रताप को मुगलो के आक्रमण के कारण चित्तौड छोड देना पडा तो उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि जव तक चित्तौड वापिस नही ले लूँगा, तव तक चारपाई पर नही सोऊँगा, सोने-चाँदी के वर्तनो मे भोजन नही करूँगा और जमकर कभी भी एक स्थान पर नही रहूँगा। कहा जाता है कि वर्तमान गाडिया लुहारो के पूर्वजो ने भी उस समय शपथ ली थी कि जव तक वादशाह से वैर का वदला नही ले लेंगे, घर वाँधकर नही वैठेंगे और गाडो में ही वैठे फिरते रहेंगे। उनके द्वारा ली हुई शपथ के शब्दो "ऊंधा खाट गालजो और फिरता ही मरजो"[1] ने कहावती ख्याति प्राप्त कर ली है ।

गाडिया लुहार जव गाडो में चारपाइयो को लादते हैं तो उन्हें औंधी रखते हैं। निश्चित रूप से हम यह नही कह सकते कि वे चारपाइयो को औंधी क्यों रखते हैं किन्तु सम्भव है आराम का जीवन न विताने की महाराणा प्रताप की प्रतिज्ञा से इसका कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध हो ।[2]

मुसलमान—मुसलमानो से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें यद्यपि धर्म के अन्तर्गत रखी जानी चाहिएँ किन्तु सामान्य जनता उन्हे जाति मानकर ही चलती है ।

---

1 These Ten years by A W. T Webb, p 143
2 Ibid, p 148-149

यही कारण है कि राजस्थानी भाषा की जाति सम्बन्धी कहावतों के प्रसंग में मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों पर भी यहाँ विचार किया जा रहा है। सर हर्बर्ट रिजले ने भी इसी आधार पर इस प्रकार की कहावतों को अपने ग्रन्थ में जातिसम्बन्धी कहावतों के अन्तर्गत रखा है।[1]

राजस्थान में मुसलमानों के सम्बन्ध में जो कहावतें प्रचलित हैं उनमें से कुछ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

१. काको बेटो ना देगो तो देगो ही कुण।
२. काकै ताऊ की बेटी भू बरोबर है।
३. घर जाई नै घर घर क्यूं जाण दे।
४. घर को वायजो घर मे ही राखले।
५. घर की बेटी, घर की भू।
६. अंय घर मे जाई अर अं ही घर मे ब्याई।
७ काकै जाई भाण अर तायै जायो भाई।
   यो यं को लोग अर वा वंकी लुगाई॥
८. असल मियें की याही जाण।
   भीतर बीजी बादी भाण॥
९. काकै जाई पर घर जाव।
   तो तायै जायो दोजक भाव॥
१०. काको रूसै तो अपनी बेटी ना दे।
११. टाबरपण का काका ताऊ, 'रमर जोबिन का खुसरा।
१२. काको रूसै तो रूसण दो, बेटी तो काको दे देसी।
१३. काकै कै जामनो जियो नै तो तायै नै सुसरो कैणो पड़सी।
१४. तायै जाया सदा पुकारै सुण थं काका की जाली।
   सागै खाया सागै खेल्या, अब तू पर घर क्यूं घाली॥
१५ चाचै कै घर नका पड़न्ता जा मन्दा का जोव डरै।
   मिसल घर में नेता फिरै कुंवारा यं के खोयातूट करै॥
१६. सुण थो काका कयं भतीजो, तेरी जाई पर देसी।
   मिसरी रोज वंदगी करनी, मन्यिां थांका या देसी॥
१७ यादै चांदण सासरो, यादै चांगण पीर।
१८. भाई कै बांगण गा देरा, अपनी बेटी पर घर दे।
   सागो भतीजो फिरै कुंवारो, क मरवं थो काजी दे॥

ऊपर की कहावतों से स्पष्ट है कि मुसलमानों के यहाँ चचेरे भी सगों में शादी हो जाती है। यहि कारण तो यह है कि "मुसलमान चचा और फूफा की बेटी से निकाह

1 The people of India by Sir Herbert Risley, p. 138

2 [illegible] ग्रन्थ।

करने को ज्यादा पसन्द करते हैं। भाई जब विवाह करके आता है तो वहन दरवाजा रोककर खडी हो जाती है और अपना नेग मांगती है। हिन्दुओं में तो उसको जोडा, कपडा और जेवर देकर राजी करते हैं किन्तु मुसलमानो में यह इकरार होता है कि यदि भाई के बेटी होगी तो बहन के बेटे को दी जायेगी और बहन के बेटी होगी तो भाई के बेटे के वास्ते ले ली जायगी और ऐसा ही होता भी है, लेकिन जिन ननद-भावज में मेल न हो तो उस इकरार को एक अजब चालाकी से टाल दिया जाता है और वह है दूध पिलाना। जैसे कोई भावज अपनी ननद से नाराज है और अपनी बेटी उसको नही दिया चाहती है और न उसकी लिया चाहती है तो उसके बेटे और बेटी को दो-चार मर्द औरतो के देखते हुए किसी बहाने से अपना दूध पिला देगी। फिर उनका निकाह कभी नही होगा क्योंकि धाय का दर्जा माँ के बराबर ही रखा गया है।[1]

मुसलमानो मे चचा जब रुष्ट होता है तो भतीजे को डर रहता है कि चचा कही रुष्ट होकर अपनी लडकी न देने का निर्णय न करले। चचे की बेटी से विवाह करने के कारण ही "आधै आंगरण सासरो, आधै आंगरण पीर" जैसी कहावतें प्रचलित हुई हैं। जो चचा अपने भतीजे को लडकी नही देता उसे ऊपर की कहावतों में अभिशप्त ठहराया गया है।

४. तुलनात्मक कहावतें—अब तक जाति-सम्बन्धी जिन कहावतो पर विचार किया गया है, उनमे से प्राय सभी ऐसी हैं जो किसी एक जाति-विशेष से सम्बन्ध रखती हैं किन्तु ऐसी भी बहुत सी कहावतें हैं जिनमें कई जातियो का एक साथ उल्लेख हुआ है और गुण दोनो की दृष्टि से जिनकी पारस्परिक समताओ अथवा विषमताओ पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार की कुछ तुलनात्मक कहावतो को हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं—

१. "अग्गम बुद्धी वाणियो, पिच्छम बुद्धी जाट।
तुर्तबुद्धि तुरकडो, बामरण सम्पटपाट॥
२. वाता रीझै वाणियो, राग सूं रजपूत।
बामरण रीझै लाडुवां, बाकल रीझै भूत॥
३. वरणी वरणावै वाणियो, वरणी विगाडै जाट।
४. बीजावरगी वाणियो, दूजो गूजरगोड।
तीजो मिलै जो दाहिमो, करै टापरो चोड॥
५. जगल जाट न छेडिये, हाटा बीच किराड।
रघड कदे न छेडिये, जद तद करै विगाड॥
६ राम राम चौधरी, सिलाम मियाजी।
पगे लागूं पाडिया, दटोत बावाजी॥

---

१. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड, सन् १८९१ ई०, पृष्ठ ५९७।

७. ढोला ढोलण कूट उपाटन, चपचपियो भो नाई ।
एता चेला न करो गुरुजी, काम न आवें काई ॥
८ बामण नाई कूकरो, जात देख घुर्राय ।
कायथ कागो कूकड़ो, जात देख हरखाय ॥
९. अवे तवे का एक रुपय्या, अठे कठे का आना चार ।
इकड़म तिकड़म आठहि आना, गूं ना आना चार ॥
१० कै कवित सोहै भाट नै, खेती सोवै जाट नै ।
११. तेलण सूं नहिं मोचण घाट, वैरी मोगरी वैरी लाट ।

अर्थात् बनिया आगे की बात पहले सोच लेता है, जाट की बुद्धि बाद में आती है, मुसलमान बात को तुरन्त ताड़ लेता है किन्तु बुद्धि के साथ ब्राह्मण सकपका होता है। बनिया बातों से, राजपूत राग से, ब्राह्मण लड्डुओं से तथा सूत सिंके हुए अथवा अध-सिंके हुए कोरे अन्न से प्रसन्न होता है। बनिया बनी हुई बात को बना लेता है और जाट उसे बिगाड़ देता है। बीजावर्गीय बनिया, गूजर गौड़ और दायमा, अगर ये तीनों मिल जायें तो घर चौपट कर देते हैं। जंगल में जाट को और दूकान पर बनिये को नहीं छेड़ना चाहिए, राजपूत को कभी नहीं छेड़ना चाहिए, उससे चाहे जब बिगाड़ हो सकता है। चौधरी को राम राम किया जाता है, मियाँ से सलाम करते हैं, पंडित को 'पालागूं' (पैर पड़ता हूँ) कहते हैं, और बाबाजी से दण्डवत् की जाती है। माली, नाली, कुम्हार और नाई इन चारों को अपना मित्र नहीं बनाना चाहिए, ये किसी काम में नहीं आते। ब्राह्मण, नाई और कुत्ता अपनी जातिवालों को देखकर गुर्राते हैं, कायस्थ, कौआ और मुर्गा सजातियों से हर्षित होते हैं। 'अवे तवे' वालों की कीमत एक रुपया है, अठे कठे (राजस्थानी) का चार आना, इकड़म-तिकड़म (मराठी) की कीमत आठ आने से ज्यादा नहीं, पर 'गूं-ना' बोलने वाले गुजराती की कीमत चार आने ही है। कवित्त भाट की शोभा होते हैं और खेती जाट की शोभा होती है। तेलिन से मोचिन कम नहीं है, उसके पास मोगरी है तो उसके पास लाठ है।

तुलनात्मक कहावतों में भी बनिये से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों का प्राचुर्य है।

स्पेन की तरफ से आवे क्योकि स्पेन वालो की आदत के अनुसार यदि मृत्यु स्पेन की तरफ से आयेगी तो या तो वह आयेगी ही नही और यदि आयेगी तो भी बडी देर से।[1]

ऊपर जो जाति अथवा पेशो से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें दी गई हैं, उनमे एक जाति-विशेष के अवगुणो को प्रकट करने वाली कहावतें बहुतकर दूसरी जाति-विशेष के व्यक्तियो द्वारा पहले-पहल उच्चरित हुई होगी। जहाँ तक तुलनात्मक कहावतो का सम्बन्ध है, बहुत सम्भव है, वे तटस्थ व्यक्तियो की उक्तियाँ हो।

कुछ लोगों का ख्याल है कि जातियो से सम्बन्धित कहावतें अन्तर्जातीय सद्भावना को प्रोत्साहन नही देतीं और समाज मे जाति-प्रथा की जडो को और भी दृढ बनाती हैं। जो भी हो, इतना निश्चित है कि किसी भी प्रदेश की सभ्यता और सस्कृति के अध्ययन के लिए इस प्रकार की कहावतें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, और फिर दूसरी बात यह है कि जाति-सम्बन्धी कहावतें भारतवर्ष के प्राय सभी प्रदेशो मे मिलती हैं। जाति-प्रथा के राष्ट्रव्यापी प्रभाव के कारण विभिन्न प्रदेशों की जाति-सम्बन्धी कहावतो में भी बहुत कुछ समानता मिलती है। भिन्न-भिन्न प्रदेशो की जाति-सम्बन्धी कहावतो के तुलनात्मक अध्ययन से भी मनोरजक परिणाम निकलेंगे। भीलो-जैसी आदिवासी जातियो का अध्ययन आज कुछ नृतत्त्ववेत्ता कर रहे हैं। इस प्रकार के अध्ययन में भी जाति-सम्बन्धी ये कहावतें उपयोगी सिद्ध होगी।

✓ (ख) राजस्थानी कहावतो में नारी

(१) **कन्या-जन्म**—उन सभी वस्तुओ मे से जिससे नारी की सामाजिक स्थिति का पता चलता है, कन्या-जन्म के प्रति उस समाज की प्रतिक्रिया सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद की ऋचाओ मे इसके सम्बन्ध मे कुछ आभास नही मिलता यद्यपि पुत्र-जन्म के लिए देवताओ से प्रार्थनाएँ अवश्य की गई हैं किन्तु ऐसा भी उल्लेख नही है जहाँ लडकी के जन्म पर दुख प्रकट किया गया हो, अथवा उसे गर्हित दृष्टि से देखा गया हो। ऋग्वेद के जमाने में लडके और लडकी की समान स्थिति थी, यह भी नही कहा जा सकता। किन्तु अथर्ववेद तक आते-आते लडकी के जन्म को हेय समझा जाने लगा और इस प्रकार की प्रार्थनाएँ की जाने लगी—"वह लड़की को अन्यत्र रखे, यहाँ वह पुत्र दे।"[2]—अथर्व ६-२-३

ब्राह्मण-ग्रन्थो में यज्ञो के महत्त्व के कारण पुत्र को "मुक्ति का जहाज" कहा जाने लगा।[3] नारद ने कहा—पत्नी सहयोगिनी है, पुत्री एक प्रकार का कष्ट है और पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का आलोक है।[4] यज्ञो के कारण इस युग में पुत्र को असाधारण महत्त्व

---

१ केहवते विषे निबन्ध केहवत माला, पेहलो भाग (जमशेदजी नशरवानजी पीतीत), पृष्ठ ५८।

2 Women in Vedic Age by Shakuntala Rao Shastri, p 41.

३ मिलाइये—
राजस्थानी कहावत "बेटो घर री जाझ है" अर्थात् पुत्र घर का जहाज है। राजस्थानी कहावता, भाग दूसरो (स्वामी नरोत्तमदास और प० मुरलीधर व्यास)।

4 Women in Vedic Age by Shakuntala Rao Shastri, p 41.

दिया जाने लगा जिससे नारी-जीवन का क्षेत्र अपेक्षाकृत सकुचित हो गया।

पुत्र के कारण वश-परम्परा चलती है और श्रद्धालु भारतीयो की दृष्टि में वह अपने मृत पूर्वजो की सुख-शान्ति मे भी सहायक होता है। यही कारण है कि पुरा काल से ही भारतीय समाज मे पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। "एक मात्रा लाघव से वैयाकरणो को उतना ही आनन्द मिलता है जितना पुत्र-जन्म से" यह कहावती उक्ति भी इसी तथ्य की ओर सकेत करती है।

राजस्थान में भी कन्या-जन्म के सम्बन्ध मे जो कहावतें प्रचलित हैं, उनसे भी इसी धारणा की पुष्टि होती है। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें लीजिये—

(१) बेटी जायी रे जगनाथ ! ज्या रो हेठै आयो हाथ।

अर्थात् हे जगन्नाथ ! जिसने बेटी को जन्म दिया, उसका हाथ नीचे आ गया। कहने का तात्पर्य यह है कि बेटी के बाप को वर-पक्ष वालो से सदा दबकर ही चलना पडता है।

(२) बेटी जाम जमारो हार्‌यो।

अर्थात् पुत्री को जन्म देकर जीवन व्यर्थ ही खो दिया।

(३) "बेटी भली न एक" यह कहावती अश तो केवल राजस्थान मे ही नही, प्राय: उत्तरी भारतवर्ष में भी सर्वत्र प्रचलित है।

राजस्थान मे "बेटी का बाप" तो एक ऐसा कहावती पदाश ही बन गया है जिसका प्रयोग किसी व्यक्ति के हीन भाव को प्रकट करने के लिए होता है। सस्कृत सुभाषितकार के शब्दो में "कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्" अर्थात् कन्या का पिता होना एक अत्यन्त कष्टदायक वस्तु है। राजस्थान की एक कहावत मे कहा गया है "कै जागै जंके घर मे सांप, कै जागै बेटी को बाप" अर्थात् या तो वह जगता है जिसके घर मे साँप रहता है या वह जगता है जो लडकी का पिता है। लडकी के पिता को सर्वदा चिन्तित रहना पडता है।

घर में जब पुत्र का जन्म होता है तो थाल बजाकर उसका स्वागत किया जाता है किन्तु लडकी के जन्म पर घर में उदासी का वातावरण छा जाता है। लडके-लडकी के साथ व्यवहार करने में भी माता-पिता का प्राय पक्षपात देखा जाता है जिसका अवश्यम्भावी परिणाम यह होता है कि लडकी भी तुच्छ भावना से आक्रान्त होकर अपने को नगण्य समझने लगती है।

इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि राजपूतो के यहाँ जब लडकी पैदा होती थी तो उनमें से बहुत से निर्धन राजपूत पैदा होते ही उस लडकी को एक हँडिया मे रखकर उसके मुँह को भली प्रकार बन्द कर देते थे जिसमें दम घुट जाने के कारण लडकी की मृत्यु हो जाती थी। उस हँडिया को वे जगल में ले जाकर गाड दिया करते थे। इस प्रथा की ओर सकेत करने वाली निम्नलिखित राजस्थानी लोकोक्ति बडा गहरा प्रहार करती है—

"बाई जी पेट मे सं तो नीकल्या पण हाडी में सं कोनी नीकल्या।"

अर्थात् माता के गर्भ से तो लडकी बाहर निकल आई किन्तु जब उसे हँडिया

मे डाल दिया गया तो वह बाहर नही निकल सकी।

श्री युधिष्ठिर मीमासक ने ब्राह्मण-ग्रन्थो से पता चलाया है कि कन्या को उत्पन्न होते ही उसे छोड देने की प्रथा का प्रारम्भ उस काल मे हो गया था।

"तस्मात् स्त्रिय जातां परास्यन्ति न पुमासम्॥" मै० स० ४-६-४

उन्ही के शब्दो में इस प्रथा का अवशेष राजपूताने में अभी तक मिलता है। कई राजपूत कन्या को उत्पन्न होते ही गला घोटकर मार देते हैं।[1]

परिवार मे भी उस नारी का विशेष आदर होता है, जो पुत्र-प्रसविनी होती है, अथवा जिसकी सतति से वश चलने की सम्भावना रहती है। धर्मशास्त्र में पौत्र और दौहित्र मे कुछ विशेष भेद नही माना गया है। पौत्र के समान दौहित्र भी पिण्ड-दान आदि द्वारा उद्धार करता है किन्तु फिर भी पौत्र की वधू दौहित्र की वधू से अच्छी लगती है। एक कहावत में कहा गया है कि पौत्र-वधू की 'राबडी'[2] भी मीठी और दौहित्र-वधू की खीर भी खट्टी लगती है।

"पोता भू की राबड़ी, दोयता भू की खीर।
मीठी लागै राबडी, खाटी लागै खीर॥"

पौत्र-वधू के प्रियतर होने का कारण यह है कि उससे अपना वश चलता है, दौहित्र के लडके से अपना वश नही चलता।

(२) पराधीनता—भारतीय इतिहास में कोई युग ऐसा था, जब नारी को अपना पति स्वय वरण करने की स्वतन्त्रता थी, जब पुरुषो के समान ही उसे उपनयन, वेदाध्ययन आदि का अधिकार था, इतना ही नही, ऋग्वेद मे तो ऐसी बहुत-सी ऋचाएँ हैं जो स्त्रियो द्वारा निर्मित हैं। उपनिषद्-युग की गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियाँ आध्यात्मिक वाद-विवाद मे सक्रिय भाग लिया करती थी और समाज में वे बडे आदर और सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी किन्तु धीरे-धीरे समय ने पलटा खाया, नारी की स्थिति मे परिवर्तन होने लगा, क्रमश वह पराधीनता की बेडियो में जकड दी गई। स्मृतियो के युग मे रजोदर्शन से पूर्व ही विवाह कर देने के सम्बन्ध में कडे नियम बना दिये गये, धीरे-धीरे स्वयवर की प्रथा भी उठ चली, बाल-विवाह के कारण अध्ययन भी अत्यन्त सीमित हो गया, वेद-पाठ स्त्री के लिए निषिद्ध ठहरा दिया गया। घर ही अब उसका प्रमुख क्षेत्र रह गया, बाह्य ससार से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न होने लगा। पुरुष का सामाजिक स्तर ऊँचा हो गया, स्त्री की स्वतन्त्रता जाती रही, जन्म से मरण पर्यन्त उसे 'रक्षणीया' ठहरा दिया गया—

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

अर्थात् कुमारावस्था में पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था मे पुत्र स्त्री की रक्षा करता है, स्त्री स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं।

---

१. "सम्मेलन पत्रिका" भाग ३६ सख्या ४ में प्रकाशित "भारतीय सस्कृति में नारी" शीर्षक लेख, पृष्ठ ५१।

२. मोठ बाजरे के चून में छाछ डालकर जो एक पेय पदार्थ राजस्थान में तैयार किया जाता है, उसे "राबड़ी" कहते हैं।

किन्तु इतना होते हुए भी मनुस्मृति में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" जैसी उक्तियाँ हैं जिनसे पता चलता है कि उस युग मे नारी के प्रति सम्मान की भावना का अभाव नही था।

जहाँ तक राजस्थानी कहावतो का सम्बन्ध है, उनमे राजस्थानी नारी की पराधीनता के चित्र ही विशेष अंकित हुए हैं। इस प्रकार की कुछ कहावतें उदाहरण के लिए लीजिये—

(१) बेटी अर बलद जूडो कोनी गेर्यो।

अर्थात् बेटी और बैल हमेशा बन्धन में रहते हैं।

(२) दुनिया में दो गरीब हैं, कै बेटी, कै बैल।

अर्थात् दुनिया में दो ही गरीब हैं, या तो बेटी या बैल जो हमेशा परतन्त्र रहते हैं।

(३) गाय अर कन्या नै जिन्नै हांक दे उन्नै ही चाल पडं।

अर्थात् गाय और कन्या को जिधर हांक दिया जाय, उधर ही चल पडते हैं। गाय को उसका मालिक जिधर हांक देता है, उधर ही उसको चलना पडता है। इसी प्रकार माता-पिता लडकी के सम्बन्ध मे जो निर्णय कर देते हैं, वही अन्तिम होता है। इस कहावत से तो ऐसा जान पडता है कि लडकी का दर्जा पशु से कुछ ऊपर नही समझा गया। विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण मामले में भी लडकी से कोई बात नही पूछी जाती। जिसके साथ लडकी को जीवन भर बिताना पडता है, उसके सम्बन्ध मे लडकी की पहले कोई जानकारी आवश्यक नही समझी जाती।

नारी की स्वतन्त्रता को कहावती दुनिया में प्रशस्य नही ठहराया गया है। "जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरइ नारी" की भावना ही निम्नलिखित राजस्थानी कहावतो में व्यक्त हुई है—

(१) मेरो मोयूं घर नहीं, मनै किसी को डर नहीं।

अर्थात् मेरा पति घर नहीं, मुझे किसी का डर नही।

(२) मेरो साजन घर कोनी, मनै कोई को डर कोनी।

अर्थात् मेरा प्रिय घर नही, मुझे किसी का भय नही।

(३) जमी, जोरू जोर की, जोर हट्या ग्रौर की।

अर्थात् जमीन और स्त्री बलवान के ही वश में रहती हैं, बल हटने पर वे पराई हो जाती हैं।

(४) मूं आगै नार, पीठ पीछै पराई।

अर्थात् मुंह के सामने स्त्री और पीठ पीछे पराई।

उक्त कहावतो को पढकर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या नियन्त्रण में रखे जाने पर ही नारी के शील और चारित्र्य की रक्षा सम्भव है? क्या यह सम्भव नहीं कि अत्यधिक नियंत्रण की प्रतिक्रिया स्वरूप ही नारी के मन में शृंखलाओं को तोड डालने की इच्छा होने लगती है?

एक राजस्थानी कहावत में तो यहाँ तक कह दिया गया है—

"बेटी रहै आप सं नई तो रहै न सागी बाप सं" अर्थात् बेटी या तो स्वतः ही मर्यादा का पालन करती है, नही तो वह उच्छृ खल हो जाती है, अपने पिता के भी वश में वह नही रहती।

'मनुसहिता' में भी एक इसी आशय की उक्ति उपलब्ध होती है—

"न कश्चिद्योषित शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्॥
अर्थस्य सग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे॥"

—अध्याय ६, श्लोक १०-११

अर्थात् बल-प्रयोग द्वारा कोई भी स्त्री को वश में नही कर सकता। स्त्री सुरक्षित तभी रह सकती है जब उसे द्रव्य के सग्रह और व्यय मे, प्रत्येक वस्तु को स्वच्छ बनाये रखने में, धार्मिक कृत्यों के पालन करने, भोजन बनाने और घर के बर्तनो की देख-भाल मे लगा दिया जाय।

मनुस्मृति मे यथार्थ ही कहा गया है कि यदि स्त्री को निरन्तर गृह-कार्य आदि में सलग्न रखा जाय तो वह वशवर्तिनी रह सकेगी क्योंकि उस हालत मे वह सभी प्रकार के प्रलोभनो से बच जायगी किन्तु चाहे जिस स्त्री को निरन्तर गृह-कार्यों में लगाये रखना भी सामान्यत सम्भव नही होता। वस्तुत जिस स्त्री के सस्कार अच्छे होंगे, वही घर मे भी सुव्यवस्था रख सकेगी तथा स्वय भी सब प्रकार की मर्यादाओ का पालन कर सकेगी। इसलिए राजस्थानी कहावतो में इस बात पर जोर दिया गया है कि वहू अच्छे घराने की होनी चाहिए। निम्नलिखित राजस्थानी कहावत को लीजिये—

"भू घरियाणे की अर गाय न्याणे की" अर्थात् वधू अच्छे घराने की होनी चाहिए और गाय 'न्याणे' वाली होनी चाहिए। दुहने के समय गाय के पिछले पैरो को जिस रस्सी से बांधा जाता है, उस रस्सी को 'न्याणा' कहते हैं। जिस प्रकार न्याणे के बिना गाय द्वारा लात-प्रहार का भय बना रहता है, उसी प्रकार यदि स्त्री कुलीन न हो तो उसके विपथगामिनी होने की आशका बनी रहती है। वैसे एक कहावत में यह भी कहा गया है कि "भू बछेरा डीकरा नीमटिया परवाण" अर्थात् वहू, घोडो के बच्चो और बालको के भले-बुरे का प्रमाण उनके वयस्क होने पर ही मिलता है किन्तु फिर भी सामान्यत: यह आशा की जा सकती है कि जो कुलीन होगा, वह अवस्था प्राप्त कर लेने पर भी जीवन में अच्छी तरह व्यवहार करेगा, और वधू के सुसस्कार-सम्पन्न होने का तो यह और भी अच्छा परिणाम निकलेगा कि उसकी सतति के भी अच्छे सस्कार होगे।

कभी-कभी दहेज के लोभ में निकम्मी बहू को जब घर ले आते हैं तो कहा जाता है—

"दान दायजा दहणा, छाती कूटा रहणा।"

अर्थात् विवाह होने पर जब पुत्र-वधू घर मे आती है तो वही प्रशंसनीय समझी जाती है जो अपने पति के अधीन तथा सास-श्वसुर की आज्ञाकारिणी हो। घर को छोड़कर भाग जाने वाली स्त्री को "ऊदलती का किसा दायजा" अर्थात् उच्छृंखल का कैसा दहेज ? जैसी कहावतो में हेय ठहराया जाता गया है।

(३) फूहड़ स्त्री—फूहड स्त्री के सम्बन्ध में भी राजस्थान मे अनेक कहावतें कही गई हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

(१) फूड़ चालै, नौ घर हालै।

अर्थात् फूहड जब चलती है तो नौ घरों तक उसका फूहड़पन प्रकट हो जाता है।

(२) फूड़ को मैल फागण में उतरै।

अर्थात् फूहड का मैल फाल्गुन मे उतरता है, जाडे भर वह स्नान ही नही करती।

(३) आयो चैत निवायो, फूड़ाँ मैल गँवायो।

अर्थात् गरम चैत्र मास आया तो फूहड ने भी स्नान करके अपना मैल धोया। फूहड नहाये तो समझिये, गर्मी की ऋतु आ गई।

(४) फूड की फेरा ताँई उछल।

अर्थात् भाँवर फिरने के समय भी फूहड भाँवर फिरने के लिए इन्कार तक कर सकती है।

(५) रावड़ी में राख रांधै चून चाटै पीसती।
देखो रै या फूड नार, चालै पल्ला घींसती॥

अर्थात् फूहड स्त्री रावडी के साथ-साथ राख उबाल लेती है, आटा पीसते समय चून चाटती रहती है और चलते समय पल्ला घसीटते हुए चलती है।

(६) फूड करै सिणगार माँग ईंटाँ सूँ फोडै।

अर्थात् फूहड जब शृंगार करती है तो माँग को ईंटो से फोडती है।

वर-पक्ष वाले विवाह के पहले जब लडकी को देखते हैं तो अन्य बातों के साथ-साथ इस बात की भी परीक्षा करते हैं कि लडकी सलीके वाली है या नहीं, व्यवहार-बर्ताव मे वह कैसी है, गृह-कार्य मे वह दक्ष है अथवा नही। और वधू जब घर में प्रवेश करती है तो अनुभवी सास तुरन्त जान लेती है कि यह चतुर है या फूहड। "भू आई सासू हरखी, पगा लागी अर परखी" अर्थात् यदि वह चतुर हुई तो वह क़ायदे से पैर पडती है, फूहड की तरह नही। फूहड समाज में सभी द्वारा निन्दनीय समझी जाती है।

(४) विधवा—राजस्थानी समाज में विधवा एक प्रकार का सामाजिक अभिशाप मानी गई है। यात्रा के समय "सुलै बैसा नार" अर्थात् विधवा का दर्शन अपशकुन में परिगणित किया गया है। विवाहादि मांगलिक अवसरों पर हिन्दू-समाज में विधवा के लिए

कोई स्थान नही। वह यदि साज-शृ गार करे तो लोग उस पर अँगुलि उठाने लगते हैं, वह सन्देह की दृष्टि से देखी जाने लगती है। एक कहावत मे तो स्पष्ट ही कहा गया है कि यदि विधवा अपने नेत्रो मे कज्जल की रेख देने लगे तो वह निश्चय ही अपने लिए नया पति ढूंढ लेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नही।[1]

विधवा का जीवन त्याग और तपस्या का जीवन होना चाहिए, स्वादिष्ट और पुष्टिकर व्यजनो से उसे बचना चाहिए, अन्यथा कुपथ की ओर उसके पाँव बढ़ सकते हैं। इसीलिए राजस्थान की एक कहावत मे कहा गया है—



> बैल, बैरागी, बोकडो, चौथी विधवा नार।
> एता तो भूखा भला, धाया करे बगाड ॥[2]

अर्थात् बैल, बैरागी साधु, बकरा और विधवा स्त्री, ये चारो तो भूखे ही अच्छे हैं, तृप्त होने पर ये नुकसान पहुँचाते हैं।

किन्तु अब राजस्थान में भी शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ विधवा के प्रति लोगो की सहानुभूति बढ रही है।

(५) लाडी—विधवा का समाज मे जितना निरादर होता है, उतना ही आदर होता है उस स्त्री (लाडी) का जो दूज वर की पत्नी बनती है, जो पहली स्त्री की मृत्यु होने पर गृहिणी के पद को सुशोभित करती है। तत्सम्बन्धी कुछ कहावतें लीजिये—

> (१) दूजवर की गोरडी, हाथा परली मोरडी।
> दग्गड दग्गड खाऊँगी, बोलैगो तो मर ज्याऊँगी ॥

अर्थात् दूजवर की स्त्री हाथ पर की मोरनी के समान है। उसकी इच्छा-पूर्ति में यदि बाधा डाली जाय तो वह आत्म-हत्या तक की धमकी देने लगती है।

> (२) दूजवर की गोरडी र मोत्या बचली मोरडी।

अर्थात् अधिक अवस्था वाले पुरुष के दूसरा विवाह करने पर वह उस स्त्री का विशेष आदर करता है।

नारी-सम्बन्धी कुछ कहावतो में वृद्ध-विवाह पर यत्र-तत्र व्यग्योक्तियाँ मिलती हैं। वृद्ध पुरुष जब किसी बाला से विवाह करता है और जब वृद्ध के बच्चे उस बाला को 'मा' कहकर सम्बोधित करते हैं तो इस सम्बोधन से वह बाला भी सकोच में पड जाती है और कहने-सुनने वालो को भी वह सम्बोधन अखरता है। इसीलिए व्यग्योक्ति के रूप मे एक कहावत प्रसिद्ध है—

> "माजी ई माजी पण है तो पूणी ई तेरा बरस की।"

अर्थात् नाम को तो माता जी ही माता जी हैं पर अवस्था तो पौने तेरह वर्ष की ही है न!

---

१ तीतरपखी बादली, विधवा काजल रेख।
बा बरसै बा घर करै, ई में मीन न मेख ॥

२. मेवाड की कहावतें, भाग १ (प० लक्ष्मीलाल जोशी), पृष्ठ १६७।

"होय रोकडा तो वींद परणै डोकरा" अर्थात् पास मे धन हो तो वृद्ध का भी विवाह हो जाता है, आदि उक्तियो से स्पष्ट है कि वृद्ध अपने धन के बल पर निर्धन कन्या को एक प्रकार से खरीद लेता है। जब किसी निर्धन की लडकी का धनी वृद्ध के साथ विवाह हो जाता है तो उस निर्धन की बडी आवभगत होने लगती है, दाल-भात उसे खाने को मिलने लगते हैं। इसीलिए एक कहावत मे कहा गया है—

"दाल भात लम्बा जीकारा।
ए बाई! परताप तुम्हारा॥

(६) बडी बहू—राजस्थान में बाल-विवाह की प्रथा के कारण अनेक बार ऐसा भी होता है कि वर की अपेक्षा वधू बडी अवस्था वाली आ जाती है। इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध कथावत कही जाती है—

"बड्डी भू का बडडा भाग, छोटो बनड़ो घणा सुहाग।"

अर्थात् वर यदि छोटा हो और बहू बडी हो तो बहू के वृद्ध होने पर भी वह युवा ही बना रहेगा, इसलिए वर की ओर से स्त्री को अपनी मृत्यु तक सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। यह उक्ति राजस्थान के बाल-विवाह के प्रेमियो पर चरितार्थ होती है।

किन्तु अब धीरे-धीरे वृद्ध-विवाह और बाल-विवाह बहुत कम हो रहे हैं।

(७) सास-बहू—सामान्यत. सास-बहू मे अच्छी तरह नहीं निभती। सास बहू पर अपना प्रभुत्व जमाये रखना चाहती है, बहू को यह सदा सह्य नही होता, इसलिए परस्पर अनबन के अनेक अवसर आ ही जाते हैं। राजस्थान में एक सास के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि वह एक बार कुछ समय के लिए घर से बाहर गई हुई थी। घर मे बहू अकेली थी। एक भिखारिन द्वार पर आ खडी हुई। बहू ने उसे एक रोटी का टुकडा दे दिया। जब सास बाहर से चलकर अपने घर की ओर आ रही थी तो उसने भिखारिन को अपने घर से निकलते हुए देख लिया। पूछने पर मालूम हुआ कि बहू ने उसे रोटी का टुकडा दिया है। सास भिखारिन को घर के अन्दर ले आई और कहा—रोटी का टुकड़ा रख दे। फिर बहू के देखते अपने हाथ से सास ने वही रोटी का टुकडा भिखारिन को दे दिया और कहा कि अब तुम जा सकती हो। इस कथा मे अतिरंजना का अश भले हो और अपवादस्वरूप ही चाहे इस प्रकार की घटना कभी घटित हुई हो किन्तु इस कहानी में बहू पर सास की प्रभुत्व-भावना साकार हो उठी है।

यही कारण है कि जब तक सास जीती है, बहू अपने आपको बन्धन मे समझती है। सास की मृत्यु पर भी उसे वास्तविक दुःख नही होता, लोगो को दिखाने के लिए वह कृत्रिम दुःख भले ही प्रकट करे। निम्नलिखित कहावतो में यही भाव व्यक्त हुआ है—

१. सासू मरगी फटगी बेंटी।
भू चढगी हर की पैंडी॥

अर्थात् सास मर गई तो वहू के बन्धन कट गये। वह 'हर की पैडी' पर चढ गई।

२ आज मरी सासू, काल आया आँसू।

अर्थात् सासू आज मरी और आँसू कल आये।

किसी-किसी सास के अत्याचार जब चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तो बहू घर छोडकर निकल जाती है। इसीलिए एक कहावत में तो कहा गया है—

"बहू करे सो करवादो ने बेटा रो घर मंडवादो।"[1]

अर्थात् सास को चाहिए कि वह बहू से अधिक लडे-झगडे नही, बहू यदि घर छोडकर निकल जायेगी तो पुत्र का घर बिखर जायगा।

यद्यपि यह सत्य है कि सास भी सब इकसार नही हुआ करतीं किन्तु वधू के प्रति सास के अत्याचारो ने कहावती ख्याति प्राप्त करली है। राजस्थान मे तो इस सम्बन्ध मे एक कहावत ही बन गई—

"सास बारी ने बऊ बिचारी।"[2]

अर्थात् सास-बहू को तकलीफ दे या न दे सास हमेशा बदनाम होती है और बहू सदा गरीब समझी जाती है।

गृह-स्वामिनी के अधिकार को सास छोडना नही चाहती और बहू उस अधिकार को प्राप्त करना चाहती है। अपने वधू-काल में सास जिन अधिकारो से वचित रही थी, उस काल का स्मरण करके भी वह अधिकारो से चिपटे रहना चाहती है। प्रभुत्व प्राप्त करने से व्यक्ति के अह की तृप्ति होती है। यह प्रभुत्व-भावना ही सास-बहू के सघर्ष का मुख्य कारण जान पडती है।

(८) नारी-सम्बन्धी धारणाएँ—राजस्थान में नारी के सम्बन्ध मे जो कहावतें प्रचलित हैं, उनसे नारी के प्रति किसी ऊँची भावना का पता नही चलता। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

१ लुगाई री अकल खुडी में हुया करै।

अर्थात् स्त्री की बुद्धि एडी मे हुआ करती है। वह कम अक्लवाली होती है।

२. लुगाई तो पगरखी की नई है।

तात्पर्य यह है कि पहली स्त्री की मृत्यु के बाद दूसरी से उसी आसानी से शादी करली जाती है जिस प्रकार एक जूतो की जोडी टूट जाने पर उसके बदले दूसरी खरीद ली जाती है।

३. गाडा को फाचरो 'र लुगाई को चाचरो फूट्योडो ही चोखो।

अर्थात् गाडी के फाचर और स्त्री के सिर को जितना कूटा जाय, उतना ही अच्छा। फाचर से तात्पर्य उस काठ की कील से है जो पहिये में ठोकी जाती है।

---

१. मेवाड की कहावतें, पहला भाग (पडित लक्ष्मीलाल जोशी), पृष्ठ ६१

२. वही, पृष्ठ ६५।

'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी' मे जो भावना व्यक्त हुई है, वह उक्त लोकोक्ति मे भी देखी जा सकती है।

४. घर सैं वेटी नीकली चाहे जम ल्यो चाहे जवाई ल्यो ।

अर्थात् वेटी जव घर से निकल गई तो चाहे वह यम के घर जाय, चाहे जामाता के यहाँ रहे ।।

५. छोटी मोटी कामणी सगली विस की वेल ।

अर्थात् छोटी-मोटी कामिनी, सभी विष की वेल हैं।

६. तिरियाँ, तुरकाँ, वाणियाँ भील भला मत जाण ।
देख गरीब न भूल जे, निपट कपट की खाण ।।[१]

नारी सम्बन्धी इस प्रकार की धारणाएँ केवल राजस्थान में ही नही, अन्य राज्यो में भी मिलती हैं।

(६) आदर्श नारी—राजस्थान में नारी के सम्बन्ध मे जो उक्तियाँ प्रचलित हैं, उन्हें हम दो भागो में बाँट सकते हैं—(१) कुछ उक्तियाँ तो ऐसी हैं जो सामान्य लोगो में प्रचलित हैं और जिनमे नारी के सम्बन्ध में परम्परा-मुक्त प्रतिक्रियावादी विचार-धारा ही प्रतिविम्बित हुई है। (२) दूसरे प्रकार की उक्तियाँ वे हैं जो साहित्यिक व्यक्तियो में अधिक प्रचलित है तथा वीररसात्मक साहित्य से जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसी उक्तियो में हमें राजस्थानी वीरागना के भव्य दर्शन होते है। "वीरवानी" शब्द राजस्थान में स्त्री के पर्याय के रूप में प्रचलित है। सम्भव है वीर-प्रसविनी अथवा वीर को वरण करने वाली होने के कारण ही यह शब्द राजस्थान में प्रचलित हुआ हो।

वैदिक साहित्य मे भी एक शब्द मिलता है "वीरिणी" जो वीरवानी के समकक्ष रखा जा सकता है। "वीरिणी" शब्द का अर्थ है वीरो को जन्म देने वाली। वीर-प्रसविनी नारी के आदर्श का उल्लेख वेदो में भी हुआ है। इन्द्राणी अपने आपको 'वीरिणी' कहने में गौरव का अनुभव करती है।[२]

आदर्श की दृष्टि मे राजस्थान मे 'कूख वंकी गोरिया' कहकर उस नारी की प्रशसा की गई है जो वीर-प्रसविनी हो। इस प्रदेश मे अनेक ऐसी वीरागनाओ के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने अपने निर्मल चरित्र द्वारा पीहर और ससुराल दोनो पक्षो को उज्ज्वल कर अक्षय कीर्ति प्राप्त की थी। यद्यपि राजस्थान की कहावतो में नारी को विष की बेल वतलाया गया है किन्तु एक कहावत में उसी नारी को 'नर की खान' कहा गया है। नारी यदि पुत्र प्रसव करे तो वह या तो शूरवीर को जन्म दे अथवा दानी को, अन्यथा उसे अपना नूर नही गँवाना चाहिए, उसका वन्ध्या रहना ही अच्छा है। निम्नलिखित कहावती दोहा राजस्थान में सर्वत्र प्रसिद्ध है—

"जननी जणे तो दोय जण, के दाता के सूर।
नीतर रहजे वान्झड़ी, मती गंवावे नूर ।।

१. अर्थ स्पष्ट है।

2 Women in the Vedas by Dr A C Bose (Prabudha Bharata, Holy mother, Birth Centenary Number, 1945), p 161.

राजस्थान की वीर बालाओ ने जो शौर्य दिखलाया है, उससे इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। किस प्रकार वीर माता अपने पुत्र को पलने में ही मृत्यु का गौरव सिखलाया करती थी, इसके सम्बन्ध मे राजस्थान के अमर कवि श्री सूर्यमल्ल मिश्रण का निम्नलिखित दोहा लोकोक्ति की भाँति प्रचलित है—

इला न देणी आपणी, हालरिये हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण वडाई माय॥

'अपनी पृथ्वी किसी को नही देनी चाहिए' इस भाव के झूले के गीतो के साथ झुलाती हुई पलने मे ही माता पुत्र को रणागण मे मृत्यु की महत्ता सिखा देती है।

पति की मृत्यु होने पर किस प्रकार क्षत्रिय-बालाओ ने अपने आपको अग्नि-देव के समर्पित कर दिया था, इसे इतिहास के पाठक भली भाँति जानते हैं। ये क्षत्रिय-बालाएँ एक प्रकार से अग्नि-बालाएँ हुआ करती थी जो अग्नि-देवता की गोद मे उसी प्रकार आश्वस्त होकर चली जाया करती थी जिस प्रकार लड़की अपनी माता की गोद में चली जाती है।

अमर सुहाग लेकर क्षत्रिय-बाला इस धरा-धाम पर अवतीर्ण होती थी। वह कभी वैधव्य का दु ख नही भोगती थी क्योकि उसे विश्वास था कि सती होने पर वह स्वर्ग-लोक मे अपने पति के साथ अनन्त काल तक आनन्द का उपभोग करती रहेगी। इसीलिए कहा गया है "रावत जायी डीकरी सदा सुहागण होय" अर्थात् क्षत्रिय-बाला सदा सुहागिन रहती है।

रात्रि-जागरण के अवसर पर जो गीत राजस्थान मे गाये जाते हैं, उनमे जैतलदे जैसी नारी को आदर्श के रूप में ग्रहण किया गया है—

"जायो जायो रै जैतलदे सी धीव,
नाम निकाल्यो आपकै बाप को जी।"

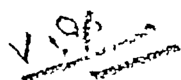
अर्थात् जैतलदे-जैसी दुहिता उत्पन्न करना जिसने अपने पिता के नाम को उज्ज्वल किया।

लोकगीतो में प्रसिद्ध सजना जैसी नारियो ने वही काम कर दिखलाया था जो कोई भी वीर पुत्र कर सकता है। इसीलिए राजस्थान में तो एक कहावत ही प्रचलित हो गई—

काइज न्याऊ डीकरी, काइज आछो पूत।
कूख सिलाया पूत है, नहीं मूंत को मूंत॥

अर्थात् पुत्री का होना क्या बुरा और पुत्र का होना क्या अच्छा? जिस पुत्र को जन्म देकर माता अपने को धन्य समझे, जो उसकी कोख को शीतल करे, वही पुत्र कहलाने का अधिकारी है अन्यथा ऐसे पुत्र का न होना ही अच्छा।

राजस्थानी साहित्य मे नारी के जिस आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है, वह चित्त को मुग्ध कर लेता है। मारवणी की महिमा के सम्बन्ध में कही हुई नीचे की उक्ति अनुपम है—



गति गंगा, मति सरसुती, सीता सील सुभाइ।
महिला सरहर मारुवी, कलि मे अवर न काइ॥

अर्थात् गति मे गगा के समान, मति में सरस्वती के समान और शील स्वभाव में सीता के समान मरुदेश की महिला की वरावरी करने वाली इस कलि काल मे कोई नही।

(ग) अन्य सामाजिक कहावतें

राजस्थान की नारी तथा जाति-सम्बन्धी कहावतो पर पहले विचार किया जा चुका है। सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिए ये कहावतें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक कहावते राजस्थानी भाषा मे प्रचलित हैं जिनमे यहाँ के सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पडता है।

१. त्यौहार—वैसे तो समस्त भारतवर्ष मे ही वहुत से त्यौहार मनाये जाते हैं किन्तु राजस्थान मे त्यौहारो की सख्या अपेक्षाकृत और भी अधिक है जैसा कि यहाँ की प्रचलित लोकोक्ति "सात वार नौ त्योहार" से जान पडता है। सप्ताह मे जहाँ दिनो की सख्या सात है, वहाँ त्यौहारो की सख्या यहाँ नौ है। इस उक्ति में किंचित् अतिरंजना का तत्त्व भले ही हो, किन्तु फिर भी त्यौहारो की अधिकता पर इसके द्वारा अच्छा प्रकाश पडता है।

राजस्थान से सम्वन्ध रखने वाली कुछ लोकोक्तियाँ लीजिये—

(१) गणगोर्यां नै ही घोडा न दौडै तो कद दौड़ै।

गणगौर के दिन ही यदि घोडे न दौडेंगे तो कव दौडेंगे?

गणगौर राजस्थान का एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार है। उपयुक्त पति की प्राप्ति के लिए यह त्यौहार विशेषत कन्याओ द्वारा मनाया जाता है। होली जलने के दूसरे दिन से ही वे गौरी की पूजा करने लगती हैं और यह गौरी-पूजन चैत्र शुक्ला चतुर्थी तक चलता है। चैत्र शुक्ला तृतीया और चतुर्थी को मेले भरते है जिनमें 'गवर' की सवारी किसी जलाशय पर ले जायी जाती है। प्राय राजा-महाराजा तथा सरदार लोग भी इन सवारियो मे सम्मिलित होते हैं।

(२) तीज त्युहारा वावड़ी, ले डूवी गणगोर।

श्रावणी तीज के वाद त्यौहार जल्दी-जल्दी आते हैं, गणगौर के वाद चार महीनो तक त्यौहार नहीं आते।

(३) कसी कवाड़ा वच रे वावा! घम्मोली घलकाय दे।

हे वावा! कसी, कवाडा वेचकर भी मेरे लिए 'घम्मोली' का प्रवन्ध कर ही दे।

तीजो के त्यौहारो का राजस्थान में वडा महत्त्व है। यह इस प्रदेश का सबसे प्यारा त्यौहार है। तीज को स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और चन्द्र-दर्शन के वाद फल, सत्तू आदि खाती हैं। दूज की रात को अनिवार्य रूप से गृहस्थ वहिन-वेटियो के लिए मिठाई मँगवाकर उन्हे देते हैं। उक्त कहावत मे वेटी वाप से जिद करके कह रही है कि

पिताजी ! चाहे आपको औजार बेचना पड़े तब भी मेरे लिए मिठाई तो मँगवानी ही पड़ेगी।'[1]

(४) तीजा पाछै तीजड़ी, होली पाछै ढूँढ।
फेरां पाछै चूनड़ी, मार कसम कै मूँड॥

तीज के त्यौहार के बाद यदि कोई वस्त्रादि भेजे, होली बीत चुकने पर यदि होली के उपलक्ष्य में कोई चीज भेजी जाय, भाँवर फिर लेने के बाद यदि चुनरी भेजी जाय तो सब व्यर्थ है।

(५) आडै दिन सूं बास्योड़ो ही चोखो।

सामान्य दिन की अपेक्षा शीतला-पूजन का दिन ही श्रेष्ठ है जिससे मीठा तो खाने को मिले। शीतलाष्टमी के दिन यद्यपि ठण्डा भोजन किया जाता है किन्तु फिर भी पहले दिन तैयार किए हुए अनेक प्रकार के भोज्य-पदार्थ खाने को मिलते हैं।

इस प्रकार की कहावतो से राजस्थान के सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

२ विवाह—"तिरिया तेरा, मरद अठारा" यहाँ की एक कहावत है जिसके अनुसार स्त्री तेरह वर्ष तथा पुरुष अठारह वर्ष की अवस्था में विवाह-योग्य होते हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है, कुछ वर्षों पहले राजस्थान मे बाल-विवाह की प्रथा जोरो पर थी और 'छोटे बनड़े' की प्रशसा के गीत गाते हुए यहाँ की स्त्रियाँ अघाती नही थी किन्तु अब शिक्षा के प्रभाव से उच्च जातियो में बाल-विवाह के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई है और विवाह अपेक्षाकृत बड़ी अवस्था में होने लगे हैं।

राजस्थानी भाषा में अनेक कहावतें ऐसी हैं जो वृद्ध विवाह पर व्यग्योक्तियो का काम देती हैं। एक कहावत मे कहा गया है 'बाबोजी घोर जोगा, बींनीजी सेज जोगा' अर्थात् नव वधू जब सेज के योग्य है तो बाबाजी (वृद्ध पुरुष) कब्र के योग्य हैं। इस प्रकार के अनमेल विवाह मे स्त्री के लिए किसी भी क्षण विधवा हो जाने की आशका बनी रहती है।

राजस्थानी कहावतो में बहुपत्नीत्व को भी हेय ठहराया गया है। उदाहरणार्थ एक कहावत लीजिए—

"दो बवा रो वर चूल्हो फूंकै।"

अर्थात् दो स्त्रियो का पति चूल्हा फूँकता है।

विवाह-सम्बन्धी कुछ रीति-रिवाजो को लेकर भी राजस्थान में कहावतें प्रचलित हुई हैं। 'मारवाड मे बींद के सिर पर दही लगाने का आम दस्तूर है और जो कोई जमाई नालायक निकल जाता है तो सास उसको यह ताना देती है कि 'तूने भला मेरा दही लजाया'। 'दही लजाना' भी एक ओखाणा है।'

जैसे वर की माता उसे दूध पिलाती है, वैसे ही विवाह के अवसर पर सास जमाई के माथे पर हथेली से दही चिपका देती है अर्थात् उसे अपनी कन्या का वर मान लेती है। यही तथ्य "दही री बात सही" इस लोकोक्ति द्वारा प्रकट हुआ है।

---

१ राजस्थानी कहावतें (स्वामी नरोत्तमदास और पंडित मुरलीधर व्यास), भाग पहला, पृष्ठ ६७

'राजपूतो मे दही कनात की आड से लगाया जाता है क्योकि सास जमाई से परदा करती है और कभी उसके सामने नही होती, और जो कदाचित् 'रात-विरात' सामने होती भी है तो अपने को जाहिर नही करती। सालियो और सहेलियो में छुप कर आती और बैठती है। इसलिए "रात काली ने सासू साली" का ओखाणा है।

बीदणी के तेल चढाने का दस्तूर बीद के आ जाने पर किया जाता है क्योकि तेल चढी हुई लडकी बैठी नही रहती। जो तेल चढे पीछे सावे पर बीद नही आवे या कोई हरज मरज हो जाये तो उस वक्त बडी मुश्किल पडती है और लाचारी के साथ उसका विवाह किसी दूसरे आदमी के साथ करना पडता है। "तिरिया तेल हमीर हठ चढ़े न दूजी बार" की मसल मशहूर ही है

"चौथे फेरे धी हुई पराइ" स्त्रियो द्वारा विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो का एक टुकडा है जिसका तात्पर्य यह है कि चौथे फेरे मे बेटी पराई हो जाती है।

राजपूतों के यहाँ विवाह मे जब 'त्याग' दिया जाता है तो ढोल बजता है और इधर-उधर से बहुत आदमी जमा हो जाते है। उस वक्त चारण लोग बारबार निम्नलिखित कहावती दोहा पढते हैं।

"कंकण बंधण रण चढण, पुत्र बधाई चाव।
तीन दिवस ये त्याग रा, कूण रक कुण राव॥"[1]

अर्थात् विवाह के अवसर पर ककन बँधते समय, युद्धार्थ चढते समय और पुत्र-जन्म की बधाई के चाव के समय तो सभी द्रव्य लुटाते हैं, चाहे कोई राजा हो अथवा रक हो।

३. सयुक्त कुटुम्ब—सयुक्त कुटुम्ब की पद्धति इस प्रदेश की विशेषता रही है। निम्नलिखित कहावत सयुक्त कुटुम्ब को लक्ष्य में रखकर ही कही गई जान पडती है।

"बधी भारी लाख की, खुल्ली बीखर ज्याय।"

अभिप्राय यह है कि सयुक्त परिवार में रहने से प्रतिष्ठा बनी रहती है, भाइयों के अलग-अलग हो जाने से इज्जत जाती रहती है।

किन्तु शहरो में प्राय देखा जाता है कि सयुक्त कुटुम्ब में रहकर निर्वाह करना कठिन हो जाता है। इसीलिए एक अन्य राजस्थानी कहावत मे कहा गया है—

"कलकत्तै रो धारो, बाप सूं बेटो न्यारो।"

अर्थात् कलकत्ते की यही प्रथा है कि पिता से पुत्र अलग हो जाता है।

४. शूरवीरता—शूरवीरता राजस्थान की संस्कृति का विशेष गुण रहा है। यहाँ के इतिहास को पढने से तो ऐसा लगता है मानो राजस्थान वीरता की जन्म-भूमि हो। इसीलिए यहाँ की एक कहावत 'सूरा सो पूरा' के अनुसार पूरा आदमी ही उसको माना गया है जो शूरवीर हो। एक अन्य कहावत में कहा गया है कि "मिनख

१. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी, राज मारवाड, बाबत सन् १८९१ ईस्वी, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ ३१-३२।

र माणसियो दो होय है" अर्थात् एक तो होता है मिनख अथवा मनुष्य, और दूसरा होता है "माणसिया"। इन दोनो मे बडा अन्तर है, दोनो को एक ही समझने की भूल नही करनी चाहिए। "माणसिया" तथाकथित मनुष्य के लिए एक तुच्छता-व्यजक शब्द है। जो शूरवीर नही, वह मनुष्य वस्तुत अधूरा है। उसे पूरा मनुष्य कैसे कहा जा सकता है?

जो वीर पुरुष होते हैं, वे हाय-हाय नही करते, देश और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणो का बलिदान कर देते हैं।

ईसरदासजी की निम्नलिखित पक्तियाँ राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रयुक्त होती हैं—

"मरदा मरणो हक्क है, ऊबरसी गल्लाह।
सापुरसा रा जीवणा थोडा ही भल्लाह॥"[1]

जो वीर पुरुष किसी सन्निमित्त के लिए अपना प्राणोत्सर्ग कर देते हैं, उसके कारण ससार में उनका नाम अमर हो जाता है। सत्पुरुषो का थोडा ही जीना अच्छा है।

५ प्रतिज्ञा-पालन—प्रतिज्ञा-पालन अथवा वचन-रक्षा राजस्थानी सस्कृति का प्राण है। जो अपनी प्रतिज्ञा से टल गया, उसका जीवन ही व्यर्थ गया।[2] "वचन और बाप एक होते हैं।" राजस्थान की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है जिसका प्रयोग पाबूजी तथा निहालदे सुलतान के पवाडो में भी अनेक बार हुआ है। कुछ उदाहरण लीजिए।

"बाप वचन तो होवं छं मरदां रा जुग में एक।
कोइ सीस तो कटवावे रे पिण वाचा जुग मे ना तजे॥"[3]

मर्दो के बाप और वचन तो ससार मे एक ही होते हैं, वे अपना सिर दे देते है, किन्तु दिये हुए वचन का उल्लघन कभी नही करते। वाल्मीकि के राम ने भी वचनबद्धता के गौरव को प्रकट करते हुए कहा था, "रामो द्विर्नाभिभाषते" अर्थात् राम दो बार नही कहता। एक बार जो कह दिया, वह कह दिया, उसे वह बदलता नहीं, उससे वह हटता नही।

राजस्थान मे प्रतिज्ञा करने वाला कहा करता है कि यदि मैं अपने वचन से चूक जाऊँ तो मुझे पापी ठहराया जाय, मैं खडा-खडा सूख जाऊँ और धोबी के कुण्ड में कक्कड होकर गिरूँ। नानडिये ने गोरखनाथजी के समक्ष प्रतिज्ञा करते समय यही कहा था—

"वाचा चूकू ऊबो सूकू लागै हत्या पाप।
कोई धोबी की कूड में रे ककरिये होको मैं पडू॥"[4]

---

१ पाठान्तर "सापुरसा रा जीवणा थोडा ही फरमाया।"
२ जनान हारी जिणै जिन्नैग हार्‌यो।
३ चौबट को पवाडो, पृष्ठ ७। श्री गणपति स्वामी द्वारा सगृहीत और बिडला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त।
४ नानडियो को पवाडो, पृष्ठ ३१।

"वचन और बाप" एक होते हैं, इस लोकोक्ति का निहालदे सुलतान के पवाडो में भी अनेक बार प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित गीत लीजिये—

"जद बी यो मघपत जिस दिन कह रह्या।
म्हारी एक बी सुणो ना बी बेटी मेरो जाव ॥
केला बी गढ़ को हे बेटी गढपती।
जाणे छोटो मैं कोन्या कोटडियो सिरदार ॥
करी जें सगाई हे बेटी कमधजराव सें।
वों बी करै माजणा मेरा खार ॥
वचन बाप भी हे बेटी दुनिया में एक है।
पच्या नट ज्याऊँ वी मुसकल मनै मड ज्याय ॥"[1]

निहालदे का पिता मघपत उसे कह रहा है कि हे पुत्री ! मेरी बात सुनो। मैं कोई छोटे सरदारो मे नही, केलागढ का गढाधीश हूँ। मैंने कमधजराव से तेरी सगाई करदी है, मैं अपने वचन से अब कैसे फिर जाऊँ ? वह भी मुझे बुरी तरह आडे हाथो लेगा और फिर हे पुत्री ! वचन और बाप तो दुनिया मे एक होते हैं। जो अपने दिये हुए वचन का पालन नही करता, वह असली पिता का पुत्र नही। मैं कैसे इन्कार कर दूँ ? सोच तो सही, मुझे कितनी बडी कठिनाइयो का सामना करना पडेगा ?

६ अतिथि-सत्कार—एक प्रसिद्ध नीति-वचन के अनुसार अतिथि जिसके घर से निराश होकर लौट जाता है, वह गृह-स्वामी को दुष्कृत का भागी बनाकर स्वय पुण्य लेकर चला जाता है इसलिए भारतीयो ने अतिथि-सत्कार को न केवल आदर की दृष्टि से देखा है बल्कि अतिथि के प्रति भारतीय गृहस्थो के मन मे एक प्रकार की धर्म-बुद्धि भी देखी जाती है। आर्थिक सघर्ष की जटिलता तथा सकुलता के कारण यद्यपि इस युग मे पहले जैसी बात तो नही रही किन्तु फिर भी राजस्थान में और विशेषत यहाँ के गांवो मे अतिथि-सत्कार का अच्छा रूप दृष्टिगोचर होता है।

अतिथि-सत्कार राजस्थानी सस्कृति की एक प्रमुख विशेषता रही है। घर पर आये हुए शत्रु का भी सम्मान करना यहाँ प्रशस्य ठहराया गया है। घर आयो वैरी ई पांमणो" यहाँ की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि घर पर आया हुआ शत्रु भी मेहमान होता है।

७ सम्बन्ध—पारिवारिक जीवन में सम्बन्धी परस्पर किस प्रकार व्यवहार करते हैं अथवा कौनसा व्यवहार आदर्श समझा जाता है आदि के विषय मे अनेक उपयोगी सकेत राजस्थानी कहावतो मे उपलब्ध होते है जिनका यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है।

विवाहादि द्वारा समर्थ को अपना सम्बन्धी बनाना चाहिए जिससे समय-समय पर वह हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

---

१. बिरला मेडल लाइब्रेरी की पाण्डुलिपि से साभार उद्धृत।

सगो समरथ कीजिये, जद तद आवे काज ।

ससुराल को सुख का निवास-स्थान कहा गया है पर वहाँ बहुत दिनों तक रहने से अनादर होने लगता है। जामाता यदि दूर रहे तो वह फूल सदृश समझा जाता है। उसका बड़ा लाड-चाव होता है और वह भारस्वरूप नही जान पड़ता। यदि वह उसी गाँव में रहने वाला हो तो उसका आदर घट जाता है और यदि जँवाई घर में ही रहने लग जाय तो वह गधे जैसा समझा जाता है और उससे चाहे जितना काम लिया जा सकता है।

दूर जवाई फूल बरोबर, गाँव जवाई आदो।
घर जंवाई गधे बरोबर, चाये जितणो लादो ॥[1]

एक व्यक्ति ससुराल गया और वहाँ उसने दो महीने रहने की इच्छा प्रकट की। साले ने कहा कि यहाँ तो दो-चार दिन की आवभगत होगी। उसके बाद आपको भी दाव हाथ में लेकर घास काटना होगा।

सासरो सुख वासरो, पण च्यार दिना रो आसरो।
रैसां मास दो मास, देसां दाती बढ़ासां घास।

एक कहावत मे कहा गया है कि साले के बिना ससुराल किसी काम का नही [2] इसका मुख्य कारण सम्भवतः यही है कि साले से ससुराल में वंश-वृद्धि की आशा बनी रहती है।

अब अपने घर के कुछ सम्बन्धियो को लीजिये। बड़ा भाई पिता के समान माना गया है।[3] भाइयो के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन जैसे प्रिय भी नही और उन जैसे दुश्मन भी नही।

भाया सरीसा सेंण नहीं ने भाया सरीसा दुश्मण नहीं।[4]

जिस प्रकार ससुराल में रहने वाले जामाता की प्रतिष्ठा नही होती, उसी प्रकार यदि बहन के घर भाई रहने लग जाय तो उसका भी वहाँ अनादर होने लगता है।[5] भाई से तो बहिन को हमेशा कुछ प्राप्ति की ही आशा रहती है जैसा कि नीचे की कहावत से प्रकट होता है—

होत की भाण अणहोत को भाई।

अर्थात् यदि किसी के पास धन होता है तब तो वह किसी को बहिन बनाता है और यदि स्त्री के पास कुछ नही होता तो दूसरे को अपना भाई बनाती है।

ज्येष्ठ पुत्र के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वह भाग्य से ही मिलता है—

---

१ मिलाइये

गढ़ वैरी अर देहरी, सगो जवाई धी।
इतणा तो अलगा भला, जद सुख पावे जी ॥

२ साले बिना क्या को सासरो ?

३ जेठो भ्राता पिता समो।

४ मारवाड़ रा ओखाणा, पृष्ठ ५७।

५ भाण कै घर भाई अर सासरै जवांई।

जेठा बेटा र जेठा बाजरा राम दे तो पावै ।

पहले-पहल का लडका और ज्येष्ठ मास में बढा हुआ बाजरा ईश्वर के अनुग्रह से ही प्राप्त होता है ।

एक अन्य कहावत मे बड़े लडके को भाई के बराबर भी कहा गया है ।[1]

बेटे से पोता अधिक प्रिय होता है, यह तथ्य "मूल से व्याज प्यारो" द्वारा प्रकट किया गया है ।

बूआ को सामान्यत. प्राप्ति ही होती है किन्तु उसे लेने के साथ-साथ किसी को कुछ देना भी चाहिए, केवल लेना ही ठीक नही । इसलिए एक कहावत में कहा गया है कि बूआ के बहाने से लेना चाहिए और यह मेरी भतीजी है, यह समझकर देना भी चाहिए ।[2]

एक कहावत के अनुसार ननद से भी अधिक माहात्म्य जेठ की लडकी का माना जाता है । ननद के भोजन कराने मे जितना पुण्य है, उतना जेठ की लडकी के आंगन में पैर रखने पर हो जाता है ।[3]

सपत्नी तो यदि कच्चे चून की भी हो तो भी उसे बुरा बतलाया गया है ।[4] सौत को सौत किसी भी हालत मे नही सुहाती ।

माता की मृत्यु होने पर पिता यदि दूसरी स्त्री ले आये तो सौतेली माता के आने पर पिता का पुत्र पर स्नेह बहुत कम हो जाता है ।[5]

८ भोज्य और पेय पदार्थ—भोज्य पदार्थों मे खीर हलुए का भोजन अच्छा माना जाता है ।[6] श्राद्ध-पक्ष के बाद नवरात्र करने वाले ब्राह्मण आनन्द से खीर जलेबी उडाते हैं ।[7] जहाँ मूसल से चूरमा कूटा जा रहा हो, वहाँ कुशल-क्षेम का राज्य समझना चाहिए ।[8] एक साहूकार भगवान से प्रार्थना करते हुए कह रहा है—"घी सक्कर अर दूध पे ऊपर पप्पडा" अर्थात् हे परमेश्वर ! मुझे घी व शक्कर और मलाई से परिपूर्ण दूध खाने को मिले । निर्धन व्यक्ति के मन मे भी गुलगुले खाने की इच्छा होती है किन्तु गुड तेल आदि वह जुटा नही पाता । निम्नलिखित कहावत में एक साधनहीन स्त्री इस प्रकार अपना दुखडा रो रही है—

---

१. जेठा बेटा भाई बराबर ।

२ भुवा मिस लिए अर भतीजी मिस दिये ।

३ "नणद जिमाई, जेठोती आगण आई । राजस्थानी रनिवास (श्री राहुल सांकृत्यायन) पृ० १०५ ।

४. सौक तो काचै चून की भी बुरी ।

५ बाप गयो माई सू, माचो गयो बाई सू ।

६ खाणो खीर को र बाणो तीर को ।
खाबो खीर को र मिलबो वीरा को ॥

७ गया कनागत आई देवी ।
बामण जीमै खीर जलेबी ॥

८ जठे पड़ै मूसल, उठे ही खेम कुसल ।

'गुड कोनी गुलगुला करती, ल्याती तेल उधारो।
परींडै मे पाणी कोनी, बलीतो कोनी न्यारो।
कडायो तो मांग कर ल्याती पण ग्राटा को दुख न्यारो।'

गुड नहीं है, अन्यथा गुलगुला बनाती। तेल तो किसी से उधार ही मांग लाती। घर के जलागार में पानी नही है, ईंधन भी मैं कही से जुटा नही पाई हूँ। कडाह तो मांगकर ही ले आती किन्तु आटे का रोना अलग ही है। जब पास मे कुछ भी नही है तो वह गुलगुले बनायेगी क्या खाक !

गेहूँ के चून मे सिर्फ गुड या चीनी मिलाकर बिना घृत के जो लड्डू बनाये जाते हैं, वे बूर के लड्डू कहलाते हैं। उनको खाने वाला भी पछताता है क्योंकि उनमे घृतादि के अभाव के कारण स्वाद नहीं होता। न खाने वाला इसलिए पछताता है कि न जाने वे कितने स्वादिष्ट होगे। कही-कही बुरादा भी इन लड्डुओ में मिला दिया जाता है। इसीलिए एक कहावत मे कहा गया है।

बूर का लाडू खाय सो बी पिस्तावै, न खाय सो बी पिस्तावै।[1]

बलि के लिए तो लड्डू तैयार किये जाते हैं, स्वाद के लिए उनमे इलायची नही डाली जाती।[2]

चावल को पुष्टिकर अन्न नही माना जाता। चावल खाने वाले केवल दरवाजे तक चल सकते हैं, और अधिक चलने मे वे असमर्थ रहते हैं।[3] "धान पुराना" कह कर पुराने चावल की प्रशसा की गई है। अनुभवी व्यक्ति के अर्थ में 'पुराना चावल' राजस्थानी भाषा का एक कहावती पर्याय भी है।

इसी प्रकार की कुछ कहावतें और लीजिये—

(१) गेहूँ कहियो कै म्हारे ऊपर चीरो।
म्हारी खबर कद पडै कै आवै बहन रो बीरो॥

(२) गुज्जी कहियो कै म्हारै ऊपर भालो।
म्हनै खावै जको उठै, बेहके बैठोडो टालो।

(३) मत बायजो कागणी घर-घर घट्टी मागणी।

(४) सासू बहू रो काई रीसणो, नै मडवा रो काई पीसणो।

गेहूँ कहता है कि मेरे ऊपर चीरा है। जब स्त्री का भाई अपनी बहन को लिवाने आता है तब मेरा पता पडता है क्योंकि तब भाई को गेहूँ की रोटी बनाकर खिलाई जाती है।

गुज्जी नामक अनाज कहता है कि मेरे ऊपर भाला है। अगर मुझे दुबला बैल खा लेता है तो वह फिर से स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है।

एक ग्रामीण महिला अपने पति से सानुरोध प्रार्थना करती है कि हे पतिदेव !

---

१ पाठान्तर—

काठ का लाडू खाय सो बी पिस्तावै, न खाय सो बी पिस्तावै।

२ भूना कै लाडुआं में इलायची को के स्वाद ?

३. चावला को खाणो, फलसै तांई जाणो।

कागणी नामक अनाज को खेत में पैदा न करो क्योंकि उसको पीसने में बड़ी कठिनाई होती है, घर-घर की चक्कियो पर जाना पड़ता है।

सास और पुत्र-वधू का 'रीसाणा' जिस प्रकार साधारण बात है, उसी प्रकार मडवा का पीसना भी सरल है। मडवा नामक अनाज मारवाड के बीलाडा नामक नगर मे विशेष होता है। यह अनाज देखने में काला होता है। अतएव इस विषय मे यह कहावत भी सर्वत्र प्रचलित है—

मडवो माल घर में घाल।
पावणो पही आवे तो परो छिपाव ॥[1]

एक कहावत में कहा गया है कि भूखा रह जाना मजूर है किन्तु जौ का दलिया खाना नही।[2] कुछ कहावतो में पाक-विद्या-सम्बन्धी उपयोगी सकेत भी मिल जाते हैं। जैसे, खीर और खिचडी मन्द आँच में ही अच्छी तरह सीझती हैं।[3]

पेय-पदार्थों मे छाछ और रावडी का अनेक कहावतो मे उल्लेख हुआ है। श्रावण महीने की छाछ हानिकर और कार्तिक की छाछ हितकर होती है।[4] एक वृद्ध के मुख से रावडी की प्रशसा में कहलवाया गया है।

"म्हानै इमरत लागै रावडी, जा मे दात लागै न जावडो।"

अर्थात् हमे रावडी अमृत-तुल्य लगती है जिसमें न दाँत का प्रयोग करना पडता है और न जवडे का।

रावडी वस्तुत गरीबो का पेय पदार्थ है। इसलिए एक कहावत में कहा गया है 'रावडी मे गुण होता तो व्या में ना राधता' अर्थात् रावडी मे यदि गुण होते तो उसे विवाह में ही क्यों न राँधते ?

मादक-पदार्थों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावती पद्य प्रसिद्ध है—

"भाग मागै भूगड़ा, सुलफो मागै घी।
दारू मागै जूतिया, खुसी हो तो पी ॥"

भाँग पर भुने हुए चने और सुलफे पर घी से बने हुए व्यजन चाहिएँ। शराबी पर तो जूते पडने से ही उसकी अक्ल ठिकाने आती है।

आज मरा काल मरा, मर्‌या-मर्‌या फिरा।
घाल कटोरे दलमला जरणा बनडा हुआ फिरा ॥

यह किसी पोस्ती की उक्ति है जो बिना पोस्त के प्याले पिये निर्जीव-सा रहता है और पोस्त का प्याला मिलते ही मस्त होकर अपने को वर-सदृश समझने लगता है।

कुछ ऐसी कहावतें भी हैं जिनमे भोजन-सम्बन्धी आदता पर प्रकाश पडता है। जैसे—

---

१ राजस्थानी कहावतें, श्री दिनानद चोरन, राजस्थान भारती, भाग २, अक २, मार्च सन् १९४९।

२. भूखो रह ज्याजो पण जौ को दलियो नहीं खाजो।

३. खीर खीचड़ी मंदी आंच।

४. सावण की छा भूतां नै, कातिक की छा पूता नै।

"लालाजी करी ग्यारस अर बा बारस की दादी।"

अर्थात् द्वादशी के दिन लालाजी जितना भोजन करते हैं, उससे कही अधिक उन्होने फलाहार के रूप में एकादशी के दिन भर-पेट उडाया।

९. स्वास्थ्य—भोजन, पानी, निद्रा, हवा, स्नान आदि के सम्बन्ध मे जो अनुभव समाज को प्राप्त हुए, वे ही स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतो के रूप मे सगृहीत हैं। राजस्थानी भाषा में प्रचलित कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—

भोजन (सामान्य)

१ थोडे कवे घणो खावणो जोईजै।

छोटे-छोटे कौर लेकर भरपेट भोजन करना चाहिए।

२ घणो खावे, घणो मरै।

अधिक भोजन हानिप्रद होता है।

३. पेट कूई सो मूंडो सूई सो।

अत्यधिक भोजन करने के कारण जिसका पेट कुएँ जैसा हो जाता है, उसका मुँह सुई जैसा रूप धारण कर लेता है अर्थात् उसके मुख की कान्ति जाती रहती है।

४ ऊपर भरै नीचे झरै, जिके रो गुरू गोरखनाथ काइ करै।

अच्छे पौष्टिक पदार्थ खाते रहने पर भी जो व्यक्ति घोर असयमी होता है, वह शीघ्र यमपुर पहुँच जाता है।

५. अन्न मुकता, घी जुगतां।

अन्न पेट भरकर, किन्तु घी पचे उतना ही खाना चाहिए।

६. जीम जूठ र सू जाणो।

भोजन के बाद कुछ देर सो जाना चाहिए।

७. मांस खाया मास वधे, घी खायां खोपडी।
दूध खाया जोर वधे, नर हरावे गोरडी॥

मास से मास, घी से बुद्धि और दूध से बल बढता है।

८ जीम र दौडे जिके रे लारे मौत दौडे॥

जो भोजनोपरान्त दौडता है, उसके पीछे मौत दौडती है।

९ लूखो भोजन, भूत भोजन।

अर्थात् रूखा सूखा भोजन अच्छा नही समझा जाता। वह प्रेत-भोजन है।

१०. चोखो खाणो, खरो कमाणों।

मेहनत करके अच्छी कमाई करने वाले को पौष्टिक भोजन करना चाहिए।

११. ठडो न्हावे ऊनो खावे जिण घर वैद कदे नहि जावे।

जो ठडे पानी से नहाता है और ताजा भोजन करता है, उसके घर वैद्य कभी नही जाता।

१२. अन्नदेव मोटो है, माथे चढार खावणो जोईजै।

अन्न बडा देव है, भोजन आदरपूर्वक और प्रसन्न-चित्त होकर करना चाहिए।

१३. अन्न छूट्या जिका रा घर छूट्या ।

अन्न खाना छूट जाने से कमजोरी आ जाती है और मनुष्य मौत के मुँह मे चला जाता है ।

विशेष

१. रोटी कहे हूँ हालूँ चालूँ, वाटी कहे वहूं मजल पुगाऊं ।
चावल कह मेरा हलका खाणा, मेरे भरोसे कहीं न जाणा ॥[1]

रोटी कहती है कि मेरे बल पर केवल चलना-फिरना हो सकता है, वाटी कहती है कि मैं लम्बी यात्रा करवा सकती हूँ, चावल कहता है कि मैं हल्का भोजन हूँ मेरे भरोसे कही न जाना ।

२. चूरे सू वाटी मिलै अर उडदां री दाल ।
ऊपर सू नींबू पडै, वरफी काई माल ॥

चूरमा वाटी हो तथा साथ में हो उडद की दाल, और ऊपर से नींबू का रस निचोड दिया जाय तो फिर बरफी क्या चीज है ?

३ (अ) लूण विना पूण रसोई ।
(आ) खांड विना मोडी राड रसोई ।
(इ) दाल विना वाल रसोई ।

नमक, चीनी और दाल के विना भोजन का आनन्द नही आता ।

फल-दूध आदि

१. अमरूद कहे म्हें मे वीज नहीं होंवता तो हूँ जहर हो ।

अर्थात् अमरूद कहता है कि मुझ में वीज नहीं होते तो मैं जहर था ।

२. नींबू कहे म्हें मे वीज नहीं होंवता तो हूँ इमरत हो ।

अर्थात् नीबू कहता है कि मुझ मे वीज नही होते तो मैं अमृत था ।

३. दिनगूं मूली, रात ने सूली ।

अर्थात् मूली सवेरे लाभप्रद और रात को हानिकारक होती है ।

४. हडड वहेडा आंवला, घी सक्कर मे खाय ।
हाथी दाबे कांख में, साठ कोस ले जाय ।

५. दूध इमरत है ।

६ गाय माता गोतनी, ऊंदियो गणेश ।
भैंस रांड भूतणी पाडियो पलीट ॥

गाय का दूध सात्विक और भैंस का तामसिक होता है, इसलिए प्रथम की देव-कोटि मे तथा दूसरे की राक्षस-कोटि में गणना की गई है ।

---

१. रूपान्तर :

रोटी कै हूँ [illegible], [illegible] कै हूँ ठेठ पुगाऊँ ।
घट कै म्हारो [illegible], म्हारे भरोसे मत [illegible] ॥

पानी

१. पाणी पीणों छाणियो 'र करणों मण रो जाणियों ।

२. (अ) दूध पी 'र पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् दूध पीकर पानी नही पीना चाहिए ।

(आ) चीकणो खा 'र पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् चिकना खाकर पानी नही पीना चाहिए ।

(ई) खीर खा 'र पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात खीर खाकर पानी नही पीना चाहिए ।

(ई) निरणे कालजे पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् खाली पेट पानी नही पीना चाहिए ।

(उ) पसीने में पाणी नहीं पीणों जोईजे ।

अर्थात् पसीने मे पानी नही पीना चाहिए ।

३. जिसो पीवे पाणी, उसो ऊपजे वाणी ।

अर्थात् जैसा पानी पिया जाता है, वैसी ही वाणी उपजती है ।

निद्रा

"सूवे जद डावो पसवाडो दाव 'र सूवे ।[1]

सोने के समय बाई करवट सोना चाहिए ।

वायु-सेवन

"सो दवा, एक हवा ।"

शुद्ध वायु-सेवन औषधि से सौ गुना लाभप्रद है ।

मास-चर्या

१ चैते गुल वैशाखे तेल जेठे पथ अषाढ़े बेल,
सावण साग भादवों दही, क्वार करेला काती मही ।
अगहन जीरा पूसे धाणा, माहे मिसरी फागण चिणा ।।

चैत्र मे गुड, वैशाख मे तेल, ज्येष्ठ में पैदल-यात्रा, आषाढ मे बेल-फल, श्रावण में हरे शाक, भाद्र मे दही, क्वार में करेला, कार्तिक मे छाछ, मार्गशीर्ष में जीरा, पौष में धनिया, माघ में मिश्री और फाल्गुन मे चना वर्ज्य है ।

२. सावण हरडै भादू चीत ।
आसोजा गुड खावो मीत ।
काती मूला मगसर तेल ।
पोह मे करो दूध सूं मेल ।
माघ मास घिव खिचड़ी खाय ।
फागण दिनूगे उठ न्हाय ।।[2]

---

१. खायँ 'र मूते सूवे डावें ।
क्यो फेर वैद बुलाये गांवे ।

२ पटिन मुरलीधर जी व्यास के सौजन्य से प्राप्त ।

सावण में हरड, भाद्र मे चिरायता, आश्विन में गुड, कार्तिक में मूली, मार्ग-शीर्ष में तेल, माघ में घी और खिचडी तथा फाल्गुन में प्रात काल का स्नान लाभ-प्रद हैं।

ऊपर नमूने के लिए कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतें दी गई हैं। इस प्रकार की और भी अनेक कहावतें राजस्थानी भाषा मे प्रचलित है।

इन स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतो की उपयोगिता में सन्देह नही किया जा सकता। श्री रामनरेश त्रिपाठी के शब्दो में "गाँव के लोगो ने हजारो वर्षों के पुराने स्वास्थ्य सम्बन्धी अनुभवों को कहावतो की छोटी-छोटी डिबियो मे भर रखा है, जो गाँव के गले-गले में लटकती मिलेंगी। उनके अनुभव बडे सच्चे और लाभदायक साबित हुए हैं।

एक कहावत के अनुसार मे लगातार लगभग बत्तीस वर्षों से प्रात.काल उठते ही, दातुन करके पानी पी लेता हूँ। इसका परिणाम यह हुआ है कि सन् १९१६ के इन्फ्लुएन्जा के बाद आज तक मुझे बुखार नही आया और न जुकाम ही हुआ। मेरा विश्वास है कि यह प्रात काल पानी पीने का ही फल है।[1]

१०. व्यवसाय—राजस्थान में खेती और व्यापार का गुण-गान किया गया है तथा नौकरी को हेय ठहराया गया है जैसा कि निम्नलिखित कहावतो मे स्पष्ट है—

१. धन खेती, धिक चाकरी, धन-धन वणिज व्योहार।

२. नौकरी ना करो।

३ नौकरी की जड धरती सूँ सदा हाथ ऊँची।

४. नौकरी नौ करो र एक नहीं करो।

५. नौकरी रे नकारें रो वैर है।

नौकरी न करना ही अच्छा। मालिक जब चाहे नौकर को हटा सकता है, नौकरी की कोई जड नही होती। नौकर नौ काम करता है किन्तु एक काम नहीं करे तो मालिक उससे रुष्ट हो जाता है। वह मालिक को किसी चीज के लिए इन्कार नहीं कर सकता। मालिक यदि पाँच वर्ष का और नौकर पचास वर्ष का भी हो तो भी नौकर को दबकर चलना पडता है।

कुछ लोग हैं जो ब्याज पर रुपये उठाते रहते हैं और ब्याज भी इतनी तेजी से बढ़ता है कि उसे घोडे भी नहीं पहुँच सकते।[2] किन्तु फिर भी ब्याज की अपेक्षा व्यापार करना अधिक लाभदायक माना गया है। ब्याज को व्यापार का दास कहा गया है।[3]

खेती और व्यापार यद्यपि दोनो को प्रशस्य ठहराया गया है, तथापि इन दोनो में से एक को ही अंगीकार करना चाहिए। जो दोनो ओर मन लगाता है, उनके

---

१. हमारा ग्राम साहित्य, पृष्ठ २४१।
२. ब्याज नै घोडा ई को पूगे नी।
३ ब्याज व्यापार रो गोलो है।

लिए न खेती लाभदायक होती है और न व्यापार।[1]

एक कहावत मे कहा गया है कि "**गम्योडी खेती अर कमायोडी चाकरी बरा-बर**" अर्थात् बिगडी हुई खेती और सुधरी हुई नौकरी दोनो बराबर हैं। नौकरी कितनी ही अच्छी तरह क्यो न की जाय, लाभकारिणी सिद्ध नही होती। किन्तु वर्तमान युग में लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। खेती को छोडकर अब बहुत से लोग नौकरियो की तरफ झुक रहे हैं। खेती मे और विद्योपार्जन में बहुत परिश्रम करना पडता है,[2] इसलिए अनेक लोग अब गाँवो को छोडकर फैक्ट्री और मिलो में काम करने के लिए शहरो की ओर जाने लगे हैं।

एक कहावत में विद्वान् के लिए कहा गया है कि वह न तो खेती करता है और न व्यापार के लिए कही जाता है। अपनी विद्या के बल पर बैठा मौज करता है।

"**खेती करै न विणजी जाय, विद्या कै बल बैठ्यो खाय।**"

किन्तु आजकल शिक्षितो की बेकारी को देखते हुए उक्त कथन को स्वीकार नही किया जा सकता। आर्थिक सघर्ष के इस युग मे आज विद्वानो को भी बडी कठिनाइयो का सामना करना पड रहा है।

इसलिए राजस्थान की एक अन्य लोकोक्ति में यथार्थ ही कहा गया है कि विद्या अर्थकरी होनी चाहिए। यदि विद्या पढकर भी कोई जीविकोपार्जन न कर सके तो उस विद्या से क्या लाभ ?

"**भाई भिणज्यो सोई, ज्या में हडिया खदबद होई।**"

अर्थात् वही विद्या पढनी चाहिए जिससे हँडिया खुदबुद करे अर्थात् भोजन मिल सके।

वैसे भी किसी प्रकार की मजदूरी करना बुरा नही है, यदि बुरा है तो चोरी-जारी करना। "**मजूरी रो मेणो कोनी, चोरी जारी रो मेणो है।**" मजदूरी करने वाले पर व्यग्य नही कसा जा सकता, व्यग्य कसा जाना चाहिए चोरी-जारी करने वाले पर।

११ **आभूषण प्रेम**—राजस्थानी स्त्रियो का आभूषण-प्रेम प्रसिद्ध है किन्तु आभूषण केवल आभूषण के लिए ही नही होता। लोगो के पास बचत होनी है तो गहने बनवा लिये जाते हैं, फिर ये ही आभूषण विपत्ति पडने पर जीवन-निर्वाह के आधार बन जाते है। श्रीमती ऐनी बेसेंट ने भी आभूषणो को किसानो का परम्परागत सेविंग्स बैंक (Traditional peasants' Savings Bank) कहा था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें उल्लेखनीय हैं—

१. **गहणो ने गनायत अबखी पुल में काम आवे हैं।**
आभूषण और सम्बन्धी दुःख मे सहायक होते हैं।
२. **गहणा धाया रा सिणगार, भूखा रा आधार।**

---

१ खेती करै विणज नै ध्यावै दो मा आटी एक ना आवे।
२ मध्यम विद्या, उत्तम खेती।

आभूषण जहाँ धनियों के शृंगार हैं, वहाँ वे निर्धनों के लिए आधार भी हैं।

१२. राजनैतिक चेतना—राजस्थान की जनता राज्य के डर से बहुत त्रस्त और आशंकित रहा करती थी। राजा की बात सुनने वाले को राजा के शब्दोच्चारण के पूर्व ही कम्पन हो आता था। राजा न जाने क्या हुक्म दे दे, इसका डर हमेशा बना रहता था। कचहरी से कोई बुलावा आ जाता था तो वह यम के बुलावे से भी बदतर समझा जाता था। इसलिए एक कहावत में कहा गया है—

"जम रो बुलावो आइजो पण राज रो बुलावो मत आइजो।"

अर्थात् यम का बुलावा भले ही आ जाय, राज्य का बुलावा न आवे। अगर घर के किसी व्यक्ति को कोई जागीरदार बुलाता तो सारे घर में उदासी का वातावरण छा जाता था।

"जमींदार के बावन हात हुवै" यह भी एक राजस्थानी कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि जमींदार एक विविध साधन-सम्पन्न व्यक्ति होता है। उसकी साधन-सम्पन्नता के कारण भी लोग जमींदार से भयभीत रहा करते थे।

किन्तु अब देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद राजस्थान में जागीरदारी प्रथा समाप्त हो गई है और आशा की जाती है कि राजस्थानी प्रजा के दिन फिरेंगे और सुख-शांतिपूर्वक वह अपना जीवन बसर कर सकेगी।

४. शिक्षा, ज्ञान और साहित्य

(क) शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें

पातंजल महाभाष्य में कहा गया है—

सामृतैः पाणिभिघ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

अर्थात् अमृत भरे हाथों से गुरु शिष्यों को पीटते हैं, विष-सिक्त हाथों से नहीं। शिष्य लाड़-चाव से बिगड़ जाते हैं, ताडना से उनका सुधार होता है। राजस्थानी भाषा की निम्नलिखित कहावतों में भी इसी प्रकार की बात कही गई है—

गुरु की चोट, विद्या की पोट।

अर्थात् गुरु की चोट से विद्या प्राप्त होती है।

सोटी बाजै चमचम, विद्या आवै धमधम।

अर्थात् सोटी चमचम बजती है, तभी विद्या धमधम करती हुई आती है।

किसी अंश में तो यह सच है कि ताडना के डर से विद्यार्थी कुछ पढ़ जाते हैं किन्तु आजकल के मनोवैज्ञानिकों और शिक्षण-शास्त्रियों के मतानुसार विद्या के प्रति सच्चा अनुराग तो प्रेम द्वारा ही जागृत किया जा सकता है। कुछ पुराने गुरु तो अपने शिष्यों को यहाँ तक पीटते थे कि जिसे देखकर जी दहल जाय। एक छात्र के लिए कहा जाता है कि जब वह पाठशाला नहीं गया तो गुरुजी ने कुछ विद्यार्थियों को उसे लाने के लिए भेजा किन्तु विद्यार्थी जब इसमें कृतकार्य न हो सके तो गुरुजी स्वयं उसके घर पहुँचे। छात्र उस समय भोजन कर रहा था। गुरुजी को देखते ही डर के

मारे छत पर जा चढा। गुरुजी भी उसके पीछे-पीछे छत पर जा पहुँचे। विद्यार्थी गुरु के डर से छत पर से कूद पडा जिससे उसका प्राणान्त हो गया।

पातजल महाभाष्य के श्लोको मे जिन गुरुश्रों का उल्लेख किया गया है, निश्चय ही वे इतने अमानुषिक कदापि नही रहे होंगे और जैसा कि कबीर ने कहा है—

"गुर कुम्हार सिष कुम्भ है, गढि गढि काढै खोट।
भीतर हाथ सहार दे, बाहर बाहर चोट॥"

सच्चे गुरु की चोट के मूल में भी शिष्य का हित ही निहित रहता है किन्तु इस प्रकार की कहावतो का कभी-कभी दुरुपयोग भी देखा जाता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के साथ-साथ आज हमारी धारणाश्रो मे भी परिवर्तन हो रहा है किन्तु कहावतें अशिक्षितो के मानस-पट पर कभी-कभी इस प्रकार अकित हो जाती हैं कि उनसे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। गाँवो मे शिक्षा का प्रकाश या तो पहुँचता ही नही, या देर से पहुँचता है, इसलिए विकसित होते हुए शिक्षा-मनोविज्ञान के अनुकूल कहावतो का निर्माण नही हो पाता।

कुछ कहावतें राजस्थान मे ऐसी भी हैं जिनसे यहाँ की प्राचीन शिक्षा-पद्धति पर प्रकाश पडता है। इस सम्बन्ध मे दो कहावतें लीजिये—

१. श्रोनामासी धम, बाप पढ्या न हम।

इस कहावत का "श्रोनामासी धम" "ॐ नम सिद्धम्" का अपभ्रष्ट रूप है। प्राचीन शिक्षा-पद्धति द्वारा जिन्होने शिक्षा प्राप्त की है, वे भली भाँति जानते हैं कि राजस्थान मे "सिद्धों" द्वारा किस प्रकार वर्णों का अभ्यास कराया जाता था। जो छात्र इस प्रणाली द्वारा वर्ण-ज्ञान प्राप्त करते थे, वे पक्तियों को केवल रटते थे, वे यह नही समझते थे कि इन पक्तियो का तात्पर्य क्या है। गुरुजी एक पक्ति को गाकर बोलते और छात्र उनके पीछे गाते हुए-से आवृत्ति करते जाते थे। 'सिद्धों' की पद्धति जब पहले-पहल चली होगी तब सस्कृत-पक्तियो का अर्थ भी छात्रो को हृदयगम कराया जाता होगा, कालान्तर में सस्कृत-ज्ञान के अभाव से लोग शुद्ध रूप को भूल गये और केवल पुरानी लकीर को पीटना रह गया।

२. "ढलग्यो नामीनोरै तो थमूं हलियो टेरै।"

इस कहावत का "नामीनोरै" सारस्वत व्याकरण के सूत्र "नामिनोर:" का अपभ्रंश रूप है। इससे पता चलता है कि इस प्रान्त मे कभी सारस्वत व्याकरण पढने का अच्छा प्रचार था।

आज तो "सिद्धो-पद्धति" लुप्तप्राय है और सारस्वत व्याकरण के स्थान में भी "लघुसिद्धान्त कौमुदी" का ही सर्वत्र जयजयकार हो रहा है।

कई वर्षों पहले प्राचीन प्रणाली के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रो के मुख से सुनाई पडता था "पढ्वा पाटी फोड बतरणो" अर्थात् प्रतिपदा को पट्टी, बतरना, स्लेट और पेंसिल फोड दो। इस प्रकार की पाठशालाओ मे रविवार को छुट्टी न होकर प्रतिपदा को छुट्टी हुआ करती थी क्योंकि "पड्वा पाठ विवर्जिता" के अनुसार प्रतिपदा के दिन पढना अनिष्टकारक समझा जाता था। इसी प्रकार एक दूसरी उक्ति

—"पडवा पाटी भांगणी, बीज पाटी सांभणी" अर्थात् प्रतिपदा को स्लेट फोड देनी चाहिए और द्वितीया को सम्हाल लेनी चाहिए।

शिक्षा-सम्बन्धी अनेक कहावतो मे रटने अथवा वस्तु को कण्ठाग्र कर लेने का गुणगान किया गया है, जैसे—

(१) घोखत विद्या नै खोवत पाणी।

अर्थात् रटने से विद्या प्राप्त होती है और खोदने से पानी मिलता है।

(२) माया अंट की, विद्या कंठ की।

अर्थात् गांठ का पैसा और कठस्थ की हुई विद्या काम आती है।

एक कहावत में कहा गया है कि पूछते-पूछते मनुष्य पण्डित हो जाता है।[1] इसी प्रकार एक अन्य कहावत द्वारा पठन के साथ-साथ सासारिक अनुभव को भी अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है।[2] मनुस्मृति में भी कहा है कि छात्र चतुर्थांश शिक्षक से, चतुर्थांश स्वाध्याय से, चतुर्थांश सहपाठियो से और चतुर्थांश अनुभव से सीखता है।[3]

शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान अन्य प्रदेशो की अपेक्षा बहुत पिछडा हुआ है। प्रतिशत साक्षर व्यक्तियो की सख्या यहाँ बहुत कम है। एक कहावती पद्य के अनुसार यहाँ की निरक्षरता दूर करने मे बडी कठिनाइयों का सामना करना पडेगा।[4] शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें भी यहाँ अपेक्षाकृत कम ही सख्या में मिलती हैं।

(ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें

कभी-कभी देखा जाता है कि हम किसी कारणवश गाडी चूक जाते हैं और घर आकर सारा गुस्सा स्त्री पर उतारते हैं। सौदागर सट्टे में हार जाता है तो मुनीम-गुमाश्तों पर अकारण उबल पडता है। आफिस में काम करनेवाले क्लर्क पर बडे साहब की ओर से फटकार पडती है, क्लर्क घर आकर बात की बात में बच्चों पर झपट झाड देता है। इस प्रकार असली वस्तु या व्यक्ति को छोडकर किसी के भाव-प्रवाह का दूसरी ओर प्रवर्तित हो जाना मनोविज्ञान की भाषा मे स्थानान्तरीकरण (Projection) कहलाता है। "कुम्हार को कुम्हारी पर दस चालै कोनी, गधेडै का कान इठै" जैसी राजस्थानी कहावतों में स्थानान्तरीकरण के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं।

कहावतो का सम्बन्ध मुख्यत जीवन के क्रिया-कलापों से रहता है। दर्शन-शास्त्र की तरह उनमें तात्त्विक विश्लेषण तो नहीं मिलता किन्तु फिर भी बहुत-सी लोकोक्तियो में जीवन की व्यावहारिक सचाई इस प्रकार अभिव्यक्त होती है कि वह बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है। मनुष्य की चेष्टाओं और उसकी क्रियाओं से उसके अन्तःकरण का, उसके अचेतन मन का, बहुत कुछ आभास मिल जाता है।

---

१. पूछता नर पंडित।
२. पढ्यो तो है पण गुण्यो कोनी।
३ देखिये—
प्राचीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था, बं २, अप्रैल १९४८, पृष्ठ ५३४।
४ मारवाड रा मूंता जिण्यां दोरी नित।

शेक्सपियर के सुप्रसिद्ध नाटक हैमलेट मे जहाँ नाटक के भीतर नाटक दिखलाया जाता है, वहाँ अभिनेत्री रानी राजा की मृत्यु होने की हालत मे कभी भी दूसरा विवाह न करने पर जोर देती है। इस प्रकार की अकल्पित शादी यदि कभी चरितार्थ हो जाय तो वह सब अभिशापो को अगीकार करने के लिए अपनी तत्परता दिखलाती है। हैमलेट ने जब क्लाडियस की स्त्री से पूछा कि आपको नाटक कैसा लगा, उसने उत्तर दिया—"The lady protests too much, methinks" किसी बात को सिद्ध करने के लिए उस पर आवश्यकता से अधिक जोर देना उस वस्तु की सदोषता ही सिद्ध करता है।[1] झूठे आदमी के अचेतन मन मे यह बात समायी रहती है कि उसकी बात पर लोग विश्वास नही करेंगे, इसलिए वह आदमी अपनी झूठ को छिपाने के लिए अनेक प्रकार की सौगन्ध खाया करता है, किन्तु अधिक सौगन्ध खाने से उसकी असत्यता ही प्रमाणित होती है। "झूठा की के पिछाण ?" कह—"वो सोगन खाय"। **सोगन और सीरणी तो खाणे की ही होय है,** अर्थात् झूठे की क्या पहचान ? उत्तर—वह सौगन्ध खाता है। सौगन्ध और मिठाई तो खाने ही के लिए हैं, जैसी लोकोक्तियो मे मनोवृत्तियो के अध्ययन के लिए अच्छी सामग्री मिल जाती है। इसीलिए सौगन्ध खाने वाले नीम के नीचे सौगन्ध खाते हैं और पीपल के नीचे इन्कार कर देते हैं।[2]

प्राय देखा जाता है कि जब मनुष्य एक बार बुराई की ओर प्रवृत्त हो जाता है तो उसका शतमुख पतन होने लगता है। वह सोचता है कि जब एक बार झूठ बोलना ही है तो उसमे कमी क्यो की जाय ? एक बार जब उससे मर्यादा का अतिक्रमण हो जाता है तो उसके मन में यह विचार घर करने लगता है कि लोगो की दृष्टि में तो अब मैं बुरा बन ही चुका, अब यदि मैं बुरे काम करूँ तो मुझे ऐसा करने से कौन रोक सकता है ? वस्तुत बुराई मे रोकनेवाली तो मर्यादा है जिसे वह हाथ से खो बैठा है। **"झूठ बोलणियो 'र धरती पर सोवणियो सकडैलो क्यूँ भुगतै ?"** अर्थात् झूठ बोलनेवाला और धरती पर सोनेवाला तगी क्यों भोगे ? **"उतार दी लोई, के करैगो कोई ?"** जब मान-मर्यादा सब छोडदी तो अब किसकी क्या परवाह ? **"नकटा, नाक कटी ?"** कह—**"मेरी तो सवा गज बधी।"** अर्थात् जब नकटे से कहा गया कि तुम्हारी तो नाक कट गई तब उसने उत्तर दिया कि मेरी तो सवा गज बढ गई है। इस कहावत मे भी इसी मनोवृत्ति के दर्शन होते हैं।

जो आदत पड जाती है, वह बडी मुश्किल से छूटती है। मनोवैज्ञानिको का मत है कि आदत हमारी बुद्धि पर भी हावी हो जाती है, बुद्धि आदत का अनुसरण करने लगती है, आदत बुद्धि का अनुसरण नही करती। इसीलिए बडे-बडे विद्वान् और बुद्धिमान् भी जब बुरी आदत के चगुल में फँस जाते हैं तो उससे उनका भी छुटकारा नही हो पाता। निम्नलिखित कहावतो में इसी तथ्य को प्रकट किया गया है।

१ **"चोर चोरी सैं गयो जूती बदलण सैं थोडोई गयो।"**

---

१ अति भक्ति चोर के लन्छन।

२ नीम तलें सोगन खाय, पीपल तलें नट ज्याय।

किसी के उपदेश से चोर ने चोरी करना छोड दिया। एक वार जब उसने दूसरे के जूते बदल लिए तो किसी के पूछने पर उसने उत्तर दिया—चोर चोरी करने से गया तो क्या जूते बदलने से भी गया ? कहने का तात्पर्य यह है कि प्रयत्न करने पर आदत थोडी-बहुत छूटती है किन्तु वह सर्वांशत. नही छूटती।

२. कुत्तं की पूंछ बारा बरस दबी रही पण जद निकली जद ही टेढ़ी।

अर्थात् कुत्ते की पूँछ बारह वर्षों तक दबी रही किन्तु जब निकली तभी टेढी निकली अर्थात् स्वभाव का छोडना सम्भव नही।

"बकरी दूध तो दे पण दे मींगणी करकै।"

अर्थात् बकरी दूध तो देती है पर देती है मेंगनी करके।

आदत से लाचार होने के कारण जो मजा किरकिरा करके काम करता है, उसके लिए उक्त लोकोक्ति का प्रयोग होता है।

दुराग्रही के आग्रह की अच्छी अभिव्यक्ति निम्नलिखित कहावत मे हुई है

"पचा की बात सिर माथे पण म्हारलो नालो घठी कर ई भवंगो।"

अर्थात् पचो की बात को तो मैं शिरोधार्य करता हूँ किन्तु मेरा नाला इधर होकर ही बहेगा।

जब लोगो के समझाने-बुझाने पर भी कोई दुराग्रही अपना हठ नही छोडता और मनमानी करने पर तुल जाता है, तब इस उक्ति का प्रयोग होता है।

अमेरिका के मनोवैज्ञानिक ऐडलर ने हीन-भाव की मनोवृत्ति का अच्छा विवेचन किया है। जिस व्यक्ति मे कमी होती है, वह उस कमी को ढकने के लिए अपनी प्रशंसा करता है, जिसमे ज्ञान नही होता वह बढ-बढ कर बातें बनाता है, जो ज्यादा धमकी देता है, वह धमकी के अनुसार काम नहीं कर पाता। ज्ञान की कमी, चातुर्य का अभाव, अंग-विकार आदि अनेक कारणो से मनुष्य अपने में हीन-भाव का अनुभव करने लगता है। कहावतो मे हीन-भाव का कोई सैद्धान्तिक विश्लेषण नही मिलता किन्तु वह हीन-भाव किस प्रकार अपने आपको अभिव्यक्त करता है, इसके अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। इस दृष्टि से कहावतें एक प्रकार से प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का रूप प्रस्तुत करती है। निम्नलिखित राजस्थानी कहावतें हीन-भाव की व्यावहारिक अभिव्यक्तियाँ हैं :

"गरजै जिको बरसै कोनी।"

अर्थात् जो गरजता है, वह बरसता नही।

अभिमानी कोरी डींग मारता रहता है, उससे कुछ करते-धरते नही बनता। वास्तव में उसमें करने की शक्ति ही नही होती है, जिसमें शक्ति होती है, वह काम को करके दिखला देता है। उसके गरजने का अर्थ केवल यह है कि वह अपनी शक्ति के अभाव को केवल डींग मारकर छिपाना चाहता है।

२ चणा चाब कर कहै, म्हे चावल खाया।
नहीं दांत पर फूस, म्हे हेली में खाया

अर्थात् चने चबाते हैं और कहते हैं कि हम चावल खाने वाले हैं। ऊपर पर

फूस तक नहीं हैं और कहते हैं हम हवेली से आये हैं।

मनुष्य की यह मनोवृत्ति है कि दूसरो की दृष्टि मे अपने आपको नगण्य समझा जाना वह पसन्द नही करता। इसीलिए कुछ न होने पर भी वह आडम्बर का आश्रय लेता है।

३. "थोथो चणो बाजै घणो।"

अर्थात् जिनमें गुण नही होते, वे ही बढ-बढ कर बातें बनाते हैं।

४ "थोथा पिछोडं उड़ उड़ जायँ।"

अर्थात् थोथा अनाज फटकने से उड जाता है।

मूर्ख व झूठो की जब जाँच की जाती है, तब वे जाँच के सामने नही ठहर पाते। कबीर ने कहा है—

✓ "यह तन सांचा सूप है, लीजे जगत पछोर।
हलकन को उड़ जान दे, गरुए राख बटोर॥

"अधजल गगरी छलकत जाय" के भाव को सस्कृत सुभाषितकार ने निम्न-लिखित शब्दो मे व्यक्त किया है—

"सपूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्, अर्द्धो घटो घोपमुपैति नूनम्।
विद्वान्कुलीनो न करोति गर्वं, गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति॥"

कमजोर आदमी को गुस्सा अधिक आता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। गुस्सा वस्तुत शक्ति की क्षति-पूर्ति का प्रयास मात्र है। "कमजोर गुस्सा ज्यादा" में यही बात कही गई है।

कोई मनुष्य दोषी होते हुए भी अपने को दोषी मानना नही चाहता क्योकि उसके मन मे यह डर बना रहता है कि उसका दोष सिद्ध हो जाने पर वह समाज की दृष्टि में गिर जायगा। "पाखी हालो पहली फरकै" अर्थात् जख्म मे पहले दर्द होता है, दोषी अपने दोष की बात सुनता है तो उसे चुभती है। "सांच कह्यां झाल उठै" अर्थात् सच कहने से सुनने वाला क्रुद्ध हो उठता है। इस कहावत मे भी यही बात कही गई है।

अपने से जिन व्यक्तियो का साहचर्य अथवा सम्बन्ध है, उनको भी वह बुरा नही बतलाता क्योकि उनको बुरा बताने मे वह भी सपर्क अथवा सम्बन्ध-जन्य दोष का भागी बन जाता है। "आपकी मा नै डाकण कुण बतावै ?" अर्थात् अपनी माँ को डाकिनी कौन कहे ? जैसी कहावतो मे यही सत्य दरसाया गया है।

राजस्थानी भाषा में अनेक कहावतें सहज ही उपलब्ध हैं जिनसे मानव-मन की विभिन्न वृत्तियो के अध्ययन के लिए अच्छी सामग्री मिल जाती है।

(ग) राजस्थानी साहित्य मे कहावतें

शिष्ट-साहित्य—विवेचन की सुविधा के लिए हम राजस्थानी साहित्य को शिष्ट-साहित्य और लोक-साहित्य दो भागो में बांट लेते हैं। काल-क्रम की दृष्टि से शिष्ट-साहित्य निम्नलिखित तीन युगो में विभाजित किया जा सकता है :

(क) प्राचीन राजस्थानी (सवत् १२००-१६००)
(ख) माध्यमिक राजस्थानी (सवत् १६००-१९५०)
(ग) आधुनिक राजस्थानी (सवत् १९५० से अब तक)

(क) प्राचीन राजस्थानी

ग्रियर्सन के शब्दो मे "गुजरात मध्य युग मे राजपूताने का अग मात्र था। यही कारण है कि गुजराती का राजस्थानी से इतना अधिक साम्य है।"[1] स्व० श्री-नरसिहराव दीवेटिया के मतानुसार भाषा के रूप में "गुजराती" शब्द का सबसे पहला उल्लेख सन् १७३१ ई० में मिलता है किन्तु इनसे भी पहले महाकवि प्रेमानन्द ने "नागदमण" में "गुजराती" शब्द का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—

"एदे उपनी माहारे अभिलाषा,
बाधु नागदमण गुजराती भाषा।"

इससे पूर्व भाषा के रूप में "गुजराती" शब्द नही मिलता।[2]

सन् १४५५-५६ (वि० स० १५१२) में जालोर मारवाड के कवि पद्मनाभ ने "कान्हडदे प्रबन्ध" की रचना की थी। सन् १९१२ मे एक सजीव वाद-विवाद गुजरात मे इस विषय को लेकर चला था कि उक्त प्रबन्ध गुजराती मे लिखा गया था अथवा प्राचीन राजस्थानी में। वस्तुत देखा जाय तो यह ग्रन्थ उस युग में लिखा गया जब राजस्थानी और गुजराती का परस्पर विभेद नही हो पाया था, इसलिए उस कृति की भाषा वही रही होगी जो उस जमाने में जालोर मे बोली जाती होगी।[3] डा० दशरथ शर्मा ने कुछ समय पूर्व प्रकाशित अपने एक लेख में "कान्हडदे प्रबन्ध" को प्राचीन राजस्थानी का ग्रन्थ माना है।[4] कवि ने स्वय "प्राकृतबंध कवि मनि करी" कहकर प्रबन्ध की भाषा को सामान्यत प्राकृत नाम से अभिहित किया है, किन्तु यह प्राकृत वैयाकरणो की प्राकृत नही है, उस जमाने की लोक-भाषा को ही कवि ने प्राकृत का नाम दिया होगा।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वि० स० १५१२ मे भाषा के रूप में 'गुजराती' अथवा 'राजस्थानी' शब्द का प्रयोग नही होता था। गुजरात के विद्वान् जिसे जूनी गुजराती तथा राजस्थान के विद्वान् जिसे प्राचीन राजस्थानी कहते है उस भाषा को इटली के प्रसिद्ध भाषाविद् स्व० डा० टैसीटोरी ने "प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' का नाम दिया था तथा ईसवी सन् १३वी शती से लेकर १६वी शती के अन्त तक के युग को उन्होंने "प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी काल" की सज्ञा दी थी।[5] इस प्राचीन राजस्थानी मे

---

1. Linguistic Survey of India, Vol IV, part II, p 328.
२. नारण पंचीसो (पिंगलसान का रासो), पृष्ठ ४।
3 Linguistic Survey of India, Vol I, part I, p 176.
४. शोध पत्रिका, भाग ७, अंक १, पृष्ठ ५१।
५ वचनिका राठौड रतनसिंहजी री महेसदासोत री भूमिका पृष्ठ ४।

ही जो गुजरात से लेकर प्रयाग मडल तक फैली हुई थी, आधुनिक गुजराती तथा आधुनिक राजस्थानी का विकास हुआ और विकसित होते-होते वे दो स्वतन्त्र भाषाओ के रूप मे परिवर्तित हो गईं जिनमें परस्पर समानताएँ होते हुए भी व्यावर्तक विशेषताएँ स्पष्ट परिलक्षित होने लगी।

प्राचीन राजस्थानी साहित्य से कहावतो-सम्बन्धी जो उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं, उनमे से प्राय. सभी समान रूप से "जूनी गुजराती" के भी उदाहरण माने जा सकते हैं। किन्तु इस विषय में किसी भी प्रकार की भ्रान्त धारणा न हो, इसलिए ऊपर का स्पष्टीकरण आवश्यक समझा गया।

कवीश्वर शालिभद्रसूरि कृत "भरत बाहुबलि रास" रचना-काल स० १२४१।

(१) विण बधव सवि सपइ ऊणी।
जिम "विण लवण रसोइ अलूणी" ॥८३॥

अर्थात् बाधवों के विना सपत्ति उसी प्रकार न्यून समझी जाती है जिस प्रकार नमक के विना रसोई अलोनी रहती है।

(२) ज विहि लिहीउ भालयलि।
त जि लोइ इह लोइ पामइ ॥९३॥

अर्थात् विधाता ने जो ललाट मे लिख रखा है, उसे ही इस लोक में लोग प्राप्त करते हैं।

(३) हीउ अनइ हाथ हथियार।
एह जि वीर तणउ परिवार ॥१०४॥[1]

अर्थात् हृदय और हाथ का हथियार, यही वीर का परिवार है।

—प्रबोध चिन्तामणि जयशेखर सूरि स० १४६२ के लगभग।

(१) वानरडउ नइ वीछीह खाधु।
दाह जरिउ दावानलि दाधु ॥

अर्थात् वदर जिसे विच्छू ने डस लिया हो, दाह से तो पहले ही जला हुआ था, दावानल से और दग्ध हो गया।

(२) घेवर माहि ए घृत ढलिऊ।

अर्थात् घेवर मे घी गिरा।

(३) चोर माइ जिम छानउ रूग्रइ।

अर्थात् चोर की माता जिस प्रकार छिपकर रोती है।

(४) केतू कुसल विमामीइ वसता नई नइ कूलि।

अर्थात् नदी के किनारे रहनेवालो का क्या कुशल ?

—पृथ्वीचन्द्र चरित्र श्री माणिक्यचन्द्र सूरि वि० स० १७४८।

(१) छासिइ केरउ आफरु, दासिइ केरउ नेह।
कँवल केरउ मोलीउ, पिसत न लागइ पेव ॥[2]

---

१. मिलाइये—
कना फिरयो ग्दाना, किमा विराणा माथ।
थारा माथी तीन जण, हियो कटारी हाथ ॥
—राजस्थान के सास्कृतिक उपाख्यान, पृष्ठ १७।

२. प्राचीन गुजराती गद्य सदर्भ स० श्री जिनविजयजी, पृष्ठ १४१।

(२) तीणइ सोनइ किसिउ कीजइ जीणइ त्रूटइ कान।

अर्थात् उस सोने का क्या किया जाय जिससे कान टूटते हो?

आधुनिक राजस्थानी मे यही कहावत "बाल सोनो, कान तोड़" के रूप मे प्रचलित है।

—श्री वीर कथा लखमसेन पदमावती कवि दाम-कृत, वि० स० १५१६।

(१) बालस्य माय मरण, भार्या मरण च यौवनकाले।
वृद्धस्य पुत्र मरण, तिन दुखाइ गिरुम्राइ॥[2]

अर्थात् बालक की माता का मरण, यौवन-काल में भार्या का मरण और वृद्ध के पुत्र का मरण, ये तीन भारी दुख हैं।

(२) पर दुखइ जे दुखीया, पर सुख हरख करन्त।
पर कज्जइ सूरा सुहड, ते विरला नर हुन्त॥

अर्थात् पर-दुख मे जो दुखी और पराये सुख मे सुखी होते हैं और परोपकार के लिए जो कमर कसे रहते हैं, ऐसे मनुष्य विरले ही होते हैं।

(३) पर दुखइ सुख ऊपजइ, पर सुख दुक्ख धरन्त।
पर कज्जइ कायर पुरुष, घरि घरि बार फिरन्त॥

अर्थात्, पराये दुख से जिनको सुख मिलता है, दूसरे के सुख से जो दुखी होते हैं और पराये कार्य मे जो कायरता दिखलाते हैं, ऐसे मनुष्य घर-घर के दरवाजो पर फिरते हैं।

(४) सीह सियाणो सापुरिस, पडि पडि पुनि ऊठन्ति।
गय गड्डर कुच कापुरिस, पडे न वलि ऊठन्ति॥[3]

—सीताहरण कर्मण रचित, वि० स० १५२६।

(१) देव घातक दूबलानइ मेहलिउ विश्वास।

अर्थात् दैव भी दुर्बल के लिए घातक होता है।

(२) गई तिथि नवि वाचइ ब्राह्मण, एह बोल बीसारु।

अर्थात् गई तिथि को ब्राह्मण भी नही 'पढता'।

(३) कीधा कर्म न छूटीइ, बोलइ वेद पुराण।

अर्थात् किये हुए कर्मो से छुटकारा नही।

—ढोला मारू रा दूहा, कल्लोल वि० सं० १५३०।

डा० मोतीलाल जी मेनारिया के अनुसार "ढोला मारू रा दूहा" का निर्माण काल वि० स० १५३० है।[4] इस काव्य का मालवणी-मारवणी संवाद अत्यन्त लोक-

---

१. प्राचीन गुजराती गद्य सन्दर्भ स० जिनविजय जी, पृष्ठ १५८।

२ मिलाइये—
"मत मारियो बालक की मात, मत मारियो बूढ़े को [illegible]।"

३ डॉ० माताप्रसाद गुप्त के सौजन्य से प्राप्त हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।

४ देखिये: राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ १०१।

प्रिय हुआ है। इसमें स्थान-स्थान पर सूक्तियाँ भी मिलती हैं। उदाहरण के लिए एक सूक्ति लीजिये—

डूंगर केरा वाहला, ओछां केरा नेह।
वहता वहै उतावला, झटक दिखावै छेह॥

पहाड़ी नाले और ओछे पुरुषो का प्रेम बहते समय तो बड़ी तेजी से बहते हैं, पर तुरन्त ही अन्त दिखा देते हैं।

इस काव्य में कहीं-कहीं ऐसी पक्तियाँ भी मिल जाती हैं जिनको पढकर किसी सूक्ति अथवा कहावत का स्मरण हो जाता है। उदाहरण के लिए एक ऐसी ही पक्ति लीजिये—

"उत्तर आज स उत्तरउ सही पडेसी सीह।"

अर्थात् आज उत्तर दिशा का पवन उतर आया है, अवश्य ही शीत पडेगा।

यह पक्ति "उत्तरस्या यदा वायु. तदा शीत प्रवर्तते" का स्मरण दिलाये बिना नहीं रहती।

इस काव्य की साहित्यिक विशेषताओ के कारण मैंने इसे शिष्ट साहित्य के अन्तर्गत ही रखा है। लोक-प्रचलित कहावतो का इस ग्रन्थ में अभाव है, भले ही इसकी अनेक पक्तियो को कहावतो की-सी प्रसिद्धि मिल गई हो।

—विमल प्रवन्ध (लावण्य समय) वि० स० १५६८, (गुजराती प्रधान)

(१) घर घरणिइ नवि वलणिइ होइ।
एह वात जाणइ सहु कोइ॥[1]

(२) पण घर सूनू विण सन्तान।

(३) वरस सोलमह पछिह रहिउ।
वैटउ मित्र समाणउ कहिउ॥[2]

प्राचीन राजस्थानी के जिन ग्रन्थो से ऊपर उद्धरण दिये गये हैं, उनमे कहावतो का प्रयोग विरल है, ढूँढने से ही कहावतें उपलब्ध होती हैं।

(ख) माध्यमिक राजस्थानी

समयसुन्दर और राजस्थानी कहावतें—अपने ग्रन्थो मे कहावतो के प्रचुर प्रयोग की दृष्टि से इस युग के कवियो मे कविवर समयसुन्दर का नाम सबमे पहले लिया जाना चाहिए। कवि की मातृभूमि होने का गौरव मारवाड प्रान्त के साचौर स्थान को प्राप्त है। पोरवाड वश में इनका जन्म हुआ। पिता का नाम रूपसी और माता का लीलादे या धर्मश्री था। जन्म-काल वि० स० १६२० होने की सम्भावना की जाती है। वि० स० १६४८ में सम्राट् अकबर के आमत्रण पर लाहौर यात्रा भी आपने की थी। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सीताराम चौपई' की ढाल इन्होंने अपनी जन्मभूमि साँचौर में ही बनाई। स० १७०२ में इनका अहमदाबाद मे स्वर्गवास हुआ। साठ वर्ष तक

---

१ मिलाइये—
"न गृह गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।"

२. मिलाइये—
"प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्।"

निरन्तर साहित्य-रचना करते हुए इन्होंने भारतीय वाङ्मय को समृद्ध वनाया। स्तवन-गीत आदि इनकी लघु कृतियाँ सैकडो की सख्या में हैं जो खोज करने पर मिलती ही रहती हैं। इसी से लोकोक्ति है कि "समयसुन्दर रा गीतड़ा, कुंभे राणे रा भीतड़ा" अथवा "भीतों का चीतडा"। अर्थात् कविवर की रचनाएँ अपरिमित हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ "सीताराम चौपई" की रचना स० १६७७ के आस-पास हुई।[1] यह ग्रन्थ सरल सुवोध भाषा में लिखा गया है जिसमे लोक-प्रचलित ढालो का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ ६ खण्डो मे समाप्त हुआ है और प्रत्येक खण्ड में सात-सात ढाल हैं। लोकोक्तियो के प्रयोग की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है। इसमे प्रयुक्त बहुत-सी कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं।

१. उ घतणइ विछाणउ, लाधउ, आहींणइ दूकांणउ वे।
मु गनइ चाउल माहि घी घणउ प्रीसाणउ वे।
—प्रथम खण्ड, ढाल ६, छन्द ५

२. छट्ठी रात लिख्यउ ते न मिटइ। —प्रथम खण्ड, छन्द ११

३. करम तणी गति कहिय न जाय। —दूसरा खण्ड, छन्द २४

४ तिमिरहरण सूरिज थकां, कु ण दीवानउ लाग।
—दूसरा खण्ड, ढाल ३, छन्द १२

५. रतन चिन्तामणि लाभता, कु ण ग्रहइ कहउ काच।
दूध थकां कुण छासिनइ, पीयइ सहु कहइ साच॥
—खण्ड २, ढाल ३, छन्द १३.

६. भरतनइ तात किसी एक करणी, आपणी करणी पार उतरणी।
—खण्ड ३, ढाल ४, छन्द ६

७. वालक वृद्ध नइ रोगियउ, साघ वामण नइ गाइ।
अवला एह न म.रिया, मार्यां महापाप थाइ॥
—खण्ड ३, ढाल ७, छन्द ३

८ महिघर राय सुखी थयो, मु ग माहि ढल्यो घीय।
विछावण लह्यो ऊ घता, धान पछ्उ त्रे सीय॥
—खण्ड ४, ढाल ४, छन्द ४

९. पाचां मांइ कहीजियइ, परमेसर परसाद। —खण्ड ५, ढाल १, छन्द १

१०. साधु विचारयो रे सूत्र कहेइ, समरथ सच्चा देह। —खण्ड ५, पृष्ठ ७३

११ लिख्या मिटइ नहिं लेख। —खण्ड ५, ढाल ३, छन्द १

१२. मूर्छागत थइ मावड़ी, दोहिलो पुत्र वियोगि। —खण्ड ५, ढाल ३, छन्द ११

१३ पाछा नावइ जे मुआ। —खण्ड ५, ढाल ६, छन्द २०

---

१ कविवर समयसुन्दर (श्री अगरचन्द नाहटा) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५७, अंक १, सं० २००९।

१४. मइ मतिहीण न जाण्यो, त्रूटइ अति घणो ताण्यो ।

—खण्ड ५, ढाल ७, छन्द ४५

१५ कीड़ी ऊपर केही कटकी । —खण्ड ६, ढाल २, छन्द ४६

१६. ए तत्त्व परमारथ कह्यो मइ, त्रूटिस्सइ अति ताणियो ।

—खण्ड ६, ढाल १२ छन्द १२

१७ ऊखाणउ कहइ लोक, पेटइ को घालइ नहीं अति वाल्ही छुरी रे लो ।

—खण्ड ७, ढाल १, छन्द ६७

१८ षत ऊपरि जिम षार, दुख मोहे दुख लागो राम नइ अति घणा रे लो ।

—खण्ड ८, ढाल १, छन्द २२, पृष्ठ १६२

१९ छट्ठी राति लिख्या जे अक्षर, कूण मिटावइ सोइ ।

२० आभइ वीजलि उपमा हो । —पृष्ठ ११९

२१ थूकि गिलइ नहि कोइ । —खण्ड ९, ढाल ३, छन्द ११

ऊपर दी हुई कहावतो का क्रमश अर्थ है—ऊँघती हुई को विछौना मिल गया । मूँग-चावल में घी परोसा गया । छठी की रात जो लिख दिया गया, वह अमिट है । कर्म की गति कही नहीं जा सकती । सूर्य के होते दीपक को कौन पूछें ? चिन्ता-मणि मिलते कांच कौन ग्रहण करे ? दूध मिलते छाछ कौन पिए ? अपनी करनी से सब पार उतरते हैं । बालक, वृद्ध, रोगी, साधु, ब्राह्मण, गाय और अवला इन्हे नहीं मारना चाहिए, क्योंकि इन्हें मारने से महा पातक हो जाता है । घी बिखरा तो मूँगों में । ऊँघते को विछौना मिल गया । पचो को परमेश्वर का प्रसाद कहा जाता है । समर्थ देता है । लिखे लेख नही मिटते । पुत्र वियोग दु सह है । मरे हुए वापिस नही आते अधिक तानने से टूट जाता है । कीडी (चीटी) पर कैसी फौज ? ताना हुआ टूट जाता है । प्यारी सोने की छुरी को भी कोई पेट में नही रखता । घाव पर नमक, इसी प्रकार राम को दु ख में दु ख अधिक लगा । छठी रात को जो अक्षर लिख दिये गये, उनको कौन मिटा सकता है ? बादल की बिजली । थूककर कोई नही चाटता ।

ऊपर दी हुई कहावतो के राजस्थानी रूपान्तर आज भी उपलब्ध हैं । इससे कम से कम इतना स्पष्ट है कि कवि समयसुन्दर के जमाने में उक्त कहावतें प्रचलित थीं । कवि ने कहावतो के साथ-साथ सूक्तियो और मुहावरो का भी प्रयोग किया है । कही-कही सस्कृत-सूक्तियो का अनुवाद भी कर दिया है । उदाहरणार्थ—

"जीवतो जीव कल्याण देखई" पृष्ठ १०४ वाल्मीकि रामायण के 'जीवन्भद्राणि पश्यति' का अनुवाद-मात्र है । 'सीताराम चौपई' मे यह उक्ति राम की हनुमान के प्रति है । राम हनुमान मे कहते हैं कि ऐसा प्रयत्न करना जिससे सीता जीवित रहे । वाल्मीकि रामायण मे आत्म-हत्या न करने का निश्चय करते हुए स्वय हनुमान कहते हैं कि यदि मनुष्य जीता है तो कभी न कभी अवश्य कल्याण के दर्शन करता है । इसी प्रकार वीसार्यो अगीकार नहि उन्नमनइ आचार "अगीकृत सुकृतिन परि-पालयन्ति" का स्मरण दिलाता है । कहावत के लिए कवि ने "आहीण" और 'ऊपाणउ' का प्रयोग किया है । एक स्थान पर सूत्र शब्द का प्रयोग हुआ है । कहावत भी वस्तुतः एक प्रकार का वाक्-सूत्र ही है ।

"सीताराम चौपई" के अतिरिक्त कवि की अन्य कृतियो में भी यत्र-तत्र कहावतें विखरी मिलती हैं।

"आप मुयां बिन सरग न जाइयइ।"

अर्थात् अपने मरे विना स्वर्ग जाना नही होता।

"वाते पापड किमही न थाइ।"

अर्थात् वातो से पापड नही होते।

"आपणी करणी पार उतरणी।"

अर्थात् अपनी करनी से ही पार उतरा जा सकता है।

"सूता तेह विगूता सही जागता काऊ डर भय नहीं।"

(सूता जगावण गीत)

अर्थात् सोये हुए को डर रहता है, जगने वाले को नहीं।

"सूतां री पाडा जिणें एह वात जग जाणें रे।"

अर्थात् सोये हुए की (भैंस) पाडा जनती है।

"आप डूबें सारी डूब गई दुनिया।" (नेमिफाग)

अर्थात् आप डूब गये तो सब दुनिया डूब गई।

माल कवि कृत पुरन्दर चउपई और कहावतें—माल कवि की यद्यपि निश्चित तिथि ज्ञात नही है तथापि कहावतो के सिलसिले मे उनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवि द्वारा रचित 'पुरन्दर चउपई' में से कुछ कहावतें यहाँ दी जा रही हैं।

१ जां सपइ ता पाहुणा, जां सावण ता मेह।
जा सासू ता सासरउ, जां यौवन तां नेह॥

जहाँ सम्पत्ति है, वही अतिथि हैं, जहाँ श्रावण है, वही वर्षा है, जहाँ मास है, वहीं ससुराल है, जहाँ यौवन है, वही स्नेह है।

२. पर भव कहि किण दीठा

अर्थात् यह तो वताओ कि परलोक देखा किसने है?

३. अणमिलतइ जे सयमी।

अर्थात् न मिलने पर जो सयमी रहते हैं।

आज भी कहा जाता है "अणमिले का सै जती हैं" अर्थात् विषय-भोग सुलभ न होने पर सभी अपने को सन्यासी कह सकते हैं।

४ छानऊ कस्तूरी गुण न रहइ।

अर्थात् कस्तूरी का गुण छिपा नही रहता। "न हि कस्तूरिकामोद शपयेन विभाव्यते।" इसी आशय को व्यक्त करने वाली सस्कृत कहावत है।

५ मन माहि भावइ मू ड हलावइ।

अर्थात् मन को अच्छा लगता है किन्तु मस्तक हिलाकर निषेध करता है।

६. विल्ली भागइ छीकउ त्रूटउ, घीय ढ़ल यो तउ मू गा माहे।

अर्थात् विल्ली के भाग्य से छीका टूट गया, घी विखरा तो भी मूंगो मे ही।

७. कह कडि वइसइ ऊट।

अर्थात् न जाने ऊँट किस करवट बैठे ? यह एक बडी व्यापक कहावत है जो भारतवर्ष की अनेक प्रादेशिक भाषाओ में भी पाई जाती है।

८. मूआं का क्या मारिये। 'मृतस्य मरण नास्ति", ऐसी ही एक संस्कृत लोकोक्ति है।

९. दूज वूठ अलखामणउ मरई न माचउ छडहरे।

अर्थात् न मरता है, न चारपाई छोडता है।

"पुरन्दर चउपई" कोई कहावतो का सग्रह-ग्रन्थ नही है। इसमें जम्बू द्वीप के विलासपुर नामक नगर में राज्य करने वाले सिह रघुराय के पुत्र पुरन्दर की कथा कही गई है और बीच-बीच में अनेक लोकोक्तियो और सूक्तियो का प्रयोग हुआ है।

इस युग के अन्य कवियो और लेखको मे ईसरदास, पृथ्वीराज, कुशललाभ, जगाजी, कृपाराम, बाँकीदास तथा महाकवि सूर्यमल्ल आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। ईसरदास की "हाला झाला रा कु डलियां" के निम्नलिखित पद्य कहावतो की ही भाँति प्रचलित हैं—

१. मरवा मरणौ हक्क है ऊबरसी ल्लाह।
सादुर्सा रा जीवणा थोड़ा ही भल्लाह॥

अर्थात् मृत्यु वीरो का अधिकार है, उनकी बातें रह जायेंगी। सत्पुरुषों का थोडा जीना ही अच्छा है।

२. केहर केस भमग मण, सरणाई सुहडाह।
सती पयोहर क्रपण धन, पडसी हाथ मुवाह॥

अर्थात् सिह के केश, सर्प की मणि, योद्धा का शरणागत, सती के स्तन और कृपण का धन, मरने पर ही दूसरो के हाथ पडेंगे।

दूसरा दोहा अपभ्र श के ग्रन्थो में भी मिलता है। इससे स्पष्ट है कि कवि ने इसे परम्परा-प्राप्त साहित्य से ही ग्रहण किया है।

राठोड राज पृथ्वीराज की प्रसिद्ध कृति "वेलि क्रिसन रुकमणी री" में कहावतो का प्राय अभाव है। राजस्थानी में "भला भलो प्रियमी छै" एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि इस पृथ्वी पर एक से एक वढकर महापुरुप हैं। केवल इस एक कहावत का सकेत 'वेलि' के निम्नलिखित दोहले मे मिलता है—

सरिखा सू बलभद्र तोह साहियै, वडफरि उछजतै विरुधि।
भलाभली सति तोई भजिया, जरासेन सिसुपाल जुधि॥

कुशललाभ की "ढोला मारू री चौपई" और "माधवानल कामकदला" बहुत लोकप्रिय रचनाएँ हैं। इन दोनो मे से कहावती पद्यों के कुछ उदाहरण लीजिए—

ढोला मारूरी चौपई

१. असत्री पीहर नर सासरै, सजमीया सहवास।
एता होअै अलखामणा, जो मांडै घरवास॥

अर्थात् स्त्री पीहर और पुरुष ससुराल रहने लगें, सयमी सहवास करने लगें तो ये अप्रिय हो जाते हैं।

माधवानल कामकंदला

२. दुर्बल नइ वल राय नू, मूरख नइ वल मौन्य।
वालक वल रोवा तणू, तस्कर वल नइ शौन्य ॥[1]

अर्थात् दुर्बल को राजा का, मूर्ख को मौन का, वालक को रुदन का और चोर को शून्यता का वल रहता है।

३ रुदया भींतरि रही रडउ, चोर तणी जिम माय।

अर्थात् चोर की मां हृदय के भीतर ही रोती है।

कही-कही ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं जिन्हें सस्कृत-सूक्तियो की छाया कहा जा सकता है। जैसे—

जू कइरइ नहू पानडू फूल नहीं वट वृक्ष।
तु सिउ दोस वसतनउ, सरपु तेह समक्ष ॥
आदित्य आखि जु विश्वनी, ऊघाडण अे आक।
थासिइ अन्ध उलूक तु, सूरिजनु स्यु वांक ॥[2]

अर्थात् करील मे यदि पत्ते न हो, वट-वृक्ष मे फूल न हो तो इसमे वसन्त का कोई दोष नही। इसी प्रकार उल्लू को यदि दिन में नही दिखाई पडे तो इसमे विश्व के लिए चक्षु स्वरूप सूर्य का क्या दोष है?

जगाजी द्वारा रचित वचनिका तथा उनके कवित्तो मे कहावतो का प्रयोग नही मिलता। कवित्तो में कही-कही "मिटं न लेख करम्म रो" जैसी पक्तियाँ मिल जाती हैं।

राजिया के सोरठे और कहावतें—कहावतो के प्रयोग की दृष्टि से कृपाराम का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इनका रचना काल स० १८६५ के आस-पास है। ये जोघपुर राज के गाँव खराडी के निवासी खिड़िया शाखा के चारण थे। वडे होने पर ये सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिंह के पास चले गये और अन्त समय तक वही रहे। राजिया के नाम से जो सोरठे राजस्थान मे प्रचलित हैं, वे कृपाराम के वनाये हुए हैं। राजिया इनका नौकर था। उसी को सम्बोधित करके ये सोरठे कहे गये हैं।[3] इन सोरठो के कारण कवि की अपेक्षा भी रजिया का नाम अधिक विख्यात हो गया है।

---

१ मिलाइये

क विभूषण मौनमपण्डितानाम।
ख वालाना रोदन वलम् ॥

२ मिलाइये

पत्र नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोक्यते यदि दिवा सूर्यस्य कि दूषणम्।
धारा नैव पतति चातकमुखे मेघस्य कि दूषणम्
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखित तन्मार्जितु क क्षम ॥

३ राजस्थानी भाषा और साहित्य (डा० मोतीलाल मेनारिया), पृष्ठ १६५।

इन सोरठो की भाषा सरल, रोचक और उपदेशप्रद होने के कारण राजपूताने के निवासी प्राय इन सोरठो को बोलते देखे जाते हैं। शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जिसे राजिया के दो-चार सोरठे याद न हो। राजाओ और सरदारो की सभा में राजिया के सोरठे मौके ब मौके सुने जाते हैं। साधारण लोग इन्हे सासारिक व्यवहार में अच्छी तरह नित्य प्रयोग करते हैं। वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स के भूतपूर्व ब्रिटिश रेजिडेण्ट कर्नल पाउलट साहब इन सोरठो पर इतने मुग्ध थे कि उन्होने बडी मेहनत से जितने भी सोरठे मिल सके, उनका सग्रह कर अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद किया था। उक्त रेजिडेण्ट साहब इन सोरठो की तारीफ मे कहा करते थे कि **"मारवाडी भाषा के साहित्य में राजिया के सोरठे अमूल्य वस्तु हैं।"**[1]

राजिया के सोरठो मे अनेक सोरठे तो ऐसे हैं जिनमे लोक-प्रचलित कहावतो के प्रयोग मे सोरठो मे चमत्कार आ गया है, अनेक सोरठे ऐसे भी हैं जो अपने चमत्कार के कारण राजस्थान मे कहावतो की भाँति प्रयुक्त होने लगे हैं। पहले प्रकार के सोरठो के कुछ उदाहरण लीजिये—

कहणी जाय निकाम, आछोणी आणी उकत।
दामा लोभी दाम, रजे न वाता राजिया ॥५७॥

अर्थात् हे राजिया ! पैसे के लोभी के सामने अच्छी-अच्छी उक्तियाँ पेश करके भी कहा हुआ व्यर्थ होता है, क्योकि वह बातो से प्रसन्न नही होता, पैसे से होता है। "दमडा को लोभी बाता सूं कोनी रीझै" राजस्थान की एक प्रसिद्ध कहावत है जिस का उक्त पद्य के उत्तरार्द्ध मे प्रयोग हुआ है।

डूगर जलती लाय, जोवै सारो ही जगत।
पाजलती निज पाय, रती न सूझै राजिया ॥६६॥

"डूगर बलती दीखै, पगां बलती कोनी दीखै" इस कहावत ने ही उक्त सोरठे का रूप धारण कर लिया है। इसी प्रकार निम्नलिखित सोरठे का पूर्वार्द्ध राजस्थान की एक कहावत ही है—

एक जणे को भार, सात पाच की लाकडी।
तैसे ही उपकार, राम मिलण ने राजिया ॥१२६॥

निम्नलिखित सोरठे अपनी सरल एव चमत्कारमयी अभिव्यक्ति के कारण राजस्थान मे लोकोक्तियो की भाँति ही व्यवहृत होते हैं—

नहचै रहो निसक, मत कीजे चल विचल मन।
ऐ विधना रा अक, राई घटे न राजिया ॥८२॥

इस सोरठे का उत्तरार्द्ध एक कहावत ही समझिये जिसका अभिप्राय यह है कि विधाता के अक राई भर भी नही घटते। नीचे लिखे सोरठे भी लोगो द्वारा बहुधा सुने जाते हैं—

मतलब सूं मनवार, नीत जिमावै चूरमा।
विन मतलब मनवार, राव न पावै राजिया ॥६०॥

---

१ राजिया के सोरठे (श्री जगदीशसिंह गहलोत) भूमिका, पृष्ठ १।

अर्थात् मतलब होने पर मसार 'चूरमा' जिमाता है, बिना मतलब 'राव' भी नही मिलती ।

समझणहार सुजाण, नर औसर चूके नहीं ।
औसर रो अवसाण, रहे घणा दिन राजिया ॥१॥

अर्थात् समझने वाला अवसर को नही चूकता, अवसर का अहसान बहुत दिनो तक रहता है ।

राजिया के सोरठो की भाँति नाथिया आदि के सोरठो मे भी स्थान-स्थान पर कहावतो का प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ—

१. विकता लगे न बार, बोलै जिण रा बूवला ।
अणबोलां री ज्वार, निरखै कोय न नाथिया ॥

अर्थात् बोलने वालो के बूवले विकते भी देर नही लगती और न बोलने वालो की ज्वार की तरफ भी कोई नही देखता ।

२. अदघट करै अवाज, नहि कर भरिया नाथिया ।

अर्थात् आधा खाली घडा आवाज करता है, भरा हुआ नही ।

३. तातो लीजै तोड, वांण्यो अर बीजो बडो ।

अर्थात् वड़ा जब गरम हो, तभी उसे काम में ले लेना चाहिए, इसी प्रकार बनिये से भी अवसर पर फायदा उठा लेना चाहिए ।

सवत् १८५८ की सबोध अष्टोत्तरी से यहाँ जैन कवि ज्ञानसार (स० १८००-१८९८) के भी कुछ कहावती सोरठे उद्धृत किये जा रहे हैं—

१. पहरीजें पर प्रीत, खाईजें अपनी खुसी ।

अर्थात् जैसा दूसरो को अच्छा लगे, वैसा पहनना चाहिए और जैसा अपने को अच्छा लगे, वैसा खाना चाहिए ।

२. अब फाटो आकाश, कह कारी कैसी करें ।

अर्थात् अब आकाश फट गया, पैवन्द कैसे लगे ?

३. करिवर केरो कान, तरल पूछ तुरिया तणी ।
पीपल केरो पान, निचला रहै न नारणा ॥

अर्थात् हाथी का कान, घोडे की तरल पूँछ और पीपल का पत्ता, ये निश्चल नही रहते ।

४. ताता चढ़ण तुरग, भात भांत भोजन भला ।
सुथरा चीर सुरग, नहीं पुण्य विन नारणा ॥[1]

अर्थात् तीखे घोडो की सवारी, भाँति-भाँति के अच्छे भोजन, साफ-सुथरे सुरगे वस्त्र, ये विना पुण्य नही मिलते ।

नारणा के उक्त सोरठो में वैण सगाई के रक्षार्थ ही "अब फाटो आकाश, कह कारी कैसी लागै" के स्थान मे "अब फाटो आकाश कह कारी कैसी करें" का प्रयोग हुआ है।

---

१. बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी, पिलानी की एक हस्तलिखित प्रति से सामार उद्धृत ।

राजस्थानी साहित्य मे कविराजा वाकीदास का नाम वडे आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। आपकी लिखी हुई "वाकीदास री ख्यात" राजस्थान मे अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसमें स्थान-स्थान पर "ओखाणों" और कहावती पद्यो का प्रयोग हुआ है। विडला सेंट्रल लाइब्रेरी की हस्तलिखित प्रति से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

१ रायमल वेद मुहतो सोजत हुवो वीरमदेवजी रे काम आयो सिर पडिया जूझियो कवन्ध हुय बेटा नू मारियो उण दिण रो उखाणो।

मुहता माटी मार का। घर रा गिणे न पार का। —वात सख्या २२४८

२. "वारै वेटा राम रा, काज रा न कांम रा।
जो नहीं होती रणछोड़, सारा वाजता हांडी फोड॥ —वात सख्या २२८४

३ आधी धरती भीम, आधी लोदरवे धणी।
काक नदी छै सीम, राठोडा ने भाटिया॥ —वात सख्या ७८४

४. पाच वकार सू पडित पूज्य होय वपु करि, वित्त करि, वाणी करि, विद्या करि, विनय करि। —वात सख्या २०१६

५. वीरवल की मृत्यु पर अकवर की उक्ति—

"हूं वीरवल री लोय कांधे लै वालतो तो उणरी चाकरी सू उऋण होतो हू।" —वात सख्या २४४६

"खुदा ताला री कृपा सू वीरवल मोनू मिलियो हो म्हांरा दिल मांहली वात वाहर आणतो दारू ज्यू।" —वात सख्या २४४७

६. ऋषि कपाट जडि गुफा मे वैठो हुतो। राजा जाय कह्यो—किवाड खोलो। जद ऋषि कह्यो—कुण है ? राजा कह्यो—हूं राजा हूं। जद ऋषि कह्यो—राजा तो इन्द्र है। जद भोज कह्यो—किवाड खोलो, हूं दाता हूं। जत ऋषि कह्यो—दाता तो करण हुवो। जद भोज कह्यो—किवाड खोलो, हूं क्षत्रिय हूं। जद ऋषि कह्यो—क्षत्रिय तो अर्जुन हुवो। जद भोज कह्यो—खोलो किवाड। ऋषि कह्यो कुण है ? भोज कह्यो—मनुष्य है। ऋषि कह्यो—मनुष्य तो धारापति भोज है।[1] तो हाथ लगा विना खोलियो किवाड खुल जासी। यूं हिज हुवो।

महाकवि सूर्यमल्ल की भी अनेक पक्तियां लोकोक्तियो की भांति प्रचलित हुई हैं। यहाँ "वीर सतसई" से केवल दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

१ इला न देणी आपणी। —दोहा २३४

अपनी जमीन किसी को न देनी चाहिए।

२ रण खेती रजपूत री। —दो० ११८

युद्ध ही राजपूत की खेती है।

राजस्थान की ख्यातो और वातो में जो कहावती दोहे मिलते हैं, उनका

[1] मिलाइये—नैव देवा अतिक्रामन्ति, न पितरो न पशवो, मनुष्या एवैके अतिक्रामन्ति।
—शतपथ ब्राह्मण। २-४-२-६

विवेचन मैंने "राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद" तथा "राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान" में विस्तारपूर्वक किया है।

(ग) आधुनिक राजस्थानी

आधुनिक राजस्थानी साहित्य में कहावतो के विशेष प्रयोग की दृष्टि से दो पुस्तको के नाम उल्लेखनीय हैं। "एक है श्री भीमराज द्वारा रचित "मू घा मोती" और दूसरी है पडित मागेलालजी चतुर्वेदी द्वारा लिखित "मरु भारती"। दोनो में से कहावतो के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(अ) मूंघा मोती

१. पाडोसी रो पूत, भलो तपाणो तावडं। —सोरठा १०३
पडौसी के लडके को धूप मे तपाना ही अच्छा।

२. भली राड़ स्यू बाड, मगल नाकं रंवणो। —सोरठा १०७
झगडे से वाड अच्छी है।

३. मिलतारू रो काम, बातां मांग्रीं नीसरं। —सोरठा ११८
मिलने-जुलने वाले का काम वातो ही वातो में निकल जाता है।

४ मगल् बीनें जाय, जीनें झुकतो पालडो। —सोरठा १३२
जिधर पलडा झुकता है, उधर ही लोग जाते हैं

५ जलमं जद जा दीख, पूता रा पग पालणं। —सोरठा १४६
पूत के पैर पलने मे ही दिखलाई पड जाते हैं।

६. मंगल मिटं न भूख, मन रा लाडू खाण स्यू। —सो० १६०
मन के लड्डुओ से भूख नही मिटती।

७. होय अँधेरी रात, न घी घाल्यो छानो रहवं। —सो० १६२
अँधेरी रात मे भी घी डाला हुआ छिपा नही रहता

८. तपं तावडो लोक, मंगल वरखा भी जदी।[1] —सो० २०२
जब ससार धूप में तप लेता है, तभी वर्षा होती है।

६ मंगल वालक जीत, खेलण मे राजी रवं। —सो० २०८
वालक खेलने से ही प्रसन्न रहते हैं।

१० दुवले नै दो साढ, जाट विचारं खेन में। —सो० २१२
दुवली और दो आषाढ।

११. गधो न घोडो होय, ठम ठम कर भाऊ चलो। —सो० २३ हास्य व्यग्य
ठम-ठम कर चलने से गधा घोडा नही हो सकता।

१२. छाज निजी वधेज, वोल्यो सो तो वोलिये।
मगल सोऊ वेज, वोलण लागी छालणी॥ —सो० २४ हास्य व्यग्य
छाज तो वोले सो वोले लेकिन चलनी भी जिसमे सौ छिद्र होते हैं, वोलने लगी।

---

१. पाठान्तर—
"आडग कर गरमी करं, जद वरसण री आस।"

इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर कहावती लोक-विश्वासों का भी उल्लेख हुआ है।

उदाहरणार्थ—

१ तडकै तडकै आय काव काव कागो करे।
मगल यूं के ज्याय, पत्तर मिनखर आयसी॥ —सो० ९ फुटकर

कौए का बोलना प्रिय के आगमन की सूचना देता है।

२ पग मे चालै खाज, जूती पर जूती पडै।
मगल कैशी काज, करणी पडै मुसाफिरी॥

पग में खाज चलने और जूती पर जूती पडने से यात्रा करनी पडती है।

३. हाथ हथेली खाज, मगल चालै मिनख रे।
कठे सेय ही र आज, रिपिया आसी तावला॥

हथेली में खुजलाहट इस बात की द्योतक है कि शीघ्र ही कही से रुपया आयेगा।

४. हिचकी बारू वार, आय र हलकारै जिया।
दे ज्यावै समचार, मगल कैरी याद रो॥

बारबार आने वाली हिचकी यह समाचार दे जाती है कि कोई स्मरण कर रहा है।

ऊपर दिये हुए सोरठे राजिया, भैरिया, किसनिया आदि की परम्परा को आगे बढाते हैं।

(आ) मरु-भारती

१. "दांत! न दीज्यो काट थे, बली बीच में आय।"
"निचली रीजे जीभडी, देगी तु तुडवाय॥" —पृ० २२

२. पानी तो वहतो भलो, नदी हो कि नहर।
भोजन मा के हाथ को, होय भला ही जहर॥ पृ० ४३।

३. "फरसी छोरी फाणली! कुण तेरे नै व्याह?"
"घरा, पिलास्यूं वीर नें, दे दूल्हे के डाह॥" —पृ० ४८

४. नीचो नर किंचित् पढ्यो, कह "मैं कीं से घाट।"
हुयो पसारी ऊनरो, लै हलदी की गाठ॥ —पृ० ५१

५ तुलसी सूर सुकाव्य की, दोय ऊजली आख।
"मूंग मोठ मे कुण वडो?" करै कौन यह आक? —पृ० ५३

६ फाडै तो मण दूध न, फाचर को एक बीज। —पृ० ५५

७ जातो करणी आपकी, के बेटो के बाप। —पृ० ७१

अर्थात् जीभ ने दांतों मे रहा—तुम्हारे बीच मे आ बसी हूं, कहीं काट न देना।' दांतों ने उत्तर दिया—'तू चुपचाप रहना, ऐसा न हो कि अपनी चचलता से हमे तुडवा दे।' पानी बहता हुआ ही अच्छा है, चाहे नदी हो, चाहे नहर। भले ही विष हो, भोजन तो मा के हाथ का ही अच्छा है। किसी कानी लडकी को यह पूछने पर कि तुम्हारे साथ कौन शादी करेगा, उसने उत्तर दिया—'अपने भाई को मैं घर मे खिलाऊंगी।'

छोटा मनुष्य जब कुछ पढ जाता है तो कहने लगता है कि अब मैं किससे कम हूँ ? चूहा हल्दी की गाँठ लेकर पसारी बन गया। तुलसी और सूर काव्य की ये दो आँखें हैं। मूँग और मोठ मे कौन बडा है ? यह मूल्याङ्कन कौन करे ? काचर के एक बीज से सौ मन दूध भी फट जाता है। चाहे पुत्र हो, चाहे पिता, सब को अपने-अपने कर्मों का फल मिलता है।

"मूँधा मोती" तथा "मरु भारती" दोनो में राजस्थानी लोकोक्तियो की भर-मार है। कही से पृष्ठ खोलिए, कोई न कोई कहावत हाथ लग ही जाती है। "मूँधा मोती" की रचना जहाँ ठेठ राजस्थान मे हुई है, वहाँ "मरु भारती', की भाषा हिन्दी के अधिक निकट है जैसा कि "करै कौन यह आँक" जैसे प्रयोगो द्वारा स्पष्ट है।

(२) लोक-साहित्य—'सुण गूजर का डावडा, यो पोथी को ज्ञान" कह कर जब पण्डित ज्योतिषी ने लोक-ज्ञान की अवहेलना की तो गूजर के लडके ने उत्तर दिया था।

"दृष्टीगोचर ज्ञान सब, लोक तणो उनमान,
कह गूजर को डावडो, पोथी लिखो निकाम।
लोक तणो उनमान ले, दियो ग्रन्थ मे मेल।"

अर्थात् जितना ज्ञान दृष्टिगोचर होता है, वह लौकिक अनुमान मात्र है। जो पुस्तको में लिखा है, उसका महत्त्व क्या है ? वह तो बेकार है। सच तो यह है कि जो लोक-ज्ञान है, उसे ही तो पुस्तको में रख दिया गया है।

आज जब कि लोक-साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा है, उसके महत्त्व के सम्बन्ध मे दो मत नही हो सकते। लोक-साहित्य के विभिन्न अगो के अन्तर्गत कहावतो का भी अपना विशिष्ट स्थान है। विद्वानो द्वारा रचित साहित्य में कहावतो का उतना प्रयोग नही देखा जाता जितनी प्रचुरता के साथ उनका प्रयोग लोक-साहित्य में देखने को मिलता है और यह स्वाभाविक भी है, क्योकि कहावते वस्तुत लोकोक्तियाँ हैं, सच्चे अर्थ में लोक की उक्तियाँ हैं।

लोकोक्तियाँ पवाडो, लोक-गीतों, वार्ताओ तथा ख्यालो आदि में विशेषत उप-लब्ध होती हैं।

पवाडे और कहावतें—राजस्थानी लोक साहित्य मे पाबूजी तथा निहालदे सुलतान के पवाडे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पाबूजी के पवाडो में प्रयुक्त कुछ कहावतें लीजिए—

१. कोइ बिना तो वजाई रै हाथा री ताली ना वजै।
बिना वजाई हाथो की ताली नही वजती।

२. छोटै तो मुखडा ह रै थे मोटी वाता मत करो।
छोटे मुँह बडी बात मत करो।

३. सूरा तो नारा का रै वै वार फर्‌योडा ना फिरै।
शूरवीरो और सिंहो के वार वापिस नही जाते।

४. बींन बिना सूनी लागै जुग मे जिण विध जान।
जिस प्रकार दूल्हे के बिना बरात सूनी लगती है।

५. मूल हूँ तो प्यारो थानै लागै व्याज ।
कोइ प्यारी तो वेटा हू लागै थानै पेमा डीकरी ।
मूल से व्याज आपको प्रिय लगता है, पेमा लडकी बेटे से भी प्रिय लगती है ।
६. कोइ वेटी केरो दुखडो रै माता की छाती दलमलै ।
लडकी के दुख से माता का हृदय विदीर्ण हो जाता है ।
७. कोनी श्रो गरुजी म्हारै माय र वाप ।
श्रम्वर तो पटक्योजी गुरुजी धरती झेलियो ।[1]

अर्थात् मेरे माता-पिता कोई नही, अम्वर ने मुझे डाल दिया और धरती ने झेल लिया ।

विडला एज्यूकेशन ट्रस्ट के राजस्थानी शोध विभाग द्वारा निहालदे सुलतान के पवाडो का भी सग्रह किया गया है । निहालदे सुलतान के ५२ पवाडे प्रसिद्ध हैं जो अभी प्रकाश मे नही आये हैं । पवाडो की हस्तलिखित प्रति से कुछ कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं ।

१. अव घर श्राज्या होणी वैरण ना टलै ।
अर्थात् अव घर आ जाओ, होनहार नही टलती ।

२. कमधजराव ने जव सुलतान से पूछा कि तुम्हारे माता-पिता कौन हैं और तुम कहाँ के रहने वाले हो ? तो उसने उत्तर दिया ।

"अम्वर भी पटक्या या झेल्या माता धरतरी"
कोन्या कहिये मायी वाप ।
भिरा किसी में हो राजा, मत पडो ।
मुश्कल कटता दिन और रात ।
इतनी भी कह के मणधारी रोवण लाग्या ।
उभल्या समदर जी डटता नाय ॥

अर्थात् मैं अनाथ हूँ, आसमान ने मुझे नीचे डाल दिया और धरती माता ने सँभाल लिया । हे राजन् ! विपत्ति किसी पर न पडे, विपत्ति के दिन-रात मुश्किल से कटते हैं । इतना कहकर वह रोने लगा । सच है, समुद्र जव मर्यादा का उल्लघन करके वहने लगता है, तव वह किसी के रोके नही रुकता ।

ऊपर के प्रसग की पक्तियाँ राजस्थान की प्रचलित लोकोक्तियाँ हैं ।

३ "पूत विराणा हे राणी दोरा राखणा ।"
अर्थात् हे रानी ! पराये पूत का रखना वडा दुष्कर है । कमधजराव की रानी के प्रति यह सुलतान की उक्ति है ।

लोक-गीत और कहावतें—राजस्थान के लोक-गीतो मे भी स्थान-स्थान पर कहावतो का प्रयोग दृष्टिगत होता है किन्तु उनमें भी जहाँ कथा का निवन्धन होता है, कहावतें श्रविरलता से काम में लाई जाती हैं । यही कारण है कि लम्बे ऐतिहासिक गीतो

---

[1] ये उदाहरण श्री गणपति स्वामी द्वारा सगृहीत पवाडों में से लिये गये हैं जिनकी हस्तलिखित प्रति विडला मैंट्रल लाइब्रेरी पिलानी के सौजन्य से प्राप्त हुई है ।

में लोकोक्तियो की दृष्टि से अध्ययन की विशेष सामग्री मिल जाती है। कुछ उदाहरण लीजिये—

१. हरसा वीर मेरा रै
सेला रा भर ज्या गैरा घाव
जामण का रै जाया
वोला रा घाव ज जुग में ना भरै।

अर्थात् भालो के घाव भर जाते हैं, वोली के घाव नही भरते।

२ पाप्या रो रै जुग में सीरी को नहीं।[1]

अर्थात् ससार में कोई भी पापियो का पाप बँटाने वाला नही।

३. नाय भरोसो के करै स कोइ या रागड़ की जात।

अर्थात् यह रांगड की जाति है, इसका कोई भरोसा नही, यह क्या करे ?

४. नहीं मरे की बूटी।[2]

अर्थात् मरे की कोई औषधि नही।

५ सुण्योडी हो ज्या झूठ तुम्हारी नणदूली ये।
कांन सुण्योड़ी होज्या बा झूठ ये॥
कोइ आस्यां तो देख्योड़ी ये नणदल झूठी ना हुवै जी।[3]

अर्थात् कानो से सुनी हुई वात झूठी हो सकती है, किन्तु आंखो देखी वात झूठी नही होती।

ऐतिहासिक गीतो के अलावा, राजस्थान के अन्य लोक-गीतो से भी कुछ कहावती उक्तियो के उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं—

१ ऊनड खेडा भवरजी, फेर वसै जी।
हाजी ढोला, निरघण रै धन होय।
जोवन गयां पाछो फोन्या वावडै जी।
ओजी थां ने लिखूं वारम्वार।
प्यारा घर आवजो, क थांरी धण एकली जी। —पृष्ठ ३२५

२. कागद हो तो वांचूं लूं, करम न वाच्यो जाय। —पृष्ठ ३६६

३. वैंगण तो काचा भला, पाकी भली अनार।
प्रीतम तो पतला भला, मोटा जाट गिंवार॥ —पृष्ठ ३६७

४ घर घोड़ी पिव अचपलो, वैरीवाडे वास।
नित उठ खडकै ढोलड़ा, कद चुडले री आस॥ —पृष्ठ ३६८

५. कै कोमी जागै राजा वादस्या,
कै कोओ वालक की अे जी अै माय।

---

१. नीरा माना रो गीत।
२ हू गजी जवारजी रो गीत।
३ तेजाजी रो गीत।
ये गीत श्री गणपति स्वामी द्वारा सगृहीत हैं और विड़ना सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।

कै कोग्री जागै तिरिया श्रेकली जी ॥ —पृष्ठ ३७४

६. ग्रागे बावोजी फूटरा घणा फेरू टाट घडायली। —पृष्ठ ४२६

७ विणजारी श्रे लोभण, गुड डलिया मे जाय।
चिमठ्या तो चिमठ्यां जावै खाडडो, विणजारी श्रे॥ —पृष्ठ ५०८

८ गहणो धाया रो सिणगार ग्रर भूखां रो ग्राधार। —पृष्ठ ५०९

९ सिंघ होसी सिंहणी को रै जाये। —पृष्ठ ५४१

१० नार मुइ या वुरी हुई, टावर वारा जी वाट। —पृष्ठ १४४

११. जलाजी मारू, पुरसा मायलो पुरस भलो राठोडो हो।
जलाजी मारू, राण्यां मायली रणी भली भटियाणी हो।
जलाजी मारू, छींटां मायली छींटा भली मुल्तानी हो।
जलाजी मारू, रुपिया मायलो, रुपयो भलो गंगाशाही हो।
जलाजी मारू, सहरा मायलो सहर भलो वीकाणं हो।—पृ० १५८-६९

१२ स्यालू सागानेर का, जी वना म्हारा, श्रॅगियां कोर जडाय॥—पृष्ठ १७१

कभी-कभी लोक-गीतो में ऐसी पक्तियाँ भी ग्राती हैं जिन्हें कहावतमूलक कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ—

१ तीज तिव्हारां मा वावडी जै। —पृष्ठ ६४

२. पोह महीने पालो पडसी, खालडी रो खोह।[1] —पृष्ठ ५११

लोक-कथाएँ श्रौर कहावतें—कहावतो के अध्ययन की दृष्टि से सवसे महत्त्व-पूर्ण हैं लोक-कथाएँ। कथा कहने वाला वीच-वीच में कहावतो का प्रयोग करता चलता है जिससे कथा का ग्राकर्षण कई गुना वढ़ जाता है श्रौर श्रोताग्रो पर प्रभाव भी वहुत पडता है। राजस्थानी की दो प्रसिद्ध वार्ताग्रो से कहावतो के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

"रतना हमीर री वारता"

१. कपूर नू घणो ही छिपावै तो पिण सुगन्ध ग्रावै ही ग्रावै। —पृष्ठ ३१
कपूर को चाहे जितना छिपाग्रो, उसमें से सुगन्ध ग्राती ही है।

२ कपटी पर त्रिय सग फरै, पर हर निज त्रिय प्रीत।
घर रा जिके न घाट रा, रजक स्वान री रीत॥ —पृष्ठ ७१
ग्रपनी स्त्री से प्रीति छोडकर जो कपटी पर-स्त्री के साथ प्रीति करता है, वह धोवी के कुत्ते की तरह न घर का रहता है, न घाट का।

३. कूप भेक जाणै किसूं, वारघरो विस्तार। —पृष्ठ ७०
कूप-मण्डूक समुद्र के विस्तार को नहीं जानता।

४. जीहाँ चाखी दाख जिन न रुचै नीमोलीह। —पृष्ठ ६१
जिन्होंने द्राक्षा का ग्रास्वादन किया है, उन्हें 'निवौरी' नहीं रुचती।

---

[1] लोकगीतों के उद्धरण 'राजस्थान के लोकगीत' से लिये गये हैं जिनका सम्पादन श्री रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कई वर्ष पूर्व किया था। उद्धृत पंक्तियों के अर्थ के लिए भी यही संस्करण द्रष्टव्य है।

"पन्ना वीरम दे री वारता"

१. उडगन ऊगं नवलखा, छिप्यो न रहसी चन्द। —पृष्ठ ३४

२ तीजां पुगल देस री गवरल उदिया दीप।
दिली दसेरो देखिये, मोती समदां सीप ॥ —पृष्ठ २१

३. नेह की रीत तो काचो तागो छं। —पृष्ठ ६६

४. भोलो अति भूंडो भलो, प्यारो घर को पीव।
देख पराई चोपडी, क्यू तरसावै जीव ॥ —पृष्ठ ६७

५. शिव विनां इस्यो कुण जको जहर री घूंट जारै। —पृष्ठ ८०

अर्थात् नौ लाख तारो के उदित होने पर भी चन्द्रमा छिपा नही रहता। पूगल की तीज, उदयपुर की गणगौर, दिल्ली का दशहरा और समुद्री सीप के मोती प्रशस्य होते हैं। प्रीति की रीति तो कच्चे धागे के समान है। अपने घर का प्रिय यदि भोला और अत्यन्त भौंडा भी हो तो भी वह अच्छा है। परायी चुपडी हुई रोटी को देखकर जी मत ललचाओ। शिव के बिना ऐसा कौन है जो विष को पचा सके?

ऊपर की वार्ताएँ साहित्यिक शैली मे लिखी हुई वार्ताएँ हैं, इसलिए उनमे यदि कहावतो की प्रचुरता न भी मिले तो कोई अचम्भे की बात नही किन्तु राजस्थान में जो असख्य लोक-कथाएँ प्रचलित हैं, उनमे किसी भी लोक-कथा को पढिये-सुनिये, कहावतें अनायास हाथ लग जायेंगी।

राजस्थान के लोक-काव्य और कहावतें— नरसी को माहेरो' तथा पदम भक्त का बनाया हुआ 'रुक्मिणी' मगल ये दो राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध लोक-काव्य हैं। 'माहेरो' मे कहीं-कहीं कहावती उक्तियाँ मिल जाती हैं। जैसे—

१. मायडली विना तो काइ बाप को हेज। —पृष्ठ ५४

२. पहले केश उचाय कै, पछै वढायो चीर।
आवत लाज गमाय कै, आखर जात अहीर ॥

किन्तु कहावतो के प्रयोग की दृष्टि से रुक्मिणी मंगल का विशेष महत्त्व है। महाराज पृथ्वीराज की बनाई हुई 'क्रिसन रुकमणी री' का भी विषय यही है जो 'रुक्मिणी मगल' का है किन्तु साहित्यिक शैली अथवा डिंगल मे लिखी जाने के कारण वेलि मे कहावतो का प्राय अभाव है जबकि 'रुक्मिणी मंगल' मे कहावतो की प्रचुरता है जैसा कि नीचे के दिये हुए उदाहरणो से स्पष्ट प्रतीत होगा—

१. सबलां सेती सगपण कीजे, पाणी पहलो पाजै। —पृष्ठ १०

२ येकज घर में दो मता, भली काय सें होय।
पुरुप जु पूजे देवता, भूत जु पूजे जोय ॥ —पृष्ठ १३

३. समंदरां सूं सीर पड्यो जद नाडूल्यां कुण न्हावै। —पृष्ठ ३८

४. मानसरोवर हंसा देख्यां काग निजर नहिं आवै। —पृष्ठ ३८

५ मन मोती धन नैन को जाणो येक सुभाय।
फाटे पीछे नां मिले, कोट ज करो उपाय ॥ —पृष्ठ ४०

६ डूंगरिया को वाहलो, ओछां तणो सनेह।
वहता वहै उतावला, तुरतहि आवै छेह ॥ —पृष्ठ ४१

कै कोम्री जागै तिरिया अेकली जी ॥ —पृष्ठ ३७४

६ आगे बाबोजी फूटरा घणा फेरू टाट घडायली। —पृष्ठ ४२६

७ विणजारी अे लोभण, गुड डलिया मे जाय।
चिमठ्या तो चिमठ्यां जावै खाडडी, विणजारी अे॥ —पृष्ठ ५०८

८ गहणो धायां रो सिणगार अर भूखा रो आधार। —पृष्ठ ५०६

६ सिंघ होसी सिंहणी को रै जाये। —पृष्ठ ५४१

१०. नार मुइ या वुरी हुई, टाबर बारा जी बाट। —पृष्ठ १४४

११. जलाजी मारू, पुरसा मांयलो पुरस भलो राठोडो हो।
जलाजी मारू, राण्या मायली रणी भली भटियाणी हो।
जलाजी मारू, छींटां मायली छींटा भलो मुलतानी हो।
जलाजी मारू, रुपिया मायलो, रुपयो भलो गंगाशाही हो।
जलाजी मारू, सहरा मायलो सहर भलो बीकाणं हो।—पृ० १५८-६६

१२ स्यालू सागानेर का, जी बना म्हारा, अंगियां कोर जडाय॥—पृष्ठ १७१

कभी-कभी लोक-गीतों में ऐसी पक्तियां भी आती हैं जिन्हें कहावतमूलक कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ—

१ तीज तिव्हारां मा बावडी जै। —पृष्ठ ६४

२. पोह महीने पालो पडसी, खालडी रो खोह।[1] —पृष्ठ ५११

लोक-कथाएँ और कहावतें—कहावतो के अध्ययन की दृष्टि से सबसे महत्त्व-पूर्ण हैं लोक-कथाएँ। कथा कहने वाला बीच-बीच में कहावतो का प्रयोग करता चलता है जिससे कथा का आकर्षण कई गुना बढ जाता है और श्रोताओ पर प्रभाव भी बहुत पडता है। राजस्थानी की दो प्रसिद्ध वार्ताओ से कहावतो के उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं—

"रतना हमीर री वारता"

१. कपूर नू घणो ही छिपावै तो पिण सुगन्ध आवै ही आवै। —पृष्ठ ३१
कपूर को चाहे जितना छिपाओ, उसमें से सुगन्ध आती ही है।

२ कपटी पर त्रिय सग करै, पर हर निज त्रिय प्रीत।
घर रा जिके न घाट रा, रजक स्वान री रीत॥ —पृष्ठ ७१

अपनी स्त्री मे प्रीति छोडकर जो कपटी पर-स्त्री के साथ प्रीति करता है, वह धोबी के कुत्ते की तरह न घर का रहता है, न घाट का।

३. कूप भेक जाणै किसू, वारधरो विस्तार। —पृष्ठ ७०
कूप-मण्डूक समुद्र के विस्तार को नहीं जानता।

४. जीहो चाखी दाख जिन न रुचै नीमोलीह। —पृष्ठ ६१
जिन्होंने द्राक्षा का आस्वादन किया है, उन्हे 'निबौरी' नहीं रुचती।

---

१ लोकगीतों के उद्धरण 'राजस्थान के लोकगीत' से लिये गये हैं जिनका सम्पादन श्री रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कई वर्ष हुए किया था। उद्धृत पंक्तियों के अर्थ के लिए भी वही संस्करण द्रष्टव्य है।

"पन्ना वीरम दे री वारता"

१ उडगन ऊगे नवलखा, छिप्यो न रहसी चन्द । —पृष्ठ ३४

२ तीजा पुगल देस री गवरल उदिया दीप ।
दिली दसेरो देखिये, मोती समदां सीप ॥ —पृष्ठ २१

३. नेह की रीत तो काचो तागो छै । —पृष्ठ ६६

४. भोलो अति भूडो भलो, प्यारो घर को पीव ।
देख पराई चौपडी, क्यू तरसावै जीव ॥ —पृष्ठ ६७

५. शिव विना इल्यो कुण जको जहर री घूंट जारै । —पृष्ठ ८०

अर्थात् नौ लाख तारो के उदित होने पर भी चन्द्रमा छिपा नही रहता। पूगल की तीज, उदयपुर की गणगौर, दिल्ली का दशहरा और समुद्री सीप के मोती प्रशस्य होते हैं। प्रीति की रीति तो कच्चे धागे के समान है। अपने घर का प्रिय यदि भोला और अत्यन्त भौंडा भी हो तो भी वह अच्छा है। परायी चुपडी हुई रोटी को देखकर जी मत ललचाओ। शिव के विना ऐसा कौन है जो विष को पचा सके ?

ऊपर की वार्ताएँ साहित्यिक शैली मे लिखी हुई वार्ताएँ हैं, इसलिए उनमें यदि कहावतो की प्रचुरता न भी मिले तो कोई अचम्भे की वात नही किन्तु राजस्थान में जो असख्य लोक-कथाएँ प्रचलित हैं, उनमे किसी भी लोक-कथा को पढिये-सुनिये, कहावतें अनायास हाथ लग जायेंगी।

राजस्थान के लोक-काव्य और कहावतें—नरसी को माहेरो' तथा पदम भक्त का वनाया हुआ 'रुक्मिणी' मगल ये दो राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध लोक-काव्य हैं। 'माहेरो' मे कही-कही कहावती उक्तियाँ मिल जाती हैं। जैसे—

१. मायडली विना तो कांइ वाप को हेज। —पृष्ठ ५४

२. पहले केश खचाय कै, पछै वढ़ायो चीर ।
आवत लाज गमाय कै, आखर जात अहीर ॥

किन्तु कहावतो के प्रयोग की दृष्टि से रुक्मिणी मंगल का विशेष महत्त्व है। महाराज पृथ्वीराज की वनाई हुई 'क्रिसन रुकमणी री' का भी विषय यही है जो 'रुक्मिणी मगल' का है किन्तु साहित्यिक शैली अथवा डिंगल मे लिखी जाने के कारण वेलि मे कहावतो का प्राय अभाव है जवकि 'रुक्मिणी मंगल' मे कहावतो की प्रचुरता है जैसा कि नीचे के दिये हुए उदाहरणो से स्पष्ट प्रतीत होगा—

१. सवलां सेती सगपण कीजे, पाणीं पहलो पाजै। —पृष्ठ १०

२ येकज घर में दो मता, भली काय सें होय ।
पुरुष जु पूजै देवता, भूत जु पूजै जोय ॥ —पृष्ठ १३

३. समंदरा सू सीर पड्यो जद नाडूल्यां कुण न्हावै। —पृष्ठ ३८

४ मानसरोवर हंसा देख्यां काग निजर नहिं आवै। —पृष्ठ ३८

५. मन मोती धन नैन को जाणो येक सुभाय ।
फाटै पीछे नां मिले, कोट ज करो उपाय ॥ —पृष्ठ ४०

६. डूंगरिया को वाहलो, ओछा तणो सनेह ।
वहतां यहै उतावला, तुरतहि आवै छेह ॥ —पृष्ठ ४१

कै कोग्री जागै तिरिया श्रेकली जी ॥ —पृष्ठ ३७४

६. श्रागे वाबोजी फूटरा घणा फेरू टाट घडायली। —पृष्ठ ४२६

७ विणजारी श्रे लोभण, गुड डलिया मे जाय।
चिमठ्या तो चिमठ्या जावै खाडडो, विणजारी श्रे॥ —पृष्ठ ५०८

८ गहणो थाया रो सिणगार श्रर भूखा रो श्राधार। —पृष्ठ ५०९

९ सिंघ होसी सिंहणी कोरै जाये। —पृष्ठ ५४१

१० नार मुइ या बुरी हुई, टाबर बारा जो बाट। —पृष्ठ १४४

११. जलाजी मारू, पुरसा मायलो पुरस भलो राठोडो हो।
जलाजी मारू, राण्या मायली रणी भली भटियाणी हो।
जलाजी मारू, छींटा मायली छींटा भली मुल्तानी हो।
जलाजी मारू, रुपिया मायलो, रुपयो भलो गंगासाही हो।
जलाजी मारू, सहरा मायलो सहर भलो बीकाणै हो।—पृ० १५८-६९

१२ स्यालू सांगानेर का, जी वना म्हारा, श्रॅगियाँ कोर जडाय॥—पृष्ठ १७१

कभी-कभी लोक-गीतो में ऐसी पक्तियाँ भी श्राती हैं जिन्हें कहावतमूलक कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ—

१ तीज तिम्हारां मा बावडी जै। —पृष्ठ ६४

२ पोह महीने पालो पडसी, खालडी रो खोह।[1] —पृष्ठ ५११

लोक-कथाएँ श्रौर कहावतें—कहावतो के श्रध्ययन की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण हैं लोक-कथाएँ। कथा कहने वाला बीच-बीच में कहावतो का प्रयोग करता चलता है जिससे कथा का श्राकर्षण कई गुना बढ जाता है श्रौर श्रोताश्रो पर प्रभाव भी बहुत पडता है। राजस्थानी की दो प्रसिद्ध वार्ताश्रो से कहावतो के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

"रतना हमीर री वारता"

१. कपूर नू घणो ही छिपावै तो पिण सुगन्ध श्रावै ही श्रावै। —पृष्ठ ३१

कपूर को चाहे जितना छिपाश्रो, उसमें से सुगन्ध श्राती ही है।

२ कपटी पर त्रिय सग करै, पर हर निज त्रिय प्रीत।
घर रा जिके न घाट रा, रजक स्वान री रीत॥ —पृष्ठ ७१

अपनी स्त्री से प्रीति छोडकर जो कपटी पर-स्त्री के साथ प्रीति करता है, वह धोबी के कुत्ते की तरह न घर का रहता है, न घाट का।

३. कूप भेक जाणै किसू, वारधरो विस्तार। —पृष्ठ ७०

कूप-मण्डूक समुद्र के विस्तार को नहीं जानता।

४. जीहों चाखी दाख जिन न रुचै नीमोलीह। —पृष्ठ ६१

जिन्होंने द्राक्षा का श्रास्वादन किया है, उन्हे 'निंबोरी' नहीं रुचती।

---

[1] लोकगीतों के उद्धरण 'राजस्थान के लोकगीत' से लिये गये हैं जिनका सम्पादन श्री रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीक तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कई वर्ष हुए किया था। उद्धृत पंक्तियों के अर्थ के लिए भी यही संस्करण द्रष्टव्य है।

७. व्याव वैर अर प्रीत लायक बराबर सूं कीजिए। —पृष्ठ १२

८. साठी बुद्ध गई अब थांकी। —पृष्ठ १५

९ झालर बाज्यां हरि भगत, रिण बाज्यां रजपूत।
इतनी सुण नहिं उठ चलै, आठू गांठ कपूत॥ —पृष्ठ ९२

१०. घरे हाण हासी जगमांही। —पृष्ठ १०४

११. छठी रात का लेख टलै नां दाणा पाणीं ल्याया। —पृष्ठ १०४

अर्थात् सबलो से सम्बन्ध करना चाहिए, पानी आने के पहले पाल बांधनी चाहिए। एक ही घर में जहाँ दो मत हो, पुरुष देवता को पूजता हो और स्त्री भूत को पूजती हो, वहाँ कुशल कहाँ से हो? समुद्रो मे जहाँ हमारा हिस्सा हो, वहाँ नालो में कौन स्नान करे? मानसरोवर के हस देख लेने पर कौवो पर दृष्टि नही जाती। मन, मोती और नेत्रो का एक ही स्वभाव होता है। करोडो उपाय चाहे करलो, फटने पर ये नही मिलते। पर्वत का नाला और तुच्छ मनुष्यो का स्नेह प्रवाहित होते समय तो वेग से बहते हैं किन्तु शीघ्र ही उनका अन्त हो जाता है। विवाह, वैर और प्रीति बराबर वालो से करना चाहिए। साठ वर्ष की अवस्था मे बुद्धि नष्ट हो जाती है। झालर बजने पर हरि-भक्त और युद्ध का डका बजने पर यदि राजपूत उठकर नहीं चलें तो वे दोनो ही पूर्णत कुपुत्र हैं। घर मे हानि हो और संसार हँसे। छठी रात के लिखे लेख नही टलते।

राजस्थान के ख्याल और कहावतें—ख्याल एक प्रकार के लोक-नाटक हैं जिनका अभिनय खुले मैदान में होता है। राजस्थान के लोक-कवियो द्वारा रचित ख्याल सैंकडो की सख्या में उपलब्ध हैं। ख्यालो के रचयिताओ में चिडावा निवासी नानूलाल ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की। उसके बनाये हुए लगभग ४०-५० ख्याल मिलते हैं। ये ख्याल लोक-प्रचलित राजस्थानी भाषा मे लिखे गये हैं जिनमे कही-कही खड़ी बोली का पुट भी आ गया है। डिंगल की रचनाओ और इस प्रकार की लोक-कृतियो मे आसानी से भेद किया जा सकता है। कुछ ख्यालो से यहाँ कहावतें उद्धृत की जा रही हैं[1] जिनसे इस बात का सहज ही अनुमान हो सकेगा कि कहावतो के प्रयोग की दृष्टि से ये ख्याल कितने महत्वपूर्ण हैं।

शाहजादा को ख्याल

१. काच कटोरो फूट्यो मोती जुड नहीं सकता कोय। —पृष्ठ १२

२ कुत्तो पूत कपूत बाईजी बुचकार्यो स्मामें आवें। —पृष्ठ २८

३ केहर केश भुजग मणि विन मूया हाथ न आवें। —पृष्ठ १२

४ खर कू आप खुवावो मिसरी जाणे बीष समान। —पृष्ठ २७

५ गुड देणें सें मरज्या जिसकू विष काहे कू देना। —पृष्ठ २७

६. ग्रह विन घात भेद विन चोरी शाहजादा ना होय। —पृष्ट १०

७ चातक हो सो वच कर निकलैं मूरख पांव फंसाव। —पृष्ठ १२

८ ठडो लो तातें लो नें सुण सूलतान खा ज्याय। —पृष्ठ २७

---

१. ऊपर के उद्धरण खेमराज श्री कृष्ण द्वारा प्रकाशित "नरसी मेहेता का बड़ा मामेरा" तथा "बड़ा रुक्मिणी मगल" से दिये गये हैं।

(५) वडा वडाई नां करें जी, वडा न वोलें वोल ।
हीरा मुख सें कद कहें स हैं, लाख हमारा मोल ।। —पृष्ठ १७
(६) वैरी मगल पावणां श्रणकोथ्या श्रावन्त । --पृष्ठ २०

सुलतान मरवण का भात का ख्याल

(१) श्रौसर का चूका नें पिता मोसर कभी न पावता । —पृष्ठ ६९
(२) घुसण कुत्ता न खाय । —पृष्ठ ४४

चन्द्रभान का ख्याल

(१) काम पड्या कर देवां जग मे एक चण दो दाल । —पृष्ठ ३

ढोल सुलतान न्ह्यालदे का ख्याल

(१) मालक को मालक कुण ? —पृष्ठ ८
(२) भाग पुरस का तेज छिपाया ना छिपें । —पृष्ठ १४
(३) घर ज्वाई श्रौर भ्रात भंण घर ये दो स्वान समान । —पृष्ठ ३०
(४) गोली जात गुलाम काग की ठोक्या रहे ठिकाणें ।
ठोक्या रहे ठिकाणें चले वे तौर सें ।
गोलो मू ज वल खाय परायें जोर सें । पृष्ठ ५२ ।

काच, कटोरा श्रौर फूटा मोती, जुड नही सकते । कुत्ता श्रौर कुपुत्र पुचकारने मे सामना करने लगते हैं । गधे को मिश्री खिलाश्रो तो भी वह उसे विप समझने लगता है । जो गुड देने से मर जाता हो, उसे विप क्यो दिया जाय ? विना ग्रह के घात श्रौर विना भेद के चोरी नही होती । चतुर वचकर निकल जाता है, मूर्ख श्रपने पाँव फँसा लेता है । ठडा लोहा गरम लोहे को खा जाता है । पिश्ते, दाख श्रौर वादाम को छोड कर मूर्ख गाजर खाता है । स्त्री, पृथ्वी श्रौर धर्म पर जव सकट पडा हो तो प्राणो का वलिदान कर देना चाहिए । वदर श्रौर श्रडियल घोडा पिटने पर ही वश मे श्राते हैं । सिंह चाहे भूखा रह जाय, घास नही खाता ।

जो निरपराध को दोपी ठहराता है, उसे शाप लगता है । चतुर व्यक्ति से श्रमली श्रौर नकली का भेद छिपा नही रहता । जव वात वन जाती है तो सभी साथ देते हैं, विगडने पर कोई साथ नही देता । पेट भरने के लिए मनुष्य सौ-सौ पाखण्ड रचता है । कौश्रा होकर हसिनी की श्रोर तके, यह श्रनुपयुक्त है । श्रावश्यकता पडने पर पुण्य श्रौर पाप की परवाह न कर सव वुरा व्यापार करने लगते हैं । इश्क के जाति नही होती । श्रनादरणीय मेहमान यम से भी वुरा लगता है । स्त्री हीनवुद्धि होती है, उसे डिगते देर नहीं लगती । धर्मराज के सामने रत्ती-रत्ती का हिसाव देना होगा । शूरवीर का पुत्र लाख वर्ष के वैर को भी नहीं भूलता । ससार में सात पदार्थ वडे हैं—राज्य का भोग, घुडसवारी, धन, सतान, भुजवल, भाई श्रौर सुन्दर—सुघड स्त्री । दुनिया मे सत्पुरुषो की गाथाएँ हमेशा चलती हैं । जो हिम्मत करता है, उसकी भगवान सहायता करते हैं । इश्क, रोग, खाँसी श्रौर मद, ये छिपाये नहीं छिपते । वैलों की जोडी के विना गाडी नहीं चलती, जूतियो की जोडी के विना काँटा पैर में चुभता है । जोडी के विना श्रकेला मोती सस्ते मोल विकता है । विना पके श्राम चूसने में नहीं श्राता ।

विना वल के वुद्धि वेचारी समझी जाती है। वहम का कोई इलाज नहीं। छोटा छोटे मुख से छोटी ही वात करता है। जग मे जीना सवसे वडा है। दातारों की वातें दातार ही समझते हैं। नाला समुद्र नही हो सकता। वडे स्वय अपनी प्रशसा नही करते। हीरा कव कहता है कि मेरा मूल्य एक लाख है? वैरी और मेहमान विना वुलाये आ जाते हैं। एक वार अवसर चूक जाने पर दुवारा हाथ नही लगता। भौंकने वाला कुत्ता काटता नही। काम पडने पर ससार मे 'एक चना दो दाल' कर देंगे। मालिक का मालिक कौन? सौभाग्यशाली पुरुष का तेज छिपाये नही छिपता। ससुराल मे जामाता का घर वनाकर रहना और वहिन के घर भाई का रहना श्वान के समान है। गुलाम और कौवा पिटने पर ही ठीक होते हैं। गुलाम और मूंज (रस्सी) पराये वल पर जोर खाते है।

ऊपर के पृष्ठो में राजस्थान के शिष्ट साहित्य और लोक-साहित्य मे प्रयुक्त कहावतो पर एक विहगम दृष्टि डाली गई है। अनेक वार शिष्ट साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थो में ढूंढने पर भी कहावतें नही मिलती जव कि लोक-साहित्य के सामान्य ग्रन्थो में अनायास कहावतें हाथ लग जाती हैं। कहावतो की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण न होने के कारण ही शिष्ट साहित्य के वहुत से प्रसिद्ध ग्रन्थो को भी छोडना पडा है जव कि कहावतो के लिए उपयोगी होने के कारण शिष्ट तया लोक-साहित्य से सम्वद्ध सामान्य ग्रन्थो को भी यहाँ विचारार्थ ले लिया गया है।

५. धर्म और जीवन-दर्शन

इस शीर्षक के अन्तर्गत ईश्वर, धर्म-भावना, शकुन, लोक-विश्वास तथा भाग्य आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सभी प्रकार की कहावतों का समावेश किया जा सकता है। सबसे पहले ईश्वर-सम्बन्धी कहावतों को ही लीजिये—

(क) ईश्वर-सम्बन्धी कहावतें

प्राय दुनिया की सभी भाषाओं में ईश्वर-विषयक कहावतें मिलती हैं। आज तो जीवन की जटिलता तथा विचार-स्वातन्त्र्य की भावना के कारण यहाँ तक कहा जाने लगा है कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नही, ईश्वर ने मनुष्य को नही बनाया, मनुष्य ने ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ईश्वर का निर्माण कर लिया है किन्तु राजस्थान में ऐसी कोई कहावत शायद ही मिले जिसमें ईश्वर के अस्तित्व पर सन्देह प्रकट किया गया हो। हाँ, ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने वाली कहावतें यहाँ सहज ही मिल जायँगी। उदाहरण के लिए ऐसी दो कहावतें लीजिये—

(१) कण कण भीतर रामजी, ज्यूं चकमक में आग।

जिस प्रकार चकमक पत्थर मे आग रहती है, उसी प्रकार कण-कण के भीतर ईश्वर का निवास है।

(२) राम जी ऊपर चढ्यो देखै है।

भगवान ऊपर से सभी के भले-बुरे कर्मों को देख रहा है। इसलिए मनुष्य को यह समझकर कि मुझे कोई नही देखता, कुकर्म नही करना चाहिए।

बहुत-सी कहावतों द्वारा ईश्वर की उदारता, दयालुता और न्याय-बुद्धि का पता चलता है। यथा,

(१) कीड़ी नैं कण, हाथी नैं मण।

ईश्वर चीटी को उदर-पूर्ति के लिए जहाँ कण भर देता है, वहाँ हाथी को मन भर दे देता है अर्थात् वह छोटे-से-छोटे प्राणी से लेकर बड़े-से-बड़े जीव की आवश्यकताएँ पूरी करता है।

(२) आंधा की माखी राम उडावै।

अन्धे की मक्खी भगवान् उड़ाता है अर्थात् वह निर्बल का सहायक है।

(३) आखर रामजी कै घर न्याव है।[1]

अन्त में भगवान के यहाँ न्याय अवश्य है।

(४) बदी राम बैर।

बुराई से भगवान की शत्रुता है।

एक कहावत में राम-नाम की महिमा का इस प्रकार बखान किया गया है—

"रामजी को नाव सदा निमगी, जद चावें जद गू दगिरी।"

---

१. मिलाइये—

'देर है, अन्धेर नहीं।'

भगवान् का नाम लेने से मेवे-मिसरी मिलते रहते हैं अर्थात् मनुष्य हमेशा आनन्दपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है।

किन्तु भगवान् का स्मरण करने वालो में कुछ लोग तो श्रद्धा से ऐसा कहते हैं और कुछ लोगो को विवश होकर ऐसा करना पडता है। एक कहावत लीजिये—

"हर-हर गगा गोदावरी किमैक सरदा अर किमैक जोरावरी।"

स्नान करते समय जाडे के दिनो मे जो भगवान् का नाम लिया जाता है, उसमे कुछ तो श्रद्धा और कुछ शीत का भय, दोनो का सम्मिश्रण रहता है।

निम्नलिखित कहावतो में ईश्वर को सर्वशक्तिशाली ठहराया गया है—

(१) राम सूं जोर नही।

भगवान् के आगे किसी का वश नही चलता।

(२) राम को अर राजा को सिर ऊपर कर गैलो है।

भगवान् और राजा जो चाहे कर सकते हैं, उनके मार्ग मे कोई बाधक नही हो सकता।

भगवान् यदि देना चाहे तो वह किसी भी मार्ग से दे सकता है।

"राम दे तो बाड मे ही दे दे।"

देव-विषयक कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमे विचार का स्तर अपेक्षया उच्च मालूम पडता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कहावत पर विचार कीजिये—

"मानै तो देव, नहीं भींत को लेवड़ो"

अर्थात् मूर्ति में देवत्व के आरोप का मूल कारण भावना ही है जिसकी पुष्टि सस्कृत के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भी हो जाती है—

न काष्ठे विद्यते देवो, न शिलाया न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्॥[1]

(ख) नैतिकता और धर्म-सम्बन्धी कहावतें—

एक सामान्य परिवार मे ही हम देखते हैं कि कुछ सदस्य भले होते हैं, कुछ बुरे। राजस्थान की कहावतो का परिवार तो बहुत बडा है। फिर यदि इस विशाल परिवार में अच्छी और बुरी दोनो ही प्रकार की कहावतें उपलब्ध हो तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है? जब दुनिया मे स्वार्थपरता तथा असत्य आदि अवगुण हैं तो उनसे सम्बन्ध रखने वाली कहावतें ही क्योकर नही मिलेंगी? कहावतो मे तो जीवन की अभिव्यक्ति होती है, उस जीवन की जिसमे धूप और छाया दोनो हैं। जीवन का यदि एक शुक्ल पक्ष है तो दूसरा कृष्ण पक्ष भी है। उदाहरण के लिए नैतिक और अनैतिक दोनो प्रकार की कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

नैतिक

(१) साच नै आच कोन्या।

अर्थात् साँच को आँच नही।

---

१. मिलाइये—
"मानला नर देव, नाहीं तर दगड।" (मराठी कहावत)

(२) साचै रा बोलबाला, झूठे रा मुँह काला ।
सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुँह काला ।
(३) ऐंठवाड़ो खाणो पण ऐंठवाडी वात नहीं करणी ।
झूठा खा भले ही लिया जाय किन्तु झूठी बात नही करनी चाहिए ।
(४) धरम कियां सूं धन वधै ।
अर्थात् धर्म करने से धन बढता है ।
(५) नीत गैल वरक्त है । (नीयत के अनुसार वरकतहोती है ।)

अनैतिक

(१) करो पाप तो खावो धाप ।
अर्थात् पाप करो और धाप कर खाओ ।
(२) करो धरम तो फूटै करम ।
अर्थात् धर्म करो और दुर्भाग्य का आश्रय लो ।
(३) साची कही, भाठा की दई ।
अर्थात् सत्य कहने मे दूसरे को ऐसा लगता है जैसे पत्थर से प्रहार किया हो ।

ऊपर दी हुई नैतिक कहावतो मे सत्य और धर्म का जयजयकार हुआ है जब कि अनैतिक कहावतो मे पाप को फलना-फूलता हुआ तथा सत्य को कटु वतलाया गया है।

उक्त अनैतिक कहावतों को पढ़कर, यह भ्रान्त धारणा नही बना लेनी चाहिए कि इस प्रकार की उक्तियाँ अनैतिकता के प्रचारार्थ जीवन-सूत्रो का काम देने लगती हैं। वस्तुस्थिति यह है कि जब हम ससार में अन्याय और अत्याचार करने वालो को अमन-चैन से जीवन व्यतीत करते हुए देखते हैं तथा धर्मात्मा व्यक्ति हमारे ही सामने दुःख भोगते हैं तो हमारे मुख से थोडे समय के लिए इस प्रकार के उद्‌गार निकल पडते हैं जिनसे नैतिकता और धार्मिक भावना के प्रति हमारी आस्था हिलती हुई-सी मालूम पडती है किन्तु स्थायी रूप से हमारा ध्यान उन्ही कहावतो की ओर जाता है जो नैतिकता और धार्मिक भावना का समर्थन करती हैं। अनैतिकता के प्रचार की वात तो दूर, पूर्वी देशो मे तो नीति-साहित्य के अन्तर्गत ही कहावतो की गणना की गई है। राजस्थानी कहावतो में अनैतिक कहावतो की अपेक्षा नैतिक कहावतें ही सख्या में भी अधिक हैं। अनैतिक कहावतें अनेक बार तथ्य-कथन के रूप मे प्रयुक्त न होकर व्यग्य के रूप में भी उच्चरित होती हैं।

(ग) लोक-विश्वास-सम्बन्धी कहावतें—

अन्धविश्वास के स्थान मे मैं जानबूझकर ही 'लोक-विश्वास' शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। लोक-विश्वास क्या असत्य-विश्वास का नामान्तर है अथवा उस विश्वास का नाम है जो सहेतुक न हो, युक्तियुक्त न हो ? उदाहरण के लिए एक लोक-विश्वास को लीजिए। शीशा यदि किसी के हाथ से फूट जाय तो दुर्भाग्य का सूचक समझा जाता है।[1] जिस अशिक्षित आदिम समाज मे इस प्रकार

---

1 To break a looking glass betokens that the owner will lose his, or her best friend (Yorkshire)

To break a looking glass means seven years' bad luck but not want (General)

का लोक-विश्वास प्रचलित हुआ होगा, उस समय उस समाज-विशेष में इस प्रकार का लोक-विश्वास अहेतुक अथवा युक्ति-हीन नही समझा गया होगा। शीशा एक ऐसी वस्तु है जिसमें व्यक्ति का प्रतिविम्ब दिखाई पडता है। जिस पदार्थ में व्यक्ति को प्रतिविम्वित करने की शक्ति है, उस पदार्थ के किसी व्यक्ति द्वारा टूट जाने से उस व्यक्ति-विशेष को हानि हो सकती है, ऐसी कुछ चिंतन-पद्धति अथवा धारणा तत्कालीन समाज की रही होगी। उस युग का मनुष्य जिन आधारो को लेकर अपने सीमित बुद्धि-वल से जिन निष्कर्षों पर पहुँचा, वे निष्कर्ष गलत हो सकते हैं किन्तु युक्ति की प्रक्रिया उसके मन मे भी चलती रही होगी, इसमे कोई सन्देह नही।

एक दूसरे लोक-विश्वास को लीजिए। ग्रीस के निवासियो का यह विश्वास था कि पैदा होने के आठ दिन तक वच्चे को अकेला नही छोडना चाहिए। वहुत से देशो मे अव भी यह विश्वास प्रचलित है कि पैदा होने के आठ दिन तक वच्चे को अँधेरे मे नही रहने देना चाहिए क्योकि कही ऐसा न हो कि बुरी आत्माएँ उसे हानि पहुँचा दें। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के लोक-विश्वासो के पीछे भी कुछ न कुछ युक्तियाँ अवश्य चल रही थी चाहे वे किसी स्तर की क्यो न हो। इसलिए लोक-विश्वासो को अन्ध-विश्वास नही कहा जा सकता। जो समाज इस प्रकार के लोक-विश्वासो को सच्चा करके मानता है, उसकी दृष्टि मे तो ऐसे विश्वास अन्ध-विश्वास हैं ही नहीं। अन्ध-विश्वास का प्रश्न तो तव खडा होता है जव किसी व्यक्ति अथवा समाज के वौद्धिक विकास के साथ इस प्रकार के लोक-विश्वासो का सामजस्य न वैठता हो।

लोक-विश्वासो से सम्वन्ध रखने वाली दो राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(१) थावर की थावर ही किसा गाव बलै हैं?

पुत्र-कामना करने वाली कुछ स्त्रियाँ समझती हैं कि शनिवार के दिन दूसरों के घर आग लगा देने से पुत्र उत्पन्न होता है। इस लोक-विश्वास का सकेत उक्त कहावत में मिलता है।

वीघँ-वीघँ भूत और विसवै विसवै सांप।

राजस्थान में वीघँ-वीघँ की दूरी पर भूत और विस्वे विस्वे की दूरी पर सांप रहते हैं।

राजस्थान के सम्वन्ध में कही हुई इस कहावत का पूर्वार्द्ध तो वडा अद्भुत मालूम पडता है किन्तु इतिहास के आलोक मे यदि हम इस लोक-विश्वास की छान-वीन करें तो सव रहस्य खुलने लगता है।

"जातको के समय से ही मरुकान्तर (रेगिस्तानी भूमि) भूतो के लिए वहुत प्रसिद्ध है। उस समय भी हजारो की सख्या मे चलने वाले वाणिज्य-सार्थ कितनी ही वार भूतो के फेर मे पड़ जाते थे। एक वार कोई सार्थवाह अपने कारवाँ के साथ मरु-कान्तर मे जा रहा था। आगे वह भूमि आने वाली थी, जहाँ दिनो चलते रहने पर भी पानी का कही पता नही चलता था, चारो ओर केवल वालू ही वालू दिखती। सार्थ को उधर से एक दूसरा कारवाँ आता मिला। उनकी गाडियो के चक्को में कीचड़ लिपटी हुई थी। लोग कमल के फूल अपने गलो में लटकाये हुए थे, कमल के पत्ते भी

उनके पास थे। जलाशय के बारे में पूछने पर कहा—"पानी के बारे में क्या पूछते हो? आगे तो महासरोवर लहरें मार रहा है।" सार्थवाह ने सोचा—"फिर गाड़ियो पर मुशको में पानी भरके ढोने से क्या फायदा?" पानी वहाँ गिरवाकर वह आगे बढा। वहाँ सरोवर का कहाँ पता था? सार्थ निर्जल मरुभूमि में बढता चला गया और उसके सभी आदमी और पशु वहाँ प्यास के मारे मर गये। कुछ दिनो बाद आने वाले दूसरे सार्थो को देखने के लिए उनकी केवल सफेद हड्डियाँ रह गईं।

ढाई हज़ार वर्ष पहले भी भूत इस तरह धोखा देकर सारे सार्थ को मार डालते थे। आज भी वहाँ ऐसे भूतो की कमी नही। दुर्गा खवास और उपला चोबदार दोनो मगलपुर से मखनपुर जा रहे थे। पास में घडी तो थी नही। उनको चलना चाहिए था तीन-चार बजे रात को, ठण्डे-ठण्डे रेगिस्तान मे यात्रा तै करना अच्छा होता है, लेकिन वह आधी रात को ही चल पडे। मगलपुर से दो मील चलने पर मीलरास का गाँव आता है जहाँ एक जोहडी (पोखरी) सूखी पडी थी। वहाँ पर आग जलती दिखाई पडी। दुर्गा ने कहा—"चलो, वहाँ चलकर चिलम पी लें। फिर चलेंगे।" उपला ने 'हाँ' कहा। किन्तु ऊँट को उधर ले जाने लगे तो वह एक डग भी आगे रखने के लिए तैयार नही था। ऊँट अगमजानी होते हैं। बहुत मारा-पीटा लेकिन ऊँट अपनी जगह से नही डिगा। उपला कुछ सयाना आदमी था। उसने कहा—"हो, कोई बात है, जभी तो ऊँट नही चल रहा है।" लेकिन दुर्गा को विश्वास नही आया। वह चिलम पीने पर तुला हुआ था। ऊँट से उतर पैदल ही दोनो आगे की ओर बढे, लेकिन वह जितना ही आगे जाते, आग उतनी ही दूर हटती जा रही थी। भूत अपने पुर्खा जातक वाले भूत की तरह चाहता था कि दोनो को रस्ते से भटकाकर घोर कातार मे ले जाये। दुर्गा को चिलम पीने का ख्याल छूट गया, और उसने उपला को पकडकर कहा, "मुझे तो डर लग रहा है" खैर दोनों की हड्डियाँ रेगिस्तान मे सफेद होने से बच गईं, वह समय पर सम्हल गये।"[1]

इसी प्रकार एक अन्य कहावत में कहा गया है "भूत रो ठिकाणों इामली मे।"[2] इमली के पेड के लिए जनश्रुति है कि उसके नीचे प्राय भूत-प्रेत का निवास होता है।

शरीर के अंगों सम्बन्धी लोक-विश्वास—राजस्थान की अनेक कहावतो में शरीर के अंगो से सम्बन्ध रखने वाले लोक-विश्वासो की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) माथो मोटो सिरदार को अर पग मोटो गवार को।[3]

अर्थात् बडा मस्तक सरदार का होता है और बडा पैर गँवार का होता है।

(२) छाती पर केश नहीं जकै सू बात नहीं करणी।

अर्थात् जिसकी छाती पर बाल नही हो, उससे बात नही करनी चाहिए।

---

१ देखिये :
'राजस्थानी रनिवास'—श्री राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ ७१-७२।

२ राजस्थानी कहावतें, भाग १ (श्री रतनलाल मेहता), पृष्ठ ६४।

३ सिर मोटो सिरदार रो, पग मोटो गुंवार रो।"

छाती पर बालों का होना पुरुषत्व का चिन्ह समझा जाता है। जिस पुरुष के छाती पर बाल नहीं होते, उससे बातचीत तक करना बुरा समझा गया है।

(३) काणूं खोड़ो खायरो, ऐंचाताणू होय।
इण नै जद ही छेडिये, हाथ घेसलो होय॥

काना, खोडा, विडालाक्ष और ऐंचाताना (जिसकी पुतली ताकने मे दूसरी ओर को खिचती हो), ये दुष्ट समझे जाते हैं।

तिथि, वार आदि सम्बन्धी लोक-विश्वास—एक राजस्थानी कहावत 'अण-पूछयो मुहरत भलो कै तेरस कै तीज' के अनुसार तेरस या तीज, ये दो शुभ मुहूर्त के दिन माने जाते हैं।

स्थापना करने के लिए शनिवार तथा व्यापार के लिए बुधवार अच्छे दिन समझे गये हैं—

"थावर कीजै थरपना, बुध कीजै व्योपार।"

कहा जाता है कि शुक्रवार के दिन जिस काम के लिए सकल्प किया जाता है, वह कभी पूरा नही पडता। नये कपडे पहनने के लिए बुध, बृहस्पति तथा शुक्र, ये तीन दिन शुभ माने गये हैं—

"बुध बृहस्पत शुक्करवार, कपडा पहरं तीन वार।"

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि 'माज्या पाल, उतर्या नार' के अनुसार दुपहर का भोजन होने पर वार उतर जाता है अर्थात् उस समय से आगामी वार का प्रारम्भ मान लिया जाता है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने दिखाया है कि 'पुण्याह और 'पुण्य रात्र' का विचार पाणिनि के जमाने मे भी प्रचलित था।[1]

किन्तु अथर्ववेद मे तिथि, नक्षत्र, ग्रह, चन्द्रमा इन सब की अपेक्षा अधिक महत्त्व मन्त्र की शक्ति को दिया गया है—

न तिथर्न च नक्षत्र न ग्रहो न च चन्द्रमा।
अथर्वमन्त्रसप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥

—अथर्व० परिशिष्ट २५

राजस्थानी की एक कहावत में कहा गया है कि शुभाशुभ का विचार तो धनवानो के लिए है, निर्धनो के लिए उसका कोई अर्थ नहीं—

"भदरा जा घर लागसी, जां घर रिध और सिद्ध।"

तिथि, नक्षत्र, वार आदि से सम्बद्ध लोक-विश्वासो के अतिरिक्त भी बहुत से लोक-विश्वास राजस्थान मे प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ दो कहावतें लीजिये—

(१) गहण को दान, गगा को असनान।

---

1 The idea that certain days (Punyaha, V. 4 90) and nights are auspicious (Punyaratra, V 4 87) was also prevalent

—India as known to Panini p. 387.

गंगा-स्नान करने से जैसे पुण्य होता है, उसी प्रकार ग्रहण के अवसर पर दान देने से भी।

(२) निर्नावेरो नाव कुण लेवे।

निर्वंशी का नाम कौन ले ? जिस पुरुष के सन्तान नही होती, उसका नाम लेना भी अशुभ समझा जाता है।

लोक-देवताओ से सम्बन्ध रखने वाली भी कुछ राजस्थानी कहावतें उपलब्ध है। यथा—

(१) आधा में दई देवता, आधा मे खेतरपाल्।

आधे मे कुल देवी-देवता और आधे मे अकेला क्षेत्रपाल। इससे क्षेत्रपाल की महत्ता प्रकट होती है।

(२) तेल वाकला भैरू पूजा।

तेल और सिझाये हुए मोठ से भैरव नामक देवता की पूजा होती है।

(घ) शकुन-सम्बन्धी कहावतें

१. **शकुन और जातीय चेतना**—जिस जाति में किसी व्यक्ति का जन्म हुआ है, वह उस जाति के विश्वासो, भावनाओ, अभिरुचियो आदि को उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त करता है। मनुष्य जो कुछ दूसरों के मुख से निरन्तर सुनता रहता है, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता, चाहे वह उसके व्यक्तिगत अनुभव के विरुद्ध ही क्यो न पडता हो। जातीय चेतना व्यक्तिगत चेतना को आक्रान्त कर लेती है। ऐसी स्थिति मे आत्म-स्वीकृति ही प्राय. देखी जाती है, सत्यासत्य के तात्त्विक निर्णय का प्रयत्न नही किया जाता।

आज भी हम देखते हैं कि रास्ते मे बिल्ली आ जाती है, शृगाल अथवा खर दायें बोलने लगता है, गाय बाँई तरफ आ जाती है, कोई विधवा स्त्री मिल जाती है, बूँदें पड़ने लगती हैं अथवा खाली घडा मिल जाता है तो बहुत से मनुष्य अपनी यात्रा स्थगित कर देते हैं। ये सब वस्तुएँ उनके व्यक्तित्व का अग बन गई हैं, क्योंकि बचपन से ही उनको इस तरह की बातो में विश्वास करना सिखलाया गया है। इस तरह के विश्वास व्यक्तिगत घटित घटनाओ के आधार पर ही बने हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता; ये तो इस तरह के विश्वास हैं जिनको स्वत स्वीकार कर लिया गया है। इस प्रकार के विश्वास सामाजिक संस्कारो का रूप धारण कर लेते हैं, उस हालत मे व्यक्ति-विशेष का कोई महत्त्व नही रह जाता। ऐसे समाज का प्रतिक्रियावादी व्यक्ति तो प्रायः सोचा करता है—"मैं कौन होता हूँ जो अपने विद्वान् एव अनुभवी पूर्वजो की मान्यताओ के विरुद्ध आचरण करूँ? पूर्वजो ने जिन उपयोगी परम्पराओ का निर्माण किया है, मेरा कर्तव्य है कि उनको बनाये रखने में पूर्णतः योग दूँ।"

सगुन-असगुन का सम्बन्ध केवल व्यक्ति से नहीं किन्तु, जैसा ऊपर कहा गया है, सामाजिक सस्कारो से उनका विशेष सम्बन्ध है। शकुन-मनोविज्ञान का रहस्य तभी हृदयंगम किया जा सकता है जब व्यक्ति का विचार न कर वर्ग अथवा समूह पर हम अपनी दृष्टि रखें। जहाँ मस्तिष्क का बहुत अधिक विकास न हुआ हो, जहाँ विचारो की दृष्टि मे मानसिक शैशव की अवस्था हो, वहाँ अत्यन्त उच्च बौद्धिक और धार्मिक स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। पीढी दर पीढी चली आती हुई परम्पराएँ शकुनो को चिरस्थायी बनाये रखने मे बडा योग देती हैं। कभी-कभी तो यहाँ तक देखा जाता है कि आधुनिक युग का अत्यन्त उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति भी शकुनो के प्रभाव से बुरी तरह आक्रान्त है। केवल उस व्यक्ति की दृष्टि से विचार करने पर यह बात हमें बडी अजीब-सी लगती है, किन्तु जिन जातिगत-सस्कारो मे उस व्यक्ति का पालन-पोषण हुआ है और जिस प्रकार के घर तथा समाज के वातावरण मे वह अब भी अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, उन सब बातो को दृष्टि में रखते हुए यदि हम उस शिक्षित व्यक्ति के व्यवहार पर विचार करें तो सारा रहस्य खुलने लगता है। डा० जानसन तक के लिए प्रसिद्ध है कि वह शकुनो आदि मे बडा विश्वास किया करता था।[1]

---

1. Dr. Johnson was a scrupulous observer of signs, omens and particular days (Select Proverbs of All Nations by Thomas Fielding, p 219)

सुनार के लिए कहा गया है कि वह चाहे दाहिनी ओर मिले चाहे बाँई ओर, वह किसी भी अवस्था में शुभ नही है।[१]

(ग) पशु-पक्षियों द्वारा शकुन-निर्धारण

खर, शृगाल, गाय, तीतर, शकुन चिड़िया, नीलटाँस आदि पशु पक्षियों को दायें-बायें देखकर भी शकुन-निर्धारण किया जाता है। उदाहरणार्थ कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(अ) बाऊँ तीतर बाऊँ स्याल, बाऊँ खर बोलै असराल।
बाऊँ घूघू घमका करै तो लका को राज विभीषण करै॥

अर्थात् तीतर, सियार, खर तथा उल्लू यदि निरन्तर बायें बोलें तो उतनी ही समृद्धि प्राप्त हो जितनी समृद्धि लका का राज्य मिलने पर विभीषण को मिली थी। ध्वनि यह है कि विभीषण को भी लका का राज्य मिलते समय यही शकुन हुए थे।

(आ) सदा भवानी दाहणी, सन्मुख होय गणेश।
पाँच देव रिच्छा करैं, ब्रह्मा विष्णु महेश॥

"भवानी" से तात्पर्य यहाँ "सोन चिडी" अथवा "शकुन चिरैया" से है जो दाहिनी ओर आने पर शुभ समझी जाती है।

(इ) सींगालो दस जीमणी ज्यो जोवतो जाय।
आ सुकना सू पथिया, पग पग लाभ कराय॥

दाहिनी तरफ आया हुआ बैल पद-पद पर लाभप्रद होता है।

(ई) गऊ सवच्छी आवती कवहुक सांमी होय।
सकुन विचारै पथिया लपमी लाहो होय॥

अर्थात् बछड़े सहित गाय सामने मिलने पर लक्ष्मी प्राप्त होती है।

(उ) हस्ती सु दर मोंडियो, साहमो जो आवत।
सुकन विचारे पथिया, दिन दिन अत दीपन्त॥

अर्थात् सुसज्जित हाथी यदि सामने मिले तो शुभ समझा जाता है।

(ऊ) कहा जाता है कि यात्रा के समय यदि हरिन आ जा जायें तो मृत्यु होती है।[२] एक प्रचलित लोक-विश्वास के अनुसार प्रवास के लिए जाते समय हरिणो का दायें तथा लौटते समय बायें आना शुभ समझा जाता है।

किन्तु जहाँ भगवान का बल हो, वहाँ शकुन कोई चीज नही समझी जाती। राजस्थान के एक कहावती दोहे में कहा गया है—

हर बडा क हिरण बड़ा, सुगण बड़ा क श्याम।

---

१ जाटो काटो घी घनो सुन्नो फेमा नार।
बाँयो भलो न दाहिणो, त्यारो ज्यस सुनार॥

२ द्रष्टव्य "कल्पना" वर्ष ३ अक ७ में प्रकाशित श्री मन्मथराय का "पुराणों में वर्णित शुभ विचार" शीर्षक लेख, पृष्ठ १३५।

अरजन रथ नै हाक दे, भलो करै भगवान ॥[२]

प्रसिद्ध है कि एक बार हरिणों को बाईं ओर देखकर रथ हांकने मे अर्जुन को हिचकिचाहट होने लगी। इस पर किसी ने कहा—जब भगवान् अनुकूल हो, तब शकुनो का क्या विचार ? हरि बडे या हरिण बडे ? शकुन बडे या श्याम ? अर्थात् हरि अथवा श्याम ही बडे हैं, हरिण और शकुन नही।

राजस्थान के वे योद्धा भी, जो प्राणो को हथेली पर रखकर युद्ध के लिए प्रयाण करते थे, सगुन-असगुन का कोई विचार नही करते थे। राजस्थान के प्रसिद्ध कवि बाकीदास जी कह गये हैं—

सूर न पूछै टीपणो, सुकन न देखै सूर।
मरणा नू मगल गिणै, समर चढै मुख नूर ॥

अर्थात् शूरवीर ज्योतिषी के पास जाकर मुहूर्त नही पूछता, न वह शकुन को ही देखता है। वह तो मृत्यु को मगलस्वरूप समझता है और युद्ध में उसके नूर चढता है। राजस्थान के जिन वीरो ने धर्म और मान-मर्यादा की रक्षा के लिए "मरण महोत्सव" मनाया, उनके लिए शकुन-अपशकुन का विचार कैसा ?

(४) **शकुनों का मनोविज्ञान**—तो क्या इसका अर्थ यह है कि कायर मनुष्य ही शकुन-अपशकुन के विचार से भयभीत होता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमे शकुनो के मनोविज्ञान पर विचार करना होगा। श्री लालजीराम शुक्ल के मतानुसार "असगुन पर विचार करने वाले व्यक्ति के मन में कोई मानसिक ग्रन्थि रहती है। इस ग्रन्थि के कारण उसका ध्यान असगुन पर ही आकर्षित होता है। बुद्ध भगवान का कथन है कि छिपा हुआ पाप ही मनुष्य को लगता है, खुला पाप नही लगता। जो व्यक्ति अपने खुले पाप को प्रकट कर देता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। आधुनिक मनोविश्लेषण-विज्ञान द्वारा मानसिक चिकित्सा का रहस्य भगवान् बुद्ध के उक्त कथन मे निहित है। जब मनोविश्लेषण द्वारा रोगी अपने पुराने कुकृत्य को जानकर उसे स्वीकार कर लेता है तो उसका रोग नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति सदा स्वच्छ धारणाएँ अपने मन में रखता है, जो दूसरे के अहित की बात मन में नही लाता, जो परोपकार में ही अपना समय व्यतीत करता है, उसका असगुनो की ओर ध्यान आकर्षित नही होता। यदि उसका ध्यान आकर्षित भी किया जाए तो वह उसमें भी कल्याणकारी भावना ही पाता है। जिसका मन जितना ही अधिक दूषित होता है, वह उतना ही अधिक कायर होता है। ऐसे व्यक्ति को अनेक प्रकार के दु.ख होना अनिवार्य है। जब उसको वास्तविक दुःख नहीं रहता तब वह कल्पना से ही दु:ख की सृष्टि कर लेता है। असगुन के विचार उनको ध्यान में लाने वाले व्यक्ति को जितना त्रास देते है, उतना त्रास वास्तविक घटना मे भी उनकी परवाह न करने वाले व्यक्ति को नही होता।"

---

२ मिलाइये—

शकुन भला के शामला, सारा माठा कान।
रथिश रथ द कारजे, लइ नारायण नाम ॥

—राम कथा, पृष्ठ ७७; शारदा, मई, १९५४

शुक्ल जी ने जो कहा वह ठीक हो सकता है किन्तु ऐसा लगता है कि रहस्य-मय अनागत के अज्ञान के कारण मनुष्य शकुन-अपशकुनो की ओर उन्मुख होता है। ऐसा करके वह चिर सुख और चिर जीवन की अपनी अभिलाषाओ को तृप्त करना चाहता है। तो फिर प्रश्न यह है कि अनागत घटनाएँ क्या शकुनो के रूप में अपना पूर्वाभास दे जाती हैं ? आश्चर्य की बात तो यह है कि एक तरफ तो भाग्य की अमिटता जैसे विश्वास हैं और दूसरी ओर शकुनो से लाभ उठा कर उस भाग्य को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास है। शकुन-शास्त्रियो की मान्यता है कि शकुन चाहे भविष्य-वाणी के रूप मे न हो किन्तु इस प्रकार की चेतावनी वे अवश्य है जिनसे लाभ उठाने पर हम अनागत विपत्तियो से बच सकते है।

(५) *निष्कर्ष*—*विज्ञान की उन्नति होने से शकुन-अपशकुन पर लोग अपेक्षाकृत कम* ध्यान देने लगते हैं किन्तु फिर भी कभी-कभी ऐसा जान पडता है कि अत्युच्च बौद्धिक तथा वैज्ञानिक विकास होने पर भी मनुष्य जाति शकुन-जाल से अपने आपको मुक्त नही कर सकेगी। जब तक ससीम मानव अपनी सीमाओ में बँधा है, तब तक भौतिक, 'सामा-जिक और आध्यात्मिक वातावरण-विषयक उसका ज्ञान तथा प्रकृति और मन की शक्तियो पर उसका नियन्त्रण कभी भी सम्पूर्णता को प्राप्त नही कर सकेगा। अज्ञात और अज्ञेय की भावना उसे सर्वदा दिग्भ्रान्त करती रहेगी, प्रकृति और मन की शक्तियो पर विजय प्राप्त करने के लिए वह छटपटाता रहेगा। एक क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर लेने पर नित्य नये-नये क्षेत्र उसकी कल्पना के सामने आते रहेंगे। यदि अना-गत का आवरण हट जाय, विश्व का रहस्य ज्ञान हो जाय तो शकुन-अपशकुन का प्रश्न ही न रहे। जीवन का अज्ञात अनन्त रहस्य शकुन-भावना को प्रोत्साहन देता है—इतना प्रोत्साहन जिसे देखकर हमारी बुद्धि हैरान हो जाती है। मनुष्य का जन्म ही छटपटाने के लिए हुए हुआ है, उस अज्ञात अनन्त का पता लगाने के लिए। आधुनिक युग की सुप्रसिद्ध कवयित्री भी इसका साक्ष्य भर रही है—

"तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है ?"

जहाँ तक राजस्थानी जनता का सम्बन्ध है, उसकी अधिकाश सख्या शकुन-अपशकुन की भावना से आक्रान्त है। बहुत सम्भव है, ज्यो-ज्यो शिक्षा का प्रचार बढ़ेगा, यह भावना मन्द पडती जायगी किन्तु सर्वांश में इसका उन्मूलन हो सकेगा, ऐसा नही कहा जा सकता।

(ङ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी कहावतें

(क) भाग्यवाद और कर्म-सिद्धान्त—

"ईसवी सन् के आरम्भ में कर्मवाद का विचार भारतीय समाज में निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया गया था। जो कुछ इस जगत में हो रहा है, उसका एक अदृष्ट कारण है, यह बात निःसंदिग्ध मान ली गई थी। जन्मान्तर-व्यवस्था तथा कर्मफलवाद के सिद्धान्त ने ऐसी जबरदस्त जड़ जमा ली थी कि परवर्ती युग के कवियों और मनीषियों के चित्त में इस भौतिक व्यवस्था के प्रति भूल से भी असन्तोष का आभास नहीं मिलता। जन्मान्तरवाद के निश्चित रूप से स्वीकृत हो जाने के कारण प्रचलित रूढियों के विरुद्ध तीव्र सन्देह एक दम असम्भव था। कवि कठिन से कठिन दुःखों का वर्णन पूरी तटस्थता के साथ करते थे और ऐसा शायद ही कभी होता था जब कोई कवि विद्रोह के साथ कह उठे कि यह अन्याय है, हम इसका विरोध करते हैं।[1]

कर्मवाद के सम्बन्ध में जो भावना भारतीय साहित्य में देखी जाती है, वही इस देश की कहावतों में भी मिलती है और राजस्थानी कहावतें भी इसका अपवाद नहीं हैं। भवितव्यता होकर ही रहती है, इसके सम्बन्ध में कुछ कहावतें लीजिए—

(१) लाख जतन कोई करै, कोटि करै किन कोय।
अनहोणी होणी नहीं, होणी होय सो होय ॥[2]

(२) करम मे घोड़ी लिखी, खोल कुण ले ज्याय।[3]
जब भाग्य में घोडी लिखी है तो उसे खोलकर कौन ले जा सकता है?

(३) करम मे लिख्या कंकर तो के करै सिवसंकर?
भाग्य मे यदि कंकड लिखे हो तो शिवशंकर क्या करें?

(४) जलम घडी 'र मरण घडी टाली कोनी टलै।
जन्म-घडी व मरण-घडी किसी के टाले नहीं टलती।

(५) वेमाता का घाल्योडा अक टलै कोन्या।
विधाता के लिखे हुए अक नहीं टलते।

(६) हूणी नै निमस्कार।
भवितव्यता को नमस्कार।

(७) भागां का वलिया, राधी खीर, होगा दलिया।
भाग्य की बलिहारी है, पकाई थी खीर और होगया दलिया।

(८) करमहीण खेती करै, के काल पड़ै के बलद मरै।
भाग्यहीन जब खेती करता है तब या तो अकाल पडता है या बैल मर जाते हैं। भाग्यहीन के लिए परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाया करती हैं।

---

१. 'हिमालय' संख्या २ में श्री दिनकर का लेख 'हिन्दी कविता में वैयक्तिकवाद का उत्थान', पृष्ठ संख्या ७२।

२ "यदभावि न तद्भावि भावी चेन्न तदन्यथा।"

३ यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्। (पंचतंत्र)

(६) सगलं करमा की वाजं है ।

सभी जगह भाग्य का ही जयजयकार हो रहा है। कर्महीन को सभी जगह विपत्तियाँ घेरे रहती है ।

(१०) रूप की रोवं, करम की खाय ।

भाग्य की प्रतिकूलता के कारण रूपवती स्त्री दु ख उठाती देखी जाती है और विधि की अनुकुलता के कारण कुरूप स्त्री भी सुखमय जीवन व्यतीत करती है ।

ऊपर की कहावतो को पढकर यह प्रश्न उठता है कि यदि भवितव्यता इतनी प्रवल है तो फिर मनुष्य के कर्त्तव्य और उसकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का क्या मूल्य रह जाता है ? सम्भवत इसीलिए भाग्य की प्रवलता घोपित करने वाली कहावतो के साथ-साथ ऐसी अनेक कहावतें भी मिलती हैं जिनमे पद-पद पर भाग्य को दोषी ठहराने वाले व्यक्तियो को आडे हाथो लिया गया है। उदाहरण के लिए इस प्रकार की कुछ कहावतें यहाँ दी जा रही हैं ।

(१) चालणी में दूद दूवं करमा नै दोस दे ।

अर्थात् चलनी मे दूध दुहता है और कर्मों को दोप देता है, स्वय मूर्खतापूर्ण कार्य करता है और व्यर्थ मे भाग्य पर दोपारोपण करता है ।

(२) वैरी न्यूत वुलाइया, कर भाया सूं रोस ।
आप कमाया कामड़ा, दई न दीजे दोस ।।

अर्थात् अपने किये हुए कर्मो के लिए दैव को दोपी नही ठहराना चाहिए । भाइयो से क्रोध करके जो शत्रुओ को निमन्त्रित करता है, उसे किसी अच्छे फल की आशा नही करनी चाहिए ।

यद्यपि राजस्थानी कहावतो मे भाग्य से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी कहावतें हैं किन्तु ऐसी कहावतें भी कम नही हैं जिनमे इस बात पर जोर दिया गया है कि जो मनुष्य जैसा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। कर्म के फल से कोई वच नहीं सकता । कुछ कहावतें लीजिए—

(१) करणी भोगै आपकी, के बेटो को वाप ।

अर्थात् क्या पिता और क्या पुत्र, सब अपनी-अपनी करनी का फल भोगते हैं ।

(२) करन्ता सो भोगन्ता, खोदन्ता सो पडन्ता ।

अर्थात् अपनी करनी का फल भोगना पडता है। जो दूसरो के लिए खड्डा खोदता है, वह स्वय उसमें गिरता है । "खाड खनै जो और को ताको कूप तयार ।"

(३) "करणी जिसी भरणी, करणी पार उतरणी, वाही जो लणही" आदि इसी आशय की कहावतें है ।

कहावतो का सम्बन्ध जीवन के क्रिया-कलापो से है। जीवन मे ऐसे अनेक अवसर आते है जब पूर्ण प्रयत्न करने पर भी मनुष्य को सफलता नहीं मिलती अथवा कभी-कभी सफलता प्राय शत-प्रतिशत निश्चित होते हुए भी असफलता के रूप मे परिवर्तित हो जाती है । ऐसे अवसरों पर भाग्य की प्रवलता व उसकी अनिवार्यता

स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगती है। इसलिए ऐसी कहावतो का स्वभावत ही निर्माण हो जाता है।

बुरे आदमी भी जब सुखी देखे जाते हैं तो "भाग्य की बलिहारी" कहकर समाधान कर लिया जाता है किन्तु जीवन मे ऐसे अवसर भी अनेक बार आते हैं जब किसी का बुरा करने पर मनुष्य पर अचानक ही कोई विपत्ति आ पडती है। तब "खोदन्ता सो पडन्ता" जैसी कहावतें प्रचलित हो जाती हैं जो मनुष्य को बुराई के मार्ग से पराङ्मुख कर सत्पथ की ओर उन्मुख करती हैं।

केवल राजस्थान की कहावतो मे ही नही, प्राय सभी पौरस्त्य देशो की कहावतो में भाग्य और कर्म सम्बन्धी यही दृष्टिकोण दिखाई पडता है। ऍम्ब्लम्स ईस्टर्न (Eastern Emblems) में एतद्विषयक तुलनात्मक उदाहरण सगृहीत हुए हैं।

(ख) जन्मान्तरवाद—

भाग्यवाद की तरह जन्मातरवाद की भावना ने भी न केवल राजस्थानी जीवन को ही, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय जीवन को प्रभावित किया है। जन्मान्तरवाद सम्बन्धी एक कहावत लीजिये—

"आगलै भौ रा बदला किसा छूटै है ?"

पूर्व-जन्म मे जिसके साथ जैसा वर्ताव किया गया है, उसका प्रतिफल इस जन्म में अवश्य भोगना पडता है।

किन्तु एक-आध कहावत ऐसी भी मिल जाती है जिनमे जन्मान्तरवाद को सन्देह की दृष्टि से देखा गया है। उदाहरणार्थ—

"ओ भव मीठो, पर भव किण दीठो ?"

अर्थात् दूसरा लोक किसने देखा है, परलोक का किसे पता ? हमारे लिए तो यही लोक मधुर है।

(ग) साहसिकता और कष्ट-सहिष्णुता—

भाग्यवाद और जन्मान्तरवाद से सम्बन्ध रखने वाली कहावतो को पढकर कोई यह निष्कर्ष न निकाले कि राजस्थान के निवासी निष्क्रिय होते हैं तथा हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते है। रेगिस्तान में रहने वालो को वास्तव में कठिन परिश्रम करके अपनी जीविका बसर करनी पडती है। इसलिए एक कहावत मे यथार्थ ही कहा गया है—

"फिरै सो चरै, बैठ्यो भूखां मरै।"

किसी आलसी कायर पति की निम्नलिखित भर्त्सना भी इस सम्बन्ध मे पठनीय

खाणो पीणो खेलणो, सोणो खूटी ताण।
आधो डोबी कपडा, नामर्दी रै पाण॥

हे कन्त ! खाना-पीना, खेलना और निश्चिन्त होकर घोर निद्रा मे शयन करना, तुम्हारा केवल यही एक काम रह गया है, नामर्दी के कारण तुमने सब चौपट कर दिया।

राजस्थान के लोग यदि अकर्मण्य होते तो यहाँ की स्थिति बडी शोचनीय हो जाती। किन्तु जहाँ तक व्यापार-व्यवसाय का सम्बन्ध है, राजस्थान के एक वर्ग ने कलकत्ता आदि शहरो में व्यापार कर अपनी साहसिक वृत्ति का विलक्षण परिचय दिया है। जो लोग दाने-दाने को मोहताज थे, वे ही अपनी इस वृत्ति के कारण लाखो करोडो के स्वामी वन गये। राजस्थान की एक लोकोक्ति मे कहा गया है, "देह में न लत्ता, लूटैला कलकत्ता"। इस उक्ति का सम्बन्ध उन मारवाडी व्यापारियो से है जो फटी हालत मे कलकत्ता, बम्बई आदि की ओर जाते हैं तथा अतुल द्रव्योपार्जन करने मे समर्थ होते हैं। 'कलकत्ते का वडा वाजार तो मारवाडियो की अधिक वस्ती के कारण राजस्थान के लोगो का ही बाजार-सा लगता है।' साहसिकता के साथ-साथ कष्ट-सहिष्णुता भी इन व्यापारियो का एक विशिष्ट गुण है।

(घ) दार्शनिक उक्तियो का अभाव—

कहावतो मे सामान्यत दार्शनिक उक्तियो का अभाव भी पाया जाता है किन्तु कभी-कभी इस प्रकार की लोकोक्तियाँ भी सुनने मे आती हैं जो महाकवियो की उक्तियो से टकरा जाती हैं। कौनसी वस्तु उचित है और कौनसी अनुचित, इसका निर्णय करने में विद्वानो को भी हैरान हो जाना पडता है। राजस्थानी भाषा की एक कहावत में इस चिरन्तन प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है—

"आप रो विरम कँवै जी मे फरक नहीं पडै।"

अर्थात् अपना ब्रह्म या अन्त करण जो कहता है, उसकी सत्यता में कभी कोई अन्तर नही पडता। बहुत वर्षों पहले अभिज्ञानशाकुन्तल के दुष्यन्त ने भी यही बात कही थी—

"सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय।"

६. राजस्थान की कृषि-सम्बन्धी कहावतें

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के धर्मशास्त्रो तक मे कृषि की महिमा का वर्णन हुआ है। पराशर-स्मृति मे कहा गया है—

कृषेरन्यतमो धर्मो न लभेत् कृषितोऽन्यतः।
न सुख कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेण कर्षति॥ ५, १८५

अर्थात् कृषि के तुल्य दूसरा कोई धर्म नही, कृषि के समान कोई व्यवसाय इतना लाभदायक नही। यदि धर्मानुकूल खेती की जाय तो उससे वडा कोई सुख नही।

भारत की लगभग ८० प्रतिशत जनता खेती पर अपना जीवन वसर करती है। राजस्थान मे भी आजीविका का मुख्य आधार खेती ही है। जैसे भारतवर्ष के अन्य प्रदेशो मे खेती-सम्बन्धी कहावतें प्रचलित हैं, उसी प्रकार राजस्थान में भी कृषि-विषयक अनेक कहावतें सुनने मे आती हैं। खेती-सम्बन्धी जो अनुभव लोगों को हुए, वे उनकी कहावतों में सुरक्षित रह गये हैं। यही कारण है कि कृषि-शास्त्र और ज्योतिष का बिना ज्ञान प्राप्त किये भी कहावतों द्वारा किसानो को खेती-सम्बन्धी बहुत सी उपयोगी बातो का पता चल जाता है। जो किसान शिक्षा के नाम एक फूटा

अक्षर भी नही जानते, उनके भी खेती की कहावतें कण्ठस्थ रहती हैं। साधारण बोल-चाल की भाषा और छोटे-छोटे छन्दो मे गुम्फित होने के कारण इस प्रकार की कहावतो को याद रखना सरल होता है।

राजस्थान मे खेती-सम्बन्धी कहावतें विविध रूपो में प्रचलित हैं। उनमें से कुछ कहावतें यहाँ विभिन्न विषयो मे विभक्त कर अलग-अलग दी जा रही हैं।

वायु—

सावण पहली पचमी, जो बाजे बहु बाय।
फाल पड़ै सहु देस में, मिनख मिनख नै खाय॥

सावन वदी पंचमी को यदि गहरी हवा चले तो देश भर मे ऐसा अकाल पडे कि आदमी आदमी को खाने लगे।

(२) सावण में तो सूर्‌यो चालै, भादूडै परवाई।
आसोजां में पिछवा चालै, भर भर गाडा ल्याई॥[1]

यदि श्रावण मे उत्तर-पश्चिम की हवा, भादो मे पूर्व की हवा और आश्विन मे पश्चिम की हवा चले तो फसल बहुत अच्छी हो।

'जो बाजै सूरियो, घडी पलक में पूरियो' इस लोकोक्ति द्वारा भी श्रावण मे उत्तर-पश्चिम की हवा चलने से घडी-पलक में भारी वर्षा होने की बात कही गई है।

(३) नाडा टाकण बलद-विकावण ! तू मत चालै आधै सावण।

एक बार आषाढ में वर्षा होकर फिर बीस-पचीस दिन तक जोर की हवा चलती है जिससे खेती को बहुत नुकसान पहुँचता है। ऐसी हवा राजस्थान में 'झांझली' (झझावात) के नाम से प्रसिद्ध है। उसी हवा को सम्बोधित करके किसी किसान की उक्ति है कि हे बैलो को बिका देने वाली नाडा टाकण वायु ! तू आधे सावन तक मत चलती रहना।

(४) चालो पिरवा पून मतीरो पिल गई।[2]

पूर्व की हवा चलने से मतीरी पीली पडकर गल जाती है।

---

१. पाठान्तर :

१. सावण मास सूरियो बाजै, भादरवै परवाई।
आसोजा में समदरी बाजै, काती साख सवाई॥
२. सावण में तो सूरयो बाजै, भादरवै परवाई।
आसोजा आथूणी चालै, ज्यूं ज्यूं साख सवाई॥

मिलाइये :

श्रावणे यदि वायव्यो, भाद्रे वहति पूर्वग।
आश्विने पश्चिमो वाति, कार्तिके सस्यनिश्चय॥
कादम्बिनी (पं० मधुसूदनजी ओझा), पृष्ठ १८२

२. पूरा पद इस प्रकार है :

चाली पिरवा पून मतीरो पिल गई।
पछियो पड़ियो ढोल मतीरां री पून तो गई॥

नक्षत्र—भारत के प्राचीन विज्ञान-वेत्ताओ ने जहाँ एक ओर यज्ञ के द्वारा ऋतुओ पर विजय पाने का प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने ऋतुओ में होने वाले परिवर्तनो का पूर्व-ज्ञान प्राप्त करने मे भी सफलता प्राप्त की। इसके लिए उन्होने खगोल का सहारा लिया। ऋतुओ पर नक्षत्रो का प्रभाव पडता है। अतएव ऋतु-परिवर्तनो का ज्ञान प्राप्त करने के लिए नक्षत्रो का आश्रय लिया गया। उन्होंने नक्षत्र-विचार से कृषि के विभिन्न कार्यो के लिए ऐसी तिथियाँ निर्धारित की जिनमें कार्य करने से ऋतु-प्रकोपो से कृषि की सुरक्षा हो सके। आज का वैज्ञानिक विभिन्न कार्यो के लिए समय का निर्धारण तापमान के अनुसार करता है जैसे गेहूँ की वोनी के लिए ठड की ऋतु में वह समय उपयुक्त ठहराया गया है जब हवा के अधिक से अधिक और कम से कम तापमान मे २०° फेरन-हाइट का अन्तर हो। यह सब दफ्तरो मे बैठकर काम करने वालो के लिए ठीक है, किसान के लिए यह सब सुलभ नही। भारतीय किसान के लिए तो 'आद्रा धान, चित्रा गेहूँ' ही सबसे बडा थर्मामीटर है।[1]

राजस्थानी भाषा में कृषि के सम्बन्ध में प्रचलित कुछ नक्षत्र-विषयक कहावते लीजिये :

(१) दीवा बीती पचमी, सोम शुकर गुरु मूल।
डक कहे है भाडली, निपजे सातू तूल॥

कार्तिक शुक्ला पचमी को यदि मूल नक्षत्र मे सोमवार, बृहस्पतिवार या शुक्रवार हो तो सातो किस्म का अनाज खूब उपजे।

(२) चित्रा दीपक चेतवे, स्वाते गोवरधन्न।
डक कहे हे भड्डली, अथग नीपजे अन्न॥

यदि चित्रा नक्षत्र मे दिवाली हो और गोवर्धन पूजने के समय स्वाति नक्षत्र हो तो खूब अन्न पैदा हो।

(३) पोही मावस मूल बिन, रोहिण (बिन) आखातीज।
श्रवण बिना सलूणियू, क्यू बावै है बीज?

अगर पौष की अमावस्या के दिन मूल नक्षत्र न हो, अक्षय तृतीया को रोहिणी नक्षत्र न हो, रक्षा बन्धन के दिन श्रवण-नक्षत्र न हो, तो खेत में व्यर्थ बीज क्यो बोते हो? निश्चय ही अकाल पडेगा।

प्रसगवश यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक योजना बनाई है जिसके अतर्गत ऋतु तथा कृषि-कर्म के सम्बन्ध में प्रचलित लोकोक्तियो की सत्यता की परीक्षा की जायगी। इसके लिए आवश्यक व्यय की व्यवस्था करदी गई है। यह स्मरणीय है कि प्रचलित अगणित लोकोक्तियो मे घाघ और भड्डरी के दोहे और कुछ छद ज्योतिष के आधार पर प्रचलित बताये जाते हैं और जन साधारण के विश्वास के अनुसार अधिकाशत सत्य हैं। इस परीक्षा के पश्चात् यदि घाघ और

---

१ देखिये 'गंगा' फरवरी, १९५१ ई० मे प्रकाशित श्री बाँकेबिहारी श्रीवास्तव का 'कृषि और ऋतु विज्ञान' नामक लेख, पृष्ठ २०६।

भड्डरी उत्तीर्ण हो गये तो उनकी प्रामाणिक लोकोक्तियों को संगृहीत कर कृषि-शिक्षा के पाठ्यक्रम में रखा जायगा।[1]

भारतीय कृषि-विज्ञान में खगोल और भूगोल का जो सम्मिश्रण है, वह अनुपम और अद्वितीय है। किन्तु यहाँ यह अवश्य कहा जायगा कि हमारी भौगोलिक और खगोलिक अवस्था मे भी तो थोडा-बहुत परिवर्तन हुआ है, इसलिए तिथि-नक्षत्रो आदि के आधार पर बनी घाघ और भड्डरी की सब कहावतें यदि वर्तमान कसौटी पर पूरी न उतरें पर इसी कारण उनका महत्त्व कम नही हो जाता। आज की वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किया हुआ ऋतु-ज्ञान भी तो सोलहों आना सही नहीं होता। ऋतु-विज्ञान-विभाग से प्रकाशित होने वाली विज्ञप्तियाँ भी कभी-कभी असत्य सिद्ध होती हैं। इसका कारण यह है कि ऋतुओं में क्षण-क्षण मे परिवर्तन होता रहता है। अभी जो मौसम है, वह दूसरे ही क्षण वायुमण्डल की परिस्थितियों के अनुसार बदल सकता है, और उससे किसी दूसरी ही घटना के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। २४ से ४८ घण्टे तक के मौसम पर एक विज्ञप्ति निकलती है। इतनी अवधि मे न जाने कितने ही सूक्ष्म परिवर्तन हो जाते हैं और प्रकाशित की हुई विज्ञप्ति में अन्तर आ सकता है। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि वायुमण्डल में होने वाले परिवर्तन जो बहुत ही सूक्ष्म होते हैं, उपलब्ध उपकरणों से पढे नही जा सकते। वैज्ञानिक इस बात के प्रयत्न मे हैं कि मौसमी विज्ञप्तियाँ अधिक से अधिक सही बनाई जा सकें। घाघ और भड्डरी के बाद किसी का नाम नही सुनाई पडता जिसने बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार ऋतु-विज्ञान का पुन परीक्षण किया हो। इसलिए वाञ्छनीय है कि घाघ और भड्डरी की कहावतों का परीक्षण किया जाय और उसके परिणाम प्रकाशित किये जायें।

खेती के उपकरण—बैल, हल, खेत, खाद आदि खेती के उपकरण कहे जाते हैं। कृषि के लिए उपयोगी होने के कारण धर्म-ग्रन्थों में भी वृषभ के पूजन और उसके माहात्म्य का वर्णन हुआ है। पराशर स्मृति में कहा गया है कि बैलों के द्वारा उत्पादित सस्य से सारे संसार का पालन-पोषण होता है। इसलिए बैल इस संसार मे धर्म का साक्षात् रूप ही है।

उक्षाणो वेधसा सृष्टा सस्यस्योत्पादनाय च।
तैरुत्पादितसस्येन सर्वमेतद्विधार्यते॥ ५, ४४.
वृष एव ततो रक्ष्य पालनीयश्च सर्वदा।
धर्मोऽयं भूतले साक्षाद् ब्रह्मणा ह्यवतारित॥ ५, ४८

अपभ्रंश और राजस्थानी साहित्य में वृषभ के सम्बन्ध में सुन्दर पद्यों की रचना हुई है। कविराज बाँकीदास की 'धवल पचीसी' इस सम्बन्ध में अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसमें कई किस्म के बैलों का उल्लेख हुआ है। 'निनोहड़ा' और 'बोहलिया' छोटी उम्र के बैल होते हैं। बडे सीधे सींगों वाला 'बेगड़ा' उत्कृष्ट जाति का बैल बतलाया गया है।

"बेचे मत तू बेगडो, चित नाणा री चाह।
घर्ले न मिलसी बेडो, नाँणा दीधाँ नाह॥ धवल पचीसी, दोहा २८

---

१. देखिये हिन्दुस्तान, ता० २२ जनवरी, सन् १९५४।

हे स्वामिन् ! धन के लोभ से 'बेगड' को न बेच देना, फिर द्रव्य व्यय करने पर भी ऐसा अच्छा बैल हाथ नहीं लगेगा ।

जिस बैल के सात अथवा पांच दांत हो तथा पूंछ के ऊपर-नीचे के काले बालो के बीच में सफेद बालो का वर्तुलाकार गुच्छा हो, ऐसा काले रग का बैल निकृष्ट और अशुभ माना गया है जैसा कि निम्नलिखित राजस्थानी लोकोक्ति से प्रकट होता है—

"सातड पाचड पूंछ पोलालो, मतना लाये कथा ! कालो ।"[1]

जिस बैल का एक सीग टूटा हुआ हो, वह भी किसी काम का नही माना जाता । इस प्रकार के बैल को 'डूंडिया' कहते है ।[2]

खेती करने वालो को बैल खरीदते समय बडी सावधानी से काम लेना पडता है क्योकि बिना अच्छे बैलो के, खेती में सफलता नही मिल सकती । कहा भी है—

"खेती बलदा अर राज घोड़ां का ।"

जिस प्रकार बिना घुडसवार सेना के राज्य कायम नही रहते, उसी प्रकार बिना बैलो के खेती नही हो सकती ।

जो किसान बैल रखते हैं, उन्हे बैलो की जोडी के साथ-साथ गाडा (शकट) भी रखना होता है क्योकि बिना शकट के खेती का काम नही चल सकता जैसा कि नीचे की कहावत से प्रकट होता है—

राड करै सो बोलै आटो ।
खेती करै सो राखै गाडो ॥

किसानो की माली हालत उनके हलो से आँकी जाती है। करीब चार-पाँच बीघे जमीन की खेती एक हल की खेती कहलाती है । एक हल की खेती में तो हैरान ही होना पडता है, दो हल की खेती कामचलाऊ मानी जाती है, तीन हल की खेती नाम को सार्थक करती है, चार हल की खेती हो तो फिर कहना ही क्या, वह तो राज्य-सुख भोगने के समान है ।

"एक हल हत्या, दो हल काज ।
तीन हल खेती, च्यार हल राज ।"

कीकर की लकडी का हल अच्छा समझा जाता है और पीपल की लकडी का निकृष्ट ।[3] हल में यदि हाल अच्छी हो तो खेत में बाह अच्छी लगती है ।

"हल हाला खेत फडाला ।"

---

१. पाठान्तर—
सातड पाचड गटवालो, मोल बरट मत लाये कालो ।
'गटवालो' से तात्पर्य उस बैल से है जिसके गले में गाठ-सी निकली होती है ।
२. डूंडिया बैल, मुकाल्यो सांडा ।
घोड़ो पूत ठगावै ठाला ॥
३. कीकर काठी हल बड़ा, [illegible] की राखो ओर,
[illegible] निभावै [illegible], [illegible] न निरफल जाय ॥
[illegible] [illegible] करै, [illegible] घर जाय ।
[illegible] हल धरै, वो [illegible] जाय ॥

खेत के सम्बन्ध में निम्नलिखित राजस्थानी कहावतें उल्लेखनीय हैं—

(१) खेत वडा, घर साकडा।

खेत वडे हो तभी किसान के लिए खेती लाभदायक होती है। घर भी वहुत आवाद हो तो वे तंग हो जाते हैं और जन-वृद्धि के कारण मांगलिक समझे जाते हैं। इसलिए किसानो की यह अभिलाषा रहती है कि उनके खेत वडे और घर तग हो।

(२) खेत खोवं गैली।

खेत के वीच होकर अगर रास्ता जाता हो तो वह खेत के लिए हानिकर होता है।

(३) ऊंचा ज्यांरा वैठणा, ज्यां रा खेत निवाण।[1]
ज्यांरा दोखी के करं, ज्यांरा मिंत दिवाण॥

उच्च पदाधिकारियो मे जिनका सम्पर्क है, ताल मे जिनके खेत हैं और दीवान जिनके मित्र हैं, उनका शत्रु क्या विगाड सकते हैं?

(४) खेत हुवं तो गाव सं आयूणू ही हुवं।

खेत हो तो गाँव से पश्चिम में होना चाहिए जिसमे प्रातःकाल खेत में जाते समय तथा सायंकाल लौटते समय सूर्य पीठ पीछे रहे।

खाद के विना भी खेती पनप नही सकती। जो किसान खाद के महत्त्व को समझता है, उसी के लिए खेती फलदायिनी होती है। खाद के सम्बन्ध मे निम्नलिखित कहावतें लीजिये—

(१) खात घर पाणी, के करं धिनाणी?

खेत मे खाद और पानी देना चाहिए, खेती अवश्य अच्छी होगी, इसमें भगवान क्या करेगा अथवा किसी की चतुराई क्या काम आयेगी?

(२) खात पडं तो खेत, नहीं तो कूडो रेत।

खाद डालने से ही खेती हो सकती है, नही तो खेत मे कूडा-करकट और रेत के सिवा कुछ नही होगा।

जोताई और वोआई—

(१) साह नांटज्या, पण वाह ना नाटं।

साहूकार भी रुपये देने से इन्कार कर सकता है किन्तु खेत में जो जोताई की जाती है, वह कभी निष्फल नही जाती।

(२) साढ की साढ ही याद आवं।

आषाढ के महीने मे खेत जोतते समय यदि कोई कृषि-सम्बन्धी भूल हो गई हो तो आगामी आषाढ में दुवारा खेत जोतते समय ही वह याद आती है।

(३) चणो न मानी वाह।

चणा जोताई नहीं मानता। चने के लिए जमीन मे नमी होनी चाहिए।

---

१. 'वाकलो टहरी रो गोरो भाव मेर हो।'

हे स्वामिन् ! धन के लोभ से 'बेगड़े' को न बेच देना, फिर द्रव्य व्यय करने पर भी ऐसा अच्छा बैल हाथ नही लगेगा ।

जिस बैल के सात अथवा पांच दांत हो तथा पूंछ के ऊपर-नीचे के काले बालो के बीच में सफेद बालो का वर्तुलाकार गुच्छा हो, ऐसा काले रग का बैल निकृष्ट और अशुभ माना गया है जैसा कि निम्नलिखित राजस्थानी लोकोक्ति से प्रकट होता है—

"सातड पांचड पूंछ पोलालो, मतना लाये कथा ! कालो ।"[1]

जिस बैल का एक सीग टूटा हुआ हो, वह भी किसी काम का नहीं माना जाता । इस प्रकार के बैल को 'डूंडिया' कहते है ।[2]

खेती करने वालो को बैल खरीदते समय बडी सावधानी से काम लेना पडता है क्योकि बिना अच्छे बैलो के, खेती मे सफलता नही मिल सकती । कहा भी है—

"खेती बलदा अर राज घोडा का ।"

जिस प्रकार बिना घुडसवार सेना के राज्य कायम नही रहते, उसी प्रकार बिना बैलो के खेती नही हो सकती ।

जो किसान बैल रखते हैं, उन्हे बैलो की जोडी के साथ-साथ गाडा (शकट) भी रखना होता है क्योकि बिना शकट के खेती का काम नही चल सकता जैसा कि नीचे की कहावत से प्रकट होता है—

राड करै सो बोलै आडो ।
खेती करै सो राखै गाडो ॥

किसानो की माली हालत उनके हलो मे आंकी जाती है। करीब चार-पांच बीघे जमीन की खेती एक हल की खेती कहलाती है । एक हल की खेती में तो हैरान ही होना पडता है, दो हल की खेती कामचलाऊ मानी जाती है, तीन हल की खेती नाम को सार्थक करती है, चार हल की खेती हो तो फिर कहना ही क्या, वह तो राज्य-सुख भोगने के समान है ।

"एक हल हत्या, दो हल काज ।
तीन हल खेती, च्यार हल राज ।"

कीकर की लकडी का हल अच्छा समझा जाता है और पीपल की लकडी का निकृष्ट ।[3] हल में यदि हाल अच्छी हो तो खेत में वाह अच्छी लगती है ।

"हल हाला खेत फाड़ाला ।"

---

१. पाठान्तर—
सातड पांचड़ गटरालो, मोल बढाट मत लाये कालो ।
'गटरालो' से तात्पर्य उस बैल से है जिसके गले में गांठ-सी निकली होती है ।

२. टूंटियो बैल, कुलच्छो हाली ।
सारे धूल उगावै टाली ॥

३. कीकर काठी हल नहया, इन करम की गयी ओर,
न्यूं जिमावै भायजी, कदे न निरफल जाय ॥
पीपर काठ गैरी करै, मवै कन्या धन न्याय ।
धांनरकाट र इस भारै, वो भवसमुद्र में जाय ॥

खेत के सम्बन्ध में निम्नलिखित राजस्थानी कहावतें उल्लेखनीय हैं—

(१) खेत बड़ा घर सांकड़ा ।

खेत बड़े हों तभी किसान के लिए खेती लाभदायक होती है । घर भी बहुत आबाद हों तो वे तंग हो जाते हैं और जनवृद्धि के कारण नागरिक बनते जाते हैं । इसलिए किसानों की यह अभिलाषा रहती है कि उनके खेत बड़े और घर तंग हों ।

(२) खेत खोवै गैलो ।

खेत के बीच होकर अगर रास्ता जाता हो तो वह खेत के लिए हानिकर होता है ।

(३) ऊँचा ज्यांरा बैठणा, ज्यां रा खेत निवाण ।[1]
ज्यांरा वैरी के करै, ज्यांरा मित्र दिवाण ॥

उच्च पदाधिकारियों से जिनका सम्पर्क है, ढाल में जिनके खेत हैं और दीवान जिनके मित्र हैं, उनका शत्रु क्या बिगाड़ सकते हैं ?

(४) खेत हुवै तो गांव सैं आथूणो ही हुवै ।

खेत हो तो गांव से पश्चिम में होना चाहिए, जिससे प्रातःकाल खेत में जाते समय तथा सायंकाल लौटते समय सूर्य पीठ पीछे रहे ।

खाद के बिना भी खेती पनप नहीं सकती । जो किसान खाद के महत्त्व को समझता है, उसी के लिए खेती फलदायिनी होती है । खाद के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें लीजिए—

(१) खात अर पाणी, के करै बिनाणी ?

खेत में खाद और पानी देना चाहिए खेती अवश्य अच्छी होगी, इसमें भगवान क्या करेगा अथवा किसी की चतुराई क्या काम आयेगी ?

(२) खात पड़ै तो खेत, नहीं तो कूड़ो रेत ।

खाद डालने से ही खेती हो सकती है, नहीं तो खेत में कूड़ा-करकट और रेत के सिवा कुछ नहीं होगा ।

जोताई और बोआई—

(१) साह नांटज्या, पण बाह नां नांटै ।

साहूकार भी रुपये देने से इन्कार कर सकता है किन्तु खेत में जो जोताई की जाती है, वह कभी निष्फल नहीं जाती ।

(२) बाड़ की बाड़ ही याद आवै ।

आषाढ़ के महीने में खेत जोतते समय यदि कोई कृषि-सम्बन्धी भूल हो गई हो तो आगामी आषाढ़ में दुबारा खेत जोतते समय ही वह याद आती है ।

(३) चणो न मांगै बाह ।

चना जोताई नहीं मांगता । चने के लिए जमीन में नमी होनी चाहिए ।

---

१. [illegible]

(४) जेठ सरीखा बाजरा कोनी, कातक बराबर जो कोनी।

ज्येष्ठ मास मे बाजरा और कार्तिक मे जौ का बोना सर्वश्रेष्ठ है।

इसी प्रकार एक दूसरी कहावत में कहा गया है—

"जेठ वायो बाजरो, सावण घाल्या बूट।
भर भादू मे भर देसी, वो बाजरी का ऊट॥

(५) गाजर वावै भादवा, गोबी आसोजा।

गाजर भादो में तथा गोभी आश्विन मे लगानी चाहिए।

(६) रास पुराणी बाजरो, मींडक फाल जुवार।
इक्कड-दुक्कड मोठिया, कीडीनाल गुवार॥

बाजरा बोते समय उतना ही अन्तर रहना चाहिए जितना 'रास' और 'पुराणी' मे रहता है। बैलो के बँधी हुई उस रस्सी को जिसे हल चलाने वाला थामे रहता है 'रास' कहते हैं तथा हाथ डेढ हाथ की बैल हांकने की लकडी को 'पुराणी' कहते हैं। एक मण्डूक-प्लुति और दूसरी में जितनी दूरी होती है, उतनी दूरी पर ज्वार बोना चाहिए। मोठ एक-एक दो-दो करके बोना चाहिए और ग्वार को चीटियो की पद्धति पर बिल्कुल पास-पास बोना चाहिए।

(७) बुद्ध वावणी, सुक्कर लावणी।

बुधवार को बोना चाहिए और शुक्रवार को काटना।

(८) स्यावड माता सत करिये।
बीज म्होडो मत करिये॥

स्यावड माता कृषि की देवी मानी जाती है। उससे प्रार्थना की गई है कि जितना बीज जमीन में डाला गया है, उतनी ही पैदावार न देना, उससे कही अधिक देना।

फसल—

(१) कन्या फूले, तुल फले वृश्चिक ल्यावै लाण।

कन्या राशि (आश्विन) मे फूल उत्पन्न हो, तुला राशि (कार्तिक) में फल लगें तो वृश्चिक (मार्गशीर्ष) में फसल काटो।

(२) काती सब साथी।

फसलें चाहे जब बोई गई हो, कार्तिक में सब साथ ही पकती हैं।

(३) तीसा राता टींडसी, सिट्टा साठी जोग।
ग्वार फली चालीस सू पकै भलेरा भोग॥[1]

टींडसी ३० दिन में, सिट्टे ६० दिन से तथा ग्वार की फलियाँ चालीस दिन मे पकती हैं।

(४) सागर गेहूँ फैरा तिल, ग्राका घणो कपास।
फोगज फूट्या भाडली, बँधी समय की आस॥

---

१. बनावण (श्री नानूराम संस्कर्ता), पृष्ठ ३६।

यदि सागर अच्छे हो तो गेहूँ की फसल अच्छी होती है, कैर अच्छे हो तो तिलो की फसल अच्छी होती है, आक फले-फूलें तो कपास की फसल अच्छी होती है, फोग के फूटने से समय अच्छा होता है।

(५) माह उवारे ने फागण वाले।[1]

ऐसा कहा जाता है कि माघ मास की ठण्ड मे तो फसलें पाला लगने से बच जाया करती हैं किन्तु फाल्गुन की सर्दी कभी-कभी दाह लगा जाती है।

दुर्भिक्ष—

निम्नलिखित कहावती पद्य मे अकाल अपना परिचय देता हुआ कहता है—

पग पूंगल सिर मेडता, उदर ज बीकानेर।
फिरतो घिरतो बीकपुर, ठावो जैसलमेर॥

मेरे पैर पूंगल मे रहते हैं, सिर मेडता और उदर बीकानेर मे स्थित है, चलता-फिरता बीकानेर पहुँच जाता हूँ और जैसलमेर तो मेरा स्थायी हेडक्वार्टर है।

जिस प्रान्त मे दुर्भिक्ष इतना व्यापक हो, उसमे दुर्भिक्ष-सम्बन्धी कहावतो का प्राचुर्य अत्यन्त स्वाभाविक है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) न भैवें काकड़ो तो क्यू टेरें हाली लाकडो।

हे किसान! अगर कर्क-सक्रान्ति के दिन वर्षा न हो तो तुम क्यो व्यर्थ में हल जोतते हो? कर्क-सक्रान्ति के दिन वर्षा न होने से अकाल पडता है।

(२) दो सावण, दो भादवा, दो काती, दो माह।
ढाँढा ढोरी वेचकर, नाज बिसावण जाह॥

यदि दो सावन, दो भाद्रपद, दो कार्तिक अथवा दो माघ हो तो चौपायो को वेचकर अनाज खरीदने के लिए चले जाओ क्योंकि अकाल का पडना निश्चित है।

(३) परभाते मेह डम्बरा, सांजे सीला वाव।
डंक कहै हे भड्डली, काला तणा सुभाव॥

डक भड्डली से कहता है कि यदि प्रात काल मेघ भागे जा रहे हो और शाम को ठंडी हवा चले तो समझना चाहिए कि अकाल पडेगा।

(४) चैत मास उजियाले पाख, नो दिन बीज लुकोई राख।
आठँ, नौम निरख कर जोय, ज्यां बरसै ज्या दुरभख होय॥

चैत्र के शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा से नवमी तक बिजली को छिपाये रखो, अष्टमी और नवमी को जहाँ-जहाँ बिजली चमकती दिखाई दे, वहाँ-वहाँ दुर्भिक्ष होगा।

(५) निवां अधर निवोली सूखे, काल पड़े कबहूँ नहिं चूके।

नीम के फल पककर यदि नीम पर ही सूख जायें और जमीन पर न गिरें तो अवश्य अकाल पडेगा।

(६) दिन में स्याल शब्द जो करे, निश्चय ही काल हलाहल पड़े।

दिन मे शृगाल शब्द करें तो भयकर दुर्भिक्ष पडेगा।

---

1 मालवी कहावतें (श्री रतनलाल महता), पृष्ठ १०६।

फुटकर कहावतें—

(१) धन खेती, धिक चाकरी ।

खेती धन्य है, नौकरी को धिक्कार है ।

(२) खेती धणियां सेती ।[1]

खेती मालिक की निगरानी से ही फलदायिनी होती है ।

(३) खेती धनी हेती, श्राधी खेती बेटा हेती ।
हारी हेती ने हौंटा हेती ॥[2]

घर के मालिक की देख-रेख मे खेती पूरी, और पुत्र की देख-रेख में आधी फलदायक होती है पर इन दोनो की देख-रेख से हटकर खेती यदि नौकर की देख-रेख में हो तो कुछ भी प्राप्त नही होता ।[3]

(४) सावण साध्या गेतरा, कातक ल्हासो जाय ।
काली पीली बाल में, के हाड बाप का खाय ॥

श्रावण मे तो फिरता रहा, कार्तिक मे दूसरो के यहाँ काम पर जाता रहा, ऐसा व्यक्ति काली-पीली आँधी चलने पर क्या अपने पिता की हड्डियाँ चबायेगा ? समय पर खेती करने और उसकी पूरी सम्हाल रखने पर ही वैशाख की गर्मी मे खाने के लिए अन्न सुलभ हो सकता है ।

(५) आये गये नै पूछे बात, खेती में क्यूं आय न साय ।

जो अपनी खेती को स्वय नही सँभालता और आने-जाने वाले से उसके बारे में पूछताछ करता रहता है, उस खेती से कोई लाभ नही होता ।

(६) खेती बादल मे है ।

खेती वर्षा पर निर्भर रहती है ।

१ पाठान्तर :

खेती खून सेती ।
खेती खलणा सेती ।
खेती खेचल सेती ।
खेती ध्यान सेती ।
खेती जमा सेती ।
खेती [illegible] सेती ।
बाट खेती हाट सेती ।

२ मालवी कहावतें (श्री रतनलाल मेहता), पृष्ठ २३ ।

३ मिलाइये

१ खेती पाती बीनती, घोड़ा तणो तुखार ।
[illegible] आपणां, हाथां हाथ सभाल ॥

२ घर [illegible], मध्यम खेती,
दिन देखे [illegible] बेटी ।
[illegible] पारे [illegible],
[illegible] आना ॥

(७) खेती गोरी मोठ की ।[1]

गोरी मोठ की खेती उत्कृष्ट होती है ।

(८) के धन खेत खलां ।[2]

खलिहानो का अन्न से भरा रहना ही वास्तव मे सच्चा धन है ।

उत्तर प्रदेश जैसे उपजाऊ प्रदेशो में कृषि-विषयक जितनी कहावतें मिलती हैं, सम्भवतः राजस्थान में उतनी नही मिलती, फिर भी खेती-सम्बन्धी कहावतें यहाँ अच्छी सख्या मे उपलब्ध होती हैं, क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है, राजस्थान की अधिकाश जनता खेती पर अपना जीवन बसर करती है ।

तुलनात्मक कहावतें—राजस्थान मे डक और भड्डली की खेती-सम्बन्धी बहुत सी कहावतें प्रसिद्ध हैं । ऊपर स्थान-स्थान पर इस प्रकार के उदाहरण दिये गये हैं । घाघ और भड्डरी की ऐसी ही कहावतें, उत्तर प्रदेश और बिहार आदि प्रान्तो में भी प्रचलित हैं और इस विषय की पुस्तकें भी प० रामनरेश त्रिपाठी ने प्रकाशित करवाई हैं । इस प्रकार की कहावतें बगाल मे भी 'खनार वचन' के नाम से प्रसिद्ध है । एक उदाहरण लीजिये—

"भाद्रूरे मेघे पूर्वे वाय, से दिन वृष्टि के घोचाय ।"

अर्थात् भाद्र मे जिस दिन पूर्व की हवा चले, उस दिन बडी वर्षा होगी ।

भाद्र में यदि पूर्व की हवा चले तो सवाई फसल होती है, इस आशय की एक राजस्थानी कहावत पहले उद्धृत की जा चुकी है ।

इसी प्रकार एक दूसरा 'वचन' लीजिये—

"श्रावने वय पूवे वाय, हाल छेडे चाषा वाणिज्ये याय ।[3]

श्रावण में पूर्व की हवा चलने से अकाल पडता है । यही बात उत्तर प्रदेश में प्रचलित लोकोक्ति मे कही गई है—

सावन पुरवाई वहै, भादों में पछियाव ।
कत ढगरवा बेचिके, लरिका भागि जिआव ॥[4]

अर्थात् सावन में पूर्व की हवा चले और भादों मे पश्चिम की, तो हे स्वामी ! बैलो को बेच डालो और कहीं भागकर बच्चो को जिलाओ ।

---

१. पूरा पद्य इस प्रकार है

खेती गोरी गोठ की, धीणो धोली गाय ।
बोरो करयो वाणियो, होयो धन ले ज्याय ॥

२ पूरी कहावत इस तरह है .

के धन धमकला, के धन खेत खला ।
के धन सपूत जाया, के धन पड्यो पाया ॥

३ देखिये :

वाङ्लाप्रवाद (श्री सुशीलकुमार दे), प्रथम परिशिष्ट, खनार वचन ।

४ ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी), पृष्ठ ५८ ।

राजस्थान, बिहार, बंगाल, उत्तर-प्रदेश आदि में प्रचलित इस प्रकार की कहावतों के तुलनात्मक अध्ययन से बड़े मनोरंजक परिणाम निकलते हैं। घाघ और भड्डरी चाहे किसी प्रदेश के रहे हों किन्तु घाघ और भड्डरी की कहावतें उक्त सभी प्रदेश वालों की अपनी हो गई हैं।

७. राजस्थान की वर्षा-सम्बन्धी कहावतें

(१) वर्षा-विज्ञान की प्राचीनता

भारतवर्ष में वर्षा-विज्ञान बहुत प्राचीन है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि अग्नि देव वृष्टि को ऊपर भेजता है और मरुत् उत्पन्न हुई वृष्टि को लाता है। जब यह आदित्य किरणों द्वारा नीचे को पर्यावृत्ति करता है, तब वृष्टि होती है।[1] वाल्मीकि के मतानुसार आकाश सूर्य की किरणों द्वारा आठ महीने (कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से आषाढ शुक्ला प्रतिपदा) तक गर्भ-रूप में धारण किये हुए समस्त समुद्रों के रसायन रूप जल को जन्म देता है अर्थात् वृष्टि करता है।[2] वराहमिहिर (५०५ ई० के लगभग) बृहत्संहिता से पता चलता है कि पूर्वकाल में गर्ग, पराशर, काश्यप और वात्स्य आदि मुनियों को वर्षा के बारे में काफी जानकारी थी, और उनके लिखे हुए ग्रन्थ भी थे।[3]

(२) वर्षा के निमित्त और उनके प्रकार

जिस प्रकार आने वाली घटनाएँ अनेक बार अपना पूर्वाभास दे जाती हैं, उसी प्रकार आकाश में छा जाने वाली घटाओं के भी पूर्व निमित्त होते हैं। उन निमित्तों का ज्ञान यदि हमें पहले से हो जाय तो हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। वृष्टि के निमित्तों का बोध कराने वाला एक वृष्टिविद्या-बोधक निमित्त-शास्त्र भी है। जैसा ऊपर कहा गया है, सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी के जल को ऊपर खींचता है और मरुत् की सहायता से पृथ्वी पर जल बरसा देता है किन्तु सूर्य का खींचा हुआ जल कितने समय के पीछे कितने दिन तक, कितना, किस समय, कहाँ-कहाँ बरसेगा, इन सब बातों का ज्ञान कराने वाला यह उक्त वृष्टिविद्या-बोधक निमित्त-शास्त्र है। इस शास्त्र में वर्षा के निमित्त भौम, आन्तरिक्ष, दिव्य और मिश्र, इन चार भागों में विभक्त हैं—

(क) मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, आदि भौतिक वस्तुओं के द्वारा वर्षा के ज्ञान होने को भौम निमित्त कहते हैं।

(ख) वायु, बादल, आकाश, विद्युत्, इन्द्र-धनुष, आँधी आदि से वर्षा के ज्ञान होने को आन्तरिक्ष निमित्त कहते हैं।

(ग) सूर्य-चन्द्र तथा ग्रहों के उदयास्त आदि द्वारा वृष्टि के ज्ञान प्राप्त करने को दिव्य निमित्त कहते हैं।

---

१ अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति। मरुतः सृष्टां नयन्ति।
यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ्रश्मिभिः पर्यावर्तते, अथ वर्षति। तै० १० २-४-१०।

२ अष्टमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
रसं सर्वसमुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥ —वाल्मीकि

३. ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी), पृष्ठ १।

(घ) कार्तिक से आश्विन तक के बारह महीनो तथा विशेपत अक्षय तृतीया, आषाढी पूर्णिमा आदि के शकुनो तथा उपर्युक्त चिह्नो से वर्षा के ज्ञान प्राप्त करने को मिश्र निमित्त कहते हैं।[1]

उक्त चारो प्रकार के निमित्तो मे सम्वन्ध रखने वाली वर्षा-विपयक कहावतें राजस्थानी भाषा मे उपलब्ध हैं जिनके उदाहरण यहाँ क्रमश दिये जा रहे हैं—

(क) भौम निमित्त

(अ) मनुष्यों की चेष्टाएँ—

अत पित वालो आदमी, सोवै निद्रा घोर।
अणपढ़िया आतम थकी, कहँ मेव अति जोर ॥१॥
वात पित्त युत देह ज्या, होय रहे घाम घून।
अणभणिया आगम कथै, रहे मेह की घूम ॥२॥

पित्त-प्रकृति वाला मनुष्य अगर घोर-निद्रा मे शयन करे अथवा वात-प्रकृति वाले मनुष्य का गर्मी से सिर दुखने लगे तो वर्षा वहुत जोर से हो।

(आ) विभिन्न पेशे वालों के अनुभव—

जव जडाव पर कुन्दन नही लगे, सलाइयो पर कीट जम जाय, धोवी के कपड़े खूम मे देने के माट मे खमीर उठे व कोरे कपडे वाली खूम के माट में गर्मी अधिक हो अथवा छोटे-छोटे कीडे पड जायें, बुनकर के कपडे पर लगाई हुई "पान" शीघ्र न सूखे, जूते वनाते समय चमडे पर लेही न चिपके, ढोल, दमामा, ताशा आदि चमडे से मढे हुए वाजे यदि ठीक न वजें तथा दही मथने पर यदि मक्खन न निकले तो वहुत जोर से वर्षा हो जैसा कि निम्नलिखित दोहो से स्पष्ट है—

कुन्दन जमे न जडाव पर, जमे सलायन कीट।
कहे जड़िया सुणजो जगत, उडे मेह की रीठ ॥१॥
धोव्यां धोखो मिट गयो, मन मे हुवो हुलास।
देख सूदणी वजवजी, मेह आवण की आस ॥२॥
कोरा कपडा सूदणी, जद अत गरमी होय।
सूक्ष्म कीडा सूदणी, मेहा मुकता जोय ॥३॥
वणकर फेरी पांजनी, सूखे नहीं सताब।
आवावानी मेह की, लाल रग व्है छाम ॥४॥
देख खुरड कहे ढेढ की, कदा टूटे नेह।
ल्हेई चढ़े न चामडै, मुकता वरसे मेह ॥५॥
ढोल दमामा दुडवडी, वोरे सादर वाज।
कहे डोम दिन तीन मे, इन्द्र करे आवाज ॥६॥

---

१ देखिये—
स्व० प० मधुसूदन जी ओझाकृत कादम्बिनी की भूमिका, पृष्ट ८-६।

यदि आसमान नीला हो तो घनघोर वर्षा हो ।

३. अम्मर पीलो, मे सीलो ।

आसमान यदि पीला हो तो वर्षा मन्द पड जाती है ।

(ई) बिजली—

चैत महीने बीज लुकोवे ।
धुर वैसाखा केसू धोवे ॥

यदि चैत्र भर बिजली न दिखाई दे तो वैशाख के प्रारम्भ मे ही वर्षा होगी ।

(उ) इन्द्रधनुष—

ऊगतेरो माछलो, आथवतेरो मोख ।
डक कहे हे भड्डली, नदियां चढ़सी गोख ॥

यदि प्रात काल के समय इन्द्रधनुष और सूर्यास्त के समय किरणे दिखाई दें तो नदियों मे अवश्य बाढ आयेगी ।

(ऊ) आँधी—

१. आंधी साथै मेह आया ही करै ।

आँधी के साथ वर्षा हुआ ही करती है ।

२. आधी राड मेहा री पालो दबै ।

राजस्थान मे आँधी बडे जोर से चलती है । वह मेह के आने पर ही दबती है ।

(ग) दिव्य-निमित्त

(अ) चन्द्र और सूर्य

१ सांमा सुकरा सुरगुरा, जे चदो ऊगन्त ।
डक कहै हे भड्डली, जल थल एक करन्त ॥

२. सावण तो सूतो भलो, ऊभो भलो असाढ ।

३ मगल रथ आगे हुवे, लारे हुवे जो भान ।
आरमिया यूं ही रहै, ठाली रंवै निवाण ॥

४. सूरज कुंड अर चांद जलेरी ।
टूटा टीबा भरगी डेरी ॥[1]

यदि आषाढ में चन्द्रमा सोमवार, वृहस्पतिवार या शुक्रवार को उदय हो तो डक भड्डली से कहता है कि बडे जोर की वर्षा होगी ।

श्रावण मास में द्वितीया का चन्द्रमा सोया हुआ और आषाढ में खड़ा हुआ अच्छा है ।

---

१. मिलाइये—
रवि सिस रे दोली कुंडारी ।
एरापत मघवा असवारी ॥

यदि सूर्य के आगे मगल हो तो सारी आशाओ पर पानी फिर जायगा और तालाब सूखे पड़े रहेंगे।

यदि सूर्य के चारो ओर कुण्ड हो और वैसे ही चन्द्रमा के चारो ओर जलेरी हो तो इतने जोर से वर्षा होती है कि टीले टूटकर पानी के साथ वह जाते हैं और सरोवर जल से परिपूर्ण हो जाते हैं।

(आ) नक्षत्र और तारे

१. आदरा भरै खावड़ा, पुनरवसु भरै तलाव।
न बरस्यो पुषै तो बरसही घणा दुखै॥
२. पहली आद टपूकडे, मासां पक्खा मेह।
३. असलेखा बूठा, वैदां घरे वधावणा।
४. मघा माचन्त मेहा, नहीं तो उड़न्त खेहा।
५. अगस्त ऊगा, मेहा पूगा।[1]
६. अगस्त ऊगा मेह न मडे।
जो मडे तो धार न खडे॥

आर्द्रा मे वर्षा हो तो खड्डे पानी से भर जायँगे, पुनर्वसु में बरसे तो तालाब भर जायँ और पुष्य नक्षत्र में बरसे तो फिर मुश्किल से वर्षा होगी।

आर्द्रा के शुरू में यदि बूँदें पड जायँ तो महीने पन्द्रह दिन मे वर्षा होगी। यदि अश्लेषा नक्षत्र मे वर्षा हो तो डाक्टर-हकीमो के घर बधाई बँटे अर्थात् रोग खूब फैले।

मघा नक्षत्र मे यदि वर्षा हो तब तो अच्छा है, नही तो धूल उडेगी।

अगस्त्य के उदय होने पर वर्षा का अन्त समझना चाहिए। इस तारे के उदय होने पर प्रथम तो वर्षा ही न हो और यदि हो तो मूसलाधार वर्षा हो।

(घ) मिश्र-निमित्त

सस्कृत भाषा के वृष्टिविद्या-बोधक शास्त्रो मे कार्तिक से आश्विन तक के बारह महीनो के प्रत्येक दिन का वर्षा की दृष्टि से फल निर्धारित किया गया है। राजस्थानी भाषा मे भी वर्ष के प्रत्येक महीने और उस महीने की अनेक तिथियो से सम्बद्ध वर्षा-विषयक कहावती पद्य प्रचलित हैं जिनमें से कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं—

कार्तिक

काती सुद पूनो दिवस, जे क्रितिका रुख हुन्त।
जे बादल बीजू खिवै, मास चार बरसन्त॥

मार्गशीर्ष

मगसर तणी ज अस्टमी, बादल् बीजां होय।
सावण बरसै भड्डली, साख सवाई जोय॥

---

१. मिलाइये—
उदित अगस्त्य पथ जल सोखा।
—रामचरितमानस

पौष

पोस अंधारी दस्समी, चमकै बादल बीज।
तो भर बरसै भादवो, सायघण खेलै तीज ॥[1]

माघ

माह ज पड़वा ऊजली, बादल बाथ ज होय।
तेल पीव अर दूध सब, दिन दिन मूंघा जोय ॥

फाल्गुन

फागण बद दुतिया दिवस, बादल होय स बीज।
बरसै सावण भादवो, चंगी होवै तीज ॥

चैत्र

नव दिन कहिजै नौरता, सुकल चैत के मास।
जल बूठं बिजली हुवै, जाणो गरभ विनास ॥

वैसाख

वद वैसाख अमावसी, रेवति होय सुगाल।
मध्यम होवै अस्विनी, भरणी करै दुकाल ॥

ज्येष्ठ

जेठ वदी दसमी दिवस, जे सनि वासर होय।
पाणी होय न धरण मे, विरला जीवै कोय ॥

आषाढ़

पैली पड़वा गाजै तो दिन बहोत्तर वाजै।

श्रावण

सावण पैली पंचमी, जो धाडूकै मेघ।
च्यार मास बरसै सही, सत भाणै सहदेव ॥

भाद्रपद

भाद्रव छठ छूट्यो नहीं, विजली रो भरणकार।
तू पिव ! जायै मालवै, हू जाऊँ मोसाल ॥

आश्विन

धुर आसोज अमावसां, जे आवै सनिवार।
समयो होसी करवरो, पिंडत कहै विचार ॥

पुनः कार्तिक

भूल्या फिरै गंवार, कातो माले मेहड़ा।

---

१. बिड़ला केन्द्रीय पुस्तकालय पिलानी की एक हस्तलिखित प्रति से साभार उद्धृत।

मिश्र महीने

माघ मसक्का जेठ सी, सावण ठंडी वाव ।
भीम कहै सुण भड्डली, नहिं वरसण रो दाव ॥[1]

अर्थात् कार्तिक सुदी पूर्णमासी को यदि कृत्तिका नक्षत्र हो तथा वादलो में विजली चमके तो अगले चार महीनो तक लगातार वर्षा होगी। मार्गशीर्ष वदी अष्टमी को यदि वादल और विजली दोनों हो तो श्रावण में वर्षा हो तथा सवाई उपज हो। पौष वदी दसमी को यदि वादलो में विजली चमकती हो तो पूरे भाद्र में वर्षा हो और स्त्रियाँ तीज का त्योहार अच्छी तरह मनायें। माह सुदी प्रतिपदा को यदि बादल और पवन हो तो तेल, घी और दूध, ये सब दिनो-दिन मँहगे होंगे। फाल्गुन वदी द्वितीया के दिन यदि विजली के साथ वादल हो तो सावन और भादो दोनो वरसेंगे और तीज का त्योहार खूब मनाया जायगा। चैत शुक्ल पक्ष नवरात्रो में यदि पानी वरसे तो समझ लो कि वर्षा के गर्भ का नाश हो गया, आगे वर्षा नही होगी। वैसाख वदी अमावस को यदि रेवती नक्षत्र हो तो सुकाल हो, अश्विनी हो तो मध्यम हो और भरणी हो तो दुर्भिक्ष करे। जेष्ठ वदी दसमी को यदि शनिवार हो तो पृथ्वी पर पानी नही वरसेगा और कोई विरले ही जीवित रहेगे। यदि अषाढ़ वदी प्रतिपदा के दिन वादल गरजें तो ७२ दिनो तक हवा चले, वर्षा न हो। सावन वदी पचमी को यदि वादल गडगडावें तो चार महीने अवश्य वरसे, सहदेव सत्य कहता है। भाद्रपद की छठ को यदि विजली की चमक नही छूटी (विजली नहीं चमकी) तो हे प्रिय! तुम मालवे जाना, और मैं पीहर जाऊँगी। आसोज वदी अमावस्या को यदि शनिवार आये तो पडित विचार कर कहता है कि जमाना सावारण होगा। वे गँवार भूले हुए फिरते हैं जो कार्तिक मे मेह खोजते हैं। माव मे गर्मी, जेठ में शीत और सावन में ठण्डी हवा चले तो भीम कहता है कि हे भड्डली! सुन, ये बरसने के आसार नही।

वर्षा का गर्भ—ऊपर दिये हुए पद्यो मे एक स्थान पर वर्षा के गर्भ-नाश का उल्लेख हुआ है। यहाँ पर प्रसगवश हम यह कह देना चाहते हैं कि सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थो में वर्षा के गर्भ के उपक्रम, प्रसव, उपघात, दोहद आदि सभी का विस्तार से वर्णन हुआ है। प्रसिद्ध है कि गर्भ-धारण के साढ़े छः महीने अथवा १९५ दिन वाद वर्षा के गर्भ का प्रसव होता है। इस सम्बन्ध में राजस्थानी भाषा का निम्नलिखित दोहा उल्लेखनीय है—

जिण दिन होवै गरभडो, तिण थक्की छः मास।
ऊपर पनरा दीहड़ै, वरसै मेह सुगाज ॥

इस प्रकार के पद्यो का मूल आधार वृहत्सहिता आदि ग्रन्थो में मिल जाता है। वराहमिहिर कहते हैं—

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात्।

---

१ देखिये—
राजस्थानी भाग २ में प्रकाशित वर्षा-सम्बन्धी कहावतें। (श्री नरोत्तमदास स्वामी)

पचनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ॥[1]

अर्थात् चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में प्रवेश करने से मेघ को गर्भ होता है, चन्द्रमा के वश से १९५ दिन में उस गर्भ का प्रसव होता है।

अक्षय तृतीया और आषाढी पूर्णिमा—शकुन-परीक्षा के लिए ये बड़ी महत्त्व-पूर्ण तिथियाँ हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

अक्षय तृतीया

आखातीज दूज की रैण, जाय अचानक जाचै सैण।
कछुक वीच मागी नट जाय तो जाणीजै काल सुभाय॥
हँस कर देय, नटै नहि कोय, माघा सही जमानो होय॥

अक्षय तृतीया के अवसर पर द्वितीया की रात अचानक जाकर किसी स्वजन मित्र से कोई चीज माँगे। यदि माँगने पर वह इन्कार कर जाय तो अकाल के लक्षण समझो। पर यदि हँसकर चीज दे, इन्कार न करे तो हे माघजी, अवश्य सुकाल हो।

कादम्बिनी के निम्नलिखित श्लोको में भी यही बात कही गई है—

राधे शुक्ले द्वितीयाया, तृतीयासभवे निशि।
याचेतान्यगृह गत्वा कर्तुं वर्षपरीक्षणम्॥ २१९॥
तस्मै प्रसन्नो दद्याच्चेच्छुभ प्रीत च भाषते।
तदा वर्षशुभ विद्यादन्यथा त्वन्यथा भवेत्॥ २२०॥

अब एक कहावती पद्य आषाढी पूर्णिमा के सम्बन्ध में लीजिए--

आषाढी पूनम दिना, निरमल ऊगै चन्द।
कोइ सिंघ कोइ मालवै, जाया कटसी फन्द॥

आषाढ की पूर्णिमा के दिन यदि चन्द्रमा निर्मल उदय हो तो किसी के कष्ट सिंध जाने से और किसी के मालवा जाने से मिटेंगे अर्थात् अकाल पड़ेगा।

आषाढी परीक्षा के प्रकरण में विद्यावाचस्पति प० मधुसूदनजी ओझा अपने वृष्टिविषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बिनी मे लिखते हैं—

दृष्टो यदीन्दुर्नाषाढ्या वर्षतुं बहु वर्षति।
यदि तत्रामलश्चन्द्रो नावृष्टिर्दारुणा भवेत्॥ ४२०॥

आषाढी पूर्णिमा को यदि बादलो के कारण चन्द्रमा दिखाई न दे तो वर्षा

---

१ मिलाइये—
यस्मिन् पक्षे भवेद्गर्भस्तत॰ पक्षे चतुर्दशे।
स गर्भदिवसान् सार्द्धं षण्मासान्त्ये हि वर्षति॥—कादम्बिनी, पृष्ठ ८

जिस पक्ष में गर्भ-स्थिति हो उससे १४वें पक्ष में अर्थात् गर्भ-स्थिति से साढ़े छ महीनों के अन्त के दिन वर्षा होती है।

मिलाइये—

आसाढी पूनो दिना, बादर भीनो चन्द।
तो भड्डर जोसी कहैं, सगला नरा अनद॥

ग्राम साहित्य, तीसरा भाग। (रामनरेश त्रिपाठी) पृष्ठ ३१।

ऋतु में खूब वर्षा होगी और यदि चन्द्रमा स्वच्छ दृष्टिगत हो तो भयकर अनावृष्टि समझनी चाहिए।

(३) कहावतों के निर्माता और उनके अनुभव—

वर्षा-विपयक निमित्तो के विश्लेपण के पश्चात् दो प्रश्न हमारे मामने विचारार्थ उपस्थित हैं।

(१) वर्षा-सम्बन्धी इन कहावती पद्यो का निर्माता कौन है और किस प्रदेश का निवासी है?

(२) वर्षा-विषयक पद्य परम्परा-प्राप्त सस्कृत के वृष्टि-विद्या वोधक ग्रन्थो से प्रादेशिक भापाओ में आये हैं अथवा स्वतन्त्र रूप से निर्मित हैं?

वर्षा-द्योतक कहावती पद्यो में घाघ, भड्डरी और डाक या डक—ये तीन नाम प्रमुख रूप से आते हैं। प० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार "घाघ पहले-पहल हुमायू के राजकाल मे गगा पार के रहने वाले थे। अकवर की भी उन पर वडी कृपा थी। उन्होंने 'सराय घाघ' नामक गाँव वसाया और फिर उसी में रहने लगे।"[1]

भड्डरी के मम्वन्ध मे प्रसिद्ध है कि "कोई एक पण्डित काशी से ऐसा मुहूर्त शोध कर घर को चले, जिसमें गर्भाधान होने मे वडा विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता। पर घर तक पहुँच न पाये और रास्ते ही मे शाम हो गई। विवश होकर वे एक अहीर के दरवाजे पर टिक गये। यह भी प्रवाद है कि वे किसी गडरिये के घर पर टिके थे भोजन वनवाते समय उनको उदास देखकर अहीरिन ने उनकी उदासी का कारण पूछा और उनके मन का भेद जानकर स्वय उनसे पुत्र की कामना की। उसी के फलस्वरूप भड्डरी का जन्म हुआ। अतएव ब्राह्मण पिता और अहीरिन माता से भड्डरी की उत्पत्ति मानी जाती है। किन्तु स्वामी नरोत्तमदासजी के मतानुमार अहीरिन माता से भड्डरी की नही, डाक की उत्पत्ति हुई। वे भड्डरी को पुरुप नही मानते, स्त्री मानते हैं।[2]

एक दूसरी कहानी में भड्डरी सुप्रसिद्ध ज्योतिपी वराहमिहिर के पुत्र कहे गये हैं किन्तु वराहमिहिर का समय सन् ५०५ ई० के लगभग पडता है और भड्डरी के पद्यों की भापा किसी भी हालत मे इतनी पुरानी हो नहीं सकती। इसलिए इस कहानी मे कोई तथ्य नहीं जान पडता।[3]

राजपूताने में भड्डली नामक एक स्त्री प्रसिद्ध है जो भगिन थी। उसके पति का नाम डक ऋपि वताया जाता है जो ब्राह्मण था। "कहते हैं कि भड्डली को शगुन का इल्म खूब आता था और डक ज्योतिप विद्या अच्छी तरह जानता था। इस सवव से दोनो मे वहुत वाद-विवाद हुआ करते थे जो एक पुस्तक मे इकट्ठे किये गये हैं

१ घाघ और भड्डरी (रामनरेश त्रिपाठी), भूमिका, पष्ठ १७-१८।
२. राजस्थान भारती, भाग १, अक १, पृष्ठ ६०।
३ ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी), पष्ठ १२।

जिसका नाम 'भडली पुराण' है।[1]

भड्डरी की भाषा में मारवाडी शब्दो के प्रयोग बहुत मिलते हैं, इससे प० रामनरेश त्रिपाठी अनुमान लगाते हैं कि या तो दो भड्डरी या भड्डली हुए होंगे, या एक ही भड्डरी युक्त प्रान्त से मारवाड में जा बसे होगे और उन्होंने यहाँ और वहाँ दोनो प्रान्तो की बोलियो में अपने छन्द रचे होंगे।[2]

त्रिपाठीजी का अनुमान ठीक नही जान पडता। वस्तुत मौलिक रूप मे प्रचलित जो लोकोक्तियाँ अथवा कहावती छन्द एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की यात्रा करते रहते हैं, उनकी भाषा भी प्रान्त-भेद से बदलती रहती हैं। ऐसा नही होता कि छन्दो का निर्माता विभिन्न प्रान्तो मे बसकर उन प्रान्तो की भाषाओ मे छन्दो का निर्माण करता है।

त्रिपाठी जी के सामने एक दूसरी उलझन यह है कि राजपूताना और युक्त प्रान्त के भड्डरी मे स्त्री-पुरुष का अन्तर है। ऐसी दशा में उनके विचारानुसार यह कहना दु साहस की बात होगी कि दोनो प्रान्तो के भड्डली एक ही व्यक्ति हैं।

किन्तु स्वामी नरोत्तदास जी त्रिपाठी जी के मत से सहमत नही। वे दो भड्डरी स्वीकार नही करते। उनके मतानुसार डाक की उक्तियाँ भड्डरी को सम्बोधित करके लिखी गई हैं। राजस्थान मे पद्यो के अन्दर वक्ता की जगह सम्बोधित व्यक्ति का नाम देने की प्रथा है। इन पद्यो के अन्दर केवल भड्डरी का नाम देखकर कुछ लोगो ने भूल से भड्डली को ही रचयिता समझ लिया और इन कहावतो को भड्डली की कहावत कहने लगे, यहाँ तक कि सुदूर युक्त प्रान्त में जाकर भड्डली स्त्री से पुरुष भी बन गई।

'कह भड्डरी' जैसे पद्य जहाँ मिलते हैं, वहाँ यह भी सम्भव है कि डाक जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के सम्पर्क से भड्डली मे प्रतिभा का उन्मेष हुआ हो और उसने भी कुछ कहावतें बना डाली हो।[3]

जहाँ तक मैं समझता हूँ, भड्डरी द्वारा कहावतो के रचे जाने के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का आश्चर्य नही होना चाहिए। हो सकता है, डाक के सम्पर्क से भी भड्डली को कहावतो के निर्माण-कार्य मे प्रेरणा मिली हो किन्तु वैसे यह स्वय भी प्रतिभाशालिनी स्त्री थी। राजस्थान में प्रचलित एक प्रवाद के अनुसार तो डक ने भड्डली की प्रतिभा को देखकर ही उसे अपने घर में रखना स्वीकार किया था। कहा जाता है कि किसी वर्ष जब डक ऋषि तपस्या करते थे तो मेह नही बरसा। लोग आ-आ कर वर्षा के बारे में उनसे पूछते थे। डक ने एक दिन भड्डली से पूछा कि तुझे भी कुछ मेह बरसने की खबर है? उसने कहा—मैं तभी बतलाऊँगी जब आप

---

१ रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़ बाबत सन् १८९१ ई०, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ २१२-२१३।

२ घाघ और भड्डरी (भूमिका), पृष्ठ ७७।

३ देखिये

'राजस्थान भारती' भाग १ में प्रकाशित स्वामी नरोत्तमदासजी का 'राजस्थान की वर्षा-सम्बन्धी कहावतें' शीर्षक लेख, पृष्ठ ६०-६१।

मुझसे 'घरवासा' (नाता) करना स्वीकार कर लें। डंक ने कहा—तुम्हारी बात सच्ची निकलने पर मैं तुम्हे स्वीकार कर लूँगा। तब भड्डली ने कहा कि आज ही जब आप गाँव से लौटेंगे तो इतनी वर्षा होगी कि वृक्ष की डालियो तक पानी पहुँच जायगा। ऐसा ही हुआ और डक ने अपने दिये हुए वचन के अनुसार भड्डली से 'घरवासा' कर लिया।[1]

घाघ तथा डाक दोनो के साथ भड्डरी का नाम आता है। इसलिए स्वभावत ही यह प्रश्न उठ खडा होता है कि घाघ और डाक दो व्यक्ति हैं या एक ही व्यक्ति के ये दो नाम हैं ? प० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार "घाघ के अन्य कई नाम भी विहार मे प्रचलित हैं जैसे डाक, खोना, भाड आदि। मारवाड में 'डक कहै सुनु भड्डुली" का प्रचार है। सम्भवत मारवाड का डक ही विहार का 'डाक' है।[2] डाक्टर उमेश मिश्र भी डाक और घाघ को एक ही व्यक्ति मानने के पक्ष में हैं।[3]

यदि घाघ और डाक दोनो एक ही हैं तो फिर घाघ को गगापुर का निवासी मानना मुश्किल है। राजस्थान के विद्वानो की मान्यता है कि डाक राजस्थान के ही किसी प्रान्त का निवासी था। स्वामी नरोत्तमदासजी ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दलीलें उपस्थित की हैं—

(१) राजस्थान में डाकोत नाम की एक याचक जाति है। डाकोत लोग अपने को डाक की सन्तान कहते हैं। डाकोत शब्द डाक-पुत्र शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है डाक के वंशज डाकपुत्र-डाकपुत्त-डाक उत्त-डाक उत-डाकोत-डाकोत। पुत्र का अपभ्रंश 'उत' राजस्थानी भाषा में सतानवाचक प्रत्यय बन गया है।[4]

(२) जहाँ तक मालूम हो सका है, डाकोत लोग राजस्थान के बाहर नही पाये जाते।[5]

इतना तो प० रामनरेश त्रिपाठी भी स्वीकार करते हैं कि राजपूताने में डाकोतो की संख्या अधिक है। डाकोत लोग भी डाक और भड्डली को राजस्थान-निवासी बतलाते हैं।

इसलिए बहुत सम्भव शायद यही है कि डाक और भड्डली राजस्थान के ही निवासी हो और दोनो में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध रहा हो। किन्तु अभी तक विद्वान् इस विषय मे एकमत नही हैं।

डाक भड्डरी अथवा डक और भड्डली के बनाये हुए जो वर्षा-सम्बन्धी पद्य

---

१ 'राजस्थान की जातियाँ, प्रकाशक श्री बजरगलाल लोहिया, पृष्ठ ७५।

२. घाघ और भड्डरी (श्री रामनरेश त्रिपाठी), भूमिका, पृष्ठ २८।

३ देखिये :
'हिन्दुस्तानी' भाग ४, अक ४ में प्रकाशित डाक्टर उमेश मिश्र का 'मैथिली साहित्य में डाक' शीर्षक निबन्ध।

४ मिलाइये :
नारणोत (नारायण की सन्तान), किसनसिंहोत (किसनसिंह की सन्तान) आदि।

५. राजस्थान भारती, भाग १, अक १, पष्ठ ५९-६०।

1986

कहे जाते हैं उनमे से वहुतो के सस्कृत रूपान्तर आज भी प्राप्त हैं। ऐसे कुछ उदाहरण मैं पहले दे भी चुका हूँ। व्यावर-निवासी श्री मीठालाल अटलदास व्यास के वृष्टिप्रबोध या भारत का वायु शास्त्र नामक ग्रन्थ में वर्षा-सम्वन्वी पद्यो का विस्तृत सकलन किया गया है और साथ मे हिन्दी, गुजराती एव राजस्थान की वर्षा-सम्वन्वी कहावतें भी दी गई हैं। इसी प्रकार साहित्यवाचस्पति पडित मधुसूदन जी ओझा द्वारा रचित "कादम्विनी" में वृष्टि-विद्या-सम्वन्धी अमूल्य सामग्री उपलव्य होती है। पडित जी ने सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थो के आधार पर ही उक्त ग्रन्थ का निर्माण किया था जिसमें से तुलना के लिए केवल दो उदाहरण मैं नीचे दे रहा हूँ—

१ कातिक सुद एकादसी, बादल विजुली जोय।
तो असाढ़ में भड्डरी, वर्षा चोखी होय॥ —राजस्थानी
एकादश्या तु शुक्लायां द्वादश्या चापि कार्तिके।
अभ्रच्छन्न यदि नभस्तदाषाढे ऽति वर्षति॥६॥—कादम्विनी, पृ० १६

२ माह सत्तमी ऊजली, वादल मेह करन्त।
तो आसाढा भड्डली, मेह घणो वरसन्त॥ —राजस्थानी
३. माघ शुक्ले तु सप्तम्या वृष्ट्याऽषाढेऽति वर्षति॥६६॥—कादम्विनी, पृ० ३४

इस प्रकार के अगणित उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राजस्थान, विहार और सयुक्त प्रान्त में प्रचलित वहुत-से वर्षा-विषयक पद्य ऐसे हैं जो सस्कृत के प्राचीन ग्रन्थो से लोक-भाषा मे आये हैं अथवा यह भी सम्भव है कि बहुत प्राचीन काल के लौकिक अनुभवों को ही सस्कृत पद्यो मे गुफित कर दिया गया हो। राजस्थान के एक कहावती दोहे में गूजर के लडके ने पडितो की भर्त्सना करते हुए सहदेव से कहा है कि ये पडित तो चोर हैं जिन्होंने लौकिक ज्ञान को चुराकर पुस्तकों मे रख दिया है—

"लोक तणो उनमान ले, लियो ग्रन्थ में मेल।
चोरी कीधी पडता, सुण जोसी सहदेव॥"

जो भो हो, डाक, भड्डरी, सहदेव, माघा, माघसी, माघजी, फोगसी आदि अनेक नाम ऐसे हैं जिन्होंने वृष्टि-विषयक अनुभवो को कहावती पद्यो के रूप मे जड कर अतुल यश प्राप्त किया है। सस्कृत के पद्यो को इस प्रकार की लोक-प्रियता प्राप्त नही हो सकती थी। वहुत-से तथ्य उक्त कवियो द्वारा अनुभूत रहे होंगे, बहुत-से तथ्य ऐसे भी होंगे जो इन कवियो को परम्परा से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए होगे।

(४) ठेठ राजस्थानी कहावतें

अव तक वर्षा के सम्बन्ध मे जो कहावतें उद्धृत की गई हैं, उनमे से अधिकाश ऐसी हैं जो केवल राजस्थान की कहावतें नही कही जा सकती, ये कहावते देश की सर्व-सामान्य सम्पदा हैं, केवल प्रदेश-विशेष के अनुसार इनके परिधान में अन्तर दिखलाई पडता है किन्तु राजस्थान में ऐसी कहावतें भी प्रचलित हैं जो स्थानीय रगत लिये हुए हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

(१) मेव ने पावणा किताक दिनां रा।

अर्थात् मेह और अतिथि कितने दिनो के ? जिस प्रकार अतिथि बहुत दिनो तक नही ठहरता, उसी प्रकार वर्षा भी राजस्थान मे बहुत दिनो तक नही ठहरती ।

(२) एक मेह एक मेह करता, बडेरा ही मर गया ।

एक मेह, एक मेह करते हुए पूर्वज ही चल बसे । राजस्थान मे वर्षा कहाँ !

(३) राजा मान्या तो मानवां, मेवां मानी धरती ।

राजा जिनको मानते हैं, जिनका सम्मान करते हैं, वे ही मानव हैं और वर्षा की जिस पर कृपा है, वही वस्तुत धरती है ।

(४) मोरिया तो मेहू मेहू करै, पण वरसण तो इन्दर कै हाथ है ।

मयूर तो वर्षा की रट लगाये हुए हैं किन्तु मेह बरसाना तो इन्द्र के हाथ है ।

(५) मेहा तो त्या वरससी, ज्या राजी होसी राम ।

वर्षा तो वहाँ होगी, जहाँ भगवान् की कृपा होगी ।

(६) मेवां की माया, बिरखां की छाया ।

वृक्षों की छाया की भाँति सब वर्षा की ही माया है ।

निम्नलिखित कहावत में तो उक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है—

(७) सौ सांढीया सौ करहलां, पूत निपूतो होय ।
मेवडला बूठा भला, होणी होय सो होय ॥

यदि वर्षा के कारण सौ ऊँट और ऊँटनियाँ नष्ट हो जायँ, माता के सब पुत्र भी चल बसें तब भी वर्षा का तो स्वागत ही करना चाहिए, जो होना हो वह हो ।

इस प्रकार की कहावतें राजस्थान की ठेठ कहावतें हैं । रेगिस्तान के अतिरिक्त अन्य किसी प्रदेश मे ऐसी कहावतो का जन्म नही हो सकता था ।

राजस्थान मे जब वर्षा का आगमन होता है तो कितने हर्ष और उल्लास से उसका स्वागत किया जाता है, यह इस प्रदेश के निवासी ही जानते हैं । यहाँ का लोक-साहित्य भी वर्षा की रगरलियो और उमगो से भरपूर है ।

८. अन्य ऋतुओ-सम्बन्धी कहावतें

वर्षा-ऋतु राजस्थान की सबसे पुरानी ऋतु है तथा यहाँ कृषि भी वर्षा पर ही निर्भर है । इसलिए इस प्रदेश मे वर्षा-सम्बन्धी कहावतो की प्रचुरता है किन्तु अन्य ऋतुओ से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें भी यहाँ उपलब्ध हैं । यथा,

१. धान का धा तेरा, मकर पच्चीस, जाड़ा दिन दो कम चालीस ।

अर्थात् १३ दिन धन सक्रान्ति के और २५ दिन मकर के, इस प्रकार दो कम चालीस अर्थात् ३८ दिन तक जाडा पडता है ।

२ गरमी गरीब की, र स्यालो साहूकारा को ।

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु गरीबो की और और जाडा साहूकारो का होता है । निर्धन व्यक्ति वस्त्रो के अभाव मे भी गर्मी के दिन सुगमता से बिता देते हैं किन्तु जाडे में उन्हें मुश्किल पडती है । जाडे मे धनी लोग ऊनी वस्त्रों के प्रचुर प्रयोग तथा पौष्टिक खान-पान द्वारा आनन्द मनाते हैं ।

३ पोस अर खालडी खोस ।

अर्थात् पौष मास में इतनी सर्दी पडती है कि उससे चमडा खिंच जाता है ।

४. आधे माह कांधे कामल वाह ।

अर्थात् आधा माघ बीत जाने पर जाडा कम होने लगता है, अतः कम्बल कन्धे पर ही पडी रहती है ।

५. सावण सूता सायरी, माह अखरोधी खाट ।
आपू ही मर जावसी, जेठ चलता वाट ॥ [1]

अर्थात् श्रावण मे कोरे आँगन पर तथा माघ मे बिना बिछौने की खाट पर सोने वाले और ज्येष्ठ की गर्मी मे चलने वाले अपने आप ही मर जाते हैं ।

६. प्रकीर्ण कहावतें

(१) पशु-पक्षी सम्बन्धी

ऊँट

राजस्थानी भाषा की पशु-सम्बन्धी कहावतो में ऊँट के विषय मे सबसे अधिक कहावतें मिलती हैं और यह स्वाभाविक भी है क्योकि ऊँट रेगिस्तान के जहाज के रूप मे सर्वत्र प्रसिद्ध है । ऊँट धरती का करोत और घर की शोभा समझा जाता है । उसका मस्तक नगाडे जैसा तथा उसके कान रत्ती की तरह छोटे होते हैं । वह जगल का सन्यासी होता है । सूखे डठल और कँटीली झाडियो को खाकर ही किसी तरह अपना गुजारा कर लेता है ।[2]

ऊँट जब ६ वर्ष का होता है तो उसके दाँत निकल आते हैं जिन्हे "नेस" कहते हैं । दस वर्ष का होने पर उसकी पूँछ के बाल सफेद हो जाते हैं जैसा कि राजस्थान की एक कहावत "नो नेसां, दस केसा" से प्रकट है । दाँतो की सख्या से पशुओ की अवस्था का अनुमान पाणिनि के युग में भी लगाया जाता था ।[3]

जिसकी टाँगें छोटी हो और जिसके "नेस" निकल आये हो, ऐसा ऊँट बडी लम्बी मजिलें पार कर सकता है । इस प्रकार के ऊँट पर जो सवारी करता है, उसे प्रात काल से लेकर सायंकाल तक ऊँट की पीठ से उतरने की आवश्यकता नही । ऐसा ऊँट कभी धोखा नही देता, वह बराबर धरती को चीरता हुआ चला जाता है । इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित कहावती पद्य उल्लेखनीय है—

"ओछी गोडी, नेस कढ, वहै उलाला वग्ग ।
वो ओठी वो करहलो, आथण होय अलग्ग ॥"

---

१ मेवाड़ की कहावतें, भाग १ (ले० प० लक्ष्मीलाल जोशी, पृ० १८६) ।

२ माथा टामक जेहड़ा, कान रतीक रतीह ।
दे नादावत भीमड़ा, जगल तणा जतीह ॥
माथा टामक जेहटा, बाहू हद्द प्रचण्ड ।
दे नादावत भीमड़ा, धर करवत घर मण्ड ॥
—राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान, पृष्ठ ७९-८०

3. India as known to Panini by Dr V S Agrawala, p 222.

ऊँट की तेज चाल को "ढाण" कहते हैं। चढते ही ऊँट को बडी तेजी से नही दौडाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से कुछ दूर तेज चलकर वह शिथिल पड जाता है।[1]

ककेडे (एक कँटीला वृक्ष-विशेष) को ऊँट बडे चाव से खाता है।[2] फिटकरी देते समय भी ऊँट अर्राता है और गुड देते समय भी।[3] जब उस पर कोई सामान लादा जाता है अथवा कोई सवारी करता है तब भी वह अर्राकर अपना क्षोभ प्रकट करता है किन्तु उसके अर्राने पर कोई ध्यान नही देता।[4]

प्रसिद्ध है कि ऊँट जब मरता है तो अपनी जन्मभूमि को याद कर मारवाड की ओर देखता है। "ऊँट मरै जद मारवाड़ सामो जोवै।"[5]

राजस्थान में प्रवाद प्रचलित है कि पाबू जी ऊँटों को लका से लाये थे, इसलिए "ऊँट मरै जद लका कानी" यह उक्ति भी कभी-कभी सुनने मे आती है।

राजस्थान के प्रसिद्ध लोक-काव्य "ढोला मारू रा दूहा" मे ऊँट का बडा स्वाभाविक वर्णन हुआ है जिसमें से एक दोहा यहाँ दिया जा रहा है—

दूजा बोबड़ चोबड़ा, ऊटकटालउ खाण।
जिण मुखि नागरवेलियां, सो करहउ केकाण ॥३०६॥

अर्थात् दोहरे-चौहरे शरीरधारी, काँटेदार घास को चरने वाले ऊँट साधारणत. बहुत मिलते हैं परन्तु जो नागरवेलि के पत्तो को चरने वाला उत्तम जाति का ऊँट होता है, वही ऊँटो में शिरोमणि गिना जाता है।[6]

घोड़ा

राजस्थान के एक कहावती दोहे मे कहा गया है कि जिसने तेज चलने वाले घोडे की सवारी का आनन्द नही उठाया, उसका जन्म व्यर्थ ही गया। इसी प्रकार एक दूसरे दोहे में घोड़े की पीठ को 'स्वर्ग की निशानी' बतलाया गया है।

१. तीखा तुरी न माणिया, भड़ सिर खग्ग न भग्ग।
जलम अकारथ ही गयो, गौरी गल् न लग्ग ॥

२. चौथी पीठ तुरंग री, सुरग निशानी च्यार।

---

१ ऊँट नै चढता ही ढाण नहीं घालणो।

२ काणो ऊँट ककेडा कानी देखै।

मिलाइये—प्रवीक्षते केलिवन प्रविष्ट क्रमेलक. कण्टकजालमेव।

३. ऊँट फिटकड़ी दिया ही अरलावै, गुड दिया ही अरलावै।

४. ऊँट तो अरडावता ही ज लादीजै।

५. मिलाइये—
ऊँट मरे त्यारे मारवाड सामु जुए। (गुजराती कहावत)।
ऊँट बउराला तो पछिमे जाला। (भोजपुरी कहावत)।
पाठान्तर—
"ऊँट मरै जद पू गल कानी।"

६. ढोला मारू रा दूहा (भूमिका), पृष्ठ ७८।

भारतीय इतिहास, भारतीय राजाओ और भारतीय परम्पराओ से परिचय रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भारतीय सम्राटो के उत्थान व पतन मे घोडो का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। श्रीकृष्ण ने कौरवो की सहायता के लिए जो अक्षौहिणी सेना दी थी, उसमें घोडो का प्रमुख स्थान था। ऐतिहासिक युग में घुडसवार-सेना का सर्वोत्तम सगठन मौर्य-साम्राज्य में हो सका था। राजा पुरु से सिकन्दर का जो युद्ध हुआ, उसमें सिकन्दर को अपनी घुडसवार-सेना से वडी सहायता मिली थी। हूणो की विजय का वहुत कुछ श्रेय भी उनकी अश्वारोही सेनाओ को था। राजपूत-युग मे तो घोडों ने जो चमत्कार दिखलाया, उसकी गाथाएँ देश के वच्चे-वच्चे की जवान पर हैं। हल्दीघाटी का युद्ध और महाराणा प्रताप का चेतक देश के इतिहास में अमर हैं। घोडो के इस ऐतिहासिक महत्त्व के कारण ही 'घोडा राज' जैसी कहावत राजस्थान मे प्रचलित हुई होगी, यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में युद्ध-पद्धति मे परिवर्तन हो जाने के कारण घोडो का वह महत्त्व नही रह गया।

किन्तु जिस प्रकार खिलाडी ही खेल खेलना जानता है, उसी प्रकार घोडे का उचित उपयोग सवार ही कर सकता है।[1] घोडे की पकड के सम्बन्ध मे भी निम्नलिखित कहावत प्रसिद्ध है—

"घोडो मर्द मकोडो, पकड्यां पाछै छोडै थोडो।"

आकृति-प्रकृति मे पुरुष मातृ-कुल का अनुसरण करता है और घोडा पितृकुल का, जैसा कि निम्नलिखित कहावतो से स्पष्ट है—

(१) **नर नानेरै, घोडो दादेरै।**

(२) **मा पर पूत पिता पर घोडो, घणो नहीं तो थोडम थोडो।**

अन्य पशु

वैल जव खरीदा जाता है तो उसके दाँतो की सख्या से उसकी अवस्था की परीक्षा की जाती है।[2] वैल हमेशा वन्धन में रहता है।[3] आलसी वैल या तो चलता नही, अगर चलता है तो सात गाँवो तक को पार कर जाता है।[4] जो वैल नया-नया लाया जाता है, वह खूँटा तोडता है।[5] खेती तो वास्तव में वैलो से ही होती है।[6]

परवशता, आत्म-समर्पण तथा दया आदि के प्रतीक के रूप में 'गाय' शव्द का प्रयोग होता है। दूध न देने वाली गाय अपने वछडे से अधिक प्रेम दिखलाती है किन्तु यह प्रेम गाय के मालिक को नहीं सुहाता।[7] इस प्रकार की गाय हमेशा दुःखद होती

---

१ खेल खिलाड्या का, घोड़ा असवारा का।

२ देखिये—
मालवी कहावतें भाग १, (श्री रतनलाल महता), पृष्ठ ३६।

३ वलद जूटो कोनी गे्यो।

४ कै तो पैल वलद चालै कोनी र चालै तो सात गावा की सींव फोडै।

५. नयो वलद खूँटो तोड़ै।

६ वलदा खेती।

७ काटर कै हेज घणो (ठागर कै हेज घणो)

है ।[1] दूध वाली गाय की तो लात भी अच्छी लगती है किन्तु बिना दूध वाली को कोई नही पूछता ।[2] जिस गाय को हरे घास की चाट लग जाती है, वह चरती-चरती दूर निकल जाती है ।[3]

दूध आदि के लिए तो भैंस ही रखनी चाहिए चाहे वह सेर दूध ही क्यो न दे ।[4] भैंस अपना रग तो नही देखती किन्तु छाते को देखकर चौंकती है ।[5] भैंस के आगे बाँसुरी बजाना व्यर्थ है ।[6] जूते में काँटा जिस प्रकार कष्टदायक होता है, उसी प्रकार प्रथम बार ब्याही हुई भैंस भी दु खदायक होती है ।[7]

भैंसे से अधिक काम लिया जाता है, इसलिए उसका भगवान ही मालिक है ।[8]

बकरी दूध तो देती है लेकिन मेगनी करके ।[9] प्रसिद्ध है कि गूगा जाटी अर्थात् भाद्र कृष्णा नवमी के बाद बकरियाँ दूध देना बन्द कर देती हैं—

"आयी गूगा जाटी, बकरी दूदां नाटी ।"

बकरे की माँ कब तक कुसल मनावे ?[10] उसकी तो कभी-न-कभी बलि दे दी जायगी । शनिवार को पाडे, बकरे आदि की बलि दी जाती है । बकरे की माँ कितने शनिवार टाल सकेगी ?[11]

सिंहं नैव गज नैव, व्याघ्र नैव च नैव च ।
अजापुत्रं बलिं दत्ते दैवो दुर्बलघातकः ॥

एक भेड जब कुएँ मे गिरती है तब सभी साथ जा पडती हैं ।[12] यही भेडिया-धसान है ।

कुत्तो की लडाई प्रसिद्ध है । यदि उनमे मेल हो तो वे गगा जी स्नान करके आ जायें ।[13] कुत्ते की पूँछ १२ वर्षों तक दबी रही किन्तु जब निकली तभी टेढी ।[14]

बिल्ली तो हमेशा चूहो को मारती रहती है, इसलिए उससे कभी कोई भलाई का काम नहीं होता ।

---

१. कै मारै सीरी को काम, कै मारै काटर को जाम ।
२. धीणोड़ी कै सागै होणोड़ी मारी जाय ।
३. चू टी लागी गाय, बावड़ै तो बावडै नहि आघी नीकल जाय ।
४ धीणू भैंस को, हो भावै सेर ही ।
५. भैंस आपको रग तो देखै ना, छत्तै नै देख कर बिदकै ।
पाठान्तर : भैंस धोरो देख 'र चमकै ।
६ भैंस आगै बाँसरी बजाई गोबर को इनाम ।
७ भैंस्या में लाटी ने पगरखी में काटी ।
८. पाडै को अर पराई जाई को राम बेली ।
९ बकरी दूद तो दे पण दे मीँगणी करके ।
१०. बकरे की मा कद ताई खैर मनावै ।
११ बकरा की मा के थावर टालही ।
१२ एक भेड कुवै में पड़ै तो सै जा पड़ै ।
१३ कुत्ता रे सप होवै तो गगा जी नहायि आवै ।
१४. कुत्तै की पूँछ बारा बरस दबी रही पण जद निकली जद ही टेढी ।

भारतीय इतिहास, भारतीय राजाओं और भारतीय परम्पराओं से परिचय रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भारतीय सम्राटों के उत्थान व पतन में घोड़ों का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। श्रीकृष्ण ने कौरवों की सहायता के लिए जो अक्षौहिणी सेना दी थी, उसमें घोड़ों का प्रमुख स्थान था। ऐतिहासिक युग में घुड़सवार-सेना का सर्वोत्तम सगठन मौर्य-साम्राज्य में हो सका था। राजा पुरु से सिकन्दर का जो युद्ध हुआ, उसमें सिकन्दर को अपनी घुड़सवार-सेना से बड़ी सहायता मिली थी। हूणों की विजय का बहुत कुछ श्रेय भी उनकी अश्वारोही सेनाओं को था। राजपूत-युग मे तो घोड़ों ने जो चमत्कार दिखलाया, उसकी गाथाएँ देश के बच्चे-बच्चे की जबान पर हैं। हल्दीघाटी का युद्ध और महाराणा प्रताप का चेतक देश के इतिहास में अमर हैं। घोड़ों के इस ऐतिहासिक महत्त्व के कारण ही 'घोड़ा राज' जैसी कहावत राजस्थान में प्रचलित हुई होगी, यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में युद्ध-पद्धति मे परिवर्तन हो जाने के कारण घोड़ों का वह महत्त्व नही रह गया।

किन्तु जिस प्रकार खिलाड़ी ही खेल खेलना जानता है, उसी प्रकार घोड़े का उचित उपयोग सवार ही कर सकता है।[1] घोड़े की पकड़ के सम्बन्ध मे भी निम्नलिखित कहावत प्रसिद्ध है—

"घोड़ो मर्द मकोड़ो, पकड़्यां पाछै छोड़ै थोड़ो।"

आकृति-प्रकृति में पुरुष मातृ-कुल का अनुसरण करता है और घोड़ा पितृकुल का, जैसा कि निम्नलिखित कहावतों से स्पष्ट है—

(१) नर नानेरै, घोड़ो दादेरै।

(२) मा पर पूत पिता पर घोड़ो, घणो नहीं तो थोड़म थोड़ो।

अन्य पशु

बैल जब खरीदा जाता है तो उसके दाँतों की संख्या से उसकी अवस्था की परीक्षा की जाती है।[2] बैल हमेशा बन्धन में रहता है।[3] आलसी बैल या तो चलता नही, अगर चलता है तो सात गाँवों तक को पार कर जाता है।[4] जो बैल नया-नया लाया जाता है, वह खूँटा तोड़ता है।[5] खेती तो वास्तव में बैलों से ही होती है।[6]

परवशता, आत्म-समर्पण तथा दया आदि के प्रतीक के रूप में 'गाय' शब्द का प्रयोग होता है। दूध न देने वाली गाय अपने बछड़े से अधिक प्रेम दिखलाती है किन्तु यह प्रेम गाय के मालिक को नही सुहाता।[7] इस प्रकार की गाय हमेशा दुःखद होती

---

१ खेल खिलाड़्या का, घोड़ा असवारा का।

२ देखिये—
मालवी कहावतें भाग १, (श्री रतनलाल महता), पृष्ठ ३६।

३ बलद जूड़ो कोनी गे्यो।

४ कै तो पैल बलद चालै कोनी र चालै तो सात गावा की सींव फोड़ै।

५. नयो बलद खूँटो तोड़ै।

६ बलदा खेती।

७ काटर कै हेज घणो (ठागर कै हेज घणो)

है।[1] दूध वाली गाय की तो लात भी अच्छी लगती है किन्तु विना दूध वाली को कोई नही पूछता।[2] जिस गाय को हरे घास की चाट लग जाती है, वह चरती-चरती दूर निकल जाती है।[3]

दूध आदि के लिए तो भैंस ही रखनी चाहिए चाहे वह सेर दूध ही क्यो न दे।[4] भैंस अपना रग तो नही देखती किन्तु छाते को देखकर चौंकती है।[5] भैंस के आगे बाँसुरी बजाना व्यर्थ है।[6] जूते में काँटा जिस प्रकार कष्टदायक होता है, उसी प्रकार प्रथम वार व्याही हुई भैंस भी दु:खदायक होती है।[7]

भैंसे से अधिक काम लिया जाता है, इसलिए उसका भगवान ही मालिक है।[8]

बकरी दूध तो देती है लेकिन मेंगनी करके।[9] प्रसिद्ध है कि गूगा जाटी अर्थात् भाद्र कृष्णा नवमी के बाद बकरियाँ दूध देना वन्द कर देती हैं—

"आयी गूगा जाटी, बकरी बूदा नाटी।"

बकरे की माँ कब तक कुसल मनावे ?[10] उसकी तो कभी-न-कभी बलि दे दी जायगी। शनिवार को पाडे, बकरे आदि की वलि दी जाती है। बकरे की माँ कितने शनिवार टाल सकेगी ?[11]

सिंह नैव गज नैव, व्याघ्र नैव च नैव च।
अजापुत्रं वलिं दत्ते दैवो दुर्वलघातकः॥

एक भेड जब कुएँ मे गिरती है तब सभी साथ जा पडती हैं।[12] यही भेडिया-धसान है।

कुत्तो की लडाई प्रसिद्ध है। यदि उनमे मेल हो तो वे गगा जी स्नान करके आ जायें।[13] कुत्ते की पूँछ १२ वर्षों तक दबी रही किन्तु जब निकली तभी टेढ़ी।[14]

बिल्ली तो हमेशा चूहो को मारती रहती है, इसलिए उससे कभी कोई भलाई का काम नही होता।

---

१. कै मारै सीरी को काम, कै मारै कातर को जाम।
२. धीणोड़ी कै सागै हीणोड़ी मारी जाय।
३ चूटी लागी गाय, बावड़ै तो बावडै नहिं आधी नीकल जाय।
४ धीणू भैंस को, हो भावै सेर ही।
५ भैंस आपको रग तो देखै ना, छत्तै नै देख कर बिदकै।
पाठान्तर: भैंस बोरो देख 'र चमकै।
६ भैंस आगै बाँसरी बजाई गोवर को इनाम।
७ भैंस्या में लाटी ने पगरखी में काटी।
८ पाडे को अर पराई जाई को राम बेली।
९ बकरी दूद तो दे पण दे मींगणी करके।
१० बकरे की मा कद ताई खैर मनावै।
११. बकरा की मा के थावर टालसी।
१२ एक भेड़ कुवै में पड़ै तो सै जा पड़ै।
१३ कुत्ता रे सप होवै तो गगा जी नहायि आवै।
१४. कुत्तै की पूँछ बारा बरस दबी रही पण जद निकली जद ही टेढी।

"बिल्ली नै मगल गावता देख्या कोनी।"

एक कहावत मे बतलाया गया है कि काम करने के लिए जाते समय बिल्ली की भाँति चुपचाप तथा सावधानीपूर्वक जाना चाहिए और काम करके आते समय कुत्ते की भाँति जल्दी से आ जाना चाहिए।

"मिन्नी री चाल जावणों, कुत्ते री चाल आवणों।"

गधा मूर्खता का प्रतीक समझा जाता है। लाख साबुन से धोने पर भी वह घोडा नही बन सकता। कूडे के ढेर पर लोटना उसको अच्छा लगता है। ज्येष्ठ के महीने में उसके मस्ती चढती है।[1]

शृगाल की जब मौत आती है तब वह गाँव की तरफ भगता है।[2] गीदड और लोमडी के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत राजस्थान मे अत्यन्त प्रसिद्ध है—

गादड मारी पालखी, मे धडूक्यां हालसी।
लूगा चढगी बाँस, उतरै चोथै मास॥

अर्थात् पलत्थी मार कर गीदड बैठ गया है, बादल गरजने पर ही वह हिलेगा। लोमडी बाँस पर चढ गई है, वह चौथे महीने नीचे उतरेगी। इस कहावत के मूल में गीदड और लोमडी की प्रसिद्ध लोक-कथा है।

पक्षियों-सम्बन्धी

पक्षियो के सम्बन्ध मे अपेक्षाकृत कम सख्या में कहावतें उपलब्ध होती हैं। कुछ कहावतें नमूने के तौर पर यहाँ दी जा रही हैं—

१. काग पढ़ायो पींजरो, पढग्यो च्यारू वेद।
समझायो समझै नहीं, रह्यो ढेढ को ढेढ॥

अर्थात् कौवा यदि चारो वेद पढ जाय तब भी उसमे समझ नही आती।

२. कागा किसका धन हरै, कोयल किसकू देय।
जीभडल्या के कारणै, जग अपणो कर लेय॥

अर्थात् कौवा किसका धन हरण करता है और कोयल किसको देती है? मधुर वाणी के कारण ही कोयल सब का मन हर लेती है।

३ कबूतर नै कुवो ही दीखै।
कबूतर को कुआँ ही दिखाई देता है।

४. कमेडी बाज नै कोनी जीतै।
पडुकी बाज को नही जीत सकती।

"पखेरुवा में काग" कहकर कौवे को सब पक्षियो में चालाक बतलाया गया है।

राजस्थानी भाषा में ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमे पक्षियो की चेष्टाओ द्वारा वर्षा-विषयक तथ्यो को प्रकट किया गया है। ऐसी कहावतो का उल्लेख वर्षा-सम्बन्धी कहावतो के प्रसग मे किया गया है।

(२) क्षुद्र-जन्तु सम्बन्धी

क्षुद्र जन्तुओ मे पतजलि ने नकुल, गोधा, सर्प, भ्रमर, चीटी आदि का समावेश

---

१. गधेडै कै जेठ में भूदी चढै।
२. गादडा की मौत आवै जणा गाँव कानी भाजै।

किया है।[1] राजस्थान में जहाँ "बिस्वे बिस्वे पर सर्प" बतलाये जाते हैं, क्षुद्र-जन्तुओं में से सर्प के सम्बन्ध में सबसे अधिक कहावतें मिलती हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

(१) साँप चालती मौत है।
(२) सांप रै खायोड़ै नी अदीतवार कद आवै ?
(३) सांपां कै मावसियां को के साख ?
(४) सांप को खायोडो बीछयां सैं के डरै ?
(५) सांप सगलं टेढो मेढो चालै पण बिल में बडै जद सीदो हो ज्याय।
(६) साप सलीट्या सदा ई देख्या इजगर बावो अबकै।
(७) साप कै चीखलै को के बडो अर के छोटो ?
(८) सापां का ब्या मे जीभा की लपालप।
(९) साप रो सोवै, बिच्छू रो रोवै।
(१०) साप की रांद झाड़ूलो काटै।
(११) बिरडिये को गारड कोनी।

अर्थात् साँप चलती हुई मौत है। झाड़-फूँक कर इलाज करने वाले रविवार के दिन साँप के काटे का इलाज करते हैं किन्तु जिसे साँप काट खाय, उसका तो तुरत-फुरत इलाज होना चाहिए। इतवार तक वह प्रतीक्षा कैसे करे ? साँपो मे मौसी का कोई सम्बन्ध नही होता। जिसे एक बार साँप ने काट लिया है, वह बिच्छुओ के काटने से फिर नहीं डरता। साँप सब जगह टेढा-मेढा चलता है किन्तु अपने बिल मे प्रवेश करते समय सीधा हो जाता है। छोटे-मोटे साँप तो अब तक बहुत देखे थे किन्तु अजगर बाबा तो अभी देखने को मिला। साँप के बच्चे का क्या छोटा और क्या बडा ? साँपो के विवाह मे केवल जीभो की लपालप होती है। साँप का काटा हुआ सोता है और बिच्छू का काटा हुआ रोता है। गारुडी ही साँप का इलाज करता है किन्तु बिरडिये सर्प का उपचार उसके पास भी नही। बिरडिया एक छोटा बिलाद (स० वितस्ति) के बराबर जहरीला सर्प होता है। यह "कुम्हारिया साँप" भी कहलाता है।

कुछ कहावतो मे गोह (गोधा), सांडा, छिपकली आदि का भी उल्लेख हुआ है। जैसे,

(१) गोह की मौत आवै जरा ढेढ रा खालड़ा खडबडावै।
गोह की मौत आती है तब वह चमार के चमडो को खडखडाती है।
(२) गोह चाली गूगै नैं, सांडो बोल्यो मेरी भी जात है।
गोह गूगे की जात देने के लिए चली तो साँडे ने कहा कि मुझे भी "जात" देनी है।

साँडा छिपकली की जाति का, पर आकार में उससे कुछ बडा एक प्रकार का जंगली जन्तु होता है।

---

1. India as known to Panini by Dr V S. Agrawala p 221-222.

(३) सूधी छिपकली चुग चुग जिनावर खाय।

ऊपर से सीधी दिखलाई पडने वाली छिपकली चुन-चुनकर छोटे-छोटे कीडो को खा जाती है।

क्षुद्र कीटो से सम्बन्ध रखने वाली कहावतो के भी उदाहरण लीजिये—

(१) ग्रासी चांदा छठ, कातर मरसी पट।

भाद्र कृष्णा षष्ठी के बाद कातरें नष्ट हो जाते हैं।

(२) भेभल राणी चोरटी, रातो सिट्टा तोडती।

"भेभल" एक पखो वाला छोटा कीट होता है जो ग्राश्विन के महीने मे फसल को नुकसान पहुँचाता है।

(३) पेड़-पोधों-सम्बन्धी

राजस्थान में पेड-पौधो-सम्बन्धी बहुत-सी कहावतो की ग्राशा नही की जा सकती। फिर भी इस प्रकार की कहावतो का यहाँ ग्रभाव नही है। यथा,

(१) कैर को ठूंठ टूट ज्यागो, लुलंगो नहीं।

करील की लकडी टूट भले हो जाय पर झुक नही सकती।

(२) गांव गांव खेजडी।

राजस्थान के गाँव-गाँव में शमी का वृक्ष मिलता है।

(३) रूप का रूडा रोहीडॆ का फूल।

रोहीडे के फूल देखने मे ही सुन्दर होते हैं।

(४) भांखडी का कांटा को ग्रागडा तांई जोर।

भाँखडी से तात्पर्य छोटे गोखरू (गोक्षुरक) से है। भाँखडी का काँटा ग्रपने उद्‌गम-स्थान तक ही शरीर के ग्रन्दर चुभ सकता है ग्रर्थात् वह बहुत छोटा होता है।

(५) ग्रवल ग्रवल मेवाड।
बवूल बवूल मारवाड॥

ग्रर्थात् ग्रवल द्वारा मेवाड तथा बवूल द्वारा मारवाड की सीमा निर्धारित होती है। ग्रवल एक पीले फूलो वाले झाड-विशेष का नाम है ग्रौर बवूल एक सुपरिचित काँटेदार वृक्ष-विशेष है।

(४) ग्राशीर्वादात्मक

कुछ कहावतें ग्राशीर्वादात्मक होती हैं। 'सीली हो, सपूती हो, सात पूत की मा हो, वूड सुहागण हो, दूवां न्हाग्रो, पूता फलो" जैसे कहावती वाक्य इसी वर्ग के ग्रन्तर्गत समझिये। इस प्रकार की ग्राशीर्वादात्मक लोकोक्तियाँ विश्व की प्राय सभी भाषाग्रो में मिलती हैं। कश्मीर की एक इसी प्रकार की कहावत में कहा गया है कि ग्रगर तुम जमीन खोदो तो वह तुम्हारे लिए सोना बन जाय।

(५) खेल-सम्बन्धी

राजस्थानी भाषा में ऐसी भी ग्रनेक कहावतें हैं जिनका सम्बन्ध खेलो से है। खेल-सम्बन्धी कुछ लोकोक्तियाँ लीजिये—

(१) देखो राजा भोज नै, कूण जिनावर खाय।
सरण वरण की ठीकरी, सरणाटा करती जाय ॥

ठेकरी (घडे के खडित टुकडे) फेंकने के खेल मे लडके उमग मे भरकर इन पंक्तियों को दोहराया करते हैं।

(२) अगड वुहार जीजी वगड़ वुहार, तू वी पटकूँ तेरे द्वार।
अगड़ वगड़ मे पड्या जजीर, कोइ ल्यो तुक्को, कोइ ल्यो तीर ॥

(३) क—मे वावो आयो सिट्टा फली ल्यायो।
ख—आयो वावो परदेसी, घरणा जमाना कर देसी।
ग—ढकणी में ढेकलो, मेह वरसै मोकलो।
घ—मेह मामो आयो, मंगल गीत गवायो।
ङ—डोकरिया कै डरूँ डरूँ, खाली कोठा भरूँ भरूँ।

वर्षा-ऋतु मे अत्यन्त हर्षित होकर खेल खेलते हुए वच्चे इन उक्तियों का प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं।

ऊपर की पक्तियो मे मेह को वावा के रूप में कल्पित कर लिया गया है। इस प्रकार के सम्वन्ध-स्थापन से एक प्रकार की आत्मीयता आ जाती है।

(६) वार्त्ता-सम्बन्धी

कुछ ऐसी उक्तियाँ भी राजस्थान मे कहावत की भाँति प्रचलित हैं जिनका प्रयोग लोग वातचीत अथवा कथा कहने में करते हैं। उदाहरणार्थ—

(१) वात केतां वार लागे, हुकारे वात प्यारी लागे।
अर्थात् वात कहने में देर लगती है, 'हुँकारा' देने से वात प्रिय लगती है।

(२) वात में 'हुँकारो', फोज में नगारो।
फौज में जैसे नगारा, उसी तरह वात मे 'हुँकारा' वाछनीय है।

(३) जियै वात को कैणहार, जियै हुकारा को देवणहार।
वात का कहने वाला चिरजीवी हो और चिरजीवी हो 'हुँकारा' देने वाला।

(४) वात जसी झूठी नहीं अर साकर जसी मीठी नहीं।
अर्थात् वात जैसी कोई वस्तु झूठी नही और शक्कर जैसी मीठी नही।

(५) रामजी भला दिन दें।
भगवान् भले दिन दें।

वार्त्ता के प्रारम्भ में निम्नलिखित कहावती दोहे का प्रयोग किया जाता है—

सदा भवानी दाहणी, सनमुख होय गणेश।
पच देव रिच्छा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥

आशीर्वाद, खेल, वार्त्ता आदि के सम्वन्ध में जो कहावतें ऊपर दी गई हैं, उनको बहुत से विद्वान् अर्थत कहावतें स्वीकार नही करते। इस प्रकार के वाक्य वहुप्रचलित होकर रूढ हो गये हैं किन्तु फिर भी इन्हें कहावत के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन नहीं

किया जा सकता ।[1]

(७) हास्य और व्यंग्य-सम्बन्धी—

यथार्थ जगत् से सम्बद्ध होने के कारण प्राय सभी भाषाओ की कहावतो मे हास्य और व्यग्य की मात्रा किसी न किसी रूप में अवश्य मिलती है। राजस्थानी भाषा की कहावतो में भी स्थान-स्थान पर हास्य और व्यग्य का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(क) हास्य

(१) ठाकरां ठाडा किसाक ? कह—कमजोर का तो वैरी पड्यां हां !

हे ठाकुर ! आप कितने पराक्रमी है ? उत्तर—कमजोर के तो पूरे शत्रु है।

(२) साधवां कै कसो सुवाद ? माई, अणविलोयो ही आवा दे !

एक साधु किसी के घर छाछ माँगने गया। छाछ मथने वाली स्त्री ने कहा कि छाछ अभी मथी नही गई है। साधु ने कहा—विना मथी हुई (मलाईयुक्त) ही आने दो, हम साधुओ को स्वाद से क्या मतलव ?

(३) सोनार थोडो सोनो दीजें। के सोनो मांग्यो थोडो ई मलै तो कै पड़ी जीभ कंइ करै !

किसी ने सुनार से थोडा सोना माँगा। सुनार ने उत्तर दिया कि सोना भी कही माँगे मिलता है ? तब उस माँगने वाले ने कहा—यह तो ठीक, किन्तु मेरी ठाली जीभ क्या करे ? इसे भी कुछ काम चाहिए।

(४) बाबाजी सख तो सुदियाँ बजायो कह—देव को ना देव का वाप को, टका नो काट्या है।

किसी ने कहा—वावाजी ! आज तो शख सदा से जल्दी वजाया। वावाजी ने उत्तर दिया—शख न तो देवता का है, न देवता के बाप का है, नौ टके देकर मैंने इसे खरीदा है, मैं जो चाहे सो करूँ !

राजस्थानी कहावतो में ठाकुर, चौधरी तथा वावाजी को लेकर अनेक स्थानो पर हास्य की अच्छी सृष्टि की गई है।

(ख) व्यग्य

हास्य की अपेक्षा भी इन कहावतो मे व्यग्य के अधिक उदाहरण मिलते हैं। यथा—

(१) कुराडा सूँ कपडा धोवै, र करतार मारी रक्षा करज्ये।

कुल्हाडे से कपडे धोता है और कहता ... करतार ! मेरा रक्षा करना।

(२) ऐरण की चोरी करै, करै सुई को दान।
चढ़ चौवारे देखसी, कद आवै वीमाण॥

निहाई जैसी वडी वस्तु की तो चोरी करता है और सुई जैसी तुच्छ वस्तु का

१ देखिये :
Introduction to Racial Proverbs by S G Champian p XIV

दान करता है। तिस पर भी आप अपने को बड़ा भारी दानी समझते हैं और आशा करते हैं कि आप को लेने के लिए स्वर्ग से विमान आयेगा !

(३) सारी रामायण सुणली पण यो वेरो कोन्या पड्यो के राकस राम हो क रावण।[1]

सारी रामायण सुन ली पर यह पता नहीं चला कि राक्षस राम था या रावण !

(४) म्हारे सैं आग ल्याई, नांव धर्‌यो वैसुन्दर।

हमारे यहाँ से आग माँग कर लाई और नाम रखा वैश्वानर !

(५) आप गरूजी कातरा मारै चेलां नै परमोद सिखावै !

स्वयं गुरुजी तो कातरे मारते हैं और शिष्यों को उपदेश देते हैं। कातरा एक प्रकार का कीट होता है जो वर्षा-ऋतु में पैदा होकर उसी ऋतु के अन्त में नष्ट हो जाता है।

प्रबन्ध में स्थान-स्थान पर राजस्थानी कहावतों के हास्य और व्यंग्य पर संकेत किया गया है। इसलिए अतिप्रसंग के भय से यहाँ और उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं।

---

१. पाठान्तर—
"सगली रामायण सुण' र पूछी कै सीता कुण ही ?"

चतुर्थ अध्याय

उपसंहार

राजस्थानी कहावतो का भविष्य

यह अनुभव-सिद्ध बात है कि हमारे पूर्वज कहावतो का जितना प्रयोग करते थे, उतना हम नही करते। शहरो की अपेक्षा गाँवों में कहावतो का अधिक प्रचार है किन्तु अब गाँवो के भी बहुत से लोग शहरो की तरफ जाने लगे हैं। इसके अतिरिक्त गाँवों में भी अब क्रमश बढते हुए शिक्षा-प्रचार के कारण कहावतें अपेक्षाकृत कम सुनने में आ रही हैं।

ऐसी स्थिति मे नई कहावतो का बनना भी एक प्रकार से रुक-सा गया है। इसका अर्थ यह तो नही है कि इस जमाने में एक भी नई कहावत नही बनती, कुछ कहावतें तो नई बनती ही होगी किन्तु वे प्रकाश मे उतनी नही आती। क्या हुआ, यदि कभी कोई नई कहावत सुनने को मिल गई किन्तु अधिकाश में पीढी-दर-पीढी हम लोग पुरानी कहावतो की ही आवृत्ति देखते आ रहे हैं।

नई कहावतें क्यों नहीं बनतीं ?

नई कहावतो का निर्माण आज क्यो नही होता ? इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। ऐसा जान पडता है कि आज शिक्षा के बहुविध प्रचार के कारण विचारो को अभिव्यक्त करने की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हमारे सामने आ रही हैं और उन्ही को लेकर शिक्षित व्यक्ति अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। पुरानी कहावतो को याद रखने तथा नई कहावतो के निर्माण करने की उनको कोई आवश्यकता ही प्रतीत नही होती।

परिस्थितियों की भिन्नता के कारण हमारे जीवन के अनुभवो के मूल्य भी बदल रहे हैं। ऐसी स्थिति मे कुछ कहावतें तो ऐसी हैं जो पुरानी पड रही है। उदाहरण के लिए कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(१) **"ढलगो नामीनोरै तो क्यूं हलियो टोरै"**—अर्थात् सारस्वत व्याकरण के **'नामिनोर'** सूत्र तक जो अध्ययन कर चुका, उसे जीविकोपार्जन के लिए खेती करने की आवश्यकता नही होती किन्तु हम देखते हैं, सारस्वत व्याकरण तो दूर, सस्कृत के शास्त्री और व्याकरणाचार्यों को भी जीवन-सघर्ष के इस युग में जीविकोपार्जन के लिए बडी कठिनाइयो का सामना करना पडा रहा है।

(२) "हजारी बजारी"—अर्थात् जो सहस्राधीश है, वह बाजार से चाहे जो चीज उधार खरीद सकता है, उसे कोई रोकने वाला नही। किन्तु आज हम देखते हैं कि जिसके पास केवल एक हजार रुपया है, उसकी इतनी साख कहाँ ? यह तो उस जमाने की बात है जब रुपये की क्रय-शक्ति बहुत थी, रुपये के अवमूल्यन मे अब पहले जैसी स्थिति नही रह गई। इसलिए 'हजारी बजारी' जैसी लोकोक्तियाँ भी अब कहावत-विषयक सग्रहो की ही शोभा बढा रही हैं।

(३) "राजाजी रे गुल री भींता"—अर्थात् राजा के यहाँ तो गुड की दीवारें होगी। वह जब चाहता होगा, उनमे से गुड तोड-तोड कर खा लेता होगा। यह उस अबोध व्यक्ति की कही हुई उक्ति है जिसकी दृष्टि में गुड ही समस्त वैभव का प्रतीक और दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है, किन्तु इस प्रकार की कहावतें आज शिक्षित-वग द्वारा उपहास की दृष्टि से देखी जा रही हैं।

अन्य विश्वासो से सम्बन्ध रखने वाली वहुत सी कहावतें भी ग्रामीण लोगों मे वहुधा सुनाई पडती हैं जिनमे चिपटे रहना उनके स्वभाव मे शामिल हो जाता है। कहावतो मे ऐसी अद्भुत शक्ति पाई जाती है कि वे प्रयोक्ताओ की ओर से अपने लिए आस्था और विश्वास के भाव उत्पन्न करा लेती है किन्तु जिस आस्था के मूल में अन्ध-विश्वास काम कर रहा हो, वह अनर्थ की ही जड सिद्ध हो सकता है। समय-परिवर्त्तन के साथ-साथ जहाँ परम्परागत रूढियो और रीति-रिवाजो में भी परिवर्त्तन होना चाहिए, वहाँ कहावतें कभी-कभी वाधक सिद्ध होती हैं। हमारे देश में स्वर्णिम अतीत के स्वप्न देखने की प्रथा-सी चल पडी है, वर्त्तमान परिस्थितियो के अनुरूप अपने जीवन को साँचे मे ढाल कर उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करना हमे नही भाता। अतीत मे प्रेरणा प्राप्त करना बुरा नही किन्तु इसका ध्यान रहना चाहिए कि अतीत हमारी उन्नति के मार्ग में रोडे न अटकाने पावे। कहावतो की आधार-शिला पर हमारी परम्परागत रूढियो के स्तूप चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहते है। इस दृष्टि से कुछ कहावतो मे वह गतिशीलता नहीं मिलती जो पल-पल परिवर्त्तित और विकसित होते हुए जीवन का अनिवार्य अग है, कभी-कभी तो वे पुराण-पथी मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने लगती है जिसमे आधुनिक जीवन का स्पन्दन नही मिलता, इसलिए जो निश्चेष्टता, निर्जीवता अथवा जडता की प्रतीक मात्र रहकर लोक-जीवन के समुचित विकास में वाधा पहुँचाने लगती हैं। विचार-स्वातन्त्र्य की भावना को भी इस प्रकार की कहावतें पनपने नही देती क्योकि अधिकतर कहावतें आदेशात्मक हैं। वे व्यक्ति के कर्त्तव्य पर तो जोर देती हैं किन्तु व्यक्ति को समाज से भी कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होने चाहिएँ, इस सम्बन्ध मे कोई उल्लेख वहाँ नहीं मिलता। वे एक प्रकार से नुसखा रख देती हैं, ऐसा नुसखा जो वावा आदम के जमाने मे वना था। जीवन के प्रति नये दृष्टिकोण को वे ग्रहण नही करने देती, प्रतिभा को जीवन के नये-नये मार्गों की ओर वे उन्मुख नही करती। वातावरण की एकरूपता जडता का ही दूसरा नाम है। निष्क्रिय भाव मे वातावरण को अपना लेना सजीवता का लक्षण नही है। कुछ व्यग्यात्मक कहावतें ऐसी होती हैं जिनमें व्यक्तिगत और सामाजिक वुराइयो की ओर कटाक्ष किया जाता है। वुराइयो की ओर ध्यान आकृष्ट करके ऐसी कहावतें अवश्य हमारा सुधार करने मे सहायक होती हैं।

जो हो, कहावतो के विरुद्ध आधुनिक शिक्षित वर्ग की एक प्रतिक्रिया-सी आज दृष्टिगोचर हो रही है। ग्रामीण जीवन में परिवर्त्तन वहुत कम होता है, सभ्यता का आलोक भी वहाँ धीरे-धीरे पहुँचता है किन्तु नागरिक जीवन में नूतन विचारो का परस्पर आदान-प्रदान होता रहता है। नागरिक जीवन में वुद्धि की काट-छाँट और कतर-व्योंत वहुत चलती है, इसलिए विश्लेषण की प्रधानता होने के कारण कहावतें

वहाँ प्रायः नही सुनाई पडती। दार्शनिक ग्रन्थो मे भी जहाँ विचार-विश्लेषण की प्रमुखता रहती है, वाल की खाल निकाली जाती है, कहावतो का प्रयोग नही के वरावर होता है।

किन्तु आज कल लोकोक्तियो के निर्माण न होने का सबसे वडा कारण तो शायद यह है कि आधुनिक युग का मनुष्य जीवन के सत्यो के प्रति वडा सशयालु हो गया है। इस सशयालुता में उसे अपनी ज्ञान-गरिमा के भी दर्शन होते हैं। सामाजिक गोष्ठियो मे भी विदग्धतापूर्ण वाक्य मौके वे मौके कहे जाते हैं। श्रोतागण उन वाक्यो को सुनकर आनन्द उठाते हैं, थोडी देर के लिए उनका मनोरजन हो जाता है। वाक्यों पर काट-छाँट भी चलती है, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से उन पर विचार भी कर लिया जाता है। सत्य आज अनेक रूपो में अपने आपको प्रकट कर रहा है। विभिन्न विषयो पर विभिन्न दृष्टिकोणो मे लिखी हुई इतनी पुस्तकें आज दिखलाई पड रही हैं कि जिनको देखकर मनुष्य की बुद्धि हैरान है। इसलिए कोई तथ्य जव उपस्थित किया जाता है तो उसके अनेक अपवाद सहज ही निकल आते हैं, क्योंकि एक ही तथ्य को विभिन्न दृष्टिकोणो से परखने के साधन आज उपलब्ध हैं और फिर विज्ञापन की कृपा से ज्ञान किसी एक स्थान पर सचित नही है। पुस्तको और शोध-पत्रिकाओ के मुक्त आदान-प्रदान द्वारा ज्ञान किसी एक देश अथवा जाति-विशेष का एकाधिकार नही रह गया है। पुस्तको में जीवन के अमोल अनुभव सुरक्षित हैं, इसलिए आधुनिक युग के मानव को कहावतो की उतनी आवश्यकता ही प्रतीत नही होती।

कोई युग ऐसा था जव लिखित पुस्तको और प्रेस के अभाव मे सूत्र-शैली का विशेष महत्त्व था और लोग ज्ञान के लिए तरसते थे किन्तु अव पुस्तको की वाढ-सी आ रही है। इतनी पुस्तकें आज निकल रही हैं कि सामान्य पाठक के लिए यह भी मुश्किल हो रहा है कि वह किस पुस्तक को पढे और किसको न पढ़े ?

नई कहावतो के न वनने का एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि आज उनके निर्माण के लिए कोई क्षेत्र ही नही रह गया है। अकेले यूरोप में तीस-चालीस हजार से कम कहावतें न होगी। कहते हैं कि केवल स्पेन मे लगभग १५,००० कहावतें होगी।[१] हिन्दुस्तान और एशिया को भी यदि सम्मिलित कर लिया जाय तो कहावतो की सख्या लाखो पर जा पहुँचेगी। इनमे जीवन के प्राय प्रत्येक क्षेत्र से सम्वद्ध कहावतें मिल जायँगी। गुण-दोष की कहावतें, जातिगत विशेषताओ को प्रकट करने वाली कहावतें, पेशे-सम्वन्धी कहावतें, नीति-वोधक कहावतें, व्यवहारोपयोगी कहावतें, अग-उपागो की त्रुटियाँ प्रकट करने वाली कहावतें, निर्धन और रङ्क-विषयक कहावतें, पुरुषार्थ और प्रारव्ध-सम्वन्धी कहावतें, वशानुगत सस्कारो की प्रवलता प्रकट करने वाली कहावतें, स्वभाव-सम्वन्धी कहावतें, ऋतु, नक्षत्र तथा त्यौहार-विषयक कहावतें, स्त्री-चरित्र तथा स्त्री विषयक कहावतें, पुरुषो तथा स्त्रियो के नामो-सम्वन्धी कहावत, परमेश्वर की कृपा तथा उसकी शक्ति का परिचय देने वाली कहावतें, वनी वनाई मिल जाती हैं

१ किसी किसी ने अकेले स्पेन की कहावतों की सख्या करीव २५-३० हजार मानी है। देखिये—Lessons in Proverbs by R. C Trench, p 51–52

जिससे नवीन कहावतों के निर्माण का कोई अवकाश ही नहीं रह जाता।[1]

विश्व का लोकोक्ति-साहित्य भी कम नही है। सन् १९३० में Wilfrid Bonser ने "Bibliography of Works Relating to Proverbs" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमे कहावतो-सम्बन्धी ४००४ पुस्तको का उल्लेख है। सन् १९३० के वाद भी अनेक पुस्तकें छपी होगी, Bonser से अनेक पुस्तको के नाम छूट भी गये होंगे। फिर भी कुल मिलाकर विश्व का कहावती साहित्य ६,००० पुस्तको से तो किसी हालत में कम न होगा।

हमारा कर्तव्य—कहावतें चाहे आज न वन पा रही हो और चाहे शिक्षितो के एक वर्ग की कहावतों के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी हो रही हो किन्तु फिर भी मानव-विज्ञान और लोकवार्ता-शास्त्र का जब से वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा है तव से कहावतो के अध्ययन का भी महत्त्व वढा है। राजस्थानी भाषा मे भी, जैसा ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा गया है, कहावतो के अनेक सग्रह प्रकाशित हुए हैं किन्तु उन सग्रहो में सब कहावते आ गई हैं, ऐसा किसी भी हालत मे नही कहा जा सकता। कहावतो के सग्रह को पूरा कर लेना वास्तव मे किसी एक व्यक्ति का काम नही, इसके लिए अनेक दिशाओ में सामूहिक प्रयत्न किये जाने चाहिएँ। "प्रवोध वत्रीशी" का उपसहार करते हुए गुजराती भाषा के प्रसिद्ध कवि माडण ने यथार्थ ही कहा था—

"अवनी रही उखाणा भरी, ते किम सकाइ पूरी करी ?
इम करता जे जे साभर्या, ते ते ग्रन्थ मांहि विस्तरा।"[2]

यह पृथ्वी ही कहावतो से भरी है, जहाँ से खोदिये, कहावतें निकल पड़ेंगी। किन्तु यदि कहावतें सगृहीत न हुई तो आज के युग में उनके विलुप्त हो जाने का भय है। राजस्थान के वडे-बूढो के मुख से विशेष कहावतें सुनने को मिलती हैं, कहावतो का अर्थ और प्रयोग भी वे भली भाँति समझते हैं। हो सकता है, सग्रह के अभाव मे उनके साथ ही वे कहावतें भी समाप्त हो जायँ। इसलिए राजस्थानी भाषा की जितनी कहावतें मिल सकें, उन सवका सग्रह किया जाना चाहिए। सगृहीत कहावतें वैज्ञानिक पद्धति पर वर्गीकृत की जाकर प्रकाशित होनी चाहिए। वर्तमान में उपलब्ध सामग्री के आधार पर राजस्थानी कहावतों का जो अध्ययन मैंने किया है, आशा है, इस क्षेत्र मे आगे काम करने वालों के लिए यह किसी अश मे उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

---

१. देखिये—चवराकियानु तत्त्वदर्शन (फिरोजशाह रुस्तमजी महेता), पृष्ठ २०४–२०५।
२ कवि माडणकृत प्रवोध बत्रीशी, फार्वस गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ ७६।

परिशिष्ट १

"अधूरा पूरा" तथा कहावती पद्य

"अधूरा पूरा" तथा असंख्य कहावती पद्य राजस्थान में प्रचलित हैं जिनमें से प्रमुख यहाँ दिये जा रहे हैं। "अधूरा पूरा" के स्वरूप के विषय में प्रबन्ध में यथास्थान विचार प्रकट किये जा चुके हैं।

अ

१. अकल सरीरा ऊपजै, दियी न आवै सीख।
अणमाग्या मोती मिलै, मांगी मिलै न भीख॥
२. अणबोल्यो थो लाख को, बोलि अर पाकी बाट।
तीनूं म्होर गमाय कै, अन्त जाट को जाट॥

आ

३. आ ए धानी वर फरां, पड़ै दुनी सैं सोर।
तेरा मरगा बादस्या, मेरा मर्‌या वजीर॥
४ आड तरन्ती देख कर, तू क्यूं तरियो काग।
होड पराई जे करै, तल मुंडी ऊपर पग्ग॥
५. आदर बिन पिय उठ गयो, चली मनावण धाय।
घर आयो नाग न पूजियै, बांबी पूजण जाय॥
६. आधो रह्‌यो ऊखली, आधो रह्‌यो छाज।
सागर साटै धण गई, मधरो मधरो गाज॥
७. आया सूं बोली नहीं, पिउ चाल्यो करि रोस।
आप कमाया कामडा, दई न दीजे दोस॥
८. आरत मीठी आपकी, घर में मांदो पूत।
सांवण छाछ न घालती, जेठ मे काचो दूद॥
९ आसोजां रा तावडा, जोगी होग्या जाट।
बामण होग्या रोवडा, बणिया होग्या भाट॥

ऊ

१० ऊंची टोपी गुहिर गभीर, एक भेड नै नव जण सीर।
तिण बांधण नै नहीं को ठाम, सूधी चिड़ी कपूरी नाम॥
११ ऊंटां के अक्कल नहीं, अकल बिना का ऊन।
पगा उभाणा यै फिरै, क्यूं न करावै जूत॥
१२ ऊगे जिम दूणा अमल, लीजे खूब अठेल।
गर जाणी रा खेल में, घर जाणी रा खेल॥
१३ ऊजड खेडा फिर बसै, निरधनिया धन होय।
गयो न जोबन बावडै, मुआ न जीवै कोय॥

१४. ऊपर थाली नीचे थाली, मांय परोसी ढोड चुहाली ।
पुरसण वाली तेरा जणी, हाती घोड़ी हलहल घणी ।।

ए

१५. एक गाडर सात जणां सीर, नित को नाइ रधावं खीर ।
तिण खीर रो करो विचार, देखें तने तीर की धार ।।

१६. एक गाय नं गोकल वासो, पडं घणी नं नित को सांसो ।
दही दूध नं विलोय खाघो, ऊंगतड़ी बीछावण लाघो ।।

१७. एक टटू नं चढू जण सीर, जा बांध्यो सागर के तीर ।
समदर तीर नहीं छै जायगा, डोड घोड़ो डीडवाणं पायगा ।।

१८. एक तो बहू अर कूदणी, जोबन नन्दन छायो ।
भागण कूदण नाचण लागी, ज्यूं बानर नै बीछू खायो ।।

१९ एक भेड़ सात रो सीर, नितरा जेठ रंधावे खीर ।
रात्यूं रही खेंचाताणी, खाता खाण न पीता पाणी ।।

२०. एक मोर पावे ही सारी, ता पर अब मैं बात गुदारी ।
अब तो कछू न आवं दाय, वासी बचै न कुत्ता खाय ।।

ऐ

२१. ऐरण की चोरी करै, करै सुई को दान ।
चार निकल कै वेखसी, कद आवं बीमान ।।

२२. ऐराकी री पागडी, सापुरसां री बांह ।
वालो ठाकुर सेवियं, वलती लीजै छाह ।।

क

२३. कंवरजी म्हैलां सूं उतर्‌या, भोडल को भलको ।
बतलायां बोलै नहीं, र बोलै तो डबको ।।

२४. कई नै बंगण बायला, कई नै बेगण पच्च ।
कई नै चढ्ढै आफरो, कई नै चढ्ढै मच्च ।।

२५. कडवी वेल की कडवी तूमडी, अड़सठ तीरथ न्हाई ।
गंगा न्हाई गोमती न्हाई, मिटी नहीं कड़वाई ।।

२६. कबहुं न हंस कर कर गहे, रिस कर गहे न केस ।
जैसा कथा घर भला, वैसा ही परदेस ।।

२७ करडो बांधै पागड़ी, घुरड लिवावै नक्ख ।
फरड़ो पैरै मोचडी, प्रणसरज्या ही दुक्ख ।।

२८. करम हीण को ना मिलं, भली वस्त रो भोग ।
दाख पकै जद काग कै, होत कंठ मे रोग ।।

२९ कहणी तो राचे नहीं, रहणी राचे राम ।
सपने री सौ मोहर सूं, कोडी सरे न काम ।।

३०. कांकर दोरी करहलां, थल दोरी तुरियांह ।
गाडी दोरी गिरसां लांबी नार नरांह ।।

३१ कां गोरख कां भरथरी, कां गोपीचद गोड।
सिद्ध गया ही पूजियै, सिद्ध रह्यां री ठोड॥
३२ काग पढ़ायो पींजरै, पढगो च्यारू वेद।
समझायो समझ्यो नहीं, रह्यो ढेड को ढेड॥
३३. कागा लाख बिकाइया, कोठी लाख पचाय।
बधी भारी लाख की, खुल्ली वीखर ज्याय॥
३४. काच कथीर न सोहै मोती, ढेढ चमार न सोहै धोती।
दुसमण वात कही अणहूती, जद तद खता खुवावै गोती॥
३५ काज सर्‌या दुख बीसर्‌या, वैरी होग्या वैद।
साजो तन साजा हुया, काढण लागा फैद॥
३६ का तो तिल कोरा भला, का लीजे तेल कढाय।
अध बिचली कूलर बुरी, तेल तिलां सूं जाय॥
३७. कारज किणही न आवसी, वास विहूणो गुल्ल।
रुप रूडो गुण वाहरो, रोहीडै रो फुल्ल॥
३८ कित कासी कित कासमिर, खुरासान गुजरात।
दाणो पाणी परसराम, बांह पकड ले जात॥
३९ किरपण कै दालद नहीं, ना सूरां कै सीस॥
दातारां कै धन नही, ना कायर कै रीस॥
४०. कूण सुणै किण कहूं, सुण तो समझै नांय।
कहवो सुणबो समझवो, मन ही को मन मांय॥

ख

४१. खड सूखा गोभू मुआ, वाला गया बिदेस।
औसर चूका मेहडा, बूठा काह करेस।
४२ खोटा करम आद सूं कीन्या, घर खाती माग्या दीन्या॥
के कहूं राजा वेर वेर, घडै थो गडुवो होगी भेर॥

ग

४३ गगाजी कै घाट पर, बामण वचन परमाण॥
गगाजी की रेणका, तूं चन्नण कर कै मान॥
गगाजी कै घाट पर, जाट वचन परमाण॥
गगा जी की मींडकी, तू गऊ करकै जाण॥
४४. गई वात नै जाण दे, रही वात नै सीख।
तूं क्यूं कूटै वावली, मुवै सांप की लीक॥
४५ गटमण गटमण माला फेरै, अै ही काम सिधां का।
दीखत का वावाजी दीखै, नीचै खोज गधा का॥
४६ गडगड हंसे कुम्हार की, माली का चर रह्या बूंट।
तं के हंसै कुम्हार की, किण कड़ बैठै ऊंट॥

४७. गये जोबन डबर करै, सो माणस अग्यान।
भक्ती भूँडा दीसजै, पाके भाडे काम॥
४८ गरज दियानी गूजरी, अब आई घर कूद।
सांवण छाछ न घालती, अर बैसाख दूद॥
४९. गरज दिवानी गूजरी, नूत जिमावै खीर।
गरज मिटी गूजरि नटी, छाछ नहीं रै वीर॥
५० गरू चेलो लालची, दोनूं खेलै डाव।
दोनूं ही बै डूबसी, बैठ पथर की नाव॥
५१. गाडर आणी ऊन नैं, बैठी चरै कपास।
बहू ज आणी काम नैं, बैठी करै फरमास॥
५२ गाय न जाणे गीत, और अलापै राग मे।
परिहाँ दोढ वकाइन, रूंख, मियाजी वाग में॥
५३. गुड कोनी गुलगुला करती, ल्याती तेल उधारो।
परींडे मे पाणी कोनी, बलीतो कोनी न्यारो॥
५४. गूंगा तेरी सैन में, समझै कुल में दोय।
कै गूंगा की मावड़ी, कै गूंगा की जोय॥
५५ गैली पैली समझी नहीं, मेंदी का रग कहाँ गया।
अब प्रेम नहीं उस प्यारी से, वह पानी मुलतान गया॥
५६. गोद लडायो गीगलो, चढ्यो कचेड्याँ जाट।
पीर लडाई पदमणी, तीनूं हि बारावाट॥

घ

५७ घण गाजण वरसे नहीं, घुसण कुता नह खाय।
घण वोल्या घर जावसी, अणबोल्या मर जाय॥
५८ घण मेहा मदिर चुवै, भूपति ही भाजन्त।
वैदा ही री राड हुवै, तेरू डूव मरन्त॥

च

५९ चाल कथ घर आपणै, छोड पुराणी आंट।
जे धन दीखै जावतो, (तो) आघो दीजै बांट॥
६०. चिड़ी चीख मारती, कागलिया जो सुणै।
सांची कही हैं सायराँ, जो वावै सो लुणै।
६१. चेला ल्यावै मांग कर, बैठ्या खावै म्हन्त।
राम भजन को नांव है, पेट भरण को पथ॥

छ

६२ छाछ घालतां छाती फाटै, दूध घालतां दोरो।
रोटी देता रोज आवै, वातां करणो सोरो॥
६३. छोटो छोटो मत करो, छोटो मूँ मोटी वात।
छोटो चंदा दूज को, दुनिया जोडै हात॥

ज

६४ जद की परणी तद की परखी, कदे न बोलें मन की हरखी ।
जद बतलाऊं कटकी बोलें, बालूं सोनूं कान जे तोडें ॥
६५. जांचें जोखें देखें परवांण, सूनी सेखी लाख में छांण ।
बोखा ऊदर सुलया धान, जहडा गुर तहडा जजमान ॥
६६. जीमणा न जूठणा, ना कंघो ना खाट ।
साप साप रै पावणा, जीभां रा लबलाट ॥
६७ जीव उहां पंजर इहां, हुई ज डामाडूल ।
कहो केतोइक जीवसी, वेल बिछूटो फूल ॥
६८. जूआ खेलें नै धन चाहै, पत्थर मांह तुरगम चाहै ।
पाणी ऊपर ऊडै गूडी, आज न बूडी काल्हे बूडी ॥
६९. जे निरदूखण परिहरी, तो हिव केही लाज ।
गाडै रै उलल्यां पछै, किसो विनायक काज ॥
७० जोवन गया बुढापा आया, प्रीत पुराणी तूटी ।
भला भया गुड मक्खी खाया, भिणभिणाट थें छूटी ॥
७१. ज्यूं छै त्यूं ही राखियें, विण सेवा तन काय ।
बंधी बुहारी लख लहै, खुल्ली बोखर जाय ॥

ठ

७२. ठाकर सूं घर छूटगो, भाडां लीनो भोग ।
तेली सूं खल ऊतरी, हुई वलीते जोग ॥
७३. ठाली बैठी डूमणी, घर मे घाल्यो घोडो ।
दूध बाजरी खावती, घास खोदवो दोरो ॥

ढ

७४. ढांढण रूंख न बैसियें, न छाया न धुप्प ।
बोलियें तो निबाहियें, नहितर भली ज चुप्प ॥

त

७५. तूं खत्राणी में पांडियो, तूं वेस्या में भाड ।
तेरे जिमाये मेरे जीमणें में पत्थर पडियो रै राड ॥
७६ तूं है माता बावली, भैंस गई है रावली ।
मैं हू खाती सैसो, वो ही कुहाडो वो ही बैंतो ॥
७७. तैं ही कत उतार्‌यो चित्त, हूं हीं और करूंगी मित्त ।
तूं मुज सेती कीधो ऐसो, नाचण पैठी घूंगट कैसो ।
७८. तन तोलो मन ताखडी, नैणा विणजणहार ।
औसर देख न विणजियो, सो वाणियूं गिवार ॥
७९. तेरो गई टपकलो, मेरी गई हनेल ।
विना मन का पावणा, तनै घी घालूं क तेल ॥

थ

८०. थ भाभीजी जीमल्यो, थारा काढ़ै न्होरा।
ऊँट तो कूद्यो ही कोनी, पैली कूदै वोरा॥

द

८१. दाव पाय दोनू बढ़े, कै हरि कै हरिनाथ।
उण वढ़ लम्बे पद किये, इण पद लम्बे हाथ॥
८२. दीखत ही नीको लगै, भवर न जाने भूल।
रंग रूडो गुण वायरो, रोहीडै रो फूल॥
८३. दी सुरही हाजर हुई, विनय सुणावै वात।
गावी हूत भजावियो, जमराजा इण जात॥
८४. दीहा जे कारज करत, सौ वैरी न करन्त।
दीह पलट्ट्यां रावणा, पाथर नीर तरन्त॥
८५. दुश्मन की किरपा बुरी, भली सैन की त्रास।
आडंग कर गरमी करै, जद वरसण की आस॥
८६. देख पराई चोपडी, पड मर वेईमान।
दोय घडी की सरमासरमी, आठ पहर आराम॥
८७. देख्या ख्याल खुदाय का, किसा रचाया रग।
खानजादा खेती करै, तेली चढै तुरग॥
८८ देवा दुवघा दूर कर, हर चरणां चित लाय।
मस्तक में घोड़ी लिखी (तो) खोल कुण ले ज्याय॥
८९. दैणो हुवै तो तुरत हि दीजै, कालिह सवारे देण न कीजै।
घड़ी मांहि घडियाला वाजै, गांम गयोड़ो सूतो जागै॥

ध

९०. धनवता कांटो लग्यो, स्हाय करी सब कोय।
निरधन पड़्यो पहाड़ सू वात न पूछी कोय॥
९१. धान न मिलतो धापको, लास पलासां तेल।
सीरो ही गरमी करै, देख दई का खेल॥

न

९२ नदी वहै सावण की दूण, पैलै काठै गुल री गूण।
हिया मांह विचारी दीठो, नै पिण ऊंडी, गुल पिण मीठो॥
९३. नणद भोजाई दुसी लडी, सालू जाय कुम्रै में पडी।
सुसरै जाय रै खाई फांसी, घर री हांण लोक री हांसी॥
९४ नाथे रा तिल, नाथो ही तोनारो, घर री निजर वर रो धुधकारो।
मामे रो व्याव, मां पुरसारी, जीमो वेटा रात अधारी॥
९५ निगुणो मांणस सगुणो कर लीजै, आप सो भार उणके सिर दीजै।
यूं ही करतां आपै छेह, वांके लाकट वांको वेह॥

९६. नोपत बावर साह की, लेंगो सांगो राण।
नवा घडाया बाजसी, नरवर गढ नीसाण॥

प

९७ पटै लिखाई मोठ बाजरी, मांगै चावल दाल
राघोचेतन यू कहै, चिट्ठी तो सभाल
९८ पर नारी पैनी छुरी, तीन ओड सं खाय।
धन छीजै जोवन हडै पत पचा मे जाय॥
९९ पर नारी स् प्रीतडो, वैर्या विच में वास।
नदी किनारे रूखडो, जद तद होय विणास॥
१०० पारेवा पाथर चुगै, करहा चुगै करी
कू भोजिन कासू दहै, चिन्त्या दहै सरीर।
१०१. पाव खांड ने जणां पचास, किण किण री हूं पूरू आस।
ठाकर मांडै वे वे ठाम, बूथी चिडी कपूरी नाम॥
१०२ पिव पासै सूता थका, हेज नहीं लवलेस।
जैसो कथो घर रह्यो, तैसो गयो विदेस॥
१०३ पीपल पूजण हूं गई, कुल अपणे री लाज।
पीपल पूज्यां हर मिलै, एक पथ दो काज॥
१०४ पुजारी की पागडी, ऊँटवाल की जोय।
विणजारा की मोचडो, पडी पुराणी होय॥

व

१०५. वखत वखत का मोल है, वाण्यो अकल उपाई।
राई का भाव रातै गया, अब टक्कै की सिर ढाई॥
१०६ वखत पड्यां रै वीर, तू म्हानै मोटा कर्या।
तिय टूटै रै वीर, वार कदे टूटै नहीं॥
१०७ वहु जीम्या भोजन दहै, चिंता दहै शरीर।
अघसीखी विद्या दहै, दहै कुबुद्धी वीर॥
१०८ वहुत दिनां घर प्रीतम आयो, आछो चीर पटोली लायो।
लाभो रांड न पूछी सैर, कालो मूडो लीला पैर॥
१०९. वांका रहज्यो वालमा, वांका आदर होय।
वांकी वन मे लाकडी, काट न सक्कै कोय॥
११० वांदर हो अर वड चढ्यो, विच्छू लाग्यो गात।
गैलो होय होय मद पियो, क्यू न करै उतपात॥
१११. वांमण रै घर वेटी जाई, ते लेई घर मे परणाई।
काण खोडी कुलखण घणा, धरम री गाय रा किसा दांत देखणा॥
११२ वाई रा वधन कट्या, भलो करी रुगनाथ।
सहजै चुडलो फूटग्यो, हलका हुयग्या हाथ॥

११३ बागर गाय बिडै मे-बासो, नित उठ रवै जीव नैं सांसो ।
दूध दही मैं कदे न खाधो, अलगे ही बिछायो लाधो ॥

११४ बाजरा दे बाजतरी, कुरदन्त्रो मत छेड़ ।
तनै बिराणी के पडी, तूं तेरी ही नमेड ॥

११५ बाड करी ही खेत नैं, बाड खेत नैं खाय ।
राजा डडै रैयत नै, कूक किसै घर जाय ॥

११६. बाप चराया बाछडा, माय उगाई बींत ।
कै जाणंगी बापडी, बड़ै घरां की रीत ॥

११७. बाबो गयो नो दिन, नौऊं आया एक दिन ।
लेखो कियो मन परचायो, बाबो कित गयो न आयो ॥

११८. बिगर बुलाई आगी आवै, काम करै अणहूवा ।
मांडो गिणै न जानियां, हूं लाडै री भूवा ॥

११६ बींझा बाड पलास री, अणछेडी खरराय ।
नुगरा माणस री प्रीतडी, पत सुगणां री जाय ॥

१२० बूडा गिणया न बालका, तडको गिणयो न सांझ ।
जणजण को मन राखतां, वेश्या रहगी बांझ ॥

१२१. वैठी सूती डूमणी घर में घाल्यो घोड़ो ।
दूद कचोलां पीवती, अब दूब खोदवा दोड़ो ॥

१२२. बैरी न्यूत बुलाइया, फर भायां सें रोस ।
आप कमाया कामडा, दई न दीजै दोस ॥

१२३ बोलण री हिम्मत नहीं, डर लागै सुण भूत ।
रांडां में रुलता फिरै, वै मावडिया पूत ॥

भ

१२४ भडारी रस्ते लग्यो, भाई दवारे चालि ।
ओसर चूको डूमणी, गावै आलपताल ॥

१२५ भणियां मागै भीख, अणभणियां घोडां चढै ।
सैणां मानो सीख, भाईडां भणज्यो मती ॥

१२६. मारिया सो झिलकै नहीं, झिलकै सो आधा ।
इण पुरखां की पारखा, बोल्या अर लाधा ॥

१२७. भाई को धन भाई खायो, विना बुलाए जीमण आयो ।
आखडियो पण पडियो नहीं, घी ढुल्यो तो मूंगा महीं ॥

१२८. भोलो अर भूंडो भलो, प्यारो घर रो पीव ।
देख पराई चोपड़ी, क्यूं तरसावै जीव ॥

म

१२६ मन जाणै हाथी चढूं, मोती पैरूं कान ।
हाथ कतरणी राम रै, राखैलो उनमान ॥

१३०. मन बात मन ही जाणै, काया जाणै आपदा ।
गीता अर्थ कृष्ण जाणै, माता जाणै सो पिता ॥

१३१ मरद को जोवन साठ वरस जे घर में होय समाई ।
नार को जोवन तीस वरस हर बैल को जोवन ढाई ॥
१३२ माँगियैं लूगडैं तोरी करैं, घर घर वडाई करती फिरैं ।
घर मे नहीं खांण नैं धांन, चावै ल्याय उधारो पान ॥
१३३. मूंड मुंडायो नाक कटाई, घर घर को फेर्‌यो द्‌वार ।
दोनूं खोई रे बूवना, श्रादेसां र जुहार ॥
१३४. मैं नहिं रूठी तूं किन रूठो, सारी रात सूतो अपूठो ।
उठि उठि कया करूं निहोरा, ऊंट न कूद्‌या कूद्‌या बोरा ॥

र

१३५. राघो तूं समझ्यो नहीं, घर श्राया था स्याम ।
दुवघा में दोनूं गया, माया मिली न राम ॥
१३६. राजा जोगी श्रगन जल, इनकी उलटी रीत ।
श्रलगा रहज्यो परसराम, थोडी पालैं प्रीत ॥

ल

१३७. लाख सयाणप कोडि वुघ, कर देखो सहु कोय ।
श्रणहोणी होणी नहीं, होणी होय सु होय ॥
१३८ लाखां लोहां चम्मडां, पहली किसा वखाण ।
वहू बछेरा डीकरां, नीवटियां परवाण ॥
१३९. लूंगां चढ़गी बांस, उतरैं चौथै मास ।
गादड मारी पालखी, मे घड्‌क्यां हालसी ॥
१४० ले पाडोसण झूंपड़ी, नित उठ करती राड ।
श्राघो वगड वुहारती, श्रव सारो ही वुहार ॥

व

१४१. वहू फिरी ऊ वेला सात, सासू जागी श्राधी रात ।
विरह चढी नैं काढ़ै फैंद, कुठोड खाधी सुसरो वैद ॥
१४२. वानर कहै मयारडी, सांभल् तूं मुझ वांणी ।
हूं श्रन्याय न को करूं, दूध को दूध पाणी को पाणीं ॥

स

१४३. सगुणां केरी प्रीतडी, सापुरसां री बांह ।
वालो ठाकुर सेवियैं, ढलती लीजै छांह ॥
१४४. सत मत खोश्रो सूरमा, सत खोयां पत जाय ।
सत की बांधी लिछमडी, फेर मिलैगी श्राय ॥
१४५. सन्यासी घर मांडियो, नवरंगी नारी परणियो ।
वुढापै विसल्यो डोकरो, बूडी गाय गल् टोकरो ॥
१४६. समैं वडो वलवान है, नर को के वलवान ।
कावां लूटी गोपका, वै श्ररजन वै वाण ॥

१४७. सम्पत थोड़ी रिण घणो, वैरीवाड़ै वास।
नदी किनारै रूंखड़ो, जद तद होय विणास॥
१४८ सम्मन समय विचार कर, अपणे कुल की रीत।
स्यारीखै सूं कीजियै, व्याह वैर अर प्रीत॥
१४९. सरद ऋतू री चानणी, हीण पुरुष री नार।
विन वरत्यां बोदी हुवै, मोतै री तरवार॥
१५०. सांई केरा डर नहीं, ना कुल केरी लाज।
तिण सूं केहा बोलणा, मुष्ट भली वछराज॥
१५१. सांच कहै थी मावडी, झूठ कहै था लोग।
खारी लागी मायडी, मीठा लाग्या लोग॥
१५२. साखी घर कर लूंकड़ी, दीना दाम उधार।
विरियां देख न विणजियो, सो वांणियो गिंवार॥
१५३ साठी को मिलियो सखी, विरहण बालै वेस।
जैसो कतो घर रह्यो, तैसो गयो विदेस॥
१५४ सापै मेल्ही कांचली, सज्जन छोड़्यो नेह।
सोढै मेल्हीं चाटसूं, जो भावै सो लेह॥
१५५ साहण हँसी साह घर आयो, विप्र हँस्यो गयो धन पायो।
तूं के हंस्यो रै बरड़ा भिखी, एक कला मैं नई सीखी॥
१५६ सीख सरीरां नीपजै, दियां न आवै सीख।
अणमांग्या मोती मिलै, मांगी मिलै न भीख॥
१५७. सुगन सरोधा, सिध का वाचा।
कोइक झूठा, कोइक साचा॥
१५८ सुख सोवै कुम्हार को, चोर न मटिया लेय।
गधियो वांध्यो खाट कै, चाक सिरहाणै देय॥
१५९. सुण कूंभा रावण कहै, आंण भराणां अक।
पाव पड्यां ही ना रहै, लाखां वातां लंक॥
१६० सुण पाडोसण पापणी, भल रीझाये सैण।
चार दिनां री चानणी, फेर अंधेरी रैण॥
१६१ सैलो पूछै पेल नै, कूंकर छूटै गैल।
घड़ी स्यात की धामामस्ती, सारा दिन की सैल॥
१६२. सो घोडा सो करहला, पूत सपूती जोय।
मेहा तो वरसत भला, होणी होय सो होय॥
१६३. सोक मुई नै पिउ घर आया, मन रा चींतोया फल पाया।
दुरजन केरा हियडा फूटा, विल्ली भागे छींका टूटा॥

ह

१६४. हंस आपकै घर गया, काग हुया परधान।
जाम्रो विप्र घर आपणै, सिंध किसा जजमान॥

१६५ हंसा जेहा ऊजला, पथ्थर जेहा चित्त।
काँधे घाली मेखली, जोगी किसका मित्त॥
१६६ हंसा समद न छोडियै, जै जल खारो होय।
डावर डावर डोलतां, भलो न कहसी कोय॥
१६७ हलवी जरदी ना तजै, खटरस तजै न आम।
शीलवन्त औगण तजै, गुण नै तजै गुलाम॥
१६८ हाय छिटक कूए गिरी, काढ न सक्कै कोय।
ज्यूं ज्यूं भीजै कामली, त्यूं त्यूं भारी होय॥
१६९ हाडा खीची कूकिया, धाए खड्यां घमसाण।
नवा घडाया वाजसी, नरवर रा नीसाण॥
१७०. हिरण खुरी दो आगली, धरती लाखपसाव।
वेह का घाल्या ना टलै, ज्यां फाँसी त्यां पाव॥
१७१ हिलन मिलन चितन मिटी, वय बीते करतूत।
जोगीडा रमता रया, आसण रही बभूत॥
१७२ हीयो फूटो हाली रो, ज्यो दूध भावै छाली रो।
हीयो फूटो घालवा वाली रो, ज्यो पींदो दीखै थाली रो॥
१७३. हूं आई जद तन्नै लाई, सागण भैण री सोक कवाई।
खूंणै बैठी सुरमो सारै, मारी नहीं पण पलको मारै॥
१७४ हे सखि कासूं करै घर बैठी, म्हारै साथि तू आवहि केठी।
न म्हे जांवां न बुरो कुहावां, गुड खांवां न म्हें कान विंधावा॥

परिशिष्ट २

प्रदेशों की तुलनात्मक कहावतें

(क) राजस्थानी और काश्मीरी कहावतें

नोट—काश्मीरी कहावतो के उद्धरण "A Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings by Rev. J. Hinton Knowles" से लिये गये हैं।

राजस्थानी	Kashmiri
१. राजा कै वेटै केरडी मारदी, म्हे पयू कूहाँ !	1 The pirs killed an ox, what have I lost that I should tell anyone
२. जेवडी वलगी पण वल् को गयो मा ।	2. The rope is burnt coal-black, but the twist is there plain enough
३. सीदी आंगलियां घी कोन्या नीकलै ।	3 Ghee is not to be taken with a straight finger.
४. साठी बुद नाठी ।	4 A man at sixty years is a fool
५. अठै ही भेडां को र्याडो, अठै ही भेड्या की घुरी ।	5 Where the shepherd's flock, there the leopard's lair.
६ गूगा तेरी सैन नैं समझै तेरी माय ।	6 Only a dumb man's parents understand a dumb man's speech
७. घाघरी को सास नजीक हो ज्याय ।	7 A Woman's relations are honoured but a man's relatives are despised
८. आओ मीयाँ छान उठाओ, हम वुड्ढा कोइ ज्वान वुलाओ। आओ मीयाँ खाणा खावो, विसमिल्ला भट हात घुमाओ।	8 "Get up, youngster and work." "I am weak and cannot." "Get up youngster, and eat something". "Where is my big pot ?"
९. मरे पूत की आँख कचौला सी ।	9. A lost horse is valued at sixty sovereigns
१०. काजीजी की बकरी मरी तो सारो गाँव भेलो हुयो, काजीजी मर्या	10 If a friend's mother dies, a thousand people remain

राजस्थानी	Kashmiri
तो कोई वात ईंकोनीपूछो !	beacause the friend is alive, but if the friend is dead, then there is nobody left.
११. नाम धापली, फिरै टुकडा माँगती ।	11. Not a rag over the body and her name Mali (wealthy).
१२ मैं वी राणी तू वी राणी, कूण भरै पैंडे को पाणी !	12. The mother-in-law is great, the daughter-in-law is also great, the pot is burnt, who will take it off the fire ?
१३. आप मरया जुग परलै ।	13. A Jackal got into the river, and it was as though the whole world had got in.
१४. हाथियाँ की गैल घणाँ ही कुत्ता घुसै ।	14. The dogs bark but the caravan goes on.

(ख) राजस्थानी और गुजराती कहावतें

नोट—गुजराती कहावतो के उद्धरण जमशेद जी नशरवानजी पीतीत द्वारा सम्पादित "केहवत माला" भाग २ से लिये गये हैं ।

राजस्थानी	गुजराती
१ व्याया नहीं तो जनेत तो गयाहाँ।	१ परण्या नहि, पण जाने तो गया ।
२. कीडी सँचै तीतर खाय, पापी को धन परलै जाय ।	२. पापी नु धन पल्ले जाय, कीडी सचरे ने तीतर खाय ।
३ घणी सराँही खीचडी दाँताँ कै चिपै ।	३ वखाणी खीचडी दांते वलगे ।
४. मानै तो देव नहीं तो भींत को लेव ।	४ पूजे तो देव नहि तो पथ्थर ।
५ पीसा भाड्याँ कै कोनी लागै ।	५. पैसा काई झाड पर पाकता नथी ।
६. सै आपकी रोट्याँ कै नीचै आँच लगावै ।	६ पोतानी रोटली हेटल सो ईगार लाणे ।
७ काल मरी सासू, आज आया आँसू ।	७. भोर मुई सासु ने होण आव्यॉ आँसु ।
८. वामण कह छूटै, वलद वह छूटै ।	८ ब्राह्मण कहि छूटे ने वलद वही छूटे ।
९. विणज करै सो वाणियूँ ।	९. वाणियो होय ते वणज करे ।
१० वाई का फूल वाई कै ही लागगा ।	१०. वाई नाँ फूल वाई ने, ने शोभा माहरा भाई ने ।
११ लुगाई कै पेट में टावर खटा ज्याय पण वात कोनी खटावै ।	११. वायडीना पेट माँ छोकरू रहे, पण वात नहि रहे ।
१२. वासी वचै न कुत्ता खाय ।	१२ वासी रहे न कुत्ता खाय ।

राजस्थानी	गुजराती
१३. कमजोर गुस्सा ज्यादा।	१३ बोत नवला से बोत गुस्सा।
१४. बंधी मूठी लाख की, खुल्ली खीखर ज्याय।	१४. बांधी मुट्ठी लाख नी, ने उँघाडी तो राखनी।
१५. करले सो काम भजले सो राम।	१५. भजे जेनो राम।
१६. टावर आप आपको भाग साथ ल्यावै।	१६. बच्चु पोतानु नसीब साथे लेतु ज आवे छे।
१७. मकोडो कह मा मैं गुड की भेली उठा ल्याऊँ। न्ह कडतू कानी देख।	१७ मकोडो माअेने कहे जे गोलनी गुण लाँउ तो के दीकरा ताहरी कमर नो लोंख एखोज छे।
१८ पूछता नर पंडित।	१८. पुछतो नर पंडित।
१९ राजा कै लडकै कैरडी मारदी, म्हे क्यूं कहां!	१९. वनिया ने बकरी मारी, मअे कायकु कहुं!
२० बामण को टावर तो भीख माग लेसी।	२० ब्राह्मण नो दीकरो भीख मागी ने खाय।
२१. बावाजी नमो नारायण! कह आज तेरै ही न्यूतो।	२१. बावाजी नमो नारायण! तो कै तेरे ज घर धामा।
२२. बावाजी! रामराम! कह आज तेरै ही न्यूतो।	२२ बावाजी सीताराम! तो कै 'तारे घेर धाम।'
२३ तीन बुलाया तेरा आया, भई राम की वाणी। राघोचेतन यूं कहै, द्यो दाल मे पाणी।	२३. पटेल कहै पटलाणी ने, सांभल माहरी वाणी। त्रण बोलाव्या, तेर आव्या, दे दाल मां पाणी।

(ग) राजस्थानी और बंगला कहावतें

नोट—बगला कहावतो के उदाहरण A Collection of Proverbs in Bengali and Sanskrit edited by an experienced teacher तथा श्री सुशीलकुमार दे के "बाङ्ला प्रवाद" से लिये गए हैं।

राजस्थानी	बँगला
१. नाचण लागी तो घूंघट किसो?	१. नाचिते लागिले घोमटार कि काज?
२. सुई, सुहागो सापुरष सांठै ही सांठै।	२ छूँट, सोहागा सुजन, भागा गडेन तिन जन।
३ सो सुनार की, एक लूहार की।	३. सेकवार ठूकठाक, कामारेर एक घा।
४. बगल मे छोरो, गाव में ढिंढोरो।	४. कोले छेले, सहरे ढँडरा।
५. भलै को जमानो ही कोनी।	५. भाल मनुषेर काल नाइ।
६ आपकै हार्योडै की अर लुगाई कै मार्योड़ै की कठेई दाद फरयाद कोनी।	६. आपनार हारा अर स्त्रीर मारा।
७. बिल्ली कै भाग को छींको टूटगो।	७. बिडालेर भाग्ये शिका छिंडियाछे।

राजस्थानी	बंगाली
८ छाज तो बोलै तो बोलै चालणी के बोलै जेकै ठोतर सो वेज।	८ चालनी बले छुँचके तोर पोंदे व्रड छेंदा।
९. खोई नय नणद कै नांव।	९ उडो खई गोविंदाय नम.।
१०. काम करै कोनी, खावण नै नार।	१० काजे कम, खेते यम।
११ नांव धापली, फिरै टुकडा मांगती।	११ काना पूतेर नाम पद्मलोचन।
१२ सोडी सिणगार करै इतणै में बाजार उठ जाय।	१२ साज करिते दोल फुराइल।
१३. इन्दर की मा भी तिसाई ही रही।	१३. अन्नपूर्णा यार घरे, से कांदे अन्नेर तरे।
१४. पाव चून चोवारै रसोई।	१४ चाल नाइ चूला नाई, हाटेर माझे राजत्व।
१५ घणा मीठा मैं कीडा पडै।	१५. मिष्टि आमेइ पोका धरे।

(घ) राजस्थानी और मराठी कहावतें

नोट—मराठी कहावतो के उदाहरण "Racial Proverbs by S G. Champion" से लिये गये हैं।

राजस्थानी	Marathi
१ फिरै सो चरै, बँध्यो भूखा मरै।	1 The animal that moves about will find pasture.
२ ज्यूं ज्यूं भीजै कामली, त्यूं त्यूं भारी होय।	2 A blanket becomes heavier as it becomes wetter.
३ क्यूं आंधो न्यूतै, क्यूं दो बुलावै।	3 If you invite a blind man, you will have two guests.
४. धर्म री गाय रा दांत कँई देखणा?	4 A gift cow - Why, has it no teeth?
५. राई घटै न तिल वधै या करमा री रेख।	5 Who is able to wipe off what is written in the forehead?
६. व्या कह मनै मांड देख। चेजो कै मनै चलाय देख।	6 Marriage says "Try me and see," a house says, "Build me and see."
७ सात मामा को भाणजो भूखो मरै।	7 The guest of two houses dies of hunger

(ङ) राजस्थानी और पंजाबी कहावतें

नोट—पंजाबी कहावतो के उदाहरण C F. Usborne की 'Punjabi Lyrics & Proverbs' से लिये गये है।

राजस्थानी	Punjabi
१. भगवान दे जणा छप्पर फाड र ई दे दे।	1. When God gives, he gives through the roof
२. बालक देखै हीयो, बडो देखै कीयो।	2. Man looks to deeds; the child to love.
३. मिया बीबी राजी तो के करैगो काजी ?	3 When man and woman agree, what can the Kazi do ?
४. चतर नै चौगणी, मूरख नै सौ गणी।	4. One's own wit and one's neighbour's wealth, a wise man multiplies them by four, a fool by hundred
५ चोरी को गुड मीठो।	5. Stolen sugar is sweetest.
६. म्हारी ई बिल्ली र म्हानै ई म्यांऊँ।	6 Our own cat and it mews at us
७ ऊँट तो अरडावता ही ज लदीजै।	7. A camel will always grunt, load or no load
८. सीर की होली फूकण की होय है।	8. Form a partnership and have your hair pulled.
९. हाकिम कै अगाडी र घोडै कै पिछाडी।	9 Never stand before a judge or behind a horse
१०. धान पुराणा, घृत नया, अर कुलवती नार। चौथी पीठ तुरग री, सुरग निसानी च्यार॥	10. Old grain, new butter, a well-bred wife and the back of a horse, these are the four marks of heaven
११. आप मर्‌या जुग परलै।	11. When one dies, it's the end of the world,
१२. आंधा कै आगै रोवै, आपका दीदा खोवै।	12. It's wasting your eyes to weep before a blind man
१३. कागलो हस हाली सीखं हो, आपकी भी भूलगो।	13. The crow wanted to learn how to walk like partridges, they came back having forgotten how to walk like crows.

१४. राख पत रखाय पत ।	14. One's honour is in one's own hands.
१५. उतावलो सो बावलो, धीरो सो गम्भीर ।	15 The hasty are mad, the slow wise

(च) राजस्थानी और भोजपुरी कहावतें

नोट—भोजपुरी कहावतो के उदाहरण हिन्दुस्तानी, जून १९४६ के अक में प्रकाशित 'मध्य भोजपुरी कहावतें' शीर्षक लेख से लिये गये हैं।

राजस्थानी	भोजपुरी
१. एक टको मेरी गाँठी, मूगद खाऊँ क माठी।	१ अधेला गाँठी चूरी पहिरो की माठी।
२ आव बैल मनै मार।	२ आव बैल मोहि मार।
३ एक तवा की रोटी, के छोटी के मोटी।	३ एक तवा क रोटी, का छोटी का मोटी।
४. फूड चालै, नो घर हालै।	४ फूहर चलै नव घर डोलै।
५. ठाडो मारै भी अर रोण भी कोनी दे।	५ वरियरा मारै रोयै न देय।
६ बाप न मारी मींडकी बेटो तीरदाज।	६ बाप न मारल भेजुरी बेटा तीरंदाज।
७. व्याया नहीं तो जनेत तो गयाहाँ।	७ बिआह न भयल बाय त मडवो में ना गयल बाटी।
८. पांवरी सौड र बनाती कूंची।	८ रहर क टट्टी, गुजराती ताला।

(छ) राजस्थानी और तेलुगु कहावतें

नोट—तेलुगु कहावतो के उदाहरण 'Selection of Telugu Proverbs by Captain M. W Carr, Madras 1869' से लिये गये ।

राजस्थानी	Telugu
१. लुगाई की अक्कल गुद्दी में होय।	1 A woman's sense is in the back of the head.
२. उतावलो सो बावलो।	2 A hasty man is not wise
३. घाघरी को साख नजीक हो ज्याय।	3 Your wife's people are your own relations, your mother's people are distant relations, your father's people are enemies because they are co-heirs.
४. आहारे व्योहारे लज्जा न कारे।	4 In eating and in business you should not be modest.
५ चोर नै कह चोरी कर, साहूकार नै	5 Like waking the master, and

राजस्थानी	Telugu
कह जाग ।	giving the thief a stick. He opens the door for the robber and then awakens the master
६ चेजो कह मनै चलार देख, ब्या कह मनैं मांडर देख ।	6. Try building a house, try making a marriage.
७. एक हाथ सै दे अर दूसरै सै ले ।	7. Doing with this hand and receiving the reward with that.
८. सांच कहयां झाल उठै ।	8 A man starts with anger when the truth is told him [1]
९. हाथी कै गैल अयां ही कुत्ता घुसै ।	9. Like dogs barking at an elephant
१०. एक आंख कों के खोलै अर के मीचै ?	10. One eye is no eye, one son is no son.
११. पेट सै किसब करावै ।	11. Ten million arts only for getting food.
१२. वंदर नारेल् को के करै ?	12. Like a monkey with a co-conut who can't use it but won't give it up.
१३. मीठै कै कीडी लागै ।	13 Ants come of themselves where there is sugar-cane.
१४ रोयां विना मा भी वोवो कोनी दे ।	14. Unless the child cries, the mother will not give it suck.
१५. मा गैल डीकरी ।	15. As is the mother, so is her daughter.
१६. मूंड मुंडातां ही ओला पड्या ।	16. When the poor man was about to anoint his head, it began to hail
१७. जीभड़लो मेरी आल्पताल्, ठोला सह मेरो लाडलो कपाल् ।	17. The tongue talks at the head's cost.
१८. राख पत, रखाय पत ।	18. Give honour, get honour.
१९. दाई सं पेट छानो कोनी ।	19. Like covering the body be-fore the mid-wife.

1. It is truth that makes a man angry (Latin Proverb) Truth produces hatred (Latin Proverb)

राजस्थानी	Telugu
२०. सारी रामायण सुणली श्रौर पूछे सीता कैकी भू ?	20 Like asking what relation Sita was to Rama after listening to the whole Ramayana
२१ सीधी श्रागली घी कोनी नीकलै ।	21. Without bending the finger even butter cannot be got
२२ सेर नै सवा सेर मिल ज्याय ।	22. For one seer, a seer and a quarter
२३ चिडा चिड़ी की के लडाई ? चाल चिडा, मैं श्राई ।	23. A quarrel between man and wife only lasts as long as Pesara seed stays on a looking glass
२४. गोद में छोरो गाव में ढिढोरो ।	24 He looks for his ass and sits on its back.
२५. जूठया हाथ सें गँडकडो भी कोन्या मारै ।	25 He will not even throw his leavings to the crows.
२६. एक चणूं को दाल ।	26. One blow and two pieces
२७ टुकडा दे दे बछडा पाल्या । सींग हुया जद मारण चाल्या ।	27 He petted it as a Kitten, but when it grew into a big cat, it tried to bite him.
२८. निकमो नाई पाटला मूंडै ।	28 The barber without work shaved the cat's head
२९ घी डूल्यो तो मूंगा मांही ।	29. (a) Like the ghee falling into milk pudding. (b) The bread broke and fell into the ghee
३० कीडी पर कटक ।	30 Are you to attack a sparrow with a ब्रह्मास्त्र ?
३१ मरे पूत की श्रांख कचोला सी ।	31. The dead infant is always a fine child
३२. बारै बरस सें बाझ ब्याई पूत ल्याई पांगलो ।	32 When after being long childless, Lokaya was born to them, Lokaya's eye was sunken.
३३ श्राग लग्यां कुश्रो खोदै ।	33 To make swords when the

राजस्थानी	Telugu
	war comes
३४. खाल पराई लीफडो, ज्याणू भुस मे जाय।	34. To cut into another man's ear is like cutting into a felt hat.
३५ आगली पकडतो पकडतो पूंच्यो पकड लियो।	35. Like taking possession of the whole house when asked to come in for a while.
३६ वासी बचै न कुत्ता खाय।	36 No food for a fly nor offering for a snake

(ज) राजस्थानी और तमिल कहावतें

नोट—तमिल कहावतो के उदाहरण S G. Champion की 'Racial Proverbs' मे लिये गये हैं।

राजस्थानी	Tamil
१ लुगाई कै गुदडी में अक्कल हुवै।	1 A woman's thoughts are after-thoughts
२ घर री मांडण इस्तरी।	2. A wife is the ornament of the house
३ बादरै वाली चांदी है।	3. A scar on a monkey never heals.
४. साची कही 'र भाटै की दई।	4. He who is truthful may be the enemy of many.
५ साप कै चीखलै को के वडो र के छोटो ?	5 There is no distinction between big and little when you are talking about snakes
६ भूख कै लगावण कोनी, नींद कै विछावण कोनी।	6. Hunger knows no taste nor sleep comfort.
७ चालणो रस्ता को हों भांवै फेर ही।	7. Although the way goes round, go by it

टिप्पणी—इन उदाहरणो मे कही-कही कहावतो के साथ मुहावरे भी आ गये हैं।

परिशिष्ट ३

राजस्थानी भाषा के कुछ "लौकिक न्याय"

(क) जीभ-रस न्याय

एक व्यक्ति चलते-चलते किसी के घर पहुँचा। गृह-स्वामी उपस्थित नहीं था। उसने गृह-स्वामिनी से कहा—मेरे पास दाल-आटा सब कुछ है, केवल चूल्हे पर रसोई बना लेने दे। गृह-स्वामिनी ने उसे ऐसा करने की इजाजत दे दी। उसने चूल्हे पर दाल चढ़ा दी किन्तु जब दाल भली भांति उबल नही पाई तो उसने गृह-स्वामिनी से कहा—"अरी निपूती! कुछ अच्छी-सी लकडी तो दे जिससे दाल उबल जाय।" "निपूती" सबोधन गृह-स्वामिनी को बहुत अखरा। उसने कहा—"जैसे तुम आये हो, वैसे ही यहाँ से चले जाओ। यदि कही गृह-स्वामी आ गये तो तुम्हारी खैर नही।" इतने मे गृह-स्वामी भी आ गये और उस व्यक्ति को दाल हाथ मे लेकर उसी समय घर से बाहर निकल जाना पडा। लोगो ने पूछा—"यह पानी क्या टपक रहा है?" उसने उत्तर दिया—"यह मेरी जीभ का रस है। यदि मैं अपनी जीभ वश मे रखता और शिष्टजनोचित वर्ताव करता तो आज मेरी यह हालत क्यो होती?"

(ख) पाली पंचायती न्याय

पाली में किसी समय पचो का बडा जोर था। सब तरह के झगडे-टटे पञ्च ही निपटाया करते थे और उनके फैसले को भी सभी शिरोधार्य करते थे। एक बार दो जनो के लेन-देन का झमेला उनके पास आया। एक ने दूसरे को १०० रुपये उधार दे रखे थे। लेने वाला अत्यन्त गरीब था और पूरा रुपया चुकाने में असमर्थ था। पच भी इस बात को भली भाँति जानते थे। इसलिए उन्होने फैसला दिया कि कर्जदार ऋण-दाता को १०० रुपये के स्थान मे केवल पचास रुपये दे दे। ऋणदाता से उन्होंने कहा—देख भई, पूरे सौ रुपये तो वापिस मिलने मुश्किल हैं। २०-२५ रुपये तो तुम भी छोड ही देते, २५ रुपये हम लोगो के कहने से छोड दो। इस प्रकार कम से कम आधी रकम तो तुम्हारे पल्ले पड जायगी, अन्यथा तुम पूरी रकम से हाथ धो बैठोगे। कर्जदार से उन्होने कहा—देख भई, १०० रुपये तुमने उधार लिये थे, हमने आधे कर दिये हैं। अब ५० रुपये तो तुम्हे हर हालत मे चुका ही देने चाहिएँ। दोनो ने पचो की बात मान ली और झगडा निपट गया। इस प्रकार पाली के पच दोनो आसामियो को समझा-बुझा कर "अधफाडिया" न्याय कर दिया करते थे।

(ग) बारहठ घोडी-न्याय

एक बारहठजी किसी बड़े सरदार के यहाँ ठहरे हुए थे। सयोगवश उन्ही सरदार के पास एक दूसरे समीपवर्ती ठिकाने के ठाकुर साहब का भी आगमन हुआ। अपना बडप्पन दिखाने के लिए समागत ठाकुर साहब ने बारहठ से बडी नम्रता के साथ कहा कि कभी इस सेवक की झोपडी को भी पवित्र कीजिये। थोडी देर अपने

काम की बातें करके ठाकुर साहब वापस चले गये। उन्हें यह स्वप्न में भी ख्याल न था कि बारहठजी सचमुच ही आ धमकेंगे। दस-बीस दिनो के बाद बारहठजी सरदार के यहाँ से सम्मानित होकर विदा हुए। वे अपने साथ एक घोडी रखते थे। ज्यों ही घोडी पर सवार होकर बारहठजी अग्रसर हुए, उन्हे उन ठाकुर साहब के आग्रहपूर्ण निमंत्रण की याद आ गई। ठाकुर साहब का गाँव अधिक दूर नही था। मध्याह्न होने के पहले-पहले बारहठजी ठाकुर साहब के दरवाजे पर जा पहुँचे। बारहठजी को घोडी के साथ देखते ही ठाकुर साहब के होश उड गये। बारहठजी घोडी से उतर पडे और लगाम थामकर ठाकुर साहब से "जय गोपीनाथजी की" की। ठाकुर साहब स्तब्ध हो गये। बारहठजी ने कहा "ठाकरां ! इस घोडी को कहाँ बाँधू ?" ठाकुर साहब ने चुप-चाप अपनी जीभ निकाल दी और बोले—इसके बाँध दीजिये। यह उस समय चुप रहती तो आज यह नौबत क्यो आती ?

(घ) भडार कुत्ता न्याय

एक कुत्ता किसी साधु के भण्डार मे घुस गया। बाबाजी के यहाँ धरा ही क्या था ? शिष्य ने कहा—बाबाजी, भडार मे कुत्ता घुस गया। बाबाजी ने उत्तर दिया—कुत्ते को भडार मे ही बन्द कर दो। कुत्ता आया था कुछ खाने के लोभ से, बन्द अलग हो गया !

(ङ) मूँछ-चावल-न्याय

एक ठाकुर था जिसके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी किन्तु ठकुराई की ठसक के कारण वह अपनी हालत का किसी को पता नहीं चलने देता था। घर में बाजरे की खिचडी बनती और घी तो कभी वार-त्यौहार ही सुलभ होता। किन्तु ठाकुर भोजन करके जब कभी बाहर निकलता तो चन्द्र-धवल वस्त्र पहने रहता और मूँछो पर चावल चिपके रहते। लोग समझते कि ठाकुर बडा रईस है, तभी तो प्रति दिन चावल खाता है, दूसरो को तो चावल के दर्शन भी दुर्लभ हैं।

इस प्रकार ठाकुर मूँछो के चावलो द्वारा अपनी लाज ढकता रहता था।

टिप्पणी—इस प्रकार के बहुत से न्याय लेखक ने सग्रहीत किये हैं, जिनमें से नमूने के तौर पर पाँच ऊपर दे दिये गये हैं।

परिशिष्ट ३

राजस्थानी भाषा के कुछ "लौकिक न्याय"

(क) जीभ-रस न्याय

एक व्यक्ति चलते-चलते किसी के घर पहुँचा। गृह-स्वामी उपस्थित नहीं था। उसने गृह-स्वामिनी से कहा—मेरे पास दाल-आटा सब कुछ है, केवल चूल्हे पर रसोई बना लेने दे। गृह-स्वामिनी ने उसे ऐसा करने की इजाजत दे दी। उसने चूल्हे पर दाल चढ़ा दी किन्तु जब दाल भली भाँति उबल नही पाई तो उसने गृह-स्वामिनी से कहा—"अरी निपूती! कुछ अच्छी-सी लकडी तो दे जिससे दाल उबल जाय।" "निपूती" सबोधन गृह-स्वामिनी को बहुत अखरा। उसने कहा—"जैसे तुम आये हो, वैसे ही यहाँ से चले जाओ। यदि कही गृह-स्वामी आ गये तो तुम्हारी खैर नही।" इतने मे गृह-स्वामी भी आ गये और उस व्यक्ति को दाल हाथ मे लेकर उसी समय घर से बाहर निकल जाना पडा। लोगो ने पूछा—"यह पानी क्या टपक रहा है?" उसने उत्तर दिया—"यह मेरी जीभ का रस है। यदि मैं अपनी जीभ वश मे रखता और शिष्टजनोचित बर्ताव करता तो आज मेरी यह हालत क्यो होती?"

(ख) पाली पचायती न्याय

पाली मे किसी समय पचो का बडा जोर था। सब तरह के झगडे-टटे पच ही निपटाया करते थे और उनके फैसले को भी सभी शिरोधार्य करते थे। एक बार दो जनो के लेन-देन का झमेला उनके पास आया। एक ने दूसरे को १०० रुपये उधार दे रखे थे। लेने वाला अत्यन्त गरीब था और पूरा रुपया चुकाने मे असमर्थ था। पच भी इस बात को भली भाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने फैसला दिया कि कर्जदार ऋण-दाता को १०० रुपये के स्थान मे केवल पचास रुपये दे दे। ऋणदाता से उन्होंने कहा—देख भई, पूरे सौ रुपये तो वापिस मिलने मुश्किल हैं। २०-२५ रुपये तो तुम भी छोड ही देते, २५ रुपये हम लोगो के कहने से छोड दो। इस प्रकार कम से कम आधी रकम तो तुम्हारे पल्ले पड जायगी, अन्यथा तुम पूरी रकम से हाथ धो बैठोगे। कर्जदार से उन्होने कहा—देख भई, १०० रुपये तुमने उधार लिये थे, हमने आधे कर दिये है। अब ५० रुपये तो तुम्हे हर हालत मे चुका ही देने चाहिएँ। दोनो ने पचो की बात मान ली और झगडा निपट गया। इस प्रकार पाली के पच दोनों आसामियो को समझा-बुझा कर "अधफाडिया" न्याय कर दिया करते थे।

(ग) बारहठ घोडी-न्याय

एक बारहठजी किसी बडे सरदार के यहाँ ठहरे हुए थे। सयोगवश उन्ही सरदार के पास एक दूसरे समीपवर्त्ती ठिकाने के ठाकुर साहब का भी आगमन हुआ। अपना बडप्पन दिखाने के लिए समागत ठाकुर साहब ने बारहठ से बडी नम्रता के साथ कहा कि कभी इस सेवक की झोपडी को भी पवित्र कीजिये। थोडी देर अपने

काम की बातें करके ठाकुर साहब वापस चले गये। उन्हे यह स्वप्न में भी ख्याल न था कि बारहठजी सचमुच ही आ धमकेंगे। दस-बीस दिनो के बाद बारहठजी सरदार के यहाँ से सम्मानित होकर विदा हुए। वे अपने साथ एक घोडी रखते थे। ज्यो ही घोडी पर सवार होकर बारहठजी अग्रसर हुए, उन्हे उन ठाकुर साहब के आग्रहपूर्ण निमत्रण की याद आ गई। ठाकुर साहब का गाँव अधिक दूर नही था। मध्याह्न होने के पहले-पहले बारहठजी ठाकुर साहब के दरवाजे पर जा पहुँचे। बारहठजी को घोडी के साथ देखते ही ठाकुर साहब के होश उड गये। बारहठजी घोडी से उतर पडे और लगाम थामकर ठाकुर साहब से "जय गोपीनाथजी की" की। ठाकुर साहब स्तब्ध हो गये। बारहठजी ने कहा "ठाकरां! इस घोडी को कहाँ बांधू ?" ठाकुर साहब ने चुप-चाप अपनी जीभ निकाल दी और बोले—इसके बांध दीजिये। यह उस समय चुप रहती तो आज यह नौबत क्यो आती ?

(घ) भंडार कुत्ता न्याय

एक कुत्ता किसी साधु के भण्डार मे घुस गया। बाबाजी के यहाँ धरा ही क्या था ? शिष्य ने कहा—बाबाजी, भडार मे कुत्ता घुस गया। बाबाजी ने उत्तर दिया—कुत्ते को भडार में ही बन्द कर दो। कुत्ता आया था कुछ खाने के लोभ से, बन्द अलग हो गया !

(ङ) मूँछ-चावल-न्याय

एक ठाकुर था जिसके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी किन्तु ठकुराई की ठसक के कारण वह अपनी हालत का किसी को पता नही चलने देता था। घर में बाजरे की खिचडी बनती और घी तो कभी वार-त्योहार ही सुलभ होता। किन्तु ठाकुर भोजन करके जब कभी बाहर निकलता तो चन्द्र-धवल वस्त्र पहने रहता और मूँछो पर चावल चिपके रहते। लोग समझते कि ठाकुर बडा रईस है, तभी तो प्रति दिन चावल खाता है, दूसरो को तो चावल के दर्शन भी दुर्लभ हैं।

इस प्रकार ठाकुर मूँछो के चावलों द्वारा अपनी लाज ढकता रहता था।

टिप्पणी—इस प्रकार के बहुत से न्याय लेखक ने सग्रहीत किये हैं, जिनमें से नमूने के तौर पर पांच ऊपर दे दिये गये हैं।

सहायक पुस्तकों की सूची

English

A Dictionary of Hindustani Proverbs *by* S. W Fulton, Edited *by* R. C. Temple, Trubner & Co , London, 1886

Bihar Proverbs *by* John Christian, Published *by* Kegan Paul, Trench Trubner & Co Ltd , 57 & 58 Ludgate Hill, London, 1891

Burmese Proverbs & Maxims *by* James Gray, Published *by* Trubner & Co , Ludgate Hill, London, 1886

Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings *by* Rev J Hinton Knowles, Published *by* Thacker Spink & Co , London

Encyclopaedia of Religion & Ethics Vol. X *by* Hastings, Published *by* T & T Clark, 38, George Street, Edinburgh, 1918

Marathi Proverbs *by* Rev A Munwaring, Printed at the Clarendon Press Oxford, 1899

On the Lessons in Proverbs *by* R C Trench, Published *by* John W Parkar & Sons, London, 1854

Oxford Dictionary of Proverbs *by* W G Smith, Printed at the Clarendon Press, Oxford, 1935

Preface to Eastern Proverbs and Emblems (illustrating old truths) *by* Rev J Long, Published *by* Trubner & Co , London, 1881

Proverbs & Common Sayings from the Chinese *by* H Smith, Published *by* American Presbyterian Mission Press, Sanghai, 1902

Puranic Words of Wisdom *by* A P Karmarkar, Published *by* Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1947.

Racial Proverbs *by* S G Champion, Published *by* Routledge & Kegan Paul Ltd , Broadway House 68-74 Carter Lane, E C 4 , London, 1938

The Ocean of Story *by* N M Penzer, Published *by* Chas. J Sawyer Ltd. Grafton House W 1 Mcm XXVIII, London, 1880-1884

The People of India *by* Sir Herbert Hope Risley, Published *by* W Thacker & Co London, 1915

The Philosophy of Proverbs *by* Disraele.

संस्कृत

कादम्बिनी—(मधुसूदन ओझा) प्रकाशक— प्रद्युम्न शर्मा ओझा, स० १९९९।

भुवनेश लौकिक्न्यायसाहस्री—(भुवनेश) प्रकाशक—खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई।

लौकिक न्यायाञ्जली—(जी० ए० जैकब) प्रकाशक—पाडुरग जावजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९२५।

सस्कृत लोकोक्ति-सुधा—(जगदम्बाशरण) प्रकाशक—श्री अजन्ता प्रेस लि० नया टोला, पटना-४, १९५०।

गुजराती

कहेवतमाला—(जमशेदजी नसरवानजी पेतीत) प्रकाशक—जीजीभाई पेस्तनजी मिस्तरी; १९०३।

गुजराती कहेवत-सग्रह—(आशाराम दलीचन्द शाह) प्रकाशक—मूलचन्द आशाराम शाह, अहमदावाद, सन् १९२३।

चवरांकियानु तत्त्वदर्शन—(फिरोजशाह रुस्तमजी महेता) प्रकाशक—मीरझा खुशरो एण्ड क०, प्रकाश प्रिंटिंग प्रेस, जामनगर, सन् १९४९।

रूढ़िप्रयोग-कोश—(भोगीलाल भीखाभाई गाधी) प्रकाशक—गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी, सन् १८९८।

बगला

बाङ्ला-प्रवाद—(श्री सुशीलकुमार दे) प्रकाशक—रजन पब्लिशिंग हाउस, २५/२, मोहनबागान रो, कलिकाता, आश्विन १३६२।

मराठी

महाराष्ट्र वाक्-सम्प्रदाय कोश—(श्री यशवन्तराव रामकृष्ण दाते और चिंतामण-गणेश कर्वे) विभाग पहिला, प्रकाशक—महाराष्ट्र कोश मडल, लिमिटेड, पुणे, सन् १९४२।

हिन्दी-राजस्थानी

घाघ और भड्डरी—(रामनरेश त्रिपाठी) प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, इलाहाबाद, १९३१।

चौहान कुल कल्पद्रुम—(लल्लूभाई भीमभाई) प्रकाशक—देसाई लल्लूभाई भीमभाई, सदलपुर, जिला नवसारी, वि० स० १९८३।

जातक—(भदन्त आनन्द कौसल्यायन) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९४१।

ढोला मारू रा दूहा—(सपादक—ठा० रामसिंह, सूर्यनारायण और नरोत्तमदास स्वामी) प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, स० १९९१।

बाँकीदास-ग्रंथावली—(बाँकीदास) प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९३८।

बुद्धचर्य्या—(राहुल साकृत्यायन) प्रकाशक—सेवा उपवन, काशी; स० १६८८ ।

बोलचाल—(अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध') ।

भोजपुरी ग्राम-गीत—(कृष्णदेव उपाध्याय) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, स० २००५ ।

मारवाड़ रा ओखाणा—(लक्ष्मण आर्य) प्रकाशक—लक्ष्मण आर्य, सरदार सागर, जोधपुर, सन् १८६३ ।

मारवाड़ सेंसस रिपोर्ट सन् १८६१, जोधपुर राज्य द्वारा प्रकाशित । विद्यासाल जोधपुर सन् १८६५ ।

मालवी कहावतें—(रतनलाल मेहता) प्रकाशक—राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर ।

मुहावरे—(रामदहिन मिश्र) प्रकाशक—वाल-शिक्षा-समिति, पटना ।

मेवाड़ की कहावतें—(प्रथम भाग)—(लक्ष्मीलाल जोशी) प्रकाशक—राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर ।

राजस्थान रा दूहा—(नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित) प्रकाशक—नवयुग-साहित्य-मन्दिर, पोस्ट बॉक्स न० ७८ दिल्ली; १६३५ ।

राजस्थानी कहावता—(नरोत्तमदास स्वामी और मुरलीधर व्यास) प्रकाशक—राजस्थानी साहित्य परिषद् ४, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता, १६४६ ।

राजस्थानी कृषि कहावतें—(जगदीशसिंह गहलोत) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर, घटाघर, जोधपुर ।

राजस्थानी भाषा और साहित्य—(मोतीलाल मेनारिया) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, स० २००६ ।

राजस्थानी रनिवास—(राहुल सांकृत्यायन) प्रकाशक—राहुल प्रकाशन, मसूरी, १६५३ ।

राजिया के सोरठे—(जगदीशसिंह गहलोत) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर, घटाघर, जोधपुर, १६३४ ।

व्रजलोक साहित्य का अध्ययन—(डॉ० सत्येन्द्र) प्रकाशक—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, १६४६ ।

हमारा ग्राम साहित्य—(रामनरेश त्रिपाठी) प्रकाशक—हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, १६४० ।

हिन्दी मुहावरे—(ब्रह्मस्वरूप शर्मा) प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, २०३, हरीसन रोड, कलकत्ता, १६३८ ।

पत्रिकाएँ

कल्पना, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, मरु-भारती, राजस्थान भारती, राजस्थानी, सम्मेलन पत्रिका, Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, Indian Antiquary आदि ।

———